बी.ए.-II हिन्दी (अनिवार्य)

B.A.-II Hindi (Compulsory)

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय-सूची

आधुनिक कालः हिन्दी काव्य

1.	आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास : भूमिका	5
2.	आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास के अध्ययन की पूर्व पीठिकाःपरिवेश	8
3.	1857 ई0 की राज्य क्रांति और पुनर्जागरण	21
4.	भारतेन्दु युग : नामकरण एवं काल सीमांकन	24
5.	भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रमुख प्रवत्तियाँ	26
6.	भारतेन्दु युगीन प्रतिनिधि रचनाकार	29
7.	द्विवेदी युग : नामकरण एवं काल सीमांकन	39
8.	द्विवेदी युगीन काव्य की प्रमुख प्रवत्तियाँ	41
9.	द्विवेदी युगीन प्रतिनिधि रचनाकार	46
10.	छायावाद : नामकरण एवं काल सीमांकन	55
11.	छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवत्तियाँ	58
12.	छायावादी प्रतिनिधि रचनाकार	62
13.	उत्तर छायावादी कवि और उनका काव्य	75
14.	राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्यधारा	81
15.	प्रगतिवाद	83
16.	प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख प्रवत्तियाँ	85
17.	प्रगतिवादी प्रमुख रचनाकार	88
18.	प्रयोगवाद	90
19.	प्रयोगवादी काव्य की प्रमुख प्रवत्तियाँ	93
20.	नई कविता – नामकरण और विशेषताएँ	102
21.	नई कविता के प्रमुख रचनाकार	109
22.	नवगीत और नव गीतकार	113
23.	समकालीन कविता	116
24.	कहानी : उद्‌भव एवं विकास	120
25.	उपन्यास : उद्‌भव एवं विकास	136
26.	नाटक : उद्‌भव एवं विकास	143
27.	निबंध : उद्‌भव एवं विकास	153
28.	संस्मरण	166
29.	रेखाचित्र	170
30.	जीवनी	175
31.	आत्मकथा	179
32.	रिपोर्ताज	183
33.	हिंदी आलोचना : उद्‌भव एवं विकास	187
34.	दक्खिनी हिंदी साहित्य	197
35.	उर्दू साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	204
लघूत्तरी प्रश्न		**213**

बी.ए.-II हिन्दी (अनिवार्य)

पूर्णांकः 100

समयः 3 घंटे

हिन्दी साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल)

निर्देशः

1. काव्य पुस्तक से व्याख्या के लिए चार पद्यावतरण पूछे जाएंगे जिनमें से परिक्षार्थियों को दो की व्याख्या करनी होगी। प्रत्येक व्याख्या आठ अंकों की होगा। पूरा प्रश्न 16 अंकों का होगा।
2. काव्य पुस्तक से संबंधित किन्हीं तीन कवियों का साहित्यिक परिचय पूछा जाएगा जिनमें से परिक्षार्थियों को किसी एक का उत्तर देना होगा। यह प्रश्न 10 अंकों का होगा।
3. अंधेर नगरी से चार लघुत्तरी प्रश्न पूछे जाएंगे जिनमें से परिक्षार्थियों को दो प्रश्नों के उत्तर देने होंगे। प्रत्येक प्रश्न 6 अंकों का होगा।
4. ''जहाज का पंछी'' उपन्यास से चार आलोचनात्मक प्रश्न पूछे जाएंगे जिनमें से परिक्षार्थियों को दो प्रश्नों के उत्तर देने होंगे। प्रत्येक प्रश्न 10 अंकों का होगा।
5. ''अभिनव गद्य गरिमा'' से चार गद्यांश पूछ जाएंगे जिनमें से परिक्षार्थियों को दो की सप्रसंग व्याख्या करनी होगी। प्रत्येक व्याख्या 8 अंकों की होगी। इनमें 4 लघुत्तरी प्रश्न पूछे जाएंगे। जिनमें से परिक्षार्थियों को किन्हीं दो प्रश्नों के उत्तर देने होंगे। प्रत्येक प्रश्न 5+5 अंकों का होगा।
6. आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहस से दस प्रश्न अति लघुत्तरी पूछे जाएंगे। जिनमें से परिक्षार्थियों को 8 प्रश्नों का उत्तर देना होगा। प्रत्येक का उत्तर लगभग 150 शब्दों में देना होगा। प्रत्येक प्रश्न 2 अंकों का होगा। पूरा प्रश्न 16 अंकों का होगा।

आधुनिक कालः हिन्दी काव्य

1. आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास : भूमिका

हिंदी साहित्य के इतिहास के हजार वर्षों के इतिहास को मुख्य रूप से आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल कालक्रमानुसार विभाजित किया गया है। मध्यकाल को पुनः पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल दो भागों में विभक्त किया गया है।

भक्तिकाल के अतिरिक्त तीनों कालों के एक से अधिक नामकरण एवं सीमा निर्धारण में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है फिर भी अधिकांश विद्वानों ने शुक्ल जी द्वारा प्रदत्त नाम एवं समय सीमा को स्वीकारा है–

(i) आदिकाल (वीरगाथा काल, संवत् 1050 – 1375 तक)

(ii) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् 1365–1700 तक)

(iii) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, संवत् 1700–1900 तक)

(iv) आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् 1900 – आज तक)

साहित्येतिहास का कालक्रमानुसार विभाजन तत्कालीन कृतियों की प्रवत्ति विशेष के अनुसार किया गया है। ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि एक निश्चित तिथि के पश्चात् एक विशिष्ट प्रकार के साहित्य का सजन समाप्त या प्रारम्भ हो जाता है क्योंकि साहित्य सजन में काल सीमा का कोई बंधन नहीं है। किसी विशिष्ट काल में भी अन्य प्रकार के साहित्य का भी सजन होता रहता है। आधुनिक काल में गद्य–पद्य साहित्य की रचना समानांतर रूप से चली आ रही है।

हिंदी साहित्येतिहास के आधुनिक काल की प्रमुख घटना गद्य का आविर्भाव है। इसी को दष्टिगत रखते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को गद्य काल नाम दिया है और इस काल का प्रारम्भ संवत् 1900 विक्रमी स्वीकारा है।

आधुनिक काल से पूर्व गद्य का विकास

संवत् 1900 वि. से पूर्व गद्य अपने विभिन्न रूपों में हिंदी साहित्य में पदार्पण कर चुका था। यद्यपि शुक्ल ने गद्य साहित्य का आविर्भाव संवत् 1913 में राजा शिव प्रसाद के शिक्षा विभाग में निरीक्षक पद पर नियुक्ति से माना है। राजा शिव प्रसाद ने स्वयं हिंदी रचना का बीड़ा उठाया तथा पंडित श्री लाल एवं पंडित वंशीधर आदि अपने इष्ट मित्रों को भी हिंदी में पुस्तक सजन की प्रेरणा दी। तत्कालीन साहित्य में 'राजा भोज का सपना', 'वीर सिंह का वत्तांत', 'आलसियों का कोड़ा' आदि उपयोगी कहानियों के अतिरिक्त "भारत वर्षीय इतिहास", "जीविका–परिपाटी" (अर्थशास्त्र) तथा "जगत वत्तांत" का विशेष महत्व है।

रीतिकाल की समाप्ति तक देश में आंग्ल राज्य पूर्ण रूपेण स्थापित हो चुका था जिसने अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया। चार्ल्स ग्रांट ने संवत 1858 वि. में ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टरों के पास अंग्रेजी की शिक्षा द्वारा भारतीयों को शिक्षित करने हेतु प्रस्ताव प्रेषित किया था। कोलकात्ता में हिंदू कॉलेज की स्थापना उसी की एक कड़ी है। लार्ड मैकाले ने संवत् 1883 में अंग्रेजी के साथ–साथ देशभाषा द्वारा शिक्षा की संभावना को स्वीकारा। व्यावहारिक कठिनता के कारण सरकारी कार्यालयों में अंग्रेजी एवं देशी भाषा को फ़ारसी का स्थापन्न बनाया गया।

साहित्य की भाषा ब्रजभाषा ब्रज–मंडल के बाहर बोलचाल की भाषा नहीं थी। दिल्ली की खड़ी बोली शिष्ट–समुदाय की व्यावहारिक भाषा बन चुकी थी। खुसरो ने विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में ही ब्रजभाषा के साथ–साथ खड़ी बोली कुछ पद्य और पहेलियाँ बनाई थीं। फ़ारसी मिश्रित खड़ी बोली अर्थात् रेख़ता में शायरी का श्रीगणेश औरंगजेब के शासन काल में ही हो गया था। दिल्ली पतन के परिणामस्वरूप पूर्व में स्थित बड़े–बड़े शहरों के बाजार की व्यावहारिक भाषा का रूप में खड़ी

बोली ने ले लिया जो असली एवं स्वाभाविक भाषा थी। अकबर कालीन गंग कवि ने "चंद छंद बरनन की महिमा" की रचना खड़ी बोली में की। संवत् 1980 में जटमल ने 'गोराबादल की कथा' का सजन राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली में किया।

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने लिखा है–

"जिस समय अंग्रेजी राज्य भारत में प्रतिष्ठित हुआ, उस समय सारे उत्तरी भारत में खड़ी बोली व्यवहार की शिष्ट भाषा हो चुकी थी अंग्रेजों ने उर्दू को देश की स्वाभाविक भाषा और उसके साहित्य को देश का साहित्य नहीं स्वीकारा। इसीलिए देश की भाषा सीखने हेतु गद्य की खोज हुई। उर्दू के साथ–साथ हिंदी (शुद्ध खड़ी बोली) में गद्य रचना को प्रधानता दी गई क्योंकि उस समय तक वास्तव में गद्य की पुस्तकें न उर्दू में थीं न हिंदी में। कोलकात्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पूर्व 'सुखसागर' (भागवत कथा का अनुवाद) – मुंशी सदासुख लाल, 'रानी केतकी की कहानी' – इंशा अल्ला खां की रचना हो चुकी थी। कुछ विद्वानों ने "रानी केतकी की कहानी" को हिंदी की प्रथम कहानी स्वीकारा है। इसलिए गद्य के प्रादुर्भाव को अंग्रेजी की प्रेरणा स्वरूप नहीं माना जा सकता है।

संवत् 1890 वि. में फोर्ट विलियम कॉलेज कोलकात्ता के अध्यक्ष जान गिलक्राइस्ट ने देशी भाषा (खड़ी बोली, गद्य की पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की जिसमें उर्दू–हिंदी दोनों का अलग–अलग प्रबंध किया। खड़ी बोली गद्य की नियमित प्रतिष्ठा करने का श्रेय – लल्लू लाल जी – प्रेम सागर, सदल मिश्र – नासिकेतोपाख्यान, मुंशी सदासुखलाल – सुखसागर तथा सैयद इंशा अल्ला खां – रानी केतकी की कहानी, चार महानुभावों को है।

फोर्ट विलियम कॉलेज से पूर्व हिंदी गद्य -

फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पूर्व भी हिंदी गद्य अपना अस्तित्व स्थापित कर चुका था। संवत् 1400 वि. के ब्रज भाषा गद्य का रूप गोरखनाथ की वाणी, गोरखनाथ के पद तथा ज्ञान सिद्धांत जोग से मिलता है जिसे ब्रजभाषा गद्य का पुराना रूप कहा जा सकता है। गोसाईं गोकुल नाथ जी ने "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" एवं "दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता" की रचना की। इनका रचना काल संवत् 1625–1650 वि. तक का है। इनकी भाषा बोलचाल की ब्रज भाषा है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है– "भाषा–विप्लव नहीं संघटन हुआ और खड़ी बोली, जो कभी अलग और कभी ब्रजभाषा की गोद में दिखाई पड़ जाती थी, धीरे–धीरे व्यवहार की शिष्ट भाषा होकर गद्य के नए मैदान में दौड़ पड़ी।"

टीकाओं द्वारा गद्य की उन्नति की संभावना नहीं हुई। गद्य को एक साथ प्रतिष्ठापित करने वाले चारों लेखकों में आधुनिक हिंदी का पूर्ण आभास मुंशी सदासुख एवं सदलमिश्र की भाषा में उपलब्ध होता है। इनमें भी मुंशी सदासुख की भाषा अधिक महत्वपूर्ण है। आधुनिक गद्य के प्रतिष्ठापन का श्रेय मुंशी सदासुख लाल को है। किंतु यह परंपरा अपनी अखंडता नहीं बना पाई। यह परंपरा लगभग पचास वर्षों तक लुप्त रही। पुनः संवत् 1914 से हिंदी गद्य साहित्य की परंपरा का आरंभ हुआ। इससे पूर्व काल में ईसाई मत प्रचारकों ने विशुद्ध हिंदी का व्यवहार किया है। बाइबिल तथा नए धर्म नियम का अनुवाद केरे ने शुद्ध खड़ी बोली में किया है। इन्होंने सदासुख और लल्लू लाल की विशुद्ध भाषा को अपना आदर्श बनाया तथा उर्दूपन का पूर्ण बहिष्कार किया।

फोर्ट विलियम कॉलेज के पश्चात् हिंदी गद्य-

'सिरामपुर प्रेस' से संवत् 1893 में 'दाऊद के गीत' का प्रकाशन हआ। शिक्षा–संबंधी पुस्तकें छपने लगीं। अंग्रेजी शिक्षा हेतु स्कूल और कॉलेजों की स्थापना हुई जहां अंग्रेजी के साथ हिंदी–उर्दू की पढ़ाई की भी व्यवस्था की गई। संवत् 1900 से पूर्व ही ऐसी पुस्तकों की मांग हो चुकी थी जिसके परिणामस्वरूप संवत् 1890 में आगरा में पादरियों ने "स्कूल–बुक–सोसाइटी" की स्थापना की। जहां से "प्राचीन इतिहास" का अनुवाद "कथासार" के नाम से प्रकाशित हुआ। इसके अनुवादक पंडित रतन लाल थे।

आगरा 'स्कूल–सोसायटी' से संवत् 1897 में पंडित ओंकार भट्ट ने "भूगोलसार" तथा संवत् 1904 में पंडित बद्रीलाल शर्मा ने "रसायन प्रकाश" छापा।

कोलकाता की 'स्कूल–बुक–सोसायटी' ने संवत 1903 में 'पदार्थ विद्यासार' प्रकाशित किया। इलाहाबाद मिशन प्रेस से संवत् 1897 में 'आज़मगढ़ रीडर' प्रकाशित हुआ। संवत् 1912–1919 तक 'भूचरित्र दर्पण', 'भूगोल विद्या', 'मनोरंजक वत्तांत,' 'जंतु प्रबंध,' 'विद्यासार', 'विद्वान संग्रह' आदि का प्रकाशन शेरिंग ने किया। 'आसी' और 'जान' के भजन देशी ईसाइयों में बहुत प्रचलित हुए हैं। हिंदी–गद्य के प्रचार–प्रसार में ईसाइयों का अत्यधिक योगदान रहा है।

'छापा खाना' खुलने लगे जिसके परिणामस्वरूप लोगों का ध्यान सामयिक पत्रों की ओर आकृष्ट हुआ। कोलकाता से अंग्रेजी एवं बंगला के पत्रों का प्रकाशन आरंभ हुआ। देवनागरी लिपि में टूटी–फूटी चाल पर लिखी जाने वाली भाषा हिंदी कहलाई।

शिक्षा विभाग में नियुक्त होने से पूर्व राजा शिव प्रसाद सिंह का ध्यान हिंदी भाषा की ओर था। अन्य भाषाओं के समाचार पत्रों के प्रकाशन को दष्टिगत रखते हुए उन्होंने संवत् 1902 में 'बनारस अख़बार' निकाला। संवत् 1907 में तारा मोहन मित्रादि ने "सुधाकर" नाम का दूसरा पत्र काशी से निकाला। संवत् 1909 में आगरा से किसी मुंशी सदासुखलाल ने "बुद्धि प्रकाश" पत्र निकाला।

आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास को गद्य काल भी कहा गया है। समय सीमा संवत 1900 से मानी गई है। जबकि गद्य का उद्‌भव और विकास इससे पूर्व हो चुका था। इसलिए यह विवेचन विषय से पूर्व अनिवार्य था।

2. आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास के अध्ययन की पूर्व पीठिका:परिवेश

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की मुख्य घटना साहित्य में गद्य का आविर्भाव है। वीरगाथा काल, भक्ति काल एवं रीति काल के काव्य की भाषा क्रमशः डिंगल–पिंगल, अवधि–ब्रज थी जो पद्यात्मक थी। साहित्य की दो प्रमुख धाराएं पद्य एवं गद्य हैं। गद्य आधुनिक काल की देन है जो अपने साथ खड़ी बोली गद्य को साहित्यिक, परिनिष्ठित, मानक एवं सर्वसुलभ हिंदी के रूप में लेकर आया। आधुनिक काल में गद्य–पद्य का समानांतर विकास हुआ। यह काल उत्थान–पतन, विप्लव–क्रांति – सजन, युद्ध–शांति, विनाश–निर्माण प्रधान रहा है जिसके परिणामस्वरूप आधुनिक काल का साहित्य नव चेतना – नवीन दष्टिकोण, संत्रास–कुंठा, शोषक–शोषित, पूंजीपति–श्रमहारा, ज्ञान–विज्ञान, आध्यात्मिकता–भौतिकता, धर्म–राजनीति का प्रतिनिधित्व करता है। साहित्यिक–वैविध्य की उत्तरदायी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक या धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियां हैं। इन परिस्थितियों की जन्मदात्री अंग्रेजों की तत्कालीन सत्ता थी जिसने स्वाभाविक रूप से भारतीयों में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष क्रांति एवं विद्रोह की भावना जागत करके पुनर्जागरण की दिशा की ओर अग्रसर किया।

(क) **परिवेश**– साहित्य–परिवेश समाज का दर्पण है। समाज की परिवेशजन्य परिस्थितियां साहित्य सजन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं जिनसे प्रभावित होकर ही साहित्यकार साहित्यिक क्षेत्र में आधुनिक नवीन सोच एवं नव्य दष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। समाज का परिवेश निर्माण करने में राजनीति, समाज, अर्थ, संस्कृति या धर्म एवं साहित्य का विशेष योगदान होता है जो साहित्य सजन में पूर्व पीठिका स्वरूप उपस्थित होता है–

(i) **राजनीतिकः**- किसी काल के साहित्य में नवीन प्रवत्तियों का जन्म चमत्कारिक घटना के परिणामस्वरूप अचानक नहीं होता है अपितु कुछ समय पूर्व उसका बीजवपन हो जाता है जो अत्यधिक गहराई में पड़ा रहता है। अनुकूल वातावरण एवं प्राकृतिक संरक्षण में पोषण प्राप्त कर अंकुरित एवं पल्लवित होता है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में नवयुग की चेतना का विकास अति महत्वपूर्ण घटना है। इसका बीज इसी काल के राजनीतिक परिवेश की देन है।

प्रथम काल– प्लासी युद्ध ने अंग्रेजों की नींव भारत में सुदढ़ कर दी। शनैः शनैः ईस्ट इंडिया कंपनी ने संपूर्ण भारत पर अपनी सत्ता जमा ली। कंपनी का प्रभुत्व बढ़ने के साथ–साथ उसके अधिकारी अपना अत्याचार उत्तरोत्तर बढ़ाने लगे। भारतीयों में असंतोष, क्षोभ, विद्रोह, संत्रास एवं कुंठा की लहर दौड़ गई। कंपनी के अधिकारियों ने देशी राजाओं को अपने में मिलाने हेतु कुटिल 'लैप्स नीति' को अपनाया जो बड़ी घातक सिद्ध हुई। सन् 1858 में झांसी को 'लैप्स नीति' के आधार पर कंपनी ने अपने शासन में मिला लिया जिसके परिणामस्वरूप देश में प्रजा एवं देशी राजा दोनों ही कंपनी के अत्याचारी शासन से घबरा गए। इंडियन नेशनल कांग्रेस ने भारतीयों के राजनीतिक परिवेश को और अधिक विकास प्रदान किया। कांग्रेस ने जनता के समक्ष कुछ निश्चित राजनीतिक सिद्धान्त प्रस्तुत किए जिनकी प्राप्ति के लिए भारतीयों में अपार उत्साह की भावना जग गई। इटली के 'स्वतन्त्रता युद्ध', आयरलैंड के 'होमरूल' आंदोलन तथा फ्रांस की 'राज्यक्रांति' के इतिहास ने जनता की विरोधी भावना को अत्यधिक भड़काया एवं अनेक उत्साही युवकों ने हिंसात्मक उपायों से अंग्रेजी राज्य को समाप्त करने की प्रबल इच्छाएं व्यक्त की। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में नवयुग की इस राजनीतिक चेतना का प्रभाव भारतेंदु–युग पर स्पष्ट रूपेण परिलक्षित होता है।

द्वितीय काल– यह काल सन् 1905 से आरम्भ होता है। कांग्रेस ने आवेदन एवं प्रार्थना की नरम नीति का परित्याग कर उसने "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" की घोषणा कर दी। इसी समय कांग्रेस में गरम एवं नरम दो दल हो गए। कर्जन की बंगाल–विभाजन की भारत विरोधी नीति से राष्ट्रीय भावनाओं से आपूरित भारतीयों की आंखें खुल गई थीं और वे अंग्रेजों को अति संदेह की दष्टि से देखने लगे थे। इस युग में भारतीय राजनीति का

आधार मानवतावाद कहा गया। देश के असंतोष को शांत करने के लिए अंग्रेजी शासकों ने समय–समय पर शासन–प्रणाली में सुधार किए। सन् 1909 ई. में मार्ले–मिंटो–सुधार कानून पास हुआ, इसने मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व दिया जिससे हिंदु–मुस्लिम एकता को बड़ी ठेस पहुंची। अत्यधिक प्रयत्नोपरांत सन् 1926 में हिंदु–मुस्लिम समझौता हो सका और श्रीमती एनीबेसेंट के प्रयत्न से कांग्रेस के दोनों दलों में भी एकता स्थापित हो गई। किंतु इसी बीच यूरोप में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। भारतीयों ने तन–मन से अंग्रेजों की सहायता की किंतु युद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेज अपने वायदे से मुकर गए, उल्टे रौलट ऐक्ट (1919) के द्वारा भारतीय जनता से स्वतंत्रता के अधिकार छीन लिए। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के इतिहास में राजनीतिक परिवेश के द्वितीय उत्थान का यह समय द्विवेदी युग या सुधार काल के नाम से अभिहित है।

ततीय काल – ततीय काल प्रथम महायुद्ध की समाप्ति से आरंभ होता है। महायुद्ध के बाद भीषण जनसंहार के कारण मानवचित्त उद्वेलित हो रहा था तथा भारतीयों पर अंग्रेजों ने "रौलट एक्ट" की दमन नीति के द्वारा अति कठोर आघात किया। एक ओर सुधार का ढोंग था और दूसरी ओर घोर दमन की अत्याचारपूर्ण नीति, जिसका भारत की सभी जातियों ने विरोध किया। सन् 1920 ई. में तिलक के देहावसान से कांग्रेस का नेतत्व पूर्णरूपेण गांधी जी के हाथों में आ गया था। राजनीतिक चेतना का ततीय उत्थान ग्राम–उद्धार एवं मध्य वर्ग के विकास के रूप में देखा जा सकता है। गांधी जी ने अहिंसा को स्वतन्त्रता प्राप्ति का लक्ष्य बनाया जिसका मुख्य आधार असहयोग एवं ग्रामोद्धार था। गांधी की संपूर्ण शक्ति रचनात्मक कार्यों में लग रही थी। अन्य राजनीतिक अपने विचारों से बुद्धिजीवी वर्ग में देश भक्ति की भावना जागत करने में लगे हुए थे। शनैः शनैः कांग्रेस पार्टी ने भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य के स्थान पर पूर्ण स्वराज्य की मांग की। कांग्रेस पार्टी के राजनीतिक कार्यों से जनता में राष्ट्रीयता की भावना का उत्तरोत्तर विकास हुआ। असहयोग के दो रूप थे, एक तो विदेशी शासकों के साथ असहयोग एवं विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार। मुख्य रूप से विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार हुआ। विदेशी वस्त्रों की होली जली। खादी राष्ट्रीय भावना का प्रतीक बन गई। गांधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम में मानवतावाद को प्रमुख स्थान दिया। गांधी जी की मानवतावादी भावना के अहिंसा, सत्याग्रह, राजनीतिक समानता, अछूतोद्धार, हिंदू–मुस्लिम एकता, धार्मिक समन्वय, ग्रामोद्धार, जमींदारी उन्मूलन आदि अनेक रूप हैं। गांधी जी के उपर्युक्त कार्यों में निश्चित रूप से रचनात्मक आंदोलन का अति सुष्ठु स्वरूप दष्टिगोचर होता है। इनमें से हरिजन आंदोलन, जमींदारी प्रथा का विरोध एवं अत्याचारों के विरुद्ध सत्याग्रह आदि राष्ट्रीय एकता एवं देशव्यापी राजनीतिक चेतना में विशेष सहायक सिद्ध हुए। इसी युग में रवींद्रनाथ टैगोर ने मानवतावाद का प्रचार अपने साहित्य द्वारा किया। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीयता, विश्व संस्कृति, आध्यात्मिकता आदि का प्रचार किया। इस काल में गांधी एवं रवींद्रनाथ टैगोर का विशेष योगदान रहा, जिन्होंने युगीन विचारधारा को अति व्यापक रूप से प्रभावित किया।

चतुर्थ काल– चतुर्थ काल का आरंभ द्वितीय महायुद्ध से होता है। स्वतन्त्रता संग्राम अपने चरम रूप में था विश्व के अन्य राष्ट्रों का भी समर्थन मिल रहा था। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर पूर्ण स्वतन्त्रता मिलने की आशा बलवती होती जा रही थी। पूंजीवाद में वद्धि हो रही थी जिससे जनता अत्यधिक असंतुष्ट हो रही थी। स्वतन्त्रता आंदोलन के स्वरूप में पर्याप्त बदलाव आ गया था। राजनीतिक परिस्थितियां भी बदल गई थीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु हिंदु–मुसलमानों में समझौता होना था। सन् 1945 में ब्रिटेन में उदार दल की सरकार बनी जिसको भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन के साथ पूर्ण सहानुभूति थी। शनैः शनैः भौतिकता के विकास के साथ ही देश के जीवन में अति शुष्कता आ गई थी। इस काल की राजनीतिक चेतना का एक अति महत्वपूर्ण तथ्य समाजवादी विचारधारा का विकास है। पूंजीवाद वर्ग–संघर्ष को बढ़ावा दे रहा था। भारतवर्ष में आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न वर्ग–संघर्ष में मार्क्सवादी विचारधारा को विशेष बढ़ावा मिला। इसका मुख्य कारण स्वतन्त्रता आंदोलन के लिए विशेषकर राजनीतिक अन्यायों का विरोध करने के लिए अपनाए गए सत्याग्रह और हड़तालों द्वारा जागत मजदूरों एवं कृषक वर्ग की चैतन्यता थी। उस काल की विचारधारा पर इन सबका अत्यधिक प्रभाव पड़ा। शनैः शनैः भारत स्वतन्त्र होकर गणतंत्र बन गया।

पंचम काल– गणतंत्रता प्राप्ति के साथ ही हमारे देश में राजनीतिक परिवेश का पंचम काल आ जाता है। राजनीतिक विद्रोही भावना समाप्त हो गई। राष्ट्रीय एकता का अंतर्राष्ट्रीयता में विकास हो गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति

ने भारतीयों के दष्टिकोण को व्यापकता प्रदान की और उन्होंने विश्व के अन्य दासता में जकड़े हुए लोगों के प्रति सहानुभूति का दष्टिकोण अपनाया। आंतरिक संघर्ष से अवकाश प्राप्त कर भारतीय राजनीतिज्ञों ने विश्व के अन्य राष्ट्रों से संपर्क बढ़ाया तथा सह अस्तित्व के सिद्धांत को विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। इसलिए भारत का स्थान विश्व के अन्य राष्ट्रों में विशिष्टता में आ गया। विश्व शांति एवं पंचशील नीति के लिए प्रशंसा का पात्र बन गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक काल के राजनीतिक परिवेश में कितना परिवर्तन आया है।

(ii) **सामाजिक**

देश सामाजिक क्षेत्र में लगभग पुनर्नवा रूप धारण करने हेतु प्रयत्नशील था। समाज में व्याप्त पाखंड, आडंबर एवं अंधविश्वासों को सुधारवादी नेता समाप्त करने के प्रति सजग हो गए थे। पुरातनवादी इसका विरोध कर रहे थे। ब्रह्म समाज, आर्य समाज जैसी संस्थाओं का बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब, गुजरात आदि में विरोध किया गया। किंतु पुनर्जागरण की चेतना तीव्रता के सम्मुख छोटे छोटे विरोध धराशायी होते गए। देश ने सामाजिक क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की। हरिजनोद्धार, स्त्री–शिक्षा, विधवा–विवाह आदि अनेक सामाजिक सुधार हुए। स्त्री शोषण, दहेज प्रथा का विरोध हुआ। जाति–प्रथा की कट्टरता में ढिलाई, अंतर्जातीय–विवाह आदि अनेक सामाजिक सुधार किए गए। शिक्षा का व्यापक प्रसार किया। निरक्षरता का साक्षरता में परिवर्तन हुआ। पश्चिमी सभ्यता, उच्च शिक्षा एवं भौतिकतावादी दष्टिकोण ने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं।

भारत में अंग्रेजी शासन एक महत्वपूर्ण घटना है। भारत के सामाजिक जीवन में आधुनिक काल में जो चेतना आई उसका मुख्य कारण भारतीय स्वतन्त्रता एवं आंग्ल–भारतीय संपर्क है। सामाजिक क्षेत्र की परंपराओं एवं रूढ़ियों पर आंग्ल संपर्क ने आघात किया और भारतीय दष्टिकोण में व्यापकता आई। अंग्रेजी–शिक्षा का प्रभाव भारतीय दष्टिकोण में परिवर्तन करने में सहायक हुआ है। नैतिकता का ह्रास हुआ है। मध्यकालीन हिंदू धर्म की कट्टरता शनैः शनैः दूर होने लगी है। वैसे ही मुगलों के पतन के साथ ही हिंदू धर्म की स्थिति दढ़ एवं सुरक्षित हो रही थी। ऐसे समय में आर्य समाज की स्थापना करने वाले स्वामी दयानंद सरस्वती का आगमन हुआ उन्होंने हिन्दू धर्म की अनुदारता एवं कट्टरपन को दूर करने के लिए बहुत बड़ी क्रांति उपस्थित की। आर्य समाज के आंदोलन ने हिंदू समाज को जागत किया। अन्यथा हिंदू समाज बहुत पिछड़ जाता और निश्चय ही दुर्बल हो जाता। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण विदेशी सरकार की कृपा प्राप्त करने हेतु ईसाई धर्म को मानने से आर्य समाज ने भारतीयों को बचाया। आर्य समाज ईसाई धर्म आंदोलन के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप आया। पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव पश्चिमी बंगाल से होता हुआ संपूर्ण देश के जीवन को आच्छादित कर रहा था। अंग्रेजी शिक्षा इस विकास में विशेष सहयोगी सिद्ध हो रही थी। प्राचीन वैदिक प्रेरणा लेकर स्वामी दयानंद ने सामाजिक क्षेत्र में अपूर्व क्रांति की। सामाजिक रूढ़ियों का तिरस्कार करने के परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन का मूल्य बदल गया। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रथम उत्थान अर्थात् भारतेन्तु युग या पुनर्जागरण काल में सामाजिक द्वन्द्व का स्वरूप व्यक्त हुआ। एक ओर विधवा विवाह के पक्षपाती थे तो दूसरी ओर इसे 'अनहोनी' कहने वाले भी वर्तमान थे। इसी प्रकार एक ओर जाति–पांति के विरोधी थे दूसरी ओर इसे 'जगत विदित फुलवारी' को निर्मूल करने की प्रबल धारणा वाले पक्षपाती। इन दोनों धाराओं के मध्य एक धारा उन विचारकों की थी जो प्रत्येक कल्याणकारी सामाजिक आंदोलन की प्रशंसा करने से नहीं चूकते थे।

तत्कालीन सामाजिक दोषों जैसे धार्मिक विवाद, बाल–विवाह, विधवा–विवाह, जाति–पांति, अंधविश्वास, समुद्रयात्रा निषेध, स्त्री शिक्षा–निषेध, जाति बहिष्कार आदि के प्रति इनकी आंखे खुली रहती थी और वे इन समस्याओं का समाधान प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील रहते थे। आर्य समाज के पक्षपाती विचारकों ने कुछ अति भी की और सभी प्राचीन परंपराओं एवं रूढ़ियों को 'पोप लीला' के अंतर्गत स्वीकारते हुए उनकी कटु आलोचना की जिसके शब्दाडंबर में उनकी सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप अति धूमिल हो गया। किंतु जब ये विचारक निष्फल वाद–विवाद को त्यागकर समाज–सुधार एवं देशोद्धार की सक्रिय योजना प्रस्तुत करते हैं तब इनके सदुद्देश्य की प्रशंसा करनी ही पड़ती है। भारतेंदु युग में सामाजिक क्षेत्र में अत्यधिक परिवर्तन उपस्थित हुआ। जिससे सामाजिक परिस्थिति में अत्यधिक अशांति आई।

सन् 1900–1918 तक हिंदी साहित्य आधुनिक काल के द्वितीय उत्थान अर्थात् द्विवेदी युग या जागरण–सुधार–काल में सामाजिक क्षेत्र की अशांति दूर हो गई और नवीन व्यापक दष्टिकोण जीवन के नवीन–मूल्य के रूप में स्थापित हो गया। यही कारण है कि इस युग में पूर्व युग के वाद–विवाद, आलोचना–प्रत्यालोचना का प्रायः अभाव है। इस युग के विचारकों ने समाज सुधार की आवश्यकता को बहुत महत्व दिया और बड़े शांत चित्त से सामाजिक कुरीतियों के निराकरण के सुझाव प्रस्तुत किए। स्त्री–शिक्षा सामान्य हो गई। बालविधवाओं के प्रति व्यापक सहानुभूति दष्टिगोचर होती है। बालविधवाओं के शाप में सामाजिक अद्यःपतन का कारण खोजना इस सहानुभूति पूर्ण दष्टिकोण का परिचायक है। अछूतोद्धार के प्रति सद्व्यवहार हृदय की विशालता, दहेज की कुप्रथा को दूर करने का प्रयत्न इस युग के समाज सुधारकों में विशेष रूप से दष्टिगोचर होता है। पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण का विरोध इस युग में भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसके साथ ही इस युग में नवीन प्रवत्ति के दर्शन होते हैं। यह प्रवत्ति मानवतावाद की है। पूंजीवाद की बढ़ोत्तरी से उत्पन्न वर्ग–संघर्ष तथा स्त्री–दुर्दशा, दहेज–प्रथा से उत्पन्न क्षोभ की परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया स्वरूप लोगों को जनवादी विचारों का महत्व ज्ञात हुआ। वास्तव में सामन्तशाही के विनाश एवं देशी राजाओं के पतन के कारण सामाजिक व्यवस्था बदल गई थी। इसके अतिरिक्त राजनीतिक क्षेत्र में भी मध्यवर्ग का सहयोग अति महत्वपूर्ण प्रतीत होता रहा था। इस कारण इस युग के विचारकों में मानवता के प्रति विस्तत दष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ। देश के महान विचारकों ने निर्धन और शोषित समाज के प्रति संवेदना और नारी स्थिति के प्रति करुणा व्यक्त की, उसके 'आंचल में दूध और आंखों में पानी' वाली स्थिति का चित्रण करके सहानुभूति एवं उच्च भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के ततीय उत्थान अर्थात् छायावाद काल सन् 1918–1938 ई. तक सामाजिक क्षेत्र में और अधिक विकास हुआ और मानवतावादी दष्टिकोण का महत्व बढ़ा। वस्तुतः राजनीति में मानवतावाद को आधार बनाया गया इसलिए इसकी मान्यता अधिक बढ़ गई। राजनीतिक स्वतन्त्रता – आंदोलन सामान्य जन समुदाय को साथ लेकर चला। इस समय तक अंग्रेजी–शिक्षा का प्रचार–प्रसार बहुत विस्तत एवं व्यापक हो चुका था। इसलिए महान विचारक व्यापक दष्टिकोण से सामाजिक अवस्था पर चिंतन मनन करने लगे थे। गांधी जी की संपूर्ण क्रियात्मक योजनाएं सामाजिक उत्थान के लिए अत्यधिक शक्तिशाली सिद्ध हुई। गांधी जी की मानवतावादी भावना ने निम्न स्तर के लोगों की सामाजिक स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन किया। उनकी मानवतावादी भावना के कई रूप मिलते हैं। शनैः शनैः पश्चिमी संस्कृति के विरोध में और भारतीय संस्कृति के प्रतीक स्वरूप खादी भी उच्च सामाजिक भावनाओं का प्रतीक बन गई। आर्य समाज के आधार पर वैदिक युग का पुनरुत्थान भी इस युग में दष्टिगोचर होता है। वैदिक उत्थान काल में इसीलिए आध्यात्मिक भावना का भी विकास हुआ और मानवता की सेवा और उसके द्वारा ईश्वर प्राप्ति की भावना पर जोर दिया गया। इसीलिए औद्योगिकता का विरोध किया। यंत्र में वे मानव शोषण की झलक पाते हैं, किसानों की दीनता का उनके जीवन पर अति व्यापक प्रभाव पड़ा था तथा इस महान शाप का निराकरण करने हेतु वे कृषक–वर्ग की जागति के महान समर्थक थे। जाति–पांति तथा अछूतों के प्रति अत्याचार से उनका हृदय चूर–चूर हो रहा था तथा इन सब में अछूतों को भगवान के मंदिरों से दूर करने की प्रवत्ति उन्हें घोर नास्तिकता एवं मूढ़ता की प्रतीति कराती थी इसलिए उन्होंने आध्यात्मिकता के महत्व का प्रतिपादन किया है।

इस युग के दूसरे महान विचारक, समाज सुधारक एवं मानवतावाद के समर्थक विश्व कवि रवींद्रनाथ टैगोर हुए। इनकी कविता में मानवतावाद अति व्यापक रूप में व्यक्त हुआ है जिसने उन्हें विश्व कवि का स्थान दिलाया। उनकी मानवतावाद के प्रमुख रूप विश्व संस्कृति, आध्यात्मिकता, अंतर्राष्ट्रीयता, मानव दुख निवारण तथा जाति–पांति का भेद मिटाने की तत्परता आदि हैं। ब्रह्म समाज को स्थिरता प्रदान करने में उन्होंने अत्यधिक सहयोग दिया। उन पर पश्चिम के मानवतावाद के आदर्श का व्यापक प्रभाव था और उन्होंने मानव को समग्र मानव समाज के रूप में देखा। ब्रह्म समाज के द्वारा उन्होंने बंगाल के रूढ़िग्रस्त सामाजिक संगठन में स्वच्छता का संचार किया और सामाजिक व्यवस्था को नवयुग की चेतना से उचित रूप से आत्मसात करने योग्य बनाया। रवींद्रनाथ टैगोर पर विवेकानंद का गहरा प्रभाव था। उनकी मानवता की उपासना में विवेकानंद के दर्शन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होंने दुख को मानवता की एकसूत्रता के मूलमंत्र के रूप में स्वीकारते हुए उसे साधनात्मक रूप दिया है। उनके हृदय की करुण भावनाएं सामाजिक जागति को दष्टिगत रखते हुए व्यक्त हुई हैं। मानवता का विकास

इन सबका एकमात्र लक्ष्य है, आधार विश्व शांति है जिसे अंतर्राष्ट्रीयता की भावना के विकसित होने पर ही प्राप्त किया जा सकता है।

योगिराज अरविंद इस युग की विचारधारा को प्रभावित करने वाले तीसरे महान व्यक्ति हैं। श्री अरविंद मानव जाति के विकास के लिए ही योग साधना या विचार साधना करने में तत्पर थे। उनका जीवन मानव सेवा में समर्पित था। उनके मानवतावाद में अध्यात्मवाद की उच्च अनुभूति का सम्मिश्रण था और उनका साधनात्मक जीवन और इच्छा शक्ति की दढ़ता मानव को पूर्ण मानव बनाने में संलग्न थी।

इस युग में सामाजिक व्यवस्था हेतु अति ठोस परिवर्तन हो रहे थे तथा उनका प्रभाव समाज के साथ–साथ साहित्य पर भी पड़ रहा था। उपर्युक्त सामाजिक अवस्था में और भारतेन्दु युग या द्विवेदी की सामाजिक अवस्था में पर्याप्त अंतर है। भारतेंदु युग में नवयुग की चेतना का विकास हुआ और सामाजिक अवस्था में परिवर्तन की पुकार से अत्यधिक अशांति का वातावरण उपस्थित हो गया, द्विवेदी युग में यह अशांति शांति में बदल गई। समाज सुधारक सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों का खंडन करने के साथ–साथ सामाजिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करने हेतु ठोस विचार एवं सुझाव प्रस्तुत करने लगे। शनैः शनैः मानवतावादी भावनाओं का विकास हो रहा था। किंतु हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के ततीय उत्थान अर्थात् छायावाद में सामाजिक अवस्था का मुख्य रूप मानवतावादी भावनाओं में केन्द्रित हो गया था और सामाजिक कुरीतियों के निवारण हेतु कुछ ठोस रूप दष्टिगोचर हुए जैसे सन् 1929 में "शारदा ऐक्ट" द्वारा बाल–विवाह का निषेध हुआ, सन् 1935 में "गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट" द्वारा अछूतों को मताधिकार प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त विधवा–विवाह आदि के संबंध में भी कानून पारित किए गए। नर–नारी की समानता, एक विवाह, विधवा–विवाह आदि की भावना का विकास पश्चिमी विचारधारा का प्रभाव है। जनसंख्या निरोध के लिए 'हम दो हमारे दो' से 'हम दो हमारे एक' 'लड़का–लड़की एक समान' गर्भपात अवैध एवं लिंग पता लगाना दंडनीय अपराध घोषित हुए।

बेकारी की समस्या दिन प्रतिदिन गहन होती गई। आंतरिक परिस्थितियों के अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रभाव स्वाभाविक रूप से समाज पर पड़ने लगा था। द्वितीय महायुद्ध की भयंकरता ने जीवन को अति कटु बना दिया। गहरी निराशा की भावना ने सामाजिक जनजीवन को आच्छादित कर लिया। सन् 1938–1946 तक का काल भयानक हलचल का समय था।

सन् 1946 से आज तक का समय स्वतंत्र्योत्तर काल है। इसमें सामाजिक सुधार हुआ। इस काल की सामाजिक अवस्था के विषय में संक्षेप में कह सकते हैं कि जाति–पांति के भेदभाव की भावना का कानून द्वारा निवारण किया गया। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार किया गया। भारतीय शासन में उन्हें स्थान दिया गया। पंचायत चुनावों में आरक्षण प्राप्त हुआ। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन कर कृषक वर्ग को शोषण से मुक्ति दिलाई गई। श्रमिक की अवस्था में सुधार तथा उनके जीवन की सुरक्षा को महत्व प्रदान किया गया। उद्योग में भागीदारी तथा सामूहिक बीमा की सुविधा प्रदान की गई।

अंतर्राष्ट्रीयता की भावना को प्रमुखता तथा विश्वबंधुत्व की स्थापना, विश्व शांति का प्रयास हुआ। नागरिक अधिकारों में सुधार किया। दोहरी नागरिकता की सुविधा मिली। समाजवादी शासन की स्थापना का प्रयत्न किया। पंच–वर्षीय योजनाआं के द्वारा देश निर्माण आदि की सामाजिक अवस्थाएं अस्तित्व में आईं।

(iii) **आर्थिक**

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में देश की जनता में अंग्रेजी राज्य के प्रति राजभक्ति दिखाने और उनसे सुधार की प्रार्थना करने की प्रवत्ति थी। पर अंग्रेजी शासन में इससे कोई अंतर नहीं आया और उनकी अत्याचारपूर्ण नीति, में यंत्रों के विकास के साथ ही आर्थिक शोषण और टैक्सों का एक नया अध्याय और जोड़ दिया गया।

सामाजिक क्षेत्र में आर्थिक परिस्थिति का प्रभाव अधिक मुखरित हुआ। वर्ग संघर्ष की बढ़ती भावना ने मार्क्सवादी विचारधारा को बढ़ावा दिया। देश के आर्थिक शोषण से अनेक कठिनाईयां उपस्थित हुईं।

प्रथम उत्थान– राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश के मूल में देश–जनता की आर्थिक अवस्था विद्यमान रहती है। सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध के बाद शासन में परिवर्तन हुआ तथा यह आशा जगी कि देश की आर्थिक

अवस्था सुधरेगी। प्रारंभ में अंग्रेजी सरकार ने भारतीय औद्योगिक विकास में रूचि नहीं दिखलाई जिसके परिणामस्वरूप भारतीय संपदा विदेश जाने लगी। प्रथम उत्थान के चिंतकों के लिए यह चिंता का विषय बन गया। अंग्रेजी माल की खपत हेतु सरकार ने कुछ कर भी निश्चित किए। भारतीय कपड़े पर कर का बोझ लादकर अपनी हित साधना में लग गए। शनैः शनैः भारत के बाजारों में विदेशी वस्तुएं भारी मात्रा में दष्टिगोचर होने लगीं। विदेशी वस्तुओं का प्रचार–प्रसार बढ़ने लगा जिसके परिणामस्वरूप भारतीय उद्योग धंधों की स्थिति दिन प्रतिदिन गिरती चली गई। राष्ट्रीय चिंतक विदेशी वस्तुओं को ही अपनी आर्थिक अवनति का कारण समझ कर विदेशी वस्तुओं का विरोध करने लगे। परिणाम यह हुआ कि महंगाई, अकाल, टैक्स, एवं दरिद्रता आदि प्रथम युग की मुख्य आर्थिक समस्याएं बन गईं। राजनीतिक चेतना को जन्म देने वाली 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' ने भी अपने आदर्शों में आर्थिक स्वतन्त्रता की मांग को समाविष्ट किया।

द्वितीय उत्थान- द्वितीय उत्थान में आते–आते आर्थिक स्वतन्त्रता एवं आर्थिक राष्ट्रीयता का आदर्श राजनीति में महत्वपूर्ण आधार स्वरूप सम्मिलित किया गया। आर्थिक भावना ने कांग्रेस आंदोलन को अधिकाधिक प्रेरित किया। कृषकों की आर्थिक विपन्नता तथा जमींदारों के अत्याचारों ने आंदोलन के आर्थिक पक्ष को और भी अधिक दढ़ता प्रदान की। भारत वर्ष कृषि प्रधान देश है। इसलिए कृषकों पर माल–गुजारी का भार डालकर और जमींदारों के अत्याचारों को बढ़ावा देकर अंग्रेज सरकार ने उनको अत्यधिक दरिद्रता के गर्त में धकेल दिया। कृषकों के गह उद्योग धंधों का विनाश कर दिया। प्रथम महायुद्ध तक भारतीय यह आशा लगाए बैठे थे कि अंग्रेज भारतीय उद्योग धंधों को नवीन रूप प्रदान करेंगे किंतु ऐसा नहीं हुआ। उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। यह निश्चय हो गया कि सरकार भारत का औद्योगिक विकास नहीं करना चाहती है क्योंकि उसे कच्चा माल एवं तैयार माल के लिए भारत जैसा बाजार चाहिए। ऐसा निश्चय करते ही कांग्रेसी उग्रपंथियों ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का मार्ग अपनाया। भारतीय पूंजीपतियों का इसमें अपूर्व सहयोग मिला।

ततीय उत्थान- द्वितीय महायुद्ध के बाद अंग्रेजी अर्थ–नीति में परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। इसका कारण यह था कि अंग्रेज इस तथ्य से पूर्ण अवगत हो गए थे कि भारत के प्राकृतिक साधनों का विकास करने में उनके साम्राज्यवादी हितों को बढ़ावा मिलता है। युद्ध काल में ही वे ऐसा अनुभव करने लगे थे। युद्ध काल एवं उसके बाद से ही भारत की औद्योगिक उन्नति की ओर सरकार का विशेष ध्यान गया। परिणाम यह हुआ कि शोषण की प्रक्रिया में भी तीव्र गति से बढ़ोत्तरी हुई। सरकार ने मात्र उन्हीं उद्योग–धंधों पर ध्यान दिया जिसमें उनकी पूंजी लगी थी। शनैः शनैः भारत में पूंजीवाद की जड़ें गहरी होती गई और भारतीय उद्योग धंधे चल पड़े। अंग्रेजों की व्यापार नीति से प्रभावित भारतीय पूंजीपतियों ने भी स्वतन्त्रता आंदोलन की अग्नि में घी डालना प्रारंभ कर दिया। यांत्रिक विकास प्रक्रिया ने बेकारी को जन्म दिया जो विकराल समस्या का रूप धारण कर उपस्थित हुई। वर्ग संघर्ष बढ़ने लगा क्योंकि मध्य वर्ग एवं मजदूरों में राजनीतिक चेतना का उदय हो चुका था। चतुर्थ उत्थान तक आते आते इस वर्ग–संघर्ष ने अपना प्रबल रूप प्रदर्शित कर दिया। परिणामस्वरूप बेरोजगारी, महंगाई, देशव्यापी दरिद्रता की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया। कुछ लोगों के पास पूंजी का अंबार लगने लगा। आर्थिक ढांचा चरमरा गया। पूंजीवाद ने मानव समाज में शुद्ध आर्थिक संबंधों की स्थापना की जिससे श्रमिक वर्ग की चेतना का आधार भी शुद्ध आर्थिक अर्थात् स्वार्थमय हो गया वे अपने संगठन को दढ़ता प्रदान करने हेतु एक जुट हो गए। शनैः शनैः युग विचारकों एवं चिंतकों का ध्यान यथार्थ की कठोर परिस्थितियों एवं निम्न वर्ग की करुण–दशा ने पूर्ण रूपेण अपने पर केन्द्रित कर लिया। वर्ग–संघर्ष से व्यापक जागति आई। दलित वर्ग विद्रोही बन गया। आर्थिक संबंधों में कल्पना और भावना का स्थान समाप्त हो गया। यथार्थ ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया।

गणतंत्र भारत में आर्थिक परिस्थिति में पूर्ण परिवर्तन आया। श्रमिकों, कृषकों एवं दलितों की आर्थिक स्थिति में सुधार आया। सभी को रोटी, कपड़ा एवं मकान की सुविधा प्रदान की जाने लगी। पंचवर्षीय योजनाआं के द्वारा देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के प्रशंसनीय प्रयत्न किए गए जो वर्तमान काल में भी चल रहे हैं। इनके परिणाम स्वरूप शिक्षा, यातायात के साधनों, परिवहन की सुविधा, पेय चल, प्रकाश, कृषि, स्वास्थ्य सेवा, परिवार नियोजन आदि सभी क्षेत्रों को उन्नतिशील बनाया गया। साथ ही कल–कारखानों तथा गह उद्योग–धंधों का विकास करके आर्थिक प्रगति के पथ पर भारतीय जन जीवन तन–मन–धन से तत्पर है। कानून द्वारा दलित और शोषित

वर्ग–कृषक एवं श्रमिक की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन किया गया है। समाजवादी व्यवस्था की स्थापना से पूंजीवादी व्यवस्था में न्यूनता आई है। पंचवर्षीय आयोजनों द्वारा देश के प्राकृतिक संसाधनों का अधिक से अधिक दोहन एवं उपयोग कर देश की आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु निरंतर प्रयत्न चल रहे हैं। पर्वतीय नदियों पर बांध बांधकर जलाशय तैयार कर विद्युत उत्पादन के अनेक कार्य सम्पन्न हो गए हैं तथा अनेक महत्वपूर्ण कार्य चल रहे हैं। सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण किया जा रहा है। पेय जल के लिए तालाबों का निर्माण कर वर्षा जल को एकत्रित किया जा रहा है, नल कूप की व्यवस्था गांव–गांव तक पहुंच गई है। गांव–गांव तक पक्की सड़कों का निर्माण हो चुका है।

(iv) **सांस्कृतिक - धार्मिक**

भारतीयों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति अपार श्रद्धा और वर्तमान परिस्थितियों के प्रति क्षोभ उत्पन्न हो रहा था। भारत के इतिहास में वास्तव में यह वह परिवर्तन काल है जहां से मध्यकालीन बोध का प्रभाव घटने लगा और उसके स्थान पर आधुनिक चिंतन एवं वैचारिक प्रधानता आई। इस परिवर्तन में पारलौकिक दष्टिकोण के स्थान पर आधुनिक इहलौकिक दष्टिकोण को महत्व प्रदान किया जिसके परिणामस्वरूप ईश्वर ने अपना परलोक त्याग कर इहलोक में सामान्य मानव का विकास किया। इसी दष्टिकोण से स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है–

मैं नहीं संदेश स्वर्ग का लाया,

भूतल को स्वर्ग बनाने आया।

- साकेत

मध्ययुगीन ईश्वर चिंतन आधुनिक काल में आकर मनुष्य चिंतन का रूप धारण कर लेता है। व्यक्तिगत उन्नति का स्थान सामाजिक उन्नति ने ले लिया। मानव चेतना व्यष्टि तक सीमित न रहकर समष्टि चिंता का रूप धारण कर गई जिससे राष्ट्रीयता को लांघकर विश्व बंधुत्व एवं विश्व संस्कृति की ओर अग्रसर होकर वैश्वीकरण की भावना से ओत–प्रोत हो गई। आधुनिक साहित्य का यही मुख्य दष्टिकोण है जो किसी न किसी रूप में साहित्य में पल्लवित, पुष्पित होकर व्याप्त है।

इंग्लैंड से ईसाई मत के वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप विश्व स्तर पर प्रचार–प्रसार का आंदोलन चल पड़ा। इसका अभिप्राय यह नहीं था कि इससे पूर्व ईसाई मिशनरियां इस कार्य में कभी संलग्न नहीं हुई थीं वे निरंतर अपने कार्य में लगी हुई थीं किंतु ईसाई धर्मानुयायिओं ने उक्त आंदोलन को तीव्रता प्रदान की जिससे प्रचार की प्रक्रिया में तेजी आ गई। ईसाई मिशनरियों का यह आंदोलन इंग्लैंड से प्रेरित होकर भारत पहुंचा। वे अति उत्साह के साथ अपने आंदोलन काल में लग गए जिसकी प्रतिक्रिया भारतीय संस्कृति एवं धार्मिक क्षेत्र पर हुई। भारतीयों में यह धारणा प्रबल हो गई कि अंग्रेज पश्चिमी–शिक्षा पद्धति के नाम पर हमारी संस्कृति का विनाश करने पर तुले हुए हैं। क्योंकि उनका मानना था कि साहित्य और संस्कृति को विनष्ट कर देने से राष्ट्र स्वयं नष्ट हो जाता है। यही उनका परम उद्देश्य था।

दो संस्कृतियों का अंतरावलंबन परिवर्तन हेतु उतना प्रभावकारी नहीं होता है जितना सामाजिक ढांचे को बदलने वाला बुनियादी ढांचा। ढांचे में परिवर्तन का कारण आर्थिक एवं सांस्कृतिक होता है।

मुगलों की पराजय के साथ–साथ हिंदू जाति के कट्टरपंथी समुदाय का ह्रास होने लगा। नवयुग की चेतना का सबसे महत्वपूर्ण तथ्य धार्मिक दष्टिकोण एवं संस्कृति में परिवर्तन है। इस युग में मध्यकालीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावना का अति परिमार्जित एवं सुसंस्कृत रूप मिलता है। अन्य धर्मों की सहिष्णुता इस युग की धार्मिक परिस्थितियों की प्रमुख विशेषता है। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता धर्मनिरपेक्षता है। भारतीयों की उपासना पद्धति में बदलाव आ गया।

द्वितीय उत्थान- द्वितीय उत्थान में धार्मिक भावना का प्रमुख आधार मानवतावादी विचारधारा बनी। मानवतावादी विचारधारा का शनैः शनैः विकास हुआ। तथा ततीय उत्थान में गांधी, रवीन्द्र एवं अरविंद द्वारा मानवतावाद ही विश्व

धर्म के रूप में स्थापित हुआ। यह मानवतावाद विश्व–मानवतावाद था। इसीलिए गांधी जी में धार्मिक समन्वय का रूप दष्टिगोचर होता है। गांधी जी ने वैष्णव जन की सबसे बड़ी विशेषता "पीर पराई जानना" बतलाया है। उनके अनुसार वही वैष्णव जन है, वही भगवान का भक्त है, "जो पीर पराई जाने ना"।

भगवान एक है। उसके गुणों और कर्मों के अनुसार अनेक नाम हैं। विभिन्न नाम विभिन्न धर्मों के आधार हैं। शनैः शनैः आर्थिक प्रगति और औद्योगिक विकास के कारण मानवतावादी विचारों में निम्न एवं शोषित वर्ग को महत्व दिया जाने लगा। 'कर्म को पूजा' कहा गया। गांधी जी ने हरिजनों को हरीजन स्वीकारा जिन्हें आधुनिक काल से पूर्व अछूत माना जाता था।

शिक्षा में पिछड़ेपन के कारण उत्तर भारत के सांस्कृतिक विकास में गत्यावरोध आया जिसके निराकरण में पर्याप्त समय व्यतीत हो गया। ईसाई मिशनरियां अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से लोगों को ईसाई बनाकर पुण्य लूटने के चक्र में पड़ी थीं। उच्च शिक्षा के प्रभाव से एक प्रकार का धर्म निरपेक्ष दष्टिकोण बना जो मध्यकालीन धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त होने के कारण तार्किक एवं इहलौकिक हो सका। आश्रमधर्मी घेरे से बाहर निकल कर व्यक्ति के अपने निर्णय को प्रमुखता मिली। मध्यकालीन धार्मिक कथाओं को विश्वसनीय बनाने और उन्हें आधुनिक युग की समस्याओं से जोड़ने के मूल में भी यही प्रवत्ति क्रियाशील दष्टिगोचर होती है। पुराने संकीर्ण विचार भंग हुए।

ततीय उत्थान- सन् 1550 में पुर्तगालियों ने मुद्रण यंत्र मंगवाकर उनकी स्थापना करके धार्मिक पुस्तकें छापनी प्रारंभ की। राजा राममोहन राय ने सन् 1821 में 'संवाद कौमुदी' नामक साप्ताहिक बंगला पत्र निकाला जिसमें सती–प्रथा के विरुद्ध निरंतर लिखना प्रारंभ किया जिससे परंपरावादी हिंदू समाज उनके विरुद्ध हो गया और उस पत्र को भी क्षति पहुंचायी।

अंग्रेजी सरकार ने भारत की अर्थ नीति, शिक्षा पद्धति, यातायात एवं परिवहन के साधनों में मूल रूप से परिवर्तन किए जिसके परिणामस्वरूप समाज का आधुनिकीकरण प्रारंभ हो गया। जो पुराने धार्मिक संस्कारों, रीति–नीतियों एवं संघटनों से मेल नहीं खाता था। नवीन यथार्थ एवं पुराने संस्कारों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकतानुभूति की जाने लगी। इस सामंजस्य के साथ ही नव्य भारतीय समाज के निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। व्यक्ति स्वातंत्र्य का भारतीय पुनर्जागरण में विशेष महत्व है।

आधुनिक काल में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज एवं आर्य समाज ने पुराने धर्म को नए समाज के अनुरूप परिवर्तित करने का अथक प्रयास किया है। ब्रह्म समाज एवं प्रार्थना समाज ने नवीन परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से स्वीकारा है किन्तु आर्य समाज वैदिक धर्म के मूल स्वरूप को बनाए रखना चाहता था। उस समय की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विचारधारा पर आर्य समाज का विशेष प्रभाव पड़ा। मध्य काल में नए परिवेश के परिणामस्वरूप जाति–प्रथा, छुआछूत, बाह्याडंबर आदि के विरोध में भक्ति आंदोलन खड़ा हो गया था किंतु नवीन युग में नवीन ढंग के सामंजस्य की आवश्यकता हुई। मध्यकाल का सामंजस्य भावनामूलक था, उस काल के अधिकांश भक्त एवं संत अंतर्विरोधों के शिकार थे किंतु अब भावना से काम नहीं चल सकता था। भावना का स्थान तर्क, विवेक एवं बुद्धि ने ले लिया। 'ब्रह्म समाज', 'प्रार्थना समाज', 'रामकृष्ण मिशन', 'आर्य समाज' एवं 'थियोसॉफ़िकल सोसायटी' की मान्यताएं अधिकांशतः बुद्धि विवेक एवं तर्क पर आधारित हैं।

ब्रह्म समाज- आधुनिक भारत की नींव का प्रथम पत्थर रखने का श्रेय राजा राममोहन राय को है। सन् 1828 में उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की। वाराणसी जाकर कुछ वर्षों तक उन्होंने गीता, उपनिषद् आदि का गहन अध्ययन किया। इस्लामी एकेश्वरवाद का उन पर स्पष्ट प्रभाव है। ईसाई धर्म से भी वे प्रभावित थे। 'तैत्तेरेय' एवं 'कौशीतकी' उपनिषद् दर्शन में उन्हें समस्त विचारधाराएं मिल गईं। उपनिषद् के द्वारा कर्मकांड एवं अंधविश्वास का खंडन किया। मूर्ति पूजा को धर्म का बाह्याडंबर स्वीकारा। रूढ़ियों के विरुद्ध लड़ने में तर्क को आधार बनाया। जाति–प्रथा को अमानवीय एवं राष्ट्रीयता विरोधी कहा। सती–प्रथा का विरोध किया। विधवा–विवाह तथा स्त्री–पुरुष के समानाधिकार का समर्थन किया। ब्रह्म समाज को आगे बढ़ाने में देवेन्द्र नाथ टैगोर (1817–1905) तथा केशव चन्द्र सेन (1838 – 1884) का अपूर्व योगदान रहा है।

देवेन्द्र नाथ टैगोर – इन्होंने ब्रह्म धर्म के प्रसार हेतु सुदूर यात्राएं कीं। मद्रास में 'वेद समाज', मुंबई में 'प्रार्थना समाज' की स्थापना उन्हीं की प्रेरणा से हुई। वैष्णवों के भजन कीर्तन ने भी उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया। ईसाई धर्म की ओर उनका झुकाव था। ब्रह्म समाज में फूट पड़ने के कारण 'साधारण ब्रह्म समाज' और 'नव वेदांत' नामक नवीन संस्थाओं की स्थापना की।

केशव चन्द्र सेन- 1864 में मुंबई और पूना में केशवचंद्र सेन का आगमन हुआ। सन् 1896 में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। उनके प्रमुख उन्नायक महादेव गोविंद रानाडे थे। सामाजिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के विरुद्ध निरंतर संघर्षरत रहे। धार्मिक और सामाजिक समस्याओं पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया। भागवत धर्म के अनुयायी थे। संकीर्णता को कभी प्रश्रय नहीं दिया। प्रतिक्रिया एवं पूर्वाग्रह से मुक्त थे। अतीत के प्रति आदर होते हुए भी अतीत को पुनः उसी रूप में प्रतिष्ठित नहीं करना चाहते थे। पुनरुत्थानवादियों के वे विरोधी थे। क्योंकि उनका यह मानना था कि मत अतीत को कभी भी जीवित नहीं किया जा सकता हैं। वे समाज को जीवित अवयवों का संघटन मानते हैं जिसमें परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। इस प्रक्रिया के रुक जाने पर समाज मत हो जाएगा।

रानाडे- मनुष्य की समानता पर रानाडे ने बार–बार बल दिया है। जाति पांति के विरोधी तथा अंतर्जातीय विवाह के पक्षधर थे। स्त्री–शिक्षा को महत्वपूर्ण माना है। उनका वस्तुनिष्ठ दष्टिकोण, तर्क–पद्धति, सामाजिक परिष्कार के प्रति अभिरूचि आदि ये स्पष्ट कर देते हैं कि उन पर पाश्चात्य विचारधारा का पूर्ण प्रभाव था। पाश्चात्य मत को भी अपने तर्क पर कस करके स्वीकारा है। वे भारतीय संस्कृति को नवीन वैज्ञानिक विचार प्रणाली के अनुरूप ढालने हेतु प्रयत्नशील रहे हैं।

रामकृष्ण मिशन- राम कृष्ण परमहंस के स्वर्गवासी हो जाने पर विवेकानंद ने उन्हीं के नाम से 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। परमहंस अपने संपूर्ण व्यक्तित्व से परमहंस थे। रामकृष्ण गरीब, अनपढ़, गंवार, रोगी, अर्धमूर्ति पूजक, मित्रहीन हिंदू भक्त थे जिन्होंने बंगाल को अपने व्यक्तित्व से पूर्णरूपेण प्रभावित किया। उनकी छाप पश्चिमी बंगाल पर अब भी वर्तमान है। उनके योग्य शिष्य विवेकानंद ने उन्हें बाहर से भक्त और भीतर से ज्ञानी कहा है जबकि विवेकानन्द बाहर से ज्ञानी और भीतर से भक्त अपने गुरुवर के बिलकुल विपरीत थे।

सन् 1893 में विवेकानंद विश्व धर्म संसद में सम्मिलित होने हेतु शिकागो गए। इतना सुंदर प्रवचन दिया कि समूची सभा मंत्र मुग्ध हो गई। उनके विषय में 'न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून' ने लिखा था–

"विश्व धर्म संसद में विवेकानंद सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। उनको सुनने के बाद ऐसा लगता थ कि उस महान देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बड़ी मूर्खता थी।" उनका मुख्य उद्देश्य रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों का प्रचार करना था। सामाजिक कार्यों में विशेष रूचि थी। अपने गुरु के कष्टों को साक्षात देख चुके थे इसलिए उनकी प्रबल इच्छा जनता की सेवा थी जिससे समाज का कोई भी व्यक्ति गरीबी या ग्राम में रहते हुए भी रुग्णता के कष्ट से दुखी न रहे। इसी दष्टि से स्थान–स्थान पर चिकित्सालयों तथा सेवा आश्रमों की स्थापना हुई। मानवीय समता के विश्वासी स्वामी विवेकानंद ने जाति–पांति, संप्रदाय, छुआछूत आदि का प्रबल विरोध किया। गरीबों के प्रति उनकी अत्यधिक सहानुभूति थी। शिक्षित वर्ग तथा उच्च वर्ग को हेय दष्टि से देखते थे उनकी भर्त्सना करते हुए उन्होंने लिखा है–

"तब तक देश के हजारों लोग भूखे हैं अज्ञानी हैं – मैं प्रत्येक शिक्षित वर्ग को धोखेबाज कहूंगा। गरीबों के पैसे से पढ़कर भी उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते।.... उच्च वर्ग शारीरिक और नैतिक दष्टि से मर चुका है।"

उन्होंने शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करने वाले कृत्य को धर्म की संज्ञा दी है। इससे आत्म गौरव एवं राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने में सहयोग मिलता है। हीनता की भावना से ग्रस्त देश को विवेकानंद ने यह आश्वासन दिया कि भारत की संस्कृति अब भी अपनी श्रेष्ठता में अद्वितीय है तथा इस देश का आध्यात्मिक चिंतन असमानांतर है। आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य–मनुष्य की क्षमता, एकता, बंधुत्व और स्वतन्त्रता की ओर भी उन्होंने भारतीयों का ध्यानाकर्षण किया। भारतीय पाश्चात्य भौतिकता से अभिभूत हो गया था उसे यह प्रथम बार अनुभव हुआ कि हमारी परंपरा में कुछ ऐसी वस्तुएं अभी भी अवशिष्ट हैं जिन्हें गौरवपूर्ण ढंग से विश्व के समक्ष रखा जा सकता है। यह अनुभव कराने का एक मात्र श्रेय विवेकानंद को है।

आर्य समाज-

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में आर्य समाज पूरे भारतवर्ष में फैल चुका है। गुजरात, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में आर्य समाज का विशेष प्रभाव है। इन प्रदेशवासियों का स्वभाव बंगालियों से भिन्न है। बंगाली दुबले–पतले होकर भी अपने पौरुष पर गर्व करते हैं तथा अक्खड़ होते हैं। उनमें भावुकता का अभाव होता हैं। बंगाल एवं महाराष्ट्र के पुनर्जागरण में मध्ययुगीन संतों की वाणी का विशेष योगदान रहा है। आर्य समाज में संतों का कोई स्थान नहीं है।

सन् 1897 में दयानंद सरस्वती ने मुंबई में 'आर्य समाज' की स्थापना की। दयानंद का व्यक्तित्व असाधारण था। वे संस्कृत भाषा के उद्भट विद्वान, प्रवक्ता एवं अत्यंत मेधावी प्रतिभा संपन्न महान व्यक्ति थे। वे किसी से समझौता नहीं करते थे। दढ़ संकल्पी थे। उनके विचार अति स्पष्ट होते थे उनमें कहीं रंचमात्र भी अस्पष्टता अथवा रहस्यवादिता नहीं थी। वे वेदों को आर्य समाज का आधार मानते थे। उनके अनुसार वेद अपौरुषेय हैं। वैदिक धर्म ही सत्य एवं सार्वभौम है। अन्य धर्म अधूरे हैं। आर्य समाज की आचार–संहिता में सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है। आर्य समाज में जाति–पांति, छुआछूत, स्त्री–पुरुष असमानता आदि का कोई स्थान नहीं है। इसे लोकतांत्रिक व्यवस्था कह सकते हैं। आध्यात्मिक उन्नति के साथ–साथ भौतिक उन्नति को भी स्वामी जी ने अनिवार्य माना है। इसी दष्टिकोण से पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान को दष्टिगत रखते हुए सन् 1886 में 'दयानंद एंग्लो वैदिक कॉलेज' की स्थापना हुई तथा स्थान–स्थान पर 'दयानंद स्कूल' एवं 'कॉलेज' खोले गए। आर्य समाज हिंदूवादी दष्टिकोण का पक्षपाती है जिसने राष्ट्रीय विचारधारा को उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर करने में आश्चर्यजनक योगदान किया है। अंग्रेज सरकार ने आर्य समाजी संस्थाओं को बम बनाने का कारखाना मानकर उन्हें दबाने के अनेक बार अनेक स्थानों पर असफल प्रयत्न किए। उत्तर भारत के आचार–विचार, रहन–सहन, एवं साहित्य–संस्कृति पर आर्य समाज का गहरा प्रभाव दष्टिगोचर होता है। आर्य समाज के आंदोलन ने गद्य की भाषा को परिष्कृत एवं परिमार्जित किया है। अस्पश्यता पर जितना प्रबल आघात इस आंदोलन ने किया उतना अन्य किसी ने नहीं किया। मध्य वर्ग में आर्यसमाज ने क्रांतिकारी कार्य किया। इसकी कार्य पद्धति प्रगतिशील एवं प्रतिक्रियावादी है।

थियोसॉफ़िकल सोसायटी-

सन् 1875 में मदाम ब्लावस्तू और ओल्कार्ट ने न्यूयार्क में 'थियोसॉफ़िकल सोसायटी' की स्थापना की। यह आंदोलन भारतीय धार्मिक परंपरा पर आधारित था। सोसायटी के संस्थापक सन् 1879 में भारत आए। सन् 1882 में उन्होंने अडयार (चेन्नई) में इसकी शाखा खोली। श्रीमती एनी बेसेंट इंग्लैंड में इस शाखा से जुड़ी हुई थीं जो सन् 1893 में भारत आई तथा सोसायटी को विकसित करने हेतु अपना तन–मन–धन सब समर्पित कर दिया। उनका व्यक्तित्व अति गतिमान था। उनकी भाषण कला की अनुपम रोचकता एवं आकर्षण शक्ति ने अनेक शिक्षित भारतीयों को आकृष्ट कर लिया। समस्त भारत का भ्रमण करते हुए उन्होंने हिन्दू धर्म की आध्यात्मिकता के पक्ष में अनेक ओजस्वी भाषण दिए। थियोसॉफ़ी के आदर्शों को व्यावहारिक जामा पहनाने के लिए उन्होंने अनेक शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना की। वाराणसी का 'सेन्ट्रल हिंदू कॉलेज' उसी की एक कड़ी है।

धर्म सभा-

उत्तर भारत, बंगाल एवं महाराष्ट्र आदि में अनेक नए धार्मिक–सांस्कृतिक आंदोलन चले जिन्होंने समाज में अनेक सुधार किए किन्तु नवीन धार्मिक आन्दोलनों का विरोध पुनरुत्थानवादी प्रतिक्रियाएं करने लगीं। बंगाल में राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज का विरोध करने के लिए सन् 1830 में राधाकान्त देव ने 'धर्म सभा' की स्थापना की किन्तु धर्म सभा सन् 1857 तक किसी भी प्रकार ब्रह्म समाज का प्रभाव कम करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकी।

सन् 1857 में स्वतंत्रता का प्रथम आंदोलन प्रारंभ हो गया। इस आंदोलन ने सुधारवादी दष्टिकोण को कमजोर बना दिया जिसके परिणामस्वरूप पुरातनवादी प्रवत्तियां पुनः सिर उठा कर खड़ी हो गईं। बंगाल में राष्ट्रीयतावादी एवं स्वच्छंदतावादी दो प्रवत्तियां उभरकर सामने आईं। दोनों के मूल से वैयक्तिकता, अतीत की गौरवगाथा, अंग्रेजी सत्ता के प्रति आक्रोश, ग्रामीण बढ़ती हुई गरीबी के प्रति सहानुभूति, स्वतन्त्रता एवं समानता के प्रति आग्रह आदि की

प्रवत्तियां प्रमुख रूप से क्रियाशील थीं। पुरातत्ववेत्ताओं और पुरालेखविदों ने विस्मति के गर्भ में खोई हुई विरासत – भारतीय साहित्य, कला, ज्ञान–विज्ञान, दर्शन, वास्तु कला आदि का पुनरुद्धार करके विश्व में भारत का गौरव बढ़ाया तथा भारतीयों में आत्म सम्मान का भाव जागत किया। नवीन हिंदुवाद जन्मा। दो दल उभर कर सामने जाए – प्रथम सुधार विरोधी थी। द्वितीय यथास्थान नवीन विचारों के सन्निवेश का पक्षपाती होते हुए भी मुख्य धारा में किसी प्रकार के परिवर्तन की आकांक्षा नहीं करता था। ऐसे विचारकों में बंकिम चन्द्र चटर्जी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है, जो गीता के निष्काम कर्म के पक्षधर थे। उन्होंने कृष्ण से संबंधित 'कृष्ण चरित्र' की रचना की। धर्म–सुधारकों की तरह वे आंशिक समाज सुधार में विश्वास नहीं रखते थे। उनकी मान्यता थी कि धर्म और नैतिकता के समग्र पुनर्जागरण में ही समाज सुधार समाहित होता है। अपने उपन्यासों में देश–प्रेम को उच्च स्थान दिया है। देश–प्रेम एवं धर्म दोनों को एक ही मानते थे, दोनों में कोई अंतर नहीं स्वीकारा।

महाराष्ट्र की स्थिति बंगाल से अलग थी क्योंकि बंगाल पर अधिकार करने के पूरे आठ वर्ष बाद महाराष्ट्र अंग्रेजी शासन में आया। पेशवा राज्य की समाप्ति की पीड़ा अभी भुला नहीं पाया था। अपनी परंपराओं के प्रति विशेष अनुराग था। महाराष्ट्र ने देशव्यापी गरीबी, भुखमरी आदि का पूर्ण भांडा अंग्रेजी राज्य के सिर पर फोड़ दिया। चिपलूणकर के निबंधों में देश के पराभव का एक मात्र उत्तरदायी विदेशी शासन को ठहराया गया है। तिलक ने रानाडे के सुधारों का विरोध किया है। उनका कहना है कि सुधार समाज को बांटने वाले तथा राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। जनता को एकत्रित करने के लिए गणेश की पूजा का श्रीगणेश किया जो वर्तमान में भी बड़े धूमधाम से 'गणेश वापा मौर्या' के नाम से मनायी जाती है। उत्तरी भारत में सनातन धर्मावलंबियों ने आर्य समाज के विरोध में अपना नारा लगाया। इन विरोधों के परिणामस्वरूप सामाजिक सुधार कार्य की गति धीमी पड़ गई किन्तु राष्ट्रीयता की भावना प्रबलतम रूप में उभरकर सामने आई।

इससे पूर्व धर्म एवं संस्कृति मुख्यतः आकांक्षाओं से संबद्ध थी किन्तु आधुनिक काल में वह इहलौकिक आकांक्षाओं का भी वाहक बनी।

धर्म एवं संस्कृति विषयक डॉ. नगेन्द्र का कथन अक्षरशः सत्य है–

"भारतीय धर्म एवं संस्कृति के संबंध में अंग्रेज प्रशासकों और ईसाई मिशनरियों के आक्रामक रुख के कारण धर्म–सुधारकों के लिए धारदार मार्ग से गुजरना आवश्यक हो गया। एक ओर उन्हें विदेशियों के समक्ष अपने धर्म और संस्कृति की वकालत करनी पड़ी और दूसरी ओर देशवासियों के सामने धर्म का नया अर्थापन करना पड़ा। इस प्रकार हर बात को तर्क संगत बनाने की दिशा में जो पहल की गई वह बहुत फलदायक सिद्ध हुई। इस संक्रांति काल में धर्म का पल्ला पकड़ना बहुत आवश्यक था क्योंकि धर्म अनिवार्यतः समाज सुधार के साथ जुड़ा हुआ था। पुराणपंथी और सुधारक दोनों ने अपने मत के प्रचारार्थ धर्मशास्त्रों की शरण ली।"

राजा राममोहन राय ही एक मात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें शुद्धि–बुद्धि वादी स्वीकारा जा सकता है। सती–प्रथा की समाप्ति करने के लिए उन्हें भी धर्मशास्त्रों के साक्ष्य की आवश्यकता हुई। विद्यासागर ने यह प्रमाणित कर दिया कि धर्म शास्त्रों में वैधव्य का कहीं विधान नहीं है। दयानंद सरस्वती ने सामाजिक सुधारों को वैध बनाने के लिए वेदों को आधार बनाया तथा अपने मत की पुष्टि हेतु वेदों को नवीन अर्थ भी प्रदान किया "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" जिसका उदाहरण है। तर्क संगति को महत्व मिला, रूढ़ियों का निराकरण आसान हो गया जिसके परिणामस्वरूप परंपरावादी और धर्म–सुधारक दोनों ही अतीत के गौरव को जागत करने में सफल हुए। भारतीयों को आत्म सम्मान का बोध हुआ। बराबर के स्तर पर पाश्चात्य का सामना करने एवं स्वतन्त्रता की मांग करने का आत्मविश्वास मिला। राष्ट्रीयता में सभी सुधारों की समाविष्टि स्वीकारते हुए राष्ट्रीयता पर अधिक बल दिया जाने लगा।

परंपरावादी एवं सुधारवादी दोनों ने पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली में विश्वास व्यक्त किया तथा नवीन शिक्षा संस्थाएं खोलीं। यद्यपि शिक्षा संस्थाएं तो पहले भी थीं किन्तु अब इनका रूप पूर्ण रूपेण बदल गया।

पश्चिमीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। इसे अधिकांश लोग पश्चिमीकरण न कहकर आधुनिकीकरण की संज्ञा देना श्रेयस्कर समझने लगे। नवीन मानवतावाद का आविर्भाव हुआ। आधुनिक युग में मनुष्य–मनुष्य की समता, स्वतन्त्रता आदि का सामाजिक न्याय के आधार पर समर्थन किया गया।

अधिकांश आंदोलनों में अंतर्विरोध दष्टिगोचर होता है। ब्रह्म समाज में मूर्तिपूजा के लिए स्थान नहीं है किन्तु ऐसा कौन सा बंगाली है जो दुर्गा पूजा न करता हो?

आर्य समाज में वर्ण व्यवस्था जन्मना नहीं कर्मणा मानी गई है किन्तु कौन सा आर्य समाजी है जो अपनी जाति में लड़का–लड़की मिलते हुए अन्य जाति वालों को लड़का–लड़की देने को तत्पर है?

समाज में एक ओर संस्कृतीकरण की वद्धि हो रही है तो दूसरी और लौकिकीकरण की।

(v) **साहित्यिक**

साहित्य पर युग को बनाने वाले सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक–सांस्कृतिक आदि सभी परिवेशों का प्रभाव पड़ता है। इन परिवेशों के अलावा साहित्यिक पष्ठ भूमि तथा अन्य साहित्यों का प्रभाव भी महत्वपूर्ण होता है। आधुनिक काल की पष्ठभूमि में हिन्दी साहित्य का श्रंगार काल है। श्रंगार काल में साहित्य का विकास राजदरबारों में हुआ। रीतिकालीन कवि आश्रय दाता के आश्रय में रहते थे। क्योंकि उन्हें अपने भरण–पोषण के लिए उच्च वर्ग के लोगों का आश्रय खोजना पड़ता था। श्रंगार काल का साहित्य मध्यकालीन दरबारी संस्कृति का प्रतीक है। राज्याश्रय में पले श्रंगारी काव्य में रीति और अलंकार का प्राधान्य दष्टिगोचर होता है। जो कवि दरबारी संस्कृति से दूर रहे उनमें 'प्रेम की पुकार' का स्वरूप रीति से मुक्त है। लेकिन बहुमत आचार्यों का ही है जो रीति निरूपण को लक्ष्य बनाकर चला।

श्रंगार कालीन काव्य की प्रमुख प्रवत्तियां निम्नलिखित थीं–

श्रंगार रस की प्रधानता।

अलंकार की प्रधानता।

रीति की प्रधानता।

मुक्तक शैली की प्रधानता।

ब्रजभाषा की प्रधानता।

लक्षण ग्रन्थों की प्रधानता।

नारी के प्रेम स्वरूप की प्रधानता।

प्रकृति के उद्दीपक रूप की प्रधानता।

वीर रस–काव्य।

नवीन परिवेश के परिणामस्वरूप साहित्य को भी संकट का सामना करना पड़ा क्योंकि आश्रयदाता केन्द्र अति शीघ्रता से छिन्न भिन्न होने लगे।

सामान्यतः रीति कालीन साहित्य भाव, भाषा एवं शैली की दष्टि से रूढ़िबद्ध था। बंधी–बंधाई रीति पर काव्य सजन होता था इसीलिए श्रंगार काल के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीति काल नामकरण करना उचित समझा। काल का उपविभाजन भी इसी आधार पर रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीतिसिद्ध रूपों में हुआ। रीतिबद्ध – जो लक्षण लिखने के बाद उदाहरण स्वरूप काव्य सजन करते थे, रीति मुक्त – जो रीति का पालन न करके स्वच्छंद रूप से काव्य सजन करते थे। इन कवियों के काव्य में 'प्रेम की पीड़' का प्राधान्य है। कुछ वीर रस का काव्य भी लिखा गया। रीति सिद्ध – इन्हें लक्षण का पूरा ज्ञान था। लक्षण सामने रखकर काव्य करते थे किंतु लक्षण लिखकर रीतिबद्ध जैसे उदाहरण स्वरूप नहीं अपितु लक्षणों के आधार पर ही स्वतन्त्र रूप से काव्य रचना करना इनका उद्देश्य था। रीति कालीन काव्य परंपरा आधुनिक परिवेश के अनुकूल अपना समायोग स्थापित कर पाने में असमर्थ थी जिसके परिणामस्वरूप साहित्य ने स्वयं को युगीन परिवेश के अनुकूल नवीन प्रारूप में जन्म देकर महत्वपूर्ण क्रांति प्रस्तुत की। ऐसे कवियों में भारतेन्दु का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने रीति कालीन परंपराओं की रक्षा करते हुए भी साहित्य–क्षेत्र में नवीन दिशाओं का आविष्कार किया। ब्रजभाषा गद्य के साथ–साथ काव्य में खड़ी बोली गद्य के प्रयोग का प्रारंभ हुआ। पद्य के साथ गद्य भी चल पड़ा जिसने चम्पू काव्य को जन्म दिया। इसके पश्चात् गद्य

की अन्य विधाएं उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध एवं आलोचना प्रमुख गद्य–विधाओं के साथ–साथ आधुनिक अन्य अनेक विधाओं में साहित्य सजन होने लगा। पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। छापे खाने खुलने लगे। पत्र–पत्रिकाएं इसी युग की देन हैं।

भारतेंदु युग में हिंदी का प्रचार–प्रसार हुआ। द्विवेदी युग में भाषा का संस्कार एवं परिमार्जन हुआ जिसके परिणामस्वरूप 'छायावाद' हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का 'स्वर्ण युग' कहलाया। इस युग में विशुद्ध खड़ी बोली अर्थात् हिन्दी को साहित्य भाषा का माध्यम बनाया गया। छायावादोत्तर युग में पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव बढ़ने के परिणामस्वरूप साहित्य जगत में काव्यांदोलन चल पड़े जो प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, नई कविता के रूप में निखर कर सामने आए। नवलेखन, गद्य गीत, अकविता, क्षणिकाएं, लघु कथा, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, यात्रा वत्तांत, आत्मकथा, रेडियो रूपक, डायरी, पत्रात्मक शैली आदि अनेक रूपों में साहित्याभिव्यक्ति होने लगी। साहित्य धारा गद्य–पद्य दोनों रूपों में समानांतर रूप से प्रवाहित होने लगी।

वर्तमान समय तक आते–आते आधुनिक हिंदी साहित्य ने विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, आंचलिक, अंतर्राष्ट्रीय तथा अनेक प्रकार की वाद ग्रस्त प्रवत्तियों से प्रभावित हो, विकास की ओर बढ़ता हुआ पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होकर विशाल साहित्य–कानन–भंडार खड़ा कर दिया है। विभिन्न प्रवत्तियों एवं परिवेशों में आकर, उनसे प्रभावित होकर साहित्य ने अपनी गति, दिशा में ही परिवर्तन नहीं किया है अपितु स्वरूप परिवर्तन के साथ–साथ मूल्यों में भी परिवर्तन किया है। आयाम बदल रहा है। यह स्वस्थ परंपरा का परिचायक होते हुए नवीनता का प्रतीक है।

3. 1857 ई० की राज्य क्रांति और पुनर्जागरण

सन् 1857 ई0 भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का श्री गणेश इसी वर्ष हुआ।

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन विस्तार के साथ–साथ उसके अत्याचार भी बढ़ते गए जिनमें "लैप्स–नीति" विशेष घातक, कुटिल एवं कठोर प्रमाणित हुई। 'लैप्स' का अर्थ समाप्ति से लिया गया। किसी भी राज्य वंश में संतान विहीनता को इसका शिकार बनाया गया। संतान विहीन राजा अथवा रानी की संपूर्ण चल–अचल संपत्ति एवं राज्य छीन कर कंपनी के शासन में मिला लेना इस नीति का मुख्य उद्देश्य था जिसका प्रयोग झांसी की रानी लक्ष्मी बाई पर किया गया। उनके गोद लिए पुत्र को वैध नहीं माना गया। उन्हें संतानविहीन घोषित किया गया।

सन् 1858 ई. में झांसी को "लैप्स की नीति" के द्वारा कंपनी ने अपने शासन में ले लिया। जिससे राजा, प्रजा, सामान्य जनता, सेना, सिपाही आदि सभी में विद्रोह की सोई हुई भावना जागत हो उठी जिसे पुनर्जागरण की संज्ञा दी गई। सभी घबराए हुए थे।

इसी बीच सेना में आश्चर्यजनक घटना का विस्फोट हुआ। कारतूस का प्रयोग भारतीय सैनिक बहुत पहले से करते आ रहे थे। चलाते समय उसकी टोपी दांत से अलग करते थे। नए कारतूस आने पर मेरठ छावनी में यह समाचार आग की लपटों के समान फैल गया कि कारतूसों की टोपी चमड़े की बनी है जिसको दांत से निकालना पड़ता है। कंपनी की सेना में भर्ती भारतीय सैनिकों की धार्मिक भावना को अत्यधिक ठेस पहुंची। शाकाहारी किस प्रकार दांत से मांस को पकड़ कर मांसाहारी का रूप धारण कर सकता है।

सन् 1857 ई. में मंगल पांडेय के नेतत्व में भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों के विरुद्ध यह कहकर कि 'हम बंदूक नहीं चलाएंगे, कारतूस में चमड़ा लगा है' मेरठ छावनी में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम छेड़ दिया। यह संग्राम पूर्व प्रचारित एवं सुनियोजित नहीं था। समय से पूर्व छेड़ दिया गया था। झांसी की रानी लक्ष्मी बाई इस संग्राम में कूद पड़ी, बहादुरी से लड़ती रही। कानपुर के बिठूर राजाओं ने भी संग्राम में योगदान किया। घोड़े के जख्मी हो जाने के परिणामस्वरूप रानी ने जौहर दिखाकर मातभूमि पर अपने को बलिदान कर दिया। मेरठ, झांसी, कानपुर आदि क्षेत्रों में संग्राम चला। दक्षिण में तात्या टोपी ने भी इस संग्राम में अपूर्व योगदान किया।

एक वर्ष तक विद्रोह चलता रहा। पूरा वर्ष भी नहीं हो पाया था कि दासता के प्रति किया गया विद्रोह दबा दिया गया। ईस्ट इंडिया का शासन समाप्त करके ब्रिटेन सरकार ने भारत का शासन अपने हाथों में ले लिया। महारानी विक्टोरिया ने अपनी घोषणा में भारतीयों को बड़े मधुर आश्वासन दिए। आश्वासन पाकर भारतीयों में नवीन चेतना एवं आशा का संचार हुआ। क्योंकि कंपनी के अत्याचारों एवं डलहौजी की नीति से भारतीयों में त्राहि–त्राहि मची हुई थी। विक्टोरिया की घोषणा घाव पर मरहम का काम करने लगी। भारतीयों का दुर्भाग्य महारानी विक्टोरिया का देहावसान हो गया। भारतीयों को अति दुख हुआ।

सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् सत्ता हस्तांतरण में आशा बंधी थी कि देश की आर्थिक व्यवस्था में सुधार होगा। व्यापारी कंपनी ईस्ट इंडिया से ऐसी आशा करना औचित्यपूर्ण नहीं था। किंतु ब्रिटिश सरकार ने भी भारतीय औद्योगिक विकास में अपनी रूचि नहीं दिखलाई।

सन् 1857 के संग्राम में फ्रांस की क्रांति एवं नैपोलियन की विस्तारवादी नीतियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस विद्रोह के अवसर पर भारतवासियों ने जिस प्रकार अपनी भावनाओं का प्रदर्शन किया उसे देखते हुए भारतीय इतिहासकारों ने इस वर्ष को 'परिवर्तन वर्ष' कहा।

सन् 1857 के विद्रोह के कारण

कोई भी कार्य बिना कारण के नहीं होता है। सन् 1857 के विद्रोह के भी राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक अनेक कारण थे।

(i) **राजनीतिक**– सन् 1757 तथा सन् 1764 ई. के प्लासी और बक्सर युद्धों के पश्चात् अंग्रेजों का उत्साह अत्यधिक बढ़ गया जिसके परिणामस्वरूप राज्य विस्तार को अपनी महत्वाकांक्षा बना लिया। इस कार्य को युद्ध, नीति, कूटनीति के द्वारा पूर्ण करने का निश्चय कर लिया। अभिप्राय यह कि साम, दाम, दंड एवं भेद किसी भी मार्ग से राज्य विस्तार का लक्ष्य बना लिया जिसके परिणामस्वरूप सरकार ने अवध, हैदराबाद, मैसूर, कर्नाटक, नागपुर, भोपाल, इंदौर, ग्वालियर, जयपुर, जोधपुर एवं सिंध आदि को अपनी सत्ता में ले लिया। फिर भी उनकी राज्य विस्तार की भूख सुरसा की भूख हो गई जो संपूर्ण भारत को निगल जाना चाहती थी। अंग्रेज सरकार की अन्यायपूर्ण साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध अनेक भारतीय राजाओं तथा जनता में घणा की भावना बढ़ने लगी। डलहौजी की 'लैप्स नीति' ने आग में घी का कार्य किया। जिसने निःसंतान राजाओं से बच्चा गोद लेने का अधिकार छीन लिया तथा ऐसे राजाओं की मत्यु के बाद उनके राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित किया जाने लगा। रानी झांसी लक्ष्मी बाई का राज्य इसी आधार पर छीना गया। इस प्रकार अंग्रेजी सरकार ने अनेक राज्यों को अपने आधिपत्य में ले लिया। इस नीति के द्वारा ही अंग्रेजों ने पेशवा बाजी राव (द्वितीय) के दत्तक पुत्र नाना साहिब की पेंशन बंद कर दी, जिससे नाना साहिब भी अंग्रेजी सरकार का विरोध करने लगे। अंग्रेजों ने बलात् वाजिद अली शाह को बंदी बनाकर अवध राज्य को अपने अधिकार में ले लिया। मुगल सम्राट का निरादर तथा असंख्य बेकार किए गए सैनिकों का रोष राजनीतिक कारण थे जिन्होंने सन् 1857 के विद्रोह को जन्म देने में विशेष भूमिका निभाई है। अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों से दुर्व्यवहार, भारतीयों की उच्च पदों पर नियुक्ति न करना तथा उनकी दोषपूर्ण न्याय प्रणाली ने लोगों में विद्रोह की भावना जागत की।

(ii) **सामाजिक**- अंग्रेजों में वर्ण व्यवस्था रंग–भेद की नीति अत्यधिक बढ़ गई थी। अंग्रेज भारतीय जनता के गह कार्यों एवं उत्सवों में अनाधिकार अपनी टांग अड़ाते थे। ईसाई मत का प्रचार धुआंधार हो रहा था। अछूतों–गरीबों को ईसाई धर्म में दीक्षित करके उन्हें ईसाई बनाया जाता था। अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार भारतीयों को सह्य न था। इतना ही नहीं अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा किए गए अनेक सुधार भी उनके विरुद्ध विद्रोह करने में सहायक सिद्ध हुए। रेल डाक, तार सेवा ने काल–स्थान का अंतराल कम कर दिया। एक प्रांत की जनता को दूसरे प्रांत की जनता के सन्निकट लाकर खड़ा कर दिया जिससे वैचारिक आदान–प्रदान होने लगा जिसके परिणामस्वरूप सामान्य जनता की मानसिकता में विद्रोह की भावना गहराई में पैठ गई। समाज की अर्थव्यवस्था चरमरा गई जो विद्रोह का कारण बनी। क्योंकि देश का अधिकांश कच्चा माल सस्ते दामों पर विदेश जा रहा था तथा वहां से महंगा तैयार माल भारत के बाजारों में बिक रहा था इस प्रकार दोनों तरफ की लुटाई जनता को विद्रोही बना रही थी।

(iii) **धार्मिक**- भारतीय सनातनी धर्मभीरू एवं धर्मावलंबी रहे हैं। धर्म के विरुद्ध उन्हें कुछ भी सह्य नहीं है। इंग्लैंड के ईसाई पादरी या मिशनरी भारत आकर हिंदुओं को धन एवं नौकरी का लोभ दिलाकर ईसाई बना रहे थे यह भारतीयों को विद्रोही बना रहा था। सती प्रथा, कन्या हत्या, विधवा विवाह तथा मनुष्य बलि संबंधी कानून बनने लगे। हिन्दुओं ने इसे अपने धर्म के विपरीत समझा क्योंकि ये सब कट्टरपंथी हिंदू अपने गले से नीचे नहीं उतार सके। उन्होंने ऐसा समझा कि ऐसा करके अंग्रेज हिन्दुओं की संस्कृति और धर्म को नष्ट करना चाहते हैं।

भारतीय शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों हैं किंतु सवर्ण हिन्दू गाय और सुअर का मांस नहीं खाते हैं। शाकाहारी के लिए मांस अभक्ष्य है।

नए आगत कारतूसों की टोपी में गाय–सुअर का मांस प्रयुक्त किया गया है ऐसा उन्हें ज्ञात हुआ इसलिए उसे दांत से अलग करना धर्म भ्रष्टता माना। इन समस्त कारणों से तत्कालीन घटनाओं ने विद्रोह का रूप धारण कर लिया।

1857 के विद्रोह के परिणाम

सन् 1857 के विद्रोह को अंग्रेजों ने असफल कर दिया। असफलता में भी भारतीयों को अनेक लाभ हुए–

(i) विद्रोह अंग्रेजों द्वारा असफल बना दिया गया किंतु इस विद्रोह ने देश के लोगों की उन भावनाओं को निश्चित रूप से अभिव्यक्ति प्रदान की है जो अंग्रेजों के प्रति घणा और क्रोध की भावना से ओत–प्रोत थी।

(ii) लोगों की स्वतन्त्रता की प्रबल भावना को विद्रोह ने देश के कोने–कोने तक प्रसारित एवं प्रचारित कर दिया।

(iii) स्वतंत्रता आंदोलन की भावना ने राष्ट्रीय स्तर प्राप्त किया तथा उसमें तीव्रता आ गई।

(iv) विद्रोह ने 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' तथा अन्य क्रांतिकारी संगठनों को जन्म दिया।

(v) भारतीयों को अपनी कमियों का ज्ञान हो गया जिनके कारण अंग्रेजों को विद्रोह दबा देने में सफलता मिली।

(vi) महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना के पश्चात् भारतवासियों ने स्वयं को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्रों में भी नए विचारों से सम्पन्न करने के लिए दढ़ संकल्प एवं प्रण किया जिसमें नवीन शिक्षा प्रणाली अत्यधिक सहायक एवं सार्थक प्रमाणित हुई।

(vii) नई शिक्षा–प्रणाली का निर्माण एवं संचालन अंग्रेजों ने अपने हित एवं लाभ के लिए किया था जिससे उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। अंग्रेजों के लिए विकसित शिक्षा प्रणाली उनका उतना हित न कर सकी जितना इसने भारतीयों का कल्याण किया। यह शिक्षा प्रणाली भारतीयों में नवीन–चिंतन एवं नए दष्टिकोण को विकसित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है।

(viii) इससे प्रभावित होकर भारतीय समाज में विभिन्न स्तरों पर अनेक नए आंदोलनों ने जन्म लिया।

4. भारतेन्दु युग : नामकरण एवं काल सीमांकन

आधुनिक काल के हिंदी साहित्य का अंतर्विभाजन प्रायः सभी विद्वानों ने एक जैसा किया है किन्तु नामकरण एवं सीमा निर्धारण के विषय में मतैक्य नहीं है। विशिष्ट काल में विशेष साहित्यकार के प्रमुख योगदान को देखते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम पर उनके युग को भारतेन्दु कहा गया है।

नामकरण-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल का अंतर्विभाजन साहित्यिक विधा गद्य–पद्य के आधार पर मुख्य रूप से गद्य और काव्य रचना (पद्य) दो भागों में विभक्त किया है। पुनः इन दोनों उप विभागों के चार–चार प्रकरण किए हैं। प्रकरणों का पुनर्विभाजन उत्थानों में किया गया है। भारतेन्दु युग से गद्य के प्रकरण 2 के प्रथम उत्थान तथा काव्य रचना के प्रकरण 2 के नई धारा (प्रथम उत्थान) को अभिहित किया है। आचार्य शुक्ल ने भारतेन्दु के महत्व को गद्य–पद्य दोनों में बराबर रूप से स्वीकारा है।

डॉ. नगेन्द्र को युग विशेष को व्यक्तिगत नाम देना रूचिकर नहीं लगा इसलिए उन्होंने लिखा है–

"शुक्ल जी के परवर्ती इतिहासकारों ने प्रायः शुक्ल जी का अनुगमन किया। कुछ लोगों ने आधुनिक काल के विकास के प्रथम दो चरणों को भारतेंदु युग और द्विवेदी युग कहना अधिक संगत समझा। किंतु, इन नामों की ग्राह्यता को संदेह की दष्टि से देखा जाता है।[1]"

अंतिम वाक्य को संदर्भित करते हुए पाद टिप्पणी में लिखा है –

"1. भारतेंदु–युग और द्विवेदी युग की परिकल्पना कर लेने पर युगों की बाढ़ आ गई। भारतीय हिंदी–परिषद्, प्रयाग से प्रकाशित 'हिंदी साहित्य' (ततीय खंड) में उपन्यासों के संदर्भ में 'प्रेमचन्द युग' और नाटकों के संदर्भ में 'प्रसाद युग' की कल्पना की गई है। पता नहीं, समीक्षा के संदर्भ में शुक्ल युग क्यों नहीं लिखा गया? जितने संदर्भ उतने युग!"

डॉ. नगेंद्र भारतेंदु या द्विवेदी पर नाक–भौं चढ़ाते हैं तथा कहते हैं कि शुक्ल युग कहना औचित्यपूर्ण नहीं है। क्यों नहीं है क्या नई दिल्ली में दिवंगत प्रधानमंत्रियों के नाम पर स्थलों की क्या बाढ़ नहीं आ गई है? आधुनिक काल में विश्वविद्यालय का नाम स्थल के आधार न रखकर व्यक्ति विशेष के नाम पर नामकरण करने से कौन भी बाढ़ आ गई है? यथा, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय, राजर्षि टंडन मुक्त विद्यालय, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, हेमवती नंदन बहुगुणा विश्वविद्यालय आदि। नगरों, सड़कों के नाम भी व्यक्तिगत रखे जाते हैं और वर्तमान में भी वही स्थिति है।

डॉ. नगेन्द्र इस युग को पुनर्जागरण काल (भारतेंदु काल) कहना श्रेयस्कर समझते हैं। नाम की कोई समस्या नहीं युग विशेष को कोई भी नाम दिया जा सकता है।

काल सीमांकन

नाम से अधिक इतिहासकारों ने काल सीमा में मतभेद स्थापित किए हैं।

(i) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850–1885) के रचना काल को दष्टिगत रखते संवत 1925–1950 विक्रमी की अवधि नई धारा अथवा प्रथम उत्थान की संज्ञा दी है तथा इस काल को हरिश्चन्द्र तथा उनके सहयोगी लेखकों के कृतित्व से समद्ध माना है। किंतु शुक्ल जी द्वारा निर्धारित कालावधि से कुछ अन्य इतिहासकारों का वैमत्य है।

(ii) मिश्रबंधु – संवत् 1926 – 1945 वि. तक।

(iii) डॉ. राम कुमार वर्मा – संवत 1927 – 1957 वि. तक।

(iv) डॉ. केशरी नारायण शुक्ल – संवत् 1922 – 1957 वि. तक।

(v) डॉ. नाम विलास शर्मा – संवत 1925 – 1957 वि. तक।

(vi) डॉ. नगेन्द्र – सन् 1868 (1925 वि.) – 1900 ई. तक।

इतिहासकारों ने भारतेन्द्र युग का प्रारंभ संवत 1922–1927 वि. तक माना है। समाप्ति संवत 1945–1957 वि. तक माना है।

मेरी दष्टि से भारतेंदु युग संवत 1925–1957 वि. तक मानना श्रेयस्कर है।

5. भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रमुख प्रवत्तियाँ

आधुनिक काल का प्रारंभ भारतेन्दु के समय में हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने युग के प्रमुख साहित्यकार थे। उनकी बहुआयामी साहित्य सेवा के आधार पर इस युग का नाम उनके ही नाम पर किया गया। भारतेन्दु युगीन कवियों की हिन्दी काव्य रचनाओं का फलक अत्यन्त विस्तत है। इस युग में ही गद्य साहित्य का अनूठा विकास हुआ है। गद्य की विविध विद्याएँ भारतेन्दु युग में अपने अनूठे और प्रेरक रूप में विकसित हुई हैं। इस काल की रचनाओं में एक तरफ मध्य युगीन रीति और भक्ति की प्रवत्तियाँ दिखाई देती हैं तो दूसरी ओर समकालीन परिवेश के प्रति अनूठी जागरूकता दिखाई देती है। इस काल का कवि समकालीन परिस्थितियों का मार्मिक और ह्रदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करने में अनूठी सफलता प्राप्त कर चुका है। भारतेन्दु युग की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. **राष्ट्रीयता-**

   भारतेन्दु युग की राजनीति में देशभक्ति की प्रबल धारा दिखाई देती है। ऐसी ही भावधारा इस काल के काव्य में मिलती है। इस काल की कविता में यदि विदेशी शासन के प्रति रोष है तो प्राचीन भारतीय आदर्श पर गर्व है। भारतेन्दु की पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं–

   "अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी

   पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।"

   इस काल का कवि भारतीय, राजनीति, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भावनाओं में अनुकूल उत्कर्ष देखना चाहता है। अतीत के प्रेरक प्रसंगों को प्रस्तुत कर कवि नवयुवकों में नव भाव संचार करना चाहता है। भारतेन्दु, प्रेमधन, मैथिलीशरण गुप्त आदि की कविताओं में देशभक्ति की प्रबल भावना अभिव्यंजित हुई है।

2. **सामाजिक चेतना-**

   रीतिकालीन काव्य सुरा–सुन्दरी के चित्रण तक सीमित हो गया था। भारतेन्दु युग के साहित्य ने समाज की विभिन्न समस्याओं को व्यापक रूप में प्रस्तुत करने की सराहनीय भूमिका निभाई है। नारी शिक्षा, अस्पश्यता और विधवा विवाह का मार्मिक चित्रण भारतेन्दु युग की कविताओं में मिलता है। इस काल की कविता में एक तरफ मध्य वर्गीय समाज की विषमताओं को रूपायित किया गया है तो दूसरी तरफ समाज की रूढ़ियों और अंधविश्वासों का मुखर स्वर से विरोध किया गया है। इस काल की कविता में ब्रह्म समाज और आर्य समाज की नवीन सामाजिक चेतना उभरी है। सुधारवादी दष्टिकोण इस काल की कविता की प्रमुख विशेषता है। भारतेन्दु ने 'अंधेर नगरी', 'भारत दुर्दशा' नाटक में वर्ण व्यवस्था और सामाजिक अंधेर के संकीर्ण विचारों का खुलकर विरोध किया है–

   "बहुत हमने फैलाए धर्म।

   बढ़ाया छुआछूत का कर्म।"

   इस काल के काव्य में भारतीय समाज और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेरक अनुराग दिखाई देता है। सामाजिक विषमता और निर्धनता को देखकर कवि का ह्रदय चीत्कार कर उठता है। यहाँ के जनजीवन के शिथिल विचारों अकाल और महंगाई में पिसते हुए मध्यम वर्ग को देखकर उनकी वाणी करुणा भाव से भीग उठती है–

   "रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई

   हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।"

3. **भक्ति भावना**

   भारतेन्दु युग में भक्ति भावना का सीमित और सामान्य रूप सामने आता है। इस काल की भक्ति भावना सम्बन्धी रचनाएँ भक्तिकाल की रचनाओं से बहुत भिन्न हैं। ऐसी रचनाओं में भक्ति और देश प्रेम को एक ही धरातल पर प्रस्तुत किया

गया है। जिसमें संवेदना का प्रबल रूप दिखाई देता है। इस काल की भक्ति में निर्गुण, वैष्णव और स्वदेशानुराग समन्वित तीन धाराएँ मिलती हैं। भक्ति भावना में उपदेशात्मक रूप है। ऐसी भक्ति भावना में माधुर्य भक्ति के साथ रीति पद्धति भी उभर आई है। यत्र तत्र राम और कृष्ण पर आधारित रचनाएं मिलती हैं। 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' ने निर्गुण भक्ति का पुट प्रस्तुत किया है–

"सांझ-सवेरे पंछी सब क्या करते हैं कुछ तेरा है

हम सब इक दिन उड़ जायेंगे यह दिन चार बसेरा है।"

ऐसी भक्ति भावना पर श्रंगार पद्धति का प्रभाव दिखाई देता है–

"सुखद सेज सोवत रघुनन्दन जनक लली संग कोरे

प्रीतम अंक लगी महाराणी, शापित सुनि खग सोरे।"

राम काव्य की अपेक्षा कृष्ण काव्य अधिक विस्तत रूप पा सका है। यत्र तत्र उर्दू शैली का भी रूप मिला है। अनेक रचनाओं में ईश्वर भक्ति और देश भक्ति का अनुपम समन्वय मिलता है। 'प्रताप नारायण मिश्र' की पंक्तियाँ उद्धरणीय है–

"हम आरत-भारत वासिनी पै अब दीन दयाल दया करिये।"

4. **श्रंगारिकता-**

भारतेन्दु काल में रस को काव्य की आत्मा मानकर रचना की जाती रही है। श्रंगार रस विविध रंगों के साथ सर्वत्र अल्पाधिक रूप में प्रयुक्त हुआ है। कृष्ण सन्दर्भ में तो सौन्दर्य और श्रंगार का वर्णन अत्यन्त प्रभावोत्पादक हो गया है। इस काल की श्रंगार भावना में संक्षिप्त नखशिख वर्णन है और षड़ ऋतु वर्णन और नायिका भेद के साथ उर्दू और अंग्रेजी की संवेदना और अभिव्यंजना भी प्रकट हुई है। भारतेन्दु की प्रेम सरोवर, प्रेम माधुरी, प्रेम तरंग, प्रेम फुलवारी में भक्ति और श्रंगार दोनों ही भावों का समावेश हुआ है। भारतेन्दु के प्रेम वर्णन की सरसता अवलोकनीय है–

"आजु लौं न मिले तो कहा हम तो तुमरे सव भांति कहावैं

मेरे उराहनों कहु नाहिं सबै फल आपुने भाग को पावैं

..... प्यारे जू है जग की यह रीति विदा की समे सब कण्ठ लगावै।"

5. **जनजीवन चित्रण-**

रीतिकालीन साहित्य राज दरबार के परिवेश में रचा गया और उसमें जनसामान्य के चित्रण का प्रायः अभाव ही रहा। भारतेन्दु युग का काव्य जन सामान्य के मध्य रखा गया है। उसमें जन सामान्य की समस्याओं का विशद और विस्तत चित्रण मिलता है। इस युग का प्रत्येक कवि रूढ़ियों कुरीतियों और अत्याचार आदि को समाप्त करने का प्रेरक स्वर प्रस्तुत करता है। क्योंकि रीतिकाल का कवि राजा को प्रसन्न देखना चाहता था तो भारतेन्दु युग का कवि जनसामान्य को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता था। वह स्वस्थ समाज और प्रसन्न मनुष्यों को देखने की इच्छा रखता है। यही कारण है कि इस युग की कविता में युगीन यथार्थ के साथ प्राचीन संस्कृति का अनुपम गौरव गान मिलता है।

6. **प्रकृति चित्रण-**

भारतेन्दु युग के कवियों ने उत्तर मध्य युग की उसी कमी को पूरा किया जिसमें प्रकृति के स्वतन्त्र और प्रेरक चित्रण का अभाव था। इस युग की कविता में प्रकृति–सौन्दर्य का स्वच्छन्द रूप मिलता है। प्रकृति के माध्यम से नायक नायिकाओं की मनोदशा का सुन्दर चित्रण किया गया है। प्रकृति के विभिन्न दश्यों के चित्रण में इस काल का कवि सराहनीय रूप में सफल हुआ है। प्रकृति का हरा भरा रूप, वीरान रूप, उत्प्रेरक रूप विभिन्न कविताओं में अपनी विशेषताओं के साथ प्रस्तुत हुआ है। प्रकृति का बिम्बात्मक और चित्रात्मक रूप निश्चय ही अवलोकनीय है।

"पहार अपार कैलास से कोटिन ऊँची शिखा लगी अम्बर चूमै

निहारत दीहि भ्रमैं पगिया गिरिजात उत्तंगता ऊपर झूमै।"

7. **काव्य रूप-**

भारतेन्दु युग की प्रायः सभी रचनाएँ मुक्तक काव्य पर आधारित हैं। 'हरिनाथ पाठक' की 'श्री ललित रामायण' और 'प्रेमधन' की 'जीर्ण जनपद' आदि कुछ एक प्रबन्धात्मक रचनाएँ अपवाद स्वरूप हैं। इस काल के अधिकांश कवियों ने गीत, लोक संगीत और विनोद से सम्बन्धित रचनाओं को मुक्तक में ही प्रस्तुत किया है। भारतेन्दु जैसे कुछ कवियों ने गज़ल के रूप में भी रचनाएं प्रस्तुत की हैं। इनकी हिन्दी रचनाओं में उर्दू का भावात्मक रूप स्पष्ट दिखाई देता है। इस युग का काव्य परम्परागत मुक्तकों के साथ नवीन प्रयोग भी सामने आया है। इस काल में काव्य के साथ गद्य की निबन्ध, समीक्षा, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, प्रहसन आदि विधाओं का सुन्दर विकास हुआ है।

8. **भाषायी चेतना-**

भारतेन्दु युग में राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति प्रबल प्रेम दिखाई देता है। इस काल का कवि सहज, सुगम और उर्दू मिश्रित हिन्दी भाषा का प्रयोग करता था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भाषा में भी उर्दू ही नहीं अनेक क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग मिलता है। सरलता और सहजता के साथ भाषा में प्रभावोत्पादक रूप लाने के लिए लोकोक्ति और मुहावरों का भी अनुकरणीय प्रयोग इस काल की कविता की प्रमुख विशेषता है। इस काल की कविता में विभिन्न अलंकारों का सहज प्रयोग विशेष प्रभावोत्पादक बन गया है। सभी रसों का सुन्दर परिपाक भी मिलता है। हिन्दी के प्रति अनुपम अनुराग इस युग की कविता की प्रमुख विशेषता है।

"निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल

बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को सूल।"

भारतेन्दु युग की प्रवत्तियों पर विशद चिन्तन करने के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह हिन्दी साहित्य का नवजागरण काल है जिसमें राष्ट्रीयता, सामाजिकता और भाषायी प्रेम की अनुपम त्रिवेणी बहती है।

6. भारतेन्दु युगीन प्रतिनिधि रचनाकार

भारतेन्दु युग के मूर्धन्य रचनाकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र हैं उन्होंने अपने सहयोगियों का एक संगठन बनाया था जो 'भारतेंदु मंडल' के नाम से जाना जाता है जिसमें अनेक प्रमुख रचनाकार थे। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य गौण रचनाकारों का योगदान भारतेन्दु युग को प्राप्त था।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र -

भारतेंदु युग का नाम प्रमुख रचनाकार के नाम पर रखा गया। भारतेंदु ने युग में जन–जागरण ला दिया। इसीलिए इस युग को पुनर्जागरण काल भी कहा गया। भारतेंदु ने साहित्य को नवीन दिशा प्रदान की।

व्यक्तित्व -

कविवर भारतेंदु हरिश्चन्द्र का (सन् 1850–1885 ई0) इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचंद की वंश परंपरा में जन्म हुआ था। उनके पिता बाबू गोपाल चंद्र 'गिरिधरदास' भी अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने पांच वर्ष की अवस्था अर्थात् बाल्यकाल में काव्य सजन प्रारंभ कर दिया था। पांच वर्ष की आयु में मां का स्वर्गवास हो गया, 10 वर्ष की अवस्था में पिता का। भारतेन्दु का मूल नाम हरिश्चन्द्र है। अल्पायु में ही हरिश्चन्द्र ने कवित्व प्रतिभा एवं सर्वतोमुखी रचना क्षमता का ऐसा परिचय दिया कि तत्कालीन साहित्यकारों तथा पत्रकारों ने सन् 1880 ई. में उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया। भारतेंदु, कवि, साहित्यकार, पत्रकार सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे। 'कवि वचन सुधा' तथा 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' भारतेंदु के संपादन में प्रकाशित होने वाली प्रसिद्ध पत्रिकाएं थीं। साहित्य में नाटक, निबंध आदि की रचना द्वारा उन्होंने खड़ी बोली की गद्य शैली के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान किया। उनकी कविताएं विविध–विषय–विभूषित हैं जिनमें भक्ति, श्रंगारिकता, देश प्रेम, सामाजिक परिवेश तथा प्रकृति के विभिन्न संदर्भों को लेकर उन्होंने विपुल परिमाण में काव्य रचना की।

कृतित्व-

भारतेंदु ने काव्य, नाटक, स्त्री शिक्षा तथा इतिहास आदि पर लेखनी उठाई। 'भारतेंदु ग्रंथावली' उनके समग्र साहित्य का संकलन है।

काव्य

'प्रेम मालिका', 'सतसई श्रंगार', 'भारत वीणा', 'प्रेम तरंग', 'भक्त सर्वस्व', 'प्रेम सरोवर', 'गीत गोविंद', वर्षा विनोद', 'विनय प्रेम–पचासा', 'प्रेम फुलवारी', 'वेणुगीत', 'दशरथ विलाप', 'फूलों का गुच्छा', 'विजयिनी–विजय–वैजयंती' आदि प्रमुख काव्य रचनाएं हैं।

नाटक

'नील देवी', 'भारत जननी', 'भारत दुर्दशा', 'प्रेम योगिनी', 'चन्द्रावली नाटिका', 'वैदिकी', 'हिंसा, हिंसा न भवति', 'सती प्रताप', दुर्लभ बंधु एवं 'अंधेर नगरी' आदि नाट्य कृतियां हैं। अन्य पुस्तक 'काल चक्र' है।

स्त्री शिक्षा - 'बालाबोधिनी'।

संपादन - 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका'।

इतिहास - 'काश्मीर कुसुम', 'बादशाह दर्पण', 'अग्रवालों की उत्पत्ति', 'दिल्ली दरबार दर्पण', 'महाराष्ट्र देश का इतिहास'।

अनूदित - बंगला से हिंदी अनुवाद – 'विद्या सुंदर नाटक' 'मुद्राराक्षस', 'पाखंड विडंबन', 'धनंजय विजय'।

निबंध - 'सुलोचना', 'मदालसा', 'लीलावती', 'परिहास वंचक', 'कर्पूर मंजरी', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'कर्पूर मंजरी', 'सत्य हरिश्चन्द्र'।।

साहित्यिक विशेषताएं:

इनकी प्रमुख विशेषता यह है कि अपनी अनेक रचनाओं में जहां वे प्राचीन प्रवत्तियों का अनुगमन करते रहे हैं वहीं नवीन काव्य धारा के प्रवर्तन का श्रेय भी इन्हीं को है। राजभक्त होते हुए भी देश भक्त हैं, दास्य भक्ति के साथ साथ माधुर्य भक्ति का निर्वाह किया है। एक ओर उन्होंने नायक–नायिकाओं के सौंदर्य का चित्रण किया है तो दूसरी ओर उनके लिए नए कर्तव्य क्षेत्र भी निर्देशित किए हैं। शैली इतिवत्तात्मक होते हुए हास्य–व्यंग्य का तीखा प्रहार करने वाली भी है। अभिव्यंजना क्षेत्र में भी उन्होंने परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली प्रवत्तियों को स्वीकारा है। यह उनकी प्रयोगधर्मी मनोवत्ति का प्रमाण है। प्रबल हिंदीवादी होते हुए भी उन्होंने उर्दू शैली को कविता के लिए चुना है। काव्य भाषा हेतु ब्रजभाषा को अपनाया है किन्तु खड़ी बोली में 'दशरथ विलाप' तथा 'फूलों का गुच्छा' की रचना की है। काव्य रूपों की विविधता उनकी अनन्य विशेषता है। छंदोबद्धता का निर्वाह करते हुए भी गेय पद शैली को अपनाया है। भारतेंदु काव्य क्षेत्र के नवयुग में वे अग्रदूत थे। अपनी ओजस्विता, सरलता, भाव–व्यंजना, एवं प्रभ विष्णुता में उनका काव्य इतना सशक्त एवं प्राणवान हो गया है कि तत्कालीन सभी कवियों को अत्यधिक प्रभावित किया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का भाषा और साहित्य दोनों पर अत्यधिक गहन प्रभाव पड़ा है। उन्होंने जिस प्रकार गद्य भाषा को परिमार्जित करके उसे अति मधुर, चलता एवं स्वच्छ स्वरूप प्रदान किया है उसी प्रकार हिंदी साहित्य को भी नए मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया है। भाषा को संस्कारित किया है। भारतेंदु को वर्तमान गद्य का प्रवर्तक माना गया। भाषा का शिष्ट सामान्य निखरा हुआ रूप भारतेंदु की कला ने उपस्थित किया। पुराने पड़े हुए शब्दों का स्थानांतरण करके काव्य भाषा में भी वे चलतापन एवं सफाई लाने में सफल हुए हैं।

साहित्य को नवीन मार्ग पर लाकर उसे शिक्षित जनता का सहचर बनाया। भारतेंदु ने पुराने रास्ते पर पड़े हुए साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जन–जन के साथ जोड़ दिया। जनता एवं साहित्य के बीच बढ़ती हुई खाईं को उन्होंने पाट दिया। साहित्य को नवीन प्रवत्ति एवं नई दिशा देने का श्रेय भारतेन्दु को है। हरिश्चन्द्र की भाषा को हरिश्चन्द्री हिंदी' नाम दिया गया। इसके आविर्भाव के साथ नए–नए लेखक तैयार होने लगे।

भारतेन्दु ने दो शैलियों को व्यवहृत किया है – भावावेश की शैली तथा तथ्य निरूपण की शैली। भावावेश में उनकी भाषा में वाक्य प्रायः लघुतर होते जाते हैं तथा पदावली सरल आम बोल–चाल की होती है जिसमें बहु प्रचलित आम बोल चाल में प्रयोग में आने वाले अरबी फारसी शब्दों का भी समावेश कभी कभी हो जाता है।

जहां चित्त के किसी स्थायी क्षोभ की व्यंजना है तथा चिंतन हेतु अवकाश मिलते ही उनकी भाषा में साधुता एवं गंभीरता आने के साथ साथ वाक्यों का आयाम विस्तत होने लगता है किन्तु अन्वय में जटिलता नहीं आने पाती है।

तथ्य निरूपण अथवा वस्तु वर्णन के अवसर पर उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ, तत्सम शब्दावली प्रधान हो जाती है किन्तु इसे भारतेन्दु की वास्तविक भाषा नहीं कहा जा सकता। उनकी वास्तविक भाषा संस्कृतनिष्ठ नहीं थी। भाषा चाहे जैसी हो उनके वाक्यों के अन्वय में जटिलता को स्थान न मिलकर सरलता विद्यमान थी। वाग्वैदंग्ध्य या चमत्कार के स्थान पर उनके भावों में हृदय स्पर्शिता एवं मार्मिकता विद्यमान है।

पंडित प्रताप नारायण मिश्र-

भारतेंदु मंडल में भारतेंदु के पश्चात् प्रतापनारायण मिश्र (सन् 1856 – 1894 ई.) का प्रमुख स्थान है।

व्यक्तित्व -

प्रतापनारायण मिश्र प्रतिभा सम्पन्न निबंधकार थे। इनमें रचना क्षमता की अद्वितीयता विद्यमान थी।

किसी भी सामान्य से सामान्य विषय पर निबंध लिख देना इनके बाएं हाथ का काम था। लेखन कला में भारतेंदु हरिश्चन्द्र को अपना आदर्श स्वीकारा। फिर भी मिश्र की शैली में भारतेंदु की शैली से अत्यधिक भिन्नता दष्टिगोचर होती है। ये विनोदी स्वभाव के थे। वाग्वैग्ध्य इनकी वाणी की प्रमुख विशेषता थी।

कृतित्व-

अनेक निबंध लिखे जिनमें प्रमुख निबंध – 'नाखून क्यों बढ़ते हैं'? 'मूंछ', 'भौं', 'दांत', 'पेट' आदि शारीरिक अंगों पर लिखे गए निबंध। 'ट', 'त' जैसे वर्णमाला के अक्षरों पर लिखे गए निबंध। 'बेगार', 'रिश्वत', 'देशोन्नति', 'बाल–शिक्षा', 'धर्म और मत', 'उन्नति

की धूम', 'गोरक्षा', 'बाल विवाह', 'विलायत यात्रा', 'अपव्यय' आदि विषयों से संबंधित विचार प्रधान निबंध। 'न्याय', 'ममता', 'सत्य', 'स्वतन्त्रता' आदि वैचारिक निबंध। 'घूरे क लत्ता बिनै', 'कनातन का डौल बांधै', 'समझदार की मौत है', 'बात', 'मनोयोग', 'वद्ध', आदि कहावतों लोकोक्तियों, सूक्तियों को शीर्षक बनाकर लिखे गए निबंध।

नाटक-

'कलि कौतुक रूपक', 'कलि प्रभाव', 'हठी हमीर', 'गौ संकट', 'जुवारी खुवारी'।

साहित्यिक विशेषताएं

मिश्र की प्रमुख विशेषताएं किसी भी सामान्य से सामान्य विषय को शीर्षक बना कर निबंध लिख देना थी। विचार प्रधान विषयों का प्रतिपादन अपेक्षाकृत संयमित ढंग से किया है अन्यथा उनका विनोदी स्वभाव ही दष्टिगोचर होता है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता पाठकों के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाना है। उस स्तर पर वे अद्वितीय हैं। जीवन के प्रति उनका दष्टिकोण सदैव सुधारात्मक रहा है। रूढ़ियों का उन्होंने कहीं समर्थन नहीं किया है अपितु उनका विरोध किया है। निबंधों में इनका सच्चा देशभक्त, समाज सुधारक, एवं हिंदी प्रेमी रूप ही परिलक्षित होता है। उन्होंने भारतेंदु के आदर्श को अपना आदर्श बनाया तथा आजीवन इन्हीं को प्रशस्त करने में लगे रहे।

मिश्र के निबंधों में उनकी स्वच्छंदता, आत्म व्यंजकता, हास्यप्रियता, सरलता, वाग्वैदम्य, लोकोन्मुखता, व्यंग्य–क्षमता, चपलता तथा सहजता सर्वत्र दष्टिगोचर होती है। यद्यपि उनकी प्रवत्ति हास्य विनोद प्रधान थी किंतु जब गंभीर विषयों पर वे निबंध लिखते थे तब संयत एवं साधु भाषा का व्यवहार करते थे।

पंडित बालकृष्ण भट्ट-

पंडित बाल कृष्ण भट्ट (सन् 1844 – 1914 ई0) भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों में प्रमुख रहे हैं।

व्यक्तित्व -

संवत् 1933 वि. में पंडित बाल कृष्ण भट्ट ने गद्य साहित्य का मार्ग प्रशस्त करने हेतु 'हिन्दी प्रदीप' का संपादन प्रारंभ किया। सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक एवं नैतिक आदि विभिन्न विषयों पर लिखे गए लघु निबंधों – जिनकी संख्या लगभग 50 से भी अधिक रही होगी – बत्तीस वर्षों तक प्रकाशित करते रहे। भट्ट संस्कृत के पंडित थे। अंग्रेजी साहित्य का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगति से वे पूर्णरूपेण अवगत थे। वे अपने युग के सर्वाधिक प्रगतिशील व्यक्ति थे। भट्ट अपने विचारात्मक निबंधों के लिए प्रसिद्ध हैं।

कृतित्व-

उन्होंने छोटे–छोटे अनेक निबंध लिखे। वे कहा करते थे कि न जाने कैसे लोग बड़े–बड़े लेख लिख डालते हैं।

निबंध-

(i) वैज्ञानिक – 'वायु', 'प्रकाश', 'धूम केतु', 'पेड़', 'सीसा', 'वनस्पति', 'विज्ञान', 'भूगर्भ निरूपण', 'पदार्थवाद' आदि।

(ii) शारीरिक अंग – 'आंख', 'कान', 'नाक', आदि पर निबंध लिखे। साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है, प्रमुख निबंध हैं। 'प्रेम और भक्ति', 'तर्क और विश्वास', 'ज्ञान और भक्ति', 'विश्वास, प्रीति', 'अभिलाषा', 'आशा', 'स्पर्धा', 'धैर्य', 'माधुर्य', 'आत्म त्याग', 'सुख क्या है?' आदि प्रमुख वैचारिक निबंध हैं। 'सच्ची कविता', 'भाषा कैसी होनी चाहिए', 'उपमा', उपयुक्त विशेषण और विशेष्य, 'खड़ी और पड़ी बोली का विचार', 'हिंदी की पुकार', आदि साहित्यिक चिंतन प्रधान निबंध हैं।

उपन्यास- 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' आदि।

संपादन एवं प्रकाशन - 'हिन्दी प्रदीप'।

साहित्यिक विशेषताएं:-

उनके विचारात्मक निबंधों में उनकी खीझ, आक्रोश, भावावेश तथा झुंझलाहट स्पष्ट दष्टिगोचर होती है। साथ ही उनका खरापन भी उभरकर आ जाता है। देशभक्ति पर सबसे अधिक बल दिया है। अंग्रेजों द्वारा लगाए जाने वाले टैक्स, पुलिस अत्याचार,

कृषि की दुर्गति, हिंदी की उपेक्षा, हिंदुओं और मुसलमानों में फूट डालने वाली नीति आदि का भट्ट ने निर्भय होकर विरोध किया है। राजनीतिक विचारधारा संबंधी उनके प्रेरणा–स्त्रोत बाल गंगाधर तिलक थे। भट्ट तिलक के समर्थक थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीतियों के विरोधी थे। वे निर्भ्रांत रूप से यह स्वीकारते थे कि कांग्रेस अंग्रेजी सरकार को दढ़ और पुष्ट करने हेतु स्थापित की गई है। सामाजिक चेतना की दष्टि से भट्ट ने अपने युग का अतिक्रमण किया था। वे सभी प्रकार के बाह्याडंबरों का विरोध करते थे। विधवा–विवाह का समर्थन किया। अंध–विश्वास, बाल–विवाह, छुआछूत, पर्दा प्रथा, अनमेल विवाह, जाति पांति के भेद भाव आदि का प्रबल विरोध किया। उनकी यह प्रबल धारणा एवं मान्यता थी कि सुखमय दाम्पत्य जीवन हेतु नारी का शिक्षित होना, विवेकी होना तथा आधुनिक होना अनिवार्यता है।

भट्ट की भाषा एवं साहित्यिक निबंधों का विशेष महत्व है। भट्ट द्वारा लिखित निबंध, 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' आज भी साहित्य चिंतन के क्षेत्र में भट्ट की क्रांति दर्शिता का परिचायक बना हुआ है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भट्ट ने शारीरिक अंगों, प्रकृति, विज्ञान, साहित्य, भाषा और साहित्य चिंतन, एवं मनोविज्ञान आदि अनेक विषयों पर निबंध लिखकर अपने को बहुत आयामी बना दिया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से पूर्व ही मनोवैज्ञानिक विषयों पर गंभीर चिंतन का कार्य प्रारंभ हो चुका था जिसका श्रेय पं. बाल कृष्ण भट्ट को है। इनका उद्देश्य मनोवत्तियों को समक्ष प्रस्तुत करके उनके नैतिक प्रयोजन को उकेरना था। समाज कल्याण की दष्टि से उसका आकलन किया है। वैज्ञानिक विषयों का प्रतिपादन अति सहजता से किया है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से पूर्व ही भट्ट ने ज्ञान कांड के प्रथम अध्याय का प्रारंभ कर दिया था।

शैली की दष्टि से भट्ट के निबंधों का अत्यधिक महत्व है। निबंधकार का व्यक्तित्व निबंधों में पूर्ण रूपेण व्यंजित हुआ है। मानसिक दढ़ता, देश–प्रेम, आत्म विश्वास, विवेक, खरापन, त्याग, निडरता, कष्ट सहिष्णुता, उदारता एवं निष्ठा से समद्ध उनके व्यक्तित्व की आभा से उनके निबंध दीप्त हैं। निबंधों में प्रचलित वर्गीकरण की दष्टि से उनके अधिकांश निबंध विचारात्मक कोटि के हैं। किन्तु उन्होंने वर्णात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक, कथात्मक एवं हास्य व्यंग्य प्रधान विविध प्रकार के निबंधों की रचना की है। भट्ट के सभी निबंध लोक हितकारी होने के परिणामस्वरूप कहीं न कहीं भावना से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं।

भाषा जीवंत भाव दीप्त एवं व्यावहारिक है। यत्र–तत्र समास गर्भित पदों का प्रयोग मिल जाता है। भाषा परिष्कृत एवं परिमार्जित नहीं है। भारतेंदु मंडल के अन्य रचनाकारों की भांति इसका–इस्के, उसके–उस्के, ले–लै, दे–दै, करना–किया आदि बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है। अन्यत्र आकर–आय, जाकर–जाय आदि के प्रयोग भी हुए हैं। इस दष्टि से इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि भट्ट की भाषा भारतेन्दु युगीन भाषा का पूरी तरह अतिक्रमण नहीं कर सकी है। अपनी मौज में आकर भट्ट ने अरबी–फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। स्थान–स्थान पर कोष्ठकों में 'एजूकेशन', 'सोसायटी', 'नेशनल विगर एण्ड स्ट्रेन्थ', 'स्टैंडर्ड', 'करेक्टर' आदि आंग्ल भाषा के शब्दों का रोमन लिपि में प्रयोग किया गया है। यह भट्ट की शैली एवं भाषा का निरालापन है। पदविन्यास अत्यधिक रोचक एवं अनूठापन लिए हुए है। हास्य विनोद के साथ साथ कहीं कहीं उनका चिड़–चिड़ा स्वभाव भी झलकता है।

मुहावरों की उनकी सूझ बहुत अच्छी थी। शारीरिक अंगों से संबंधित मुहावरों की झड़ी लगा दी है। आंख को लेकर आंख आना, –जाना, –उठना –बैठना, –लड़ना, –लगना, –मारना आदि।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भट्ट के विषय में लिखा है–

"हिन्दी प्रदीप" द्वारा भट्ट जी संस्कृत साहित्य और संस्कृत के कवियों का परिचय अपने पाठकों को समय–समय पर कराते रहे। पंडित प्रताप नारायण मिश्र और पंडित बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी गद्य साहित्य में वही काम किया है जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया था।"

'आत्म निर्भरता' नामक निबंध में भट्ट ने भारतवर्ष की जनसंख्या पर करारा व्यग्य किया है और कूकर–सूकर की भांति पराश्रित दास दस संतानों से एक संतान को श्रेयस्कर माना है।

उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन

व्यक्तित्व - बदरीनारायण चौधरी का उपनाम 'प्रेमधन' था। नाम से पूर्व उपाध्याय भी लगाते थे। पंडित शब्द का प्रयोग नाम से पूर्व प्रायः सभी हिंदी रचनाकार करते थे। इनका जन्म सन् 1855 ई. में हुआ था। 68 वर्ष की अवस्था में इनकी सन् 1823 ई. में मत्यु हो गई। गद्य और पद्य दोनों विधाओं में रचना की।

कृतित्व - निबंध, कविता तथा नाटक को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

नाटक - 'भारत सौभाग्य', 'वारांगना–रहस्य', 'प्रयाग रामागमन', 'वद्ध विलाप'।

समालोचना - बाबू गदाधर सिंह के अनुवाद 'वंग विजेता' तथा लाला श्रीनिवास दास के 'संयोगिता स्वयंवर' की विशद एवं कठोर समालोचना लिखकर हिंदी साहित्य में हिंदी समालोचना का सूत्रपात किया।

संपादन - 'नागरी नीरद' साप्ताहिक पत्र एवं 'आनंद कादंबिनी' का संपादन किया।

साहित्यिक विशेषताएं -

इनकी शैली विलक्षण थी। वे गद्य रचना को कला तथा कलम की कारीगरी स्वीकारने वाले लेखक थे। कभी–कभी ऐसे लंबे पेचीदे गद्य का सजन करते थे कि पाठक एक डेढ़ प्रघटक के लंबे वाक्यों में उलझ जाता था। ये वाक्य नहीं वाक्यातीत महाकाव्य या प्रोक्तियां होती थीं। अनुप्रास एवं अनूठे पद–विन्यास की ओर इनका विशेष ध्यान होता था। किसी बात को साधारण ढंग से कह जाने को ही वे लिखना नहीं कहते थे। लेख लिखने के पश्चात् कई बार उसको पढ़कर उसका परिष्कार एवं परिमार्जन कर लेने के बाद ही प्रकाशन हेतु देते थे। भारतेंदु के घनिष्ठ होकर भी उनके उतावलेपन की आलोचना करने से नहीं चूकते थे। उनका कहना था कि बाबू हरिश्चन्द्र अपनी उमंग में जो कुछ लिख जाते थे उसे यदि एक बार और देखकर परिमार्जित कर लिया करते तो वह और भी सुडौल एवं सुंदर हो जाता। एक बार उन्होंने रामचन्द्र शुक्ल से कांग्रेस के विभाजन पर नोट लिखने के लिए कहा। शुक्ल द्वारा लिखे गए वाक्य को देखकर कहा कि इसको यों कर दीजिए –

"दोनों दलों की दलादली में दलपति का विचार भी दलदल में फंसा रहा।" भाषा अनुप्रासमयी और चुह–चुहाती हुई होने पर भी उनका पद विन्यास व्यर्थ के आडंबर के रूप में नहीं होता था। उनके लेखों में अर्थ गांभीर्य एवं वैचारित सूक्षमता विद्यमान रहती थी। अनेक कविताएं तथा नाटक भी लिखे।

'आनंद कादंबिनी' का संपादन अपने वैचारिक भावों के अंकन हेतु ही किया। उसमें अन्यों को छपने का अवसर यदा–कदा ही मिलता था। इसी को दष्टिगत रखते हुए भारतेंदु ने कहा था यह पुस्तक नहीं, पत्र है अपने अलावा अन्यों के लेख का प्रकाशन अनिवार्य है। यह आवश्यक नहीं कि सभी लेखक एक जैसे हों। 'कादंबिनी' के समाचारों में भी कभी–कभी भाषा की रंगीनी दष्टिगोचर होती थी। 'नागरीनीरद' के संपादकीय की भाषा संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक होती थी।

समालोचना का सूत्रपात हिंदी में बदरीनारायण चौधरी ने किया।

भारतेंदु मंडल के प्रमुख साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट तथा बदरीनारायण चौधरी थे।

अन्य साहित्यकारों में लाला श्री निवास दास, राजकुमार ठाकुर जगमोहन सिंह, बाबू तोता राम, केशवराम भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, अंबिका दत्त व्यास, मोहन लाल विष्णु लाल पंड्या, भीम सेन शर्मा, कार्तिक प्रसाद खत्री, दुर्गा प्रसाद मिश्र, सदानंद मिश्र, छोटे लाल मिश्र, जगन्नाथ खन्ना, गोपी नाथ, राम पाले सिंह, राम कृष्ण वर्मा, श्रीनिवास दास, राधा कृष्ण दास, गदाधर सिंह, राधाकृष्ण दास, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, विश्वनाथ सिंह, गोपाल चंद, लक्ष्मी शंकर मिश्र, रामदीन सिंह, रविदत्त शुक्ल, गौरी दत्त आदि रचनाकारों ने आधुनिक हिंदी साहित्य के भारतेंदु युग का सहयोग करके हिंदी साहित्य के विकास में योगदान किया। इसी युग में काशी में 'नागरी प्रचारिनी सभा' की स्थापना हुई जिसने पुस्तक प्रकाशन एवं पत्रिका प्रकाशन का कार्य किया।

भारतेंदु मंडल के भारतेंदु हरिश्चन्द्र, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बालकृष्ण भट्ट एवं उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' प्रमुख साहित्यकार हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक रचनाकारों तथा संस्थाओं ने भारतेंदु युग के विभिन्न क्रियाकलापों में योगदान किया। वे निम्नलिखित हैं–

लाला श्रीनिवास दास- इन्होंने नाटक और उपन्यास लिखे। संसार को ऊँचा नीचा समझने वाले पुरुष थे। इनका जन्म सन् 1851 एवं मत्यु 1886 में हुई।

कतित्व -

नाटक - 'तप्तासंवरण', 'संयोगिता स्वयंवर' तथा 'रणधीर–प्रेम मोहिनी'।

उपन्यास - 'परीक्षा गुरु'।

साहित्यिक विशेषताएं -

श्रीनिवास दास व्यावहारिक साहित्यकार थे। भाषा संयत तथा साफ सुथरी एवं रचना अति उद्देश्यपूर्ण है। अति भोजन, अत्यधिक परोपकार, अधर्मियों की सहायता, कुपात्र में भक्ति, न्यायपरता की अधिकता, अत्यंत बुद्धि वत्ति, आदि पर करारा व्यंग्य करते हुए अति की वर्जना की है। आनुषंगिकता का समर्थन किया है।

राजकुमार ठाकुर जगमोहन सिंह- ठाकुर जगमोहन सिंह (सन् 1857–1899 ई0) मध्य प्रदेश की विजय राघवगढ़ रियासत के राजकुमार थे। शिक्षा प्राप्त करने काशी चले गये। जहां संस्कृत एवं अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। अध्ययन काल में भारतेंदु हरिश्चन्द्र से उनका संपर्क हो गया किंतु भारतेंदु की रचना शैली का प्रभाव उन पर वैसा नहीं पड़ा जैसा भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों पर पड़ा। वे संस्कृत साहित्य और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता तथा हिंदी के एक प्रेम पथिक कवि एवं माधुर्यपूर्ण गद्य लेखक थे। प्राचीन संस्कृत साहित्य के अभ्यासी तथा विंध्याटवी के रमणीय प्रदेश के निवासी होने के परिणामस्वरूप विविध भावमयी प्रकृति के रूप माधुर्य की जैसी सच्ची परख, जैसी सच्ची अनुभूति इनमें थी वैसी उस काल के किसी अन्य हिन्दी कवि या लेखक में नहीं देखी जाती है।

कृतित्व

काव्य कृतियां - 'प्रेम संपत्ति लता', 'श्याम लता', 'श्यामा सरोजिनी', एवं 'देवयानी'।

उपन्यास - 'श्यामा स्वप्न'।

अनूदित - 'ऋतु संहार' एवं 'मेघदूत' (ब्रजभाषा)।

साहित्यिक विशेषताएं - श्रंगार वर्णन एवं प्रकृति सौंदर्य की अवधारणा उनकी मुख्य काव्य प्रवत्तियां हैं जो उनकी काव्य कृतियों में विद्यमान है। उपन्यास में प्रसंगवसात कुछ कविताओं का समावेश सुंदर बन पड़ा है। जगमोहन सिंह में काव्य रचना की स्वाभाविक प्रतिभा थी। वे भावुक मनोवत्ति के कवि थे। कल्पना लालित्य, भावुकता, चित्र शैली, और ब्रजभाषा की सरसता एवं मधुरता उनकी रचनाओं की अन्यतम विशेषताएं हैं। अलंकारों का अयत्नज सुंदर समावेश है जो काव्य को मनोरंजकता प्रदान करने में सहयोगी है। अपने हृदय पर अंकित भारतीय ग्राम्य जीवन के माधुर्य का जो संस्कार ठाकुर साहब ने 'श्यामा स्वप्न' में व्यक्त किया है उसकी सरसता निराली है। ठाकुर जगमोहन सिंह ने नरक्षेत्र के सौंदर्य को प्रकृति के अन्य क्षेत्रों के सौंदर्य के मेल में देखा है। प्राचीन संस्कृत के साथ भारतभूमि की प्यारी रूपरेखा को मन में बसाने वाले ये पहले हिंदी रचनाकार हैं।

कवियों के पुराने प्यार की बोली में देश की दश्यावली को समक्ष रखने का मूक समर्थन तो इन्होंने किया ही है साथ ही भावप्रबलता से प्रेरित कल्पना के विप्लव एवं विक्षेपण को अंकित करने वाली एक प्रकार की प्रलापशैली भी इन्होंनें निकाली है जिसमें रूप विधान की विलक्षणता विद्यमान थी न कि शब्द विधान।

बाबू तोता राम - ये हरिश्चन्द्र चंद्रिका के लेखकों में से हैं। आजीवन हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में तत्पर रहे। साहित्य सजन कर सभा के लिए अर्पित कर दिया।

सभा की स्थापना - 'भाषा संवद्र्धिनी' सभा की स्थापना की।

कतित्व

पत्र – 'भारत बंधु' साप्ताहिक पत्र।

अनूदित - 'केटो कृतांत नाटक', 'स्त्री सुबोधिनी'।

साहित्यिक विशेषताएं : भाषा साधारण अर्थात् विशेषता रहित है।

पंडित केशव राम भट्ट - इन्होंने बिहार प्रांत में हिन्दी प्रचार–प्रसार हेतु अनेक यत्न किए।

कृतित्व

नाटक - 'शमशाद सौसन' तथा 'सज्जाद संबुल'।

पत्र - 'बिहार बंधु' साप्ताहिक पत्र।

साहित्यिक विशेषताएं - भाषा – उर्दू में लेखन।

पंडित राधाचरण गोस्वामी - 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' के प्रभाव से समाज सुधार एवं देशभक्ति का भाव जागत हुआ।

कृतित्व - 'विदेश यात्रा विचार' तथा 'विधवा विवाह विवरण' नामक दो पुस्तकें लिखीं।

पत्र संपादन - भारतेंदु नामक पत्र निकाला।

अंबिका दत्त व्यास - कविवर दुर्गा दत्त व्यास के पुत्र अंबिका दत्त व्यास (सन् 1858–1900 ई) काशी निवासी सुकवि थे। वे संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान थे तथा दोनों भाषाओं में साहित्य सजन का कार्य करते थे।

कृतित्व -

काव्य - 'पावस पचासा', 'सुकवि सतसई' तथा 'हो हो होरी' काव्य कृतियां हैं।

प्रबंध काव्य - 'कंस वध' (अपूर्ण)। खड़ी बोली। 'ललिता नाटिका', 'पावस पचासा', 'गद्य मीमांसा'।

नाटक - 'भारत सौभाग्य', 'गो संकट नाटक', 'मरहेट्टा नाटक'।

संपादन - पीयूष – 'प्रवाह'।

कुंडलिया - समस्यापूर्ति - 'बिहारी विहार', 'अवतार मीमांसा'।

साहित्यिक विशेषताएं - अधिकांश रचनाएं ललित ब्रज भाषा में की गईं। खड़ी बोली में 'कंस वध' प्रबंध काव्य की रचना प्रारंभ की थी किंतु इसके मात्र तीन सर्ग ही लिखे गए हैं। प्रसिद्ध रचना 'बिहारी विहार' है जिसमें महाकवि बिहारी के दोहों का कुडलिया छंद में भाव विस्तार किया गया है। उनके द्वारा लिखित समस्या पूर्तियां भी उपलब्ध होती हैं। नाटकों में कुछ गेय पदों को सम्मिलित किया गया है। व्यास की प्राचीन भारतीय संस्कृति में विशेष आस्था थी जिसे प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त करने की अपेक्षा उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता के दोषों को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। उन्होंनें सरल एवं कोमल कांत पदावली को वरीयता दी है। इन्होंने – इनने, उन्होंने – उनने का प्रयोग किया है।

पंडित मोहन लाल विष्णु लाल पंड्या - पंडित मोहन लाल विष्णुलाल पंड्या (सन् 1850–1912 ई) ने गिरती दशा में 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' को सहारा दिया था तथा उसमें अपना नाम भी जोड़ा था। लोग इनकी वेशभूषा, बोल चाल से इन्हें इतिहासवेत्ता समझते थे। कविराज श्यामल दान जी ने जब अपने 'पथ्वीराज चरित्र' ग्रंथ के द्वारा चंदवरदायी कृत 'पथ्वीराज रासो' को जाली ग्रंथ प्रमाणित किया था उस समय इन्होंने 'रासो संरक्षा' की रचना कर उसे प्रामाणित महाकाव्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया था।

कृतित्व - 'रासो – संरक्षा'।

पंडित भीमसेन शर्मा - पहले ये स्वामी दयानंद सरस्वती के दायें हाथ थे। संवत् 1940 – 1942 वि. के मध्य इन्होंने धर्म संबंधी अनेक पुस्तकें हिंदी में लिखी एवं संस्कृत ग्रंथों के हिंदी भाष्य भी प्रकाशित किए।

कृतित्व - 'आर्य – सिद्धान्त' नामक मासिक पत्र।

'संस्कृत भाषा की अद्‌भुत शक्ति' निबन्ध।

साहित्यिक विशेषताएं - आर्य भाषा के संबंध में इनका मत विलक्षण था। निबंध को आधार मानकर इन्होंने अरबी–फारसी के शब्दों को संस्कृत का बना दिया जिसके लिए अेनेक तर्क उपस्थित किए – दुशमन – दुःशमन, सिफारिश – क्षिप्राशिष, चश्मा – चक्ष्मा, शिकायत – शिक्षायत्न आदि।

भारतेंदु के आविर्भाव के साथ–साथ साहित्यकारों का एक मंडल 'भारतेंदु मंडल' के नाम से खड़ा हो गया था। जिसके अतिरिक्त अन्य साहित्यकार भी हिंदी की सेवा में उतर पड़े थे उसी प्रकार पत्र–पत्रिकाएं भी देश के कोने–कोने में प्रकाशित होकर हिंदी सेवा में संलग्न हो गई थीं।

बाबू कार्तिका प्रसाद खत्री-

कोलकाता से हिंदी का एक अच्छा पत्र और पत्रिका निकालने का सर्वप्रथम प्रयत्न करने वाले बाबू कार्तिका प्रसाद खत्री थे। उन्होंने हिन्दी में पाठक पैदा करने हेतु दौड़ धूप की। घर जा–जाकर पत्र सुनाकर आते थे।

कृतित्व - सन् 1928 ई. में 'हिन्दी दीप्ति प्रकाश' नाम का संवाद पत्र तथा 'प्रेम विलासिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया।

पंडित दुर्गा प्रसाद मिश्र, पंडित छोटू लाल मिश्र, पंडित सदानंद मिश्र, बाबू जगन्नाथ खन्ना - संवत् 1934 वि. में इन सभी के प्रयास से कोलकाता में 'भारत मित्र कमेटी' की स्थापना हुई तथा 'भारत मित्र' पत्र निकला। इसका बहुत दिनों तक हिंदी संवाद पत्रों में उच्च स्थान रहा। इसका प्रसार–प्रचार वर्तमान काल में भी धूमधाम से चल रहा है।

पंडित गोपी नाथ- 'कवि वचन सुधा' की मनोहर लेखन शैली से प्रभावित, भाषा पर मुग्ध होकर गोपीनाथ ने पत्रिका संचालन किया।

कृतित्व-पत्रिका- संवत 1934 – 'मित्र विलास'।

साहित्यिक विशेषताएं- भाषा अति सुष्ठु एवं ओजस्विनी।

पंडित दुर्गा प्रसाद मिश्र-

कृतित्व पत्र- संवत् 135 – 'उचित वक्ता' – कोलकाता।

सदानंद मिश्र-

कृतित्व पत्र- संवत् 1935 – 'सार सुधा निधि' कोलकाता।

राजा रामपाल सिंह- काला कांकर निवासी मनस्वी एवं देशभक्त।

कृतित्व पत्र- संवत् 1940 – 'हिंदोस्थान'– इंग्लैंड। भारतेंदु के स्वर्गवासी हो जाने पर संवत् 1942 में इस पत्र ने हिंदी दैनिक का रूप धारण कर लिया और इसके संपादक – पं. मदन मोहन मालवीय, पंडित प्रताप नारायण मिश्र एवं बाल मुकुंद गुप्त रहे।

बाबू रामकृष्ण वर्मा-

कृतित्व पत्र- सन् 1884 – 'भारत जीवन' काशी।

अनूदित नाटक - वीर नारी, पद्मावती, कृष्ण कुमारी।

श्रीनिवास दास-

कृतित्व - उपन्यास - परीक्षा गुरू।

बाबू गदाधर सिंह

कृतित्व

अनूदित उपन्यास- 'बंगविजेता', 'दुर्गेशनंदिनी' बंगला से हिंदी।

राधाकृष्ण दास- भारतेंदु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई राधाकृष्ण दास (सन् 1865 – 1907 ई.) बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। कविता के अलावा नाटक, उपन्यास एवं आलोचना के क्षेत्रों में सराहनीय साहित्य रचना की।

कृतित्व-

कविताएं- 'भारत बारह मासा', 'देश दशा'।

नाटक- 'दुःखिनी बाला', 'महाराणा प्रताप'।

साहित्यिक विशेषताएं- उनकी कविताओं में भक्ति, श्रंगार एवं समकालीन सामाजिक–राजनीतिक चेतना को विशेष महत्व दिया गया है। समसामयिकता की प्रधानता है। प्रकृति के सुंदर चित्र भी दर्शनीय हैं। राधा कृष्ण के प्रेम निरूपण में भक्ति एवं रीति कालीन वर्णन परंपरा का उन पर समान रूप से प्रभाव दष्टिगोचर होता है। अंबिका दत्त व्यास की परंपरा का अनुगमन करते हुए उन्होंने रहीम के दोहों को विस्तार देते हुए कुंडलिया की रचना की। ब्रजभाषा की कविताओं में मधुरता एवं खड़ी बोली की रचनाओं में प्रसाद गुण पर महत्व दिया गया है।

सन् 1884 ई. में हिंदी एवं नागरी के प्रचार प्रसार हेतु प्रयाग में 'हिंदी–उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य सभा' की स्थापना हुई।

बाबू श्याम सुंदर दास, पंडित राम नारायण मिश्र, ठाकुर शिव कुमार सिंह- जैसे उत्साही छात्रों ने संवत् 1950 में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। आदि से अंत तक बाबू श्याम सुंदर दास प्राण स्वरूप स्थित होकर तत्पर रहे। इसके प्रथम सभापति बाबू राधा कृष्ण दास हुए। इसके सहायकों में रायबहादुर पंडित लक्ष्मी शंकर मिश्र, स्वामी बाबू राम दीन सिंह, बाबू राम कृष्ण वर्मा, बाबू गदाधर सिंह तथा बाबू कार्तिका प्रसाद के नाम प्रमुख हैं।

इस सभा का मूल उद्देश्य नागरी अक्षरों का प्रचार तथा हिंदी साहित्य की समद्धि रहा है।

पंडित रविदत्त शुक्ल- 'देवाक्षर चरित्र' – प्रहसन।

पंडित गौरी दत्त- मेरठ निवासी सारस्वत ब्राह्मण अध्यापक थे। 40 वर्ष की अवस्था में अपनी संपूर्ण सम्पत्ति नागरी प्रचारिणी सभा काशी के नाम लिख दी। सन्यासी हो, नागरी प्रचार का झंडा उठा लिया। इनके व्याख्यानों के प्रभाव स्वरूप मेरठ में अनेक देवनागरी स्कूल खुल गए। इनका अविवादन "जय नागरी की" था।

कृतित्व- 'गौरी नागरी कोश'।

पंडित मदन मोहन मालवीय-

'अदालती लिपि और प्राइमरी शिक्षा' पुस्तक।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा-

कृतित्व-

'सभा की ग्रंथ माला' में कई पुराने कवियों के अच्छे–अच्छे अप्रकाशित ग्रंथों की सूची छपी।

कोश- 'वैज्ञानिक कोश', 'हिंदी शब्दसागर'।

पत्रिका- 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'।

संपादन-

ऐतिहासिक काव्य- 'छत्र प्रकाश', 'सुजान चरित्र', 'जंगनामा', 'पथ्वीराज रासो', 'परमाल रासो' आदि।

ग्रंथावली- 'तुलसी', 'जायसी', 'भूषण', 'देव'।

मनोरंजन पुस्तक माला- विभिन्न विषयों पर सैकड़ों उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

भारतेंदु युग के अन्य कवि- भारतेंदु युग में तत्कालीन विभिन्न परिवेश के प्रति जैसी जागरूकता का आविर्भाव हुआ उसका निर्वाह उस युग के गौण कवियों से नहीं हो सका। उन्होंने भक्ति–भावना एवं श्रंगार वर्णन को ही अपनी रचना का विषय बनाया–

नवनीत चतुर्वेदी - 'कुब्जा पचीसी', (रीति पद्धति की सरस रचना); **गोविंद गिल्ला भाई** - 'श्रंगार–सरोजिनी', 'पावस पयोनिधि', 'राधा मुख षोडसी' तथा 'षड्ऋतु' (भक्ति एवं प्रेम वर्णन विषयक रचनाएं); **दिवाकर भट्ट** - 'नखशिख' एवं 'नवोढ़ारत्न'

(रीति–पद्धति की रचनाएं); **राम कृष्ण वर्मा 'बलबीर'** - 'बलबीर पचासा'; **सूर्यपुराधीश राजेश्वरी प्रसाद सिंह 'प्यारे'** - 'प्यारे प्रमोद'; **गुलाब सिंह** - 'प्रेम सतसई' एवं **राव कृष्ण देव शरण सिंह 'गोप'** – 'प्रेम–संदेशा' (श्रंगार रस की कृति) आदि।

इनके अनेक छंदों में नायक–नायिका की मनोदशाओं का सरस प्रस्तुतीकरण किया गया है। श्रंगार परंपरा के कवियों में बेनी द्विज, हनुमान, ब्रजचन्द्र, वल्लभीय एवं नकछेदी त्रिपाठी आदि भी ऐसे ही कवि हैं। श्रंगार से इतर विषयों पर स्फुट छंद रचना इन सभी कवियों ने की है।

भारतेंदु युग पुरातन और नवीन के संधि स्थल पर अवस्थित है जिसके परिणामस्वरूप कवियों में मध्यकालीन वैयक्तिकता के साथ–साथ समाज और राष्ट्र उद्‌बोधनकारी, लोकमंगलकारी दष्टि अर्थात् समष्टि या सामाजिकता की ओर आकर्षण पैदा हुआ है। विचार–दर्शन में या तो एक प्रकार की उलझन है अथवा समकालीन परिवेश में उन्हें परस्पर विरोधी दष्टिकोण अपनाने हेतु बाध्य कर दिया है। इस युग में (i) प्रवत्ति मूलक प्रेम काव्य, (ii) दास्य भक्ति या माधुर्य भक्ति की रचनाएं, एवं (iii) सुधारवादी जीवन दष्टि वाली रचनाएं तीन काव्य प्रवत्तियां दष्टिगोचर होती हैं।

7. द्विवेदी युग : नामकरण एवं काल सीमांकन

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में एक नवीन मोड़ आया। साहित्यकारों का चिंतन व्यष्टि से समष्टि, वैयक्तिक से सामाजिक, जड़ता से चेतना, स्थायित्व से प्रगति, श्रंगार से देशभक्ति, रूढ़ि से स्वच्छंदता की ओर अग्रसर हुआ। भारतेंदु युग के कवियों में भावबोध आधुनिकता से प्रभावित होते हुए भी रीतिकालीन पंरपरा से सर्वथा मुक्त नहीं हो पाया था। भारतेंदु युग में साहित्यगत विषयों में नवीनता आने पर भी अभिव्यक्ति के माध्यम एवं उपादानों में पूर्ण परिवर्तन नहीं आया। राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना के साथ–साथ राज्य भक्ति भी विद्यमान थी क्योंकि अंग्रेजी सरकार के प्रति आस्था उत्पन्न होती जा रही थी कि सुधारों के द्वारा वह भारतवासियों का कल्याण कर रही है किंतु वास्तव में विदेशी सरकार सुधार, भारतवासियों के लिए नहीं अपितु स्वहिताय कर रही थी, सड़क, रेल, डाक–तार आदि संबंधी सुधार भारतीयों से अधिक उनके दोहन में सहायक सिद्ध हो रहे थे फिर भी भारतीय साहित्यकार उनकी चाटुकारिता में अपना समय व्यर्थ कर रहे थे। आवेदन, निवेदन अथवा प्रशंसा से उसकी नीति में, कुटिलता, कठोरता में वद्धि हो रही थी। उनके अत्याचारों में कमी नहीं आ रही थी।

बीसवीं शताब्दी में राजनीतिक परिवर्तन आया। सन् 1885 ई. में 'राष्ट्रीय नेशनल कांग्रेस' की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य अंग्रेजी सरकार को जनता के हित के लिए ठोस सुझाव देना था किंतु वह अंग्रेजी सरकार को सुदढ़ता प्रदान करने में संलग्न हो गई। सुधार का आश्वासन अंग्रेजी सरकार निरंतर देती रही किंतु उनका क्रियान्वयन नहीं हुआ। भारतीय जनता महारानी विक्टोरिया के जयकारे लगा रही थी। भारतीय इतिहास में अंग्रेजों का शासन काल दमन नीति एवं कूटनीति का काल था। सन् 1858 की महारानी विक्टोरिया की सहृदयतापूर्ण घोषणा पत्र का आंशिक रूप भी कार्य में परिवर्तन नहीं हुआ। जनता की अंग्रेजी सरकार के प्रति लगी बड़ी–बड़ी आशाएं अधूरी क्या पूरी की पूरी अछूती रह गई। जनता को दमन–नीति में निर्दयता से पीसने हेतु अनेक प्रतिगामी काले कानून पास होते रहे जिससे जनता में असंतोष एवं क्षोभ की अग्नि भड़कने लगी।

तत्कालीन सरकार शक्ति स्त्रोतों तथा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने में तत्पर थी। उसकी आर्थिक नीति उसके लिए हितकारी तथा भारतीयों के लिए अहितकारी थी। भारतीय कच्चा माल विदेशी कारखाने पी रहे थे तथा अपना तैयार माल मंहगे दामों पर भारतीय बाजारों में भरते जा रहे थे जिससे यहां के कल–कारखानों की स्थिति बिगड़ती ही नहीं जा रही थी अपितु ग्रामीण कुटीर उद्योग धंधे बंद होते जा रहे थे। भारतीयों की निर्धनता घटने के स्थान पर बढ़ती जा रही थी। दुर्भिक्षों ने भारतीयों की रही–सही कमर तोड़ दी। जनता एवं साहित्य–चिंतकों की समझ में यह स्पष्ट भासित होने लगा था कि सुधार के सर्वतोमुखी कार्यों की विफलता तथा उनके अत्याचारों का और कोई कारण नहीं, मात्र परतंत्रता है। दासता से मुक्ति हेतु जनता ने पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की। गोपाल कृष्ण गोखले तथा बाल गंगाधर तिलक जैसे मेधावी, कर्मठ, दढ़ प्रतिज्ञ नेता जनता के समक्ष आए जिन्होंने आते ही 'स्वराज्य' एवं 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' के नारों से आसमान गुंजा दिया। भारतेंदुकालीन साहित्यकार भारत दुर्दशा के दुखों में डूबे रहे। इस युग का श्रीगणेश होने से पूर्व साहित्यकारों में अपूर्व चेतना आई और उसने करवट बदली।

नामकरण-

आचार्य रामचन्द्र शुक्त ने इस युग को प्रकरण 3 गद्य साहित्य का प्रसार द्वितीय उत्थान नाम दिया है। जिसमें गद्य विद्या का विवेचन किया है एवं प्रकरण 3 नई धारा द्वितीय के अंतर्गत पद्य विद्या का विवेचन करते हुए लिखा है–

"इस द्वितीय उत्थान के आरंभ काल में हम पंडित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ही को पद्य रचना की एक प्रणाली के प्रवर्तक के रूप में पाते हैं। गद्य पर जो शुभ प्रभाव द्विवेदी जी का पड़ा है उसका उल्लेख गद्य के प्रकरण में हो चुका है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के गद्य–पद्य दोनों विधाओं में द्विवेदी जी का प्रमुख स्थान था। 'द्विवेदी युग' को शुक्ल ने द्वितीय उत्थान नाम दिया है क्योंकि आधुनिक काल का अंतर्विभाजन उन्होंने प्रकरण तथा उत्थानों के आधार पर किया है।

डॉ. नगेन्द्र ने इस काल खंड को नया नाम 'जागरण–सुधार काल' देना चाहकर भी द्विवेदी युग नाम को उचित कहा है। उनकी

मनसा की अभिव्यक्ति इसी से स्पष्ट हो जाती है कि हिंदी साहित्य का इतिहास के अध्याय 11 के शीर्षक 'द्विवेदी युग'के नीचे लघु कोष्ठक के मध्य (जागरण सुधार काल) भी लिखा है।

डॉ. नगेन्द्र ने 'द्विवेदी युग' का औचित्य प्रतिपादन करते हुए लिखा है–

"इस काल खंड के पथ–प्रदर्शक, विचारक और सर्वस्वीकृत साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इसका नाम 'द्विवेदी युग' उचित ही है।

स्पष्ट हो गया कि इस काल खंड का सर्वमान्य नाम "द्विवेदी युग" है।

काल सीमांकन-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने द्विवेदी युग की काल सीमा संवत 1957–1977 वि. अर्थात् 20 वर्षों की कालावधि स्वीकारी है।

डॉ. नगेन्द्र ने इस काल खंड का प्रारंभ 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन काल से माना है। सौभाग्य की बात है कि जनता की रूचि एवं आकांक्षाओं के पारखी तथा साहित्य के दिशा–निदेशक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रादुर्भाव के फलस्वरूप सन् 1900 ई. में 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। कालावधि 18 वर्ष मानते हुए सन् 1900–1918 ई. तक 'द्विवेदी युग' की सीमा स्वीकारी है।

डॉ. लाल चंद गुप्त 'मंगल' ने द्विवेदी युग की काल सीमा सन् 1900–1918 ई. तक मानी है।

प्रवत्ति लगभग बीस वर्षों तक चलती रही है इसलिए सन् 1900–1920 तक मानना उचित है। इस युग की मुख्य प्रवत्तियों में राष्ट्रीयता, मानवता, नीति एवं आदर्श, वर्ण्य विषय का क्षेत्र विस्तार हास्य–व्यंग्य काव्य, विविध काव्य रूपों का प्रयोग, छंछ वैविध्य, देशभक्ति, प्रकृति चित्रण, काव्य में खड़ी बोली की प्रधानता आदि प्रमुख है।

8. द्विवेदी युगीन काव्य की प्रमुख प्रवत्तियाँ

हिंदी साहित्य में द्विवेदी जी का विशेष महत्त्व है क्योंकि उन्होंने तत्कालीन साहित्य में प्रचलित रूढ़ियों का संगठित और खुलकर विरोध किया। उस समय साहित्य में तीन तरह की रूढ़ियां और शिथिल परंपराएँ प्रभावी हो रही हैं।

1. कवियों और आलोचकों का एक बहुत बड़ा वर्ग इस बात की वकालत करने में लगा हुआ था कि खड़ी बोली में कविता हो ही नहीं सकती, क्योंकि उसमें वह लालित्य और माधुर्य नहीं है, जो ब्रजभाषा में है।
2. श्रंगाररस, नायिकाभेद, उक्तिवैचित्र्य के साहित्य में सर्वाधिक महत्व दिया जाता रहा था।
3. उस समय कविता में समस्यापूर्ति की ऐसी धूम मची हुई थी कि बहुतेरे कवि किसी न किसी समस्या का सहारा लिए बिना कविता लिख ही नहीं सकते थे।

द्विवेदी जी ने पूरी शक्ति के साथ इन शिथिल परंपराओं और रूढ़ियों का विरोध किया। आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माताओं में भारतेंदु के पश्चात् दूसरा महत्वपूर्ण नाम द्विवेदी जी का है। इसलिए भारतेंदु युग के पश्चात् हिंदी साहित्य में जिस नवीन युग का आविर्भाव हुआ, उसे द्विवेदी युग कहा गया।

इस युग में श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली में काव्य–रचना करते हुए प्रकृति को आलंबन रूप में ग्रहण करने का आग्रह किया। छंद संबंधी नये–नये प्रयोग किये और कविताओं में रहस्य संकेत दिये। पाठक जी की कविता अपने युग से आगे थी। मैथिलीशरण गुप्त ने आदर्श चरित्रों की सष्टि की और उन्हें अलौकिकता के आकाश से उतार कर मानवीयता की भूमि पर खड़ा किया। व्याकरण सम्मत और स्वाभाविक भाषा के प्रयोग में जितनी महारत गुप्त जी को प्राप्त थी, उतनी उस काल के किसी अन्य कवि को नहीं। रामनरेश त्रिपाठी ने कल्पित कथानकों के माध्यम से देश–प्रेम की भावना जगायी। उनकी 'पथिक' और 'मिलन' काव्य कृतियाँ क्रमशः स्वतंत्रता प्राप्ति और हिंसात्मक क्रांति की कहानियाँ हैं। खड़ी बोली में सर्वप्रथम महाकाव्य की रचना करने वाले हरिऔध जी रीतिकालीन नायिका के स्थान पर पति, परिवार, लोक और विश्व सेविका की प्रतिष्ठा करने में कत्कार्य हुए। इस युग के हिंदी काव्य की उल्लेखनीय प्रमुख प्रवत्तियाँ इस प्रकार हैं–

1. **देशभक्ति-** उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतेंदु, प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र आदि कवियों के काव्य में देशभक्ति का जो स्वर सुनाई पड़ा था, द्विवेदीयुगीन हिन्दी काव्य में उसका उत्तरोत्तर विकास होता गया और उसका चरमोत्कर्ष मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' में दष्टिगोचर हुआ। द्विवेदीयुगीन कवियों की राष्ट्रीय भावना भारतेन्दुयुगीन कवियों की राष्ट्रीय भावना से किंचित् भिन्न और अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट एवं मुखर है। भारतेंदुयुगीन काव्य में देशभक्ति के साथ–साथ राजभक्ति का स्वर भी सुनाई पड़ता है, किन्तु द्विवेदीयुगीन काल शुद्ध राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित है। उनमें अंग्रेजी शासन के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह की भावना तथा भारतीय जनता को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उद्‌बुद्ध और प्रेरित करने वाला क्रांतिकारी स्वर सुनाई पड़ता है। कवि शंकर की 'बलिदान गान' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

   देशभक्त वीरों मरने से नेक नहीं डरना होगा।

   प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।

   सामान्य जनता में राष्ट्र के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए भारत के गौरवपूर्ण अतीत और उसकी प्राकृतिक छटा की भावपूर्ण छवि अंकित की गई है। गुप्त जी ने 'भारत–भारती' में भारत की श्रेष्ठता का उद्‌घोष इस प्रकार किया है–

   भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीलास्थल कहाँ?

   फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।

   सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है।

उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।

समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों, कुरीतियों, ईर्ष्या–द्वेष, आदि का हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत कर कवियों ने भारतीय जनमानस को उसकी कमियों से अलग कराते हुए परस्पर संगठित होकर देश की उन्नति करने के लिए ओजस्वी स्वर में प्रेरित किया। रामनरेश त्रिपाठी की 'जन्मभूमि भारत' शीर्षक कविता में देशवासियों को द्वेष का परित्याग कर देश की उन्नति में योग देने के लिए प्रेरित किया गया है–

उठो त्याग दे द्वेष एक ही सबके मत हों।
सीऊ ज्ञान-विज्ञान कला-कौशल उन्नत हों।।
सुख सुधार सम्पत्ति शान्ति भारत में भर दें।
अपना जीवन इसे सहर्ष समर्पित कर दें।।

2. **नैतिकता का प्राधान्य-** भारतेन्दु युग के कवियों ने अपनी कविताओं में यद्यपि नए–नए विषयों का समावेश किया फिर भी वे रीतिकालीन श्रंगारी भावना का परित्याग न कर सके। द्विवेदीयुग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतत्व में रीतिकालीन श्रंगारिकता का स्पष्ट विरोध किया गया और कविता के भीतर आदर्श एवं नैतिकता की प्रतिष्ठा हुई। मात्र मनोरंजन की भावना से दूर हटकर कविता में उचित उपदेशात्मक का समावेश करने पर बल दिया गया–

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।
क्यों आज 'रामचरितमानस' सब कहीं सम्मान्य है।
सत्काव्यगत उसमें परम आदर्श का प्राधान्य है।।

-मैथिलीशरण गुप्त

वासनात्मक प्रेम के स्थान पर प्रेम के उस स्वर्गिक रूप की झाँकी प्रस्तुत की गई जो ईश्वर का प्रतिरूप है और इसलिए यह प्रेम हृदय को आलोकित करने वाला है

गन्ध विहिन फूल हैं जैसे चन्द्र चन्द्रिका हीन।
यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम विहीन।।
प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है प्रेम हृदय आलोक।।

-रामनरेश त्रिपाठी

कविता के माध्यम से मनुष्य के हृदय में स्वार्थत्याग, कर्त्तव्यपालन, आत्मगौरव आदि उच्चादर्शों की स्थापना का प्रयास किया गया। इसके लिए कहीं तो सद्‌गुण और सत्संग की महिमा का वर्णन हुआ और कहीं दुर्गुण और कुसंग की बुराईयों पर सीधी–सरल भाषा में प्रकाश डाला गया। कुसंग के संबंध में रामचरित उपाध्याय की निम्नलिखित पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं–

अति खल की संगति करने से जग में मान नहीं रहता है।
लोहे के संग में पड़ने से घन की मार अनल सहता है।।
सबसे नीतिशास्त्र कहता है, दुष्ट संग दुख का दाता है।
जिस पय में पानी रहता है, वही खूब औटा जाता है।

3. **मानवतावादी दष्टिकोण-** आधुनिककाल से पूर्व भारतीय समाज में जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि आधारों पर भेद–भाव की अनेक दीवारें खड़ी की गई थीं। पुरुषों द्वारा स्त्रियों को मात्र वासनापूर्ति का साधन समझकर उनका निरंतर शोषण हो रहा था। आधुनिककाल में बौद्धिक और वैज्ञानिक दष्टिकोण के प्रभाव से मानव–मात्र की समानता का भाव विकसित

हुआ। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार देने की बात सोची जाने लगी। धीरे–धीरे परम्परागत धर्म का स्थान मानवता ने ले लिया। द्विवेदीयुगीन कवियों ने धर्म के इस आभ्यंतर स्वरूप को अच्छी तरह पहचाना और मानव के प्रति प्रेम तथा दीन–दुखियों की सेवा को सच्चा धर्म बताया–

जग की सेवा करना ही बस है सब सारों का सार।
विश्व प्रेम के बन्धन ही में मुझको मिला मुक्ति का द्वार।।
-गोपालशरण सिंह

खोज मैं हुआ वथा हैरान, यहाँ ही था तू हे भगवान्।
दीन-हीन के अश्रु नीर में, पतितों के परिताप पीर में।
सरल स्वभाव कृषक के हल में, श्रमसीकर से सिंचित घन में।
तेरा मिला प्रमाण।।
- मुकुटधर पाण्डेय

राम और कृष्ण को अवतारी सिद्ध करते हुए उन्हें मानवता का प्रतिनिधित्व करने वाले आदर्श पुरुष के रूप में कल्पित किया गया है गुप्त जी ने 'साकेत' में राम के मुँह से स्पष्ट कहलवाया है–

मैं आर्यो का आदर्श बताने आया।
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।

नारी को समाज में उचित प्रतिष्ठा दिलाने के लिए पाठकों का ध्यान ऐसे नारी पात्रों की ओर आकृष्ट किया गया जिनको प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय महाकाव्यों में कोई स्थान नहीं दिया गया था। मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयत्न किये। गुप्त जी ने 'साकेत' के माध्यम से उपेक्षित उर्मिला की मर्मव्यथा का चित्रांकन किया। 'हरिऔध जी' ने 'प्रियप्रवास' में राधा को लोक सेविका के रूप में लोगों के सम्मुख रखा और अपने प्रसिद्ध रीतिग्रंथ 'रसकलश' में परंपरागत नायिका–भेद से किंचित दूर हटकर पति, प्रेमिका, परिवार प्रेमिका, लोकसेविका आदि नायिकाओं की नई कोटियाँ निर्धारित कीं।

4. **आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण-** भारतेंदु युग के कवियों की दष्टि प्रकृति के स्वतंत्र रूप की ओर गयी थी, किन्तु वे अपने को परम्परागत रीतिकालीन प्रकृति चित्रण से सर्वथा मुक्त नहीं कर सके थे। भारतेन्दु ने 'चन्द्रावली' और 'सत्यहरिश्चन्द' में क्रमशः यमुना और गंगा की प्राकृतिक सुषमा का स्वतन्त्र वर्णन करने का प्रयास किया, किन्तु अलंकारप्रियता और शब्दचमत्कार के लोभ में उसका नैसर्गिक सौन्दर्य दब सा गया। द्विवेदीयुगीन कवियों ने प्रकृति को निकट से देखा और उसे पूर्णतः आलम्बन रूप में स्वीकार किया। श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, जगमोहन सिंह, रामचन्द्र शुक्ल की कविताओं में प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य के श्लिष्ट चित्र देखने को मिलते हैं। रामचन्द्र शुक्ल की ग्राम–सौन्दर्य से संबंधित कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

गया उसी देवल के पास है ग्राम-पथ
श्वेतधारियों में कई घास को विभक्त कर
थूहरों से सटे हुए पेड़ और झाड़ हरे
गोरज से धूमिल जो खड़े हैं किनारे पर।

रामनरेश त्रिपाठी के खण्डकाव्यों में प्रकृति के मोहक चित्र भरे पड़े हैं। 'स्वप्न' नामक खण्डकाव्य में वर्णित वेगवती पहाड़ी नदी का यह चित्र दर्शनीय है–

पर्वत शिखरों पर हिम गलकर, जल बनकर नालों में आकर।

छोटे बड़े चीकने अगणित शिला समूहों से टकरा कर।।

गिरता उठता फेन बहाता अति कोलाहल हर हर।

वीरवाहिनी की गति से कहता रहता निसिवासर।।

5. **इतिवत्तात्मकता-** भारतेंदुयुग के कवियों ने काव्यशैली के क्षेत्र में नवीन प्रयोग न अपनाकर रीतिकालीन शब्द–चमत्कार प्रधान तथा प्रवाहपूर्ण शैली में काव्य रचनाएँ की थीं। द्विवेदी युग में कविता कथात्मक प्रवाह के साथ चलती थी। 'साकेत', 'यशोधरा' आदि रचनाओं में यह प्रवत्ति स्पष्ट है। द्विवेदी युग में ब्रजभाषा कवियों को छोड़ शेष सब ने रीतिकालीन अभिव्यक्ति–प्रणाली का विरोध किया। उनकी कविताओं में संस्कृति साहित्य के नये–नये छंदों और तथ्य प्रधान सीधी–सपाट भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है। कल्पना की लम्बी उड़ानों के सहारे रचे गये संश्लिष्ट बिम्बों की हृदयस्पर्शी छटा द्विवेदीयुगीन कवियों में देखने को नहीं मिलती है। 1907 की 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित एक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में इतिवत्तात्मक शैली का स्वरूप स्पष्ट हो जाएगा–

विद्या तथा बुद्धिनिधि प्रधान, न ग्रंथ होते यदि विद्यमान।

तो जानते क्योंकर आज मित्र, स्वपूर्वजों के हम सच्चरित्र।

हे ग्रंथ! द्रव्यादि न एक लेते, तो भी सुशिक्षा तुम नित्य देते।

खड़ी बोली के पूर्णतः समद्ध हो जाने के उपरान्त उसमें सूक्ष्म अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने वाली चित्रमयी लाक्षणिक शैली का विकास हुआ; जिसका चरम उत्कर्ष आगे चलकर छायावादी कवियों की कविता में देखने को मिलता है।

6. **खड़ी बोली की प्रतिष्ठा-** द्विवेदी युग में गद्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने के साथ–साथ पद्य के क्षेत्र में भी खड़ी बोली की व्यापक प्रतिष्ठा सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आचार्य महावीर द्विवेदी के महत्प्रयत्नों से उनके समय में खड़ी बोली के प्रतिनिष्ठित स्वरूप की स्थापना हुई और पहले से चली आने वाली व्याकरणिक असमानताएँ समाप्त हो गईं। द्विवेदी जी ने स्वयं अपनी कविताओं में संस्कृतनिष्ठ समासप्रधान पदावली का प्रयोग किया और दूसरों को भी इस दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की।

द्विवेदीयुग की कविता में खड़ी बोली के दो स्पष्ट स्वरूप दिखाई पड़ते हैं – एक उसका वह स्वरूप है जिसमें बोलचाल के सीधे सरल शब्दों का प्रयोग हुआ है और दूसरा उसका वह रूप है जिसमें संस्कृतनिष्ठ समासप्रधान शब्दावली देखने को मिलती है। महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'हरिऔध जी' की कविताओं में भाषा के इन दोनों रूपों के नमूने एक साथ देखने को मिल जाते हैं –

यदि कोई पीड़ित होता है, उसे देख सब घर रोता है।

देश दशा पर प्यारे भाई-आई कितनी बार रुलाई।

सुरम्यरूपे रसराशिरंजिते,

विचिवर्णाभरणे कहाँ गयी।

अलौकिकानन्द विधायिनी महा,

कवीन्द्र कान्ते कविते अहो कहाँ।

-महावीर प्रसाद द्विवेदी

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।

तन्वंगी तनहासिनी सुरसिका क्रीड़ाकलापुत्तली।।

-हरिऔध

द्विवेदी युगीन कविता की समग्र काव्य चेतना को रूपनारायण पाण्डेय की निम्नलिखित पंक्तियों से भावित किया गया है–

जैन बौद्ध पारसी यहूदी मुसलमान सिख-ईसाई।

कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम सब हैं भाई-भाई।

पुण्यभूमि है, स्वर्णभूमि है, जन्मभूमि है देश यही।

इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया भर में जगह नहीं।।

द्विवेदीयुगीन हिन्दी कविता खड़ी बोली के आधार पर गंभीर भावों से अनुप्राणित है। उसमें मात्र मनोरंजन ही नहीं है, वरन् उसमें गहरा उपदेश समाहित है जो उस युग की अपेक्षा थी। बहुविधा स्वातंत्र्य भावना की दष्टि से, नये–नये विषयों की उद्भावना की दष्टि से, नयी चेतना की व्याख्या की दष्टि से, भाषा–संस्कार की दष्टि से द्विवेदीयुगीन कविता बड़ी विशिष्ट–विशेष है।

9. द्विवेदी युगीन प्रतिनिधि रचनाकार

प्रतिनिधि रचनाकारों में प्रमुख कवि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिली शरण गुप्त, पं. रामचरित उपाध्याय, पं. लोचन प्रसाद पांडेय, राय देवी प्रसाद 'पूर्ण', पं. नाथू राम शर्मा, पं. गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', पं. राम नरेश त्रिपाठी, लाला भगवानदीन 'दीन' पं. रूप नारायण पांडेय, पं. सत्य नारायण 'कविरत्न', वियोगी हरि, अयोध्या सिंह उपाध्याय, गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', सैयद अमीर अली 'मीर', कामता प्रसाद गुरू, बाल मुकुंद गुप्त, श्रीधर पाठक, मुकुटधर पांडेय तथा ठाकुर गोपालशरण सिंह आदि हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

डॉ. नगेंद्र के शब्दों में "इस काल–खंड के पथ–प्रदर्शक, विचारक और सर्वस्वीकृत साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इसका नाम 'द्विवेदी युग' उचित ही है। द्विवेदी इस युग के प्रवर्तक आचार्य हैं।

व्यक्तित्व- महावीर प्रसाद द्विवेदी (सन् 1864 – 1938 ई.) का जन्म ग्राम दौलतपुर जनपद रायबरेली, उत्तर प्रदेश में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा दौलत पुर की पाठशाला में पूरी कर जनपद के स्कूल में प्रवेश लिया। स्कूली शिक्षा के लिए जनपद उन्नाव के रनजीत पुरवा, फतेहपुर तथा उन्नाव के स्कूलों में प्रविष्ट हुए। स्कूली शिक्षा पूरी करके अपने पिता के पास मुंबई चले गए। मिडिल कक्षाओं में वैकल्पिक विषय के रूप में फारसी का अध्ययन किया। मुंबई में इन्होंने बंगला भाषा सीखने हेतु पर्याप्त अभ्यास किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने मुंबई में संस्कृत, गुजराती, मराठी एवं अंग्रेजी का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। प्रारंभ में आजीविका हेतु रेलवे की नौकरी की। नौकरी के साथ–साथ साहित्य सेवा को अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। सेवा मुक्त होकर पूर्ण रूपेण हिंदी भाषा और साहित्य में लग गए मानो इसीलिए सेवा से त्यागपत्र दिया हो। उच्चाधिकारी से कुछ कहासुनी हो जाने के परिणामस्वरूप त्याग पत्र दे दिया था। सन् 1903 ई. में 'सरस्वती' के संपादक नियुक्त हुए। सन् 1920 ई. तक अति परिश्रम एवं लगन से कार्य करके पद की प्रतिष्ठा बढ़ाई। इनके प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन में कवि एवं लेखकों की सेना खड़ी हो गई। खड़ी बोली को स्थिरता प्रदान करने तथा उसका परिष्कार करने का श्रेय इन्हीं को है। ये कवि, लेखक, आलोचक, निबंधकार, अनुवादक एवं संपादक सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। इनके मौलिक एवं अनूदित गद्य–पद्य ग्रंथों की संख्या लगभग 80 है। मौलिक काव्य रचना में रूचि नहीं थी। अनूदित काव्य कृतियां अधिक सरस हैं।

कृतित्वः

काव्य- 'काव्य मंजूषा', 'सुमन', 'कान्यकुब्ज अबला विलाप', 'अयोध्या का विलाप'।

अनूदित - 'कवि कर्त्तव्य', 'ऋतु तरंगिनी', 'कुमारसंभव सार'।

संपादन- सरस्वती साहित्यिक पत्र।

साहित्यिक विशेषताएं- खड़ी बोली का परिष्कार करके उसको स्थिरता प्रदान की। कविता में सहजता, सरलता तथा उपदेशात्मकता के गुण विद्यमान थे। इनके काव्य में दो प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है –' तत्सम प्रधान समस्त भाषा तथा प्रचलित शब्दावलीयुक्त सरल भाषा। पहले ब्रजभाषा में काव्य सजन किया। बाद में ब्रजभाषा एकदम ही छोड़कर खड़ी बोली में काव्य सजन करने लगे। कविताओं के बीच–बीच में सानुप्रास कोमल पदावली का व्यवहार द्विवेदी ने किया है। इस तथ्य पर सदैव बल दिया कि कविता की भाषा बोल चाल की भाषा होनी चाहिए। बोलचाल से उनका अभिप्राय ठेठ या हिंदुस्तानी भाषा नहीं था अपितु गद्य की व्यावहारिक भाषा को बोल–चाल की भाषा मानते थे। परिणामतः उनकी भाषा गद्यवत हो गई। अधिकांश कविताएं इतिवत्तात्मक हैं जिनमें लाक्षणिकता, मूर्तिमत्तता तथा वक्रता का अभाव है। 'यथा', 'सर्वथा' तथा 'तथैव' आदि शब्दों के प्रयोग ने उनकी भाषा को और अधिक गद्य का स्वरूप प्रदान कर दिया।

संस्कृत वत्तों का व्यवहार अधिक किया है। हिंदी के कुछ चलते छंदों में भी उन्होंने बहुत सी कविताएं रची हैं जिनमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग कम किया गया है। अनुवाद में इनको पूर्ण सफलता मिली है। द्विवेदी के प्रभाव एवं प्रोत्साहन ने हिंदी के कई अच्छे कवियों को जन्म दिया।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त

व्यक्तित्व- मैथिलीशरण गुप्त (सन् 1886 – 1964 ई.) का जन्म चिरगांव झांसी में हुआ था। वे द्विवेदी युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे। इनकी आरंभिक रचनाएं कोलकाता से निकलने वाले 'वैश्योपकारक' में प्रकाशित होती थीं। बाद में आचार्य महावीर द्विवेदी से परिचय हो जाने पर 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। द्विवेदी के आदेश, उपदेश तथा स्नेहमय प्रोत्साहन ने गुप्त की काव्य कला को निखार दिया। मैथिलीशरण गुप्त प्रसिद्ध राम भक्त कवि थे। इन्होंने भारतीय जीवन को समग्रता में समझने तथा प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। 'मानस' के पश्चात् हिंदी में रामकाव्य का द्वितीय स्तंभ मैथिलीशरण गुप्त कृत 'साकेत' ही है। इन्होंने दो महाकाव्यों तथा उन्नीस खंड काव्यों का प्रणयन किया है।

कृतित्वः

काव्य- 'रंग में भंग', 'भारत भारती', 'साकेत', 'जयद्रथ वध', 'पंचवटी', 'झंकार', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'जय भारत', 'विष्णु प्रिया'।

अनूदित- 'प्लासी का युद्ध', 'मेघनाथ वध' तथा 'वत्र संहार'।

नाटक- 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास' तथा 'अनाथ'।

साहित्यिक विशेषताएं-

इनका चरित्र–चित्रण कौशल भी उत्कृष्ट प्रबंध कला का प्रमाण है। खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण और विकास में इनका अन्यतम योगदान है। खड़ी बोली को काव्योपयुक्त रूप प्रदान करने वालों में गुप्त अग्रगण्य हैं। आरंभिक रचना 'जयद्रथ वध' में खड़ी बोली का सरस–मधुर एवं प्रांजल रूप मिलता है। ये भारतीय संस्कृति के अनन्य प्रस्तोता थे। सांस्कृतिक परंपराओं में पूर्ण आस्था रखने वाले गुप्त ने कभी युग धर्म की उपेक्षा नहीं की है। भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता होने के साथ साथ ये स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रीय कवि भी थे। इनका काव्य राष्ट्रीय भावना से भरपूर है।

पंडित रामचरित उपाध्याय

व्यक्तित्व- संस्कृत के अच्छे ज्ञाता हैं। खड़ी बोली कविता से आकर्षित हुए। फुटकर रचनाएं की। रामचरित उपाध्याय (सन् 1872–1938 ई.) गाजीपुर के रहने वाले थे। इनकी आरंभिक शिक्षा संस्कृत में हुई। बाद में ब्रजभाषा और खड़ी बोली पर भी अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया। पहले ये प्राचीन विषयों पर ही काव्य सजन करते थे किन्तु आचार्य द्विवेदी के संपर्क में आने पर खड़ी बोली तथा नवीन विषयों को अपनाया।

कृतित्व- 'रामचरित चिंतामणि' – प्रबंध काव्य सूक्ति 'मुक्तावली' तथा 'राष्ट्रभारती', 'देवदूत', 'देवसभा', 'विचित्र विवाह' आदि काव्य।

साहित्यिक विशेषताएं- विविध छंदों का प्रयोग प्रबंध काव्य में किया है। भाषा की सफाई तथा वाग्वैदग्ध्य है।

पंडित लोचन प्रसाद पांडेय

व्यक्तित्व- द्विवेदी युगीन कवियों में लोचन प्रसाद पांडेय (1886–1959 ई.) को विशेष प्रसिद्धि मिली थी। इनका जन्म ग्राम बालापुर जनपद – बिलासपुर (मध्य प्रदेश) में हुआ था। हिंदी, उड़िया, संस्कृत तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं के ज्ञाता थे। साहित्य सेवा के लिए 'काव्य विनोद' तथा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि मिली थी।

कृतित्व- 'प्रवासी', 'मेवाड़ गाथा', 'महानदी' तथा 'पद्य पुष्पांजलि'।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

व्यक्तित्व- राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' (सन् 1868–1915 ई.) का जन्म जबलपुर में हुआ था। वहीं पर बी.ए. एल.एल.बी. तक की शिक्षा प्राप्त कर कुछ दिनों तक वकालत की और बाद में कानपुर चले गए। वकालत के साथ–साथ ये सार्वजनिक कार्यों में अति उत्साह के साथ सम्मिलित होते थे। ये संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। वेदांत में विशेष रूचि थी। व्यावसायिक तथा सामाजिक क्रियाकलापों की व्यस्तता में रहते हुए भी साहित्याध्ययन एवं प्रणयन में सदैव दत्त–चित्त थे।

कृतित्व-

काव्य– 'स्वदेशी कुंडल' – (देशभक्ति पूर्ण 52 कुंडलियों का संग्रह), 'मत्युंजय', 'राम–रावण विरोध', तथा 'वसंत–वियोग' संग्रह।

अनूदित- 'धाराधर धावन' (कालिदास के मेघदूत का अनुवाद)।

साहित्यिक विशेषता- काव्य में उपदेशात्मकता विद्यमान है–

चींटी, मक्खी शहद की, सभी खोजकर अन्न।
करते हैं लघु जन्तु तक, निज गह को सम्पन्न।।
निज गह को सम्पन्न करो, स्वच्छंद मनुष्यों।
तजो तजो आलस्य अरे मतिमंद मनुष्यों।।
चेत न अब तक हुआ, मुसीबत इतनी चक्खी;
भारत की संतान! बनै हो चींटी, मक्खी!

पंडित नाथूराम शर्मा 'शंकर'

व्यक्तित्व- पंडित नाथूराम शर्मा 'शंकर' (सन् 1859–1932 ई.) का जन्म हरदुआ गंज जनपद अलीगढ़ में हुआ था। ये हिंदी, उर्दू, फारसी तथा संस्कृत भाषाओं के ज्ञाता थे। शंकर आरंभ से ही साहित्यानुरागी थे। 13 वर्ष की छोटी सी आयु में ही इन्होंने अपने एक साथी पर एक दोहा लिखा था। कानपुर में भारतेंदुमंडल के प्रसिद्ध कवि प्रतापनारायण मिश्र के संपर्क में आते ही 'ब्राह्मण' नामक पत्रिका में इनकी रचनाएं प्रकाशित होने लगीं। बाद में इनको आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' के मुख्य कवियों में स्थान मिल गया। प्रारंभ में ये ब्रज भाषा के कवि रहे किंतु शीघ्र ही खड़ी बोली की ओर झुक गए। उर्दू में भी काव्य सजन का अच्छा कार्य कर लेते थे। शंकर पर आर्य समाज तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलनों का गहरा प्रभाव पड़ा था। ये 'कविता–कामिनी कांत', 'भारतेंदु प्रज्ञेंदु' तथा 'साहित्य सुधाकर' आदि उपाधियों से अलंकृत थे।

कृतित्व- 'अनुराग रत्न', 'शंकर सरोज', 'गर्भरंडा–रहस्य' (विधवाओं की बुरी स्थिति, तथा देव मंदिरों के अनाचार से संबंधित प्रबंध काव्य) तथा 'शंकर सर्वस्व'।

साहित्यिक विशेषताएं- इनके काव्य में सभी प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है। अतिशयोक्तिपूर्ण कविता लिखते थे। इनकी अतिशयोक्तियां आकाश–पाताल को एक कर देती थीं। समस्यापूर्ति में अति कुशल तथा सिद्धहस्त थे। छंद शास्त्र के मर्मज्ञ थे। रीतिकालीन पद्धति में इन्होंनें श्रंगारमयी रचनाएं भी कीं। सामाजिक कुरीतियां, बाह्याडंबरों, अंधविश्वासों तथा बाल–विवाह आदि पर करारा व्यंग्य किया है। देश–प्रेम, स्वदेशी प्रयोग, समाज–सुधार, हिंदी अनुराग, विधवा–विडंबना तथा अछूतों का दारुण दुख आदि इनकी कविता के प्रमुख विषय थे। भाषा मनोरंजक है।

पंडित गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'

व्यक्तित्व- कविवर गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' (सन् 1883–1972 ई.) का जन्म ग्राम हड़हा जनपद उन्नाव में हुआ था। उर्दू के अधिकारी विद्वान होने के फलस्वरूप ये हिंदी–उर्दू दोनों भाषाओं में समान रूप से काव्य सजन करते थे। प्राचीन एवं नवीन दोनों प्रकार की शैलियों में अभिरूचि थी। श्रंगार आदि परंपरागत विषयों पर काव्य सजन 'सनेही' उपनाम से तथा राष्ट्रीय भावनाओं संबंधित कविता का सजन 'त्रिशूल' उपनाम से किया है।

कृतित्व-

काव्य- 'कृषक–क्रंदन', 'प्रेम पचीसी', 'राष्ट्रीय वीणा', 'त्रिशूल तरंग', 'करुणा कादंबिनी' आदि।

काव्य पत्रिका- 'सुकवि' नामक काव्य पत्रिका के संपादक थे।

साहित्यिक विशेषताएं- खड़ी बोली में कवित्व और सवैया छंद प्रयोग में इन्हें सिद्ध–हस्तता प्राप्त थी। उर्दू बहरों के कुशल प्रयोगकर्ता रहे हैं। सामयिक आंदोलनों से संबंधित अनेक प्रयाण एवं बलिदान गीतों की रचना की। परतंत्र भारत की दुर्दशा,

आर्थिक वैषम्य, छुआछूत आदि विषयों पर लिखी गई कविताएं मार्मिक एवं प्रभावकारी हैं। कवि सम्मेलनों में अति उत्साह से कविता पाठ करते थे। वाग्वैदग्ध्य, उक्ति वैचित्र्य, ऊहापोह तथा शब्द का चमत्कारिक प्रयोग इनके काव्य की विशेषता थी। भावुक एवं सरस हृदय कवि 'सनेही' की कविताओं का प्रकाशन 'रसिकमित्र', 'काव्य सुधानिधि' तथा 'साहित्य सरोवर' आदि पत्रिकाओं में होता था। खड़ी बोली में काव्य सजन में उनको पूर्ण सफलता मिली।

पंडित राम नरेश त्रिपाठी

व्यक्तित्व- राम नरेश त्रिपाठी (सन् 1889 – 1962 ई.द्ध का जन्म ग्राम कोईरी पुर, जनपद जौनपुर में हुआ था। सुलतानपुर रेलवे स्टेशन के पश्चिम में ही आवास था। रेलवे के द्वारा भूमि का अधिग्रहण कर लिए जाने पर कोईरी पुर पैत्रिक स्थान पर चले गए। रुद्रपुर, सुलतानपुर में स्थित प्रेस अब भी चल रहा है जिसकी देखभाल इनके सुपुत्र कर रहे हैं। इनकी प्रारंभिक शिक्षा ग्राम की पाठशाला में ही हुई। अंग्रेजी पढ़ने हेतु जौनपुर के स्कूल में प्रवेश ले लिया किंतु अध्ययन क्रम नौंवी कक्षा से आगे नहीं चल सका। कविता के प्रति बचपन से ही रूचि थी। ग्राम के प्रधानाचार्य ब्रजभाषा में कविता लिखते थे।

कृतित्व - 'ग्राम्यगीत', (संग्रह), 'मिलन', 'पथिक', 'मानसी' तथा 'स्वप्न', 'मिलन', 'पथिक', 'स्वप्न' काल्पनिक कथाश्रित प्रेमाख्यानक खंड काव्य हैं। मानसी मुक्त कविता संग्रह है।

संपादन - 'कविता कौमुदी' (आठ भाग)

साहित्यिक विशेषताएं - मुक्त कविताओं में देश भक्ति, प्रकृति चित्रण तथा नीति निरूपण की प्रधानता है। खंड काव्यों में उपदेशात्मकता प्रधान है। व्यक्तिगत सुख तथा स्वार्थ को त्याग कर देश को सर्वस्व समर्पित करने की प्रेरणा दी गई है। खंड काव्यों में प्रकृति के मनोरम चित्र भी उपलब्ध हैं। कवि होने के साथ–साथ वे सहृदय संपादक भी थे। 'कविता कौमुदी' के आठ भागों में इन्होंने अति योग्यता तथा कुशलता से हिंदी, उर्दू, बंगला तथा संस्कृत की कविताओं का संकलन एवं संपादन किया है। लोकगीतों के संग्रह हेतु इन्हें यायावर बनना पड़ा। संग्रह में इनकी लगन, कष्ट साध्यता एवं श्रमशीलता परिलक्षित होती है।

लाला भगवानदीन 'दीन'

व्यक्तित्व - लाला भगवानदीन 'दीन' (सन् 1866–1930 ई.) का जन्म ग्राम बरबर जनपद फतहपुर में हुआ था। काव्य शास्त्र के पंडित थे। हिंदी उर्दू तथा फारसी के ज्ञाता थे।

कृतित्वः

काव्य- 'वीर क्षत्राणी', 'वीर बालक', 'वीर पंचरत्न' तथा 'नवीन बीन' अन्य कविता संग्रह हैं। 'नदीमें दीन' फुटकल काव्य संग्रह है।

संपादन- लक्ष्मी के संपादक।

साहित्यिक विशेषताएं- युवावस्था में पुराने ढंग की कविताएं लिखीं। संपादक बनकर खड़ी बोली की ओर मुंह मोड़ा तथा फड़कती कविताएं लिखने लगे किंतु तर्ज मुंशियाना ही बनाए रखा। उर्दू की बहरों में अरबी–फारसी के शब्दों का प्रयोग करते थे। खड़ी बोली की कविताएं वीर रस से संबंधित होने के फलस्वरूप जोशीले भाषण का रूप धारण कर लेती हैं। वीर काव्यों में पौराणिक एवं ऐतिहासिक बहादुरों के चरित्र–चित्रण में ओजस्वी भाषा का प्रयोग किया है। प्राचीन काव्यों की टीकाएं लिखकर हिंदी साहित्य का अत्यधिक उपकार किया है। पुराने ढंग की कविताओं में उक्ति वैचित्र्य दष्टिगोचर होता है। लेखन में उर्दू की तर्ज को नहीं छोड़ा है।

पंडित रूपनारायण पांडेय

व्यक्तित्व - रूपनारायण पांडेय का जन्म सन् 1884 ई. में लखनऊ में हुआ। प्रारंभ में ब्रजभाषा में कविता करते थे किंतु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभावस्वरूप खड़ी बोउी में काव्य सजन करने लगे।

कृतित्वः

काव्य- 'पराग' तथा 'वन–वैभव' मौलिक कविताओं के संकलन हैं।

संपादन- 'नागरी–प्रचारकं', 'इंदु' तथा 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं का सफलतापूर्वक संपादन किया।

साहित्यिक विशेषताएं- इनका काव्य अति सरल एवं भावुकतामय है। इनकी सहानुभूति पशु पक्षियों तक पहु जाती है। संस्कृत तथा बंगला – काव्यों का अनुवाद कार्य भी किया।

पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न'

व्यक्तित्व- पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न' (सन् 1880–1918 ई.) का जन्म ग्राम सराय, जनपद अलीगढ़ में हुआ था। बाल्यावस्था में ही माता–पिता का स्वर्गवास हो गया। ताजगंज, आगरा के बाबा रघुबरदास ने इनको पाला। सन् 1910 में सेंट जौंस कॉलेज आगरा की बी.ए. परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए। क्रमिक शिक्षा का अंत हो गया। छात्र काल में काव्य सजन करने लगे थे। आरंभ में विनय के पद तथा समस्यापूर्ति लिखते थे। पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न' खड़ी बोली की खड़खड़ाहट के मध्य अपना मधुर आलाप सुनाते रहे और लोग अत्यधिक ध्यान एवं रूचि से उनको सुनते रहे। ये रसिक जीव थे। ब्रज की एकांत भूमि में अकेले बैठे ब्रज की सरस पदावली की रस मग्नता में खोए रहते थे। नंददास आदि कवियों की प्रणाली में पदों की रचना की। वेशभूषा सरल थी। काव्यमय जीवन था।

कृतित्व- 'प्रेमकली' एवं 'भ्रमर दूत' कविताएं 'हृदय तरंग', (संग्रह)

अनूदित- होरेशस का अनुवाद।

साहित्यिक विशेषताएं: इनकी रचनाओं में देश की नई पुकार भी कहीं–कहीं सुनाई पड़ती है। ब्रज भाषा के सवैया पढ़ने का इनका ढंग ऐसा आकर्षक था कि श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाते थे। इनके कुछ पदों में गहरी खिन्नता दष्टिगोचर होती है। नारी–शिक्षा के पक्षधर थे। उदाहरण द्रष्टव्य है–

नारी-शिक्षा अनादरत जे लोग अनारी।
ते स्वदेश-अवनति-प्रचंड-पातक-अधिकारी।।
निरखि हाल मेरो प्रथम लेहु समुझि सब कोइ।
विद्या बल लहि मति परम अबला सबला होइ।।

वियोगी हरि

वियोगी हरि ब्रजभूमि, ब्रजभाषा तथा ब्रजपति के अनन्य उपासक हैं। उन्होंने अधिकतर पुराने कृष्णोपासक भक्त कवियों की प्रणाली पर अनेक रसमय पदों की सजना की है। कभी–कभी अनन्य प्रेमधारा से हटकर देश की दशा पर लेखनी चला दी है।

कृतित्व- 'वीर सतसई'

साहित्यिक विशेषताएं- अधिकांश भक्तिपरक एवं प्रेम प्रधान रचनाएं की। देशभक्ति का वर्णन भी किया है। 'वीर सतसई' में प्रसिद्ध बहादुरों की प्रशंसाएं हैं जो दोहा छंद में लिखी गई हैं। इनके पदों को पढ़कर या सुनकर रसिक भक्त बलिहारी जाते हैं।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

व्यक्तित्व- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरि औध' (सन् 1865–1947 ई.) का जन्म ग्राम निजामाबाद जनपद आजमगढ़ में हुआ था। ये द्विवेदी युग की महान विभूति तथा खड़ी बोली को काव्य भाषा पद पर प्रतिष्ठित करने वाले महान कवि थे। हिन्दुस्तानी मिडिल परीक्षा पास करने के पश्चात क्वींस कॉलेज वाराणसी में अंग्रेजी पढ़ने लगे। किंतु अस्वस्थ होने के कारण कॉलेज छोड़ दिया तथा घर पर ही संस्कृत, अंग्रेजी, और उर्दू पढ़ने लगे। ये सर्वप्रथम – निजामाबाद के मिडिल स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए फिर सरकारी कानूनगों पद पर नियुक्त हो गए। वहां से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी में हिंदी के अवैतनिक प्राध्यापक हो गए। वद्धावस्था के कारण विश्वविद्यालय की सेवा छोड़कर घर पर रहकर ही साहित्य साधना करने लगे।

कृतित्व

काव्य- 'प्रिय प्रवास', 'पद्य प्रसून', 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदें', 'वैदेही वनवास', 'पद्–प्रमोद', 'पारिजात', 'बोल–चाल', 'ऋतु मुकुर', 'काव्योपवन', 'प्रेम पुष्पोपहार', 'प्रेम प्रपंच', 'प्रेमांबु प्रस्रवण', 'प्रेमांबु–वारिधि' आदि।

रीतिग्रंथ- 'रस कलस'।

गद्य- 'ठेठ हिंदी का ठाट', 'अधखिला फूल', 'प्रेमकांता', 'वेनिस का बांका', एवं 'हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास'।

साहित्यिक विशेषताएं-

हरिऔध द्विवेदी युग के ख्यातिप्राप्त कवि, उपन्यासकार, आलोचक, इतिहासकार तथा भाषा विज्ञान वेत्ता हैं। इन्होंने पुरातन संस्कृति का पुनरुद्धार, देश के युवकों का औचित्यपूर्ण पथ प्रदर्शन तथा कविता में उपदेशात्मक रूप का ग्रहण आदि को आरंभ से जीवन का उद्देश्य बनाया है। साहित्य सेवा के प्रति समर्पित। 'प्रिय प्रवास' खड़ी बोली में लिखा गया हिंदी का प्रथम महाकाव्य है। जिसमें राधा कृष्ण को सामान्य नायिका–नायक के स्तर से उठाकर विश्व सेवी तथा विश्व प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। 'रस कलस' में रस–स्वरूप, प्रकार का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। नायिका भेद वर्णन तथा ऋतु वर्णन में मौलिक उद्भावनाएं की हैं। पति प्रेमिका, परिवार प्रेमिका, लोक सेविका आदि प्रमुख हैं। 'वैदेही वनवास' करुण सरलता का अद्वितीय प्रबंध काव्य है।

काव्य में सरलता, प्रांजलता एवं सौंदर्य की प्रधानता है। एक ओर निरलंकार सौंदर्य है तो दूसरी ओर संस्कृत की आलंकारिक समस्त पदावली की छटा विद्यमान है। कहीं बोलचाल के शब्दों तथा मुहावरों की झड़ी लगी है तो कहीं इनका नामोनिशान तक नहीं है। भाषा की कर्कशता में सरसता का संचार किया है। खड़ी बोली को काव्योपयुक्त भाषा का रूप दिया है। दोहा, कविता, सवैया आदि के साथ साथ संस्कृत वर्णिक छंदों का समावेश किया है। भाषा छंदानुसारिनी एवं भावानुसारिणी है। इन्हें 'कवि सम्राट' के रूप में जाना जाता है। दो बाद हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के वार्षिक अधिवेशन में सभापति पद पर सम्मानित किया है। 'प्रिय प्रवास' पर हिंदी का सर्वोत्तम पुरस्कार – 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया गया।

काव्य शैली अत्यन्त मार्मिक एवं भावपूर्ण है। संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग है। प्रकृति चित्रण अति सजीव तथा परिस्थितियों से प्रभावित है। अयोध्या सिंह उपाध्याय कठिन से कठिन तथा सरल से सरल भाषा प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। 'प्रिय प्रवास' संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली प्रधान भाषा का प्रतिनिधित्व करता है तो 'ठेठ हिंदी का ठाठ' ठेठ हिंदी का। आवश्यकतानुसार अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का सुंदर समायोजन किया गया है। करुण तथा शांत अंगी रूप तथा शेष सभी रस अंग रूप में विद्यमान हैं।

हरिऔध सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी, प्रबुद्ध साहित्यकार हैं।

गिरिधर शर्मा - 'नवरत्न'

व्यक्तित्व- गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' (सन् 1881–1961 ई.) का जन्म झालरापाटन, जयपुर में हुआ था। इनकी अधिकांश शिक्षा काशी में हुई। 'सरस्वती' तथा अन्य पत्रिकाओं में इनकी कविताएं प्रकाशित होती रहती थीं।

कृतित्व- 'मातवंदना' – मौलिक काव्य।

साहित्यिक विशेषताएं - इनकी कविताओं का मुख्य विषय स्वदेश–प्रेम था। हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत के भी कवि थे। संस्कृत बंगला से हिंदी में पद्यानुवाद भी किए।

सैयद अमीर अली 'मीर'

व्यक्तित्व- सैयद अमीर अली 'मीर' (सन् 1873–1937 ई.) का जन्म सागर, मध्य प्रदेश में हुआ था। शैशव में ही पिता का स्वर्गवास हो गया जिसके परिणामस्वरूप चाचा के पास देवरी ग्राम सागर में रहे।

कृतित्व- 'उलाहना पंचक' तथा 'अन्योक्ति शतक' मुख्य काव्य कृतियां हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश समस्यापूर्ति के द्वारा हुआ। इन्होंने देवरी में 'मीर मंडल' कवि समाज की स्थापना की। हिंदी प्रेमी एवं राष्ट्रभाषा समर्थक थे। 'रामचरितमानस' के प्रति विशेष लगाव था। ईश्वर भक्ति और देश प्रेम इनकी कविता का मुख्य विषय था।

कामता प्रसाद गुरु

व्यक्तित्व- कामता प्रसाद गुरु का जन्म सागर, मध्य प्रदेश में हुआ।

कृतित्वः

पद्य ग्रंथ- 'भौमासुर वध' तथा 'विनय पचासा' ब्रजभाषा में लिखे गये पद्य ग्रंथ हैं।

कविता संग्रह- 'पद्य पुष्पावली'।

कविताएं- 'शिवाजी' तथा 'दासी रानी'।

व्याकरण ग्रंथ- 'हिंदी व्याकरण।

साहित्यिक विशेषताएं- कई भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी कविताएं सरल एवं भावपूर्ण हैं। ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों में रचनाएं कीं। 'शिवाजी' एवं 'दासी रानी' कविताओं को अच्छी ख्याति मिली'। गुरु की ख्याति का मुख्य श्रेय उनके 'हिंदी व्याकरण' को है जिसे वर्तमान समय में भी हिंदी का आदर्श व्याकरण स्वीकारा जाता है।

बाल मुकुंद गुप्त

व्यक्तित्व- बाल मुकुंद गुप्त (सन् 1865–1907 ई.) का जन्म ग्राम गुड़ियाना, जनपद रोहतक, हरियाणा प्रदेश में हुआ था। ये भारतेंदुयुग एवं द्विवेदीयुग को जोड़ने वाली कड़ी हैं।

कृतित्व- 'स्फुट कविता', इनकी कविताओं का संकलन है।

साहित्यिक विशेषताएं- ये अच्छे कवि, अनुवादक और अपने समय के कुशल संपादक थे। हिंदी प्रेम इनकी कविताओं का विषय रहा है। ये अच्छे जीवट एवं हास्य–व्यंग्य प्रधान व्यक्ति थे। समसामयिक साहित्यकारों से इनकी नोक–झोंक चलती रहती थी।

श्रीधर पाठक

व्यक्तित्व- श्रीधर पाठक (सन् 1859–1928 ई.) का जन्म ग्राम जोंधारी जनपद आगरा में हुआ था। हिंदी के अलावा अंग्रेजी एवं संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। आजीविका चलाने हेतु पाठक ने सरकारी सेवा कार्य अपनाया था। सेवा काल में ही इन्हें सरकारी कार्य से कश्मीर एवं नैनीताल भी जाना पड़ा था जहां इन्हें प्राकृतिक छटा देखने का भव्य अवसर मिला था।

कृतित्व

काव्य- 'वनाष्टक', 'काश्मीर सुषमा', 'देहरादून' तथा 'भारत गीत'।

कविताएं- 'भारतोत्थान', 'भारत–प्रशंसा', 'जार्ज–प्रशंसा' तथा 'बाल–विधवा' आदि।

अनुवाद- कालिदास कृत 'ऋतुसंहार' – गोल्ड स्मिथ कृत 'हरमिट' – 'एकांतवासी योगी', डेजर्टेड 'विलेज'–'उजाड़ गांव', तथा 'द ट्रैवेलर' – 'श्रांत पथिक' नाम से काव्यानुवाद किया।

साहित्यिक विशेषताएं- ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में अच्छी कविताएं सजी। ब्रजभाषा का स्वरूप सहज एवं बाह्याडंबर विहीन है। परंपरागत रूढ़ शब्दावली का प्रयोग इनकी कविताओं में नहीं हुआ है। खड़ी बोली के श्रीधर प्रथम समर्थ कवि हैं। खड़ी बोली में भी उन्होंने कहीं–कहीं ब्रजभाषा के क्रियापदों का प्रयोग किया है किन्तु यह कम महत्व का विषय नहीं है कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'सरस्वती' का संपादकत्व संभालने से पूर्व ही इन्होंने खड़ी बोली में कविताएं लिखकर अपनी स्वच्छंद वत्ति का परिचय दिया। इनकी कविता के मुख्य विषय देश प्रेम, समाज सुधार तथा प्रकृति चित्रण हैं। देश का गौरवगान इन्होंने अति मनोयोग से किया किन्तु भारतेंदु युगीन कवियों की तरह श्रीधर पाठक में भी देशभक्ति के साथ साथ राजभक्ति भी मिलती है। एक ओर इन्होंने 'भारतोत्थान' तथा 'भारत प्रशंसा' आदि जैसी देशभक्तिपूर्ण कविताएं लिखीं तो दूसरी ओर 'जार्ज

वंदना' जैसी कविताओं में राजभक्ति का भी प्रदर्शन किया गया है। समाज सुधार की ओर इनका विशेष ध्यान रहा है। विधवाओं की स्थिति तथा उनकी व्यथा का कारुणिक चित्र उपस्थित किया गया है। इनको सर्वाधिक सफलता प्रकृति चित्रण में मिली है। रूढ़ि का परित्याग करके प्रकृति का स्वतंत्र रूप से मनोरंजक स्वरूप प्रस्तुत किया है। इनके मन में मातभाषा की उन्नति की प्रबल कामना है। यथा–

निज भाषा बोलहु लिखहु पढ़हु गुनहु सब लोग।
करहु सकल विषयन विषै निज भाषा उपजोग।।

ठाकुर गोपाल शरण सिंह

व्यक्तित्व- ठाकुर गोपाल शरण सिंह (सन् 1891–1960 ई.) नई गढ़ी, रीवां में जन्मे थे।

कृतित्वः

काव्य- 'माधवी', 'मानवी', 'संचिता' तथा 'ज्योतिष्मती' इनकी प्रमुख काव्यकृतियां हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- इन्होंने खड़ी बोली को परिमार्जित करने तथा उसे माधुर्यपूर्ण रूप प्रदान करने में विशेष योगदान किया। ब्रजभाषा के समान ही खड़ी बोली में सरस–मधुर कवित्त–सवैया आदि का सजन किया। इनके काव्य में जीवन की विविध दशाओं के चित्र दष्टिगोचर होते हैं।

मुकुटधर पांडेय

व्यक्तित्व- लोचन प्रसाद पांडेय के छोटे भाई मुकुटधर पांडेय का जन्म सन् 1895 ई. में हुआ।

कृतित्व- 'पूजा–फूल' तथा 'कानन–कुसुम' काव्य संकलन हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- ये अच्छे कवि थे। प्रकृति की उपासना करने वाले थे। इनके काव्य में भावात्मकता आंतरिक संवेदना तथा रहस्यात्मक अनुभूति दष्टिगोचर होती है। इन्हें द्विवेदी युग का सर्वश्रेष्ठ प्रगीतकार माना गया है। इनका काव्य छायावादाभास देता है।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त द्विवेदी युग के सहयोगियों में लोकमणि, सत्य शरण रतूड़ी, मन्नन द्विवेदी, पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी, शिव कुमार त्रिपाठी, पार्वती देवी, तोष कुमारी आदि भी उल्लेखनीय हैं जिन्होंने तत्कालीन साहित्य की श्रीवद्धि की है। द्विवेदी युगीन काव्य में राष्ट्रीय भावना एवं सांस्कृतिक चेतना की प्रधानता है। यह राष्ट्रीयता सांप्रदायिकता तथा प्रांतीयता से बहुत ऊपर उदार एवं व्यापक राष्ट्रीय स्वरूप है। द्विवेदी युगीन कविताओं ने संकीर्णता की भावना समाप्त की। वैमनस्य को दूर करने का प्रयत्न किया। बलिदान और स्वार्थ त्याग की प्रेरणा दी। राष्ट्रीय आंदोलन और शक्तिशाली एवं बलवान हो गया। इस सब का श्रेय द्विवेदी युगीन कविता को है। इस युग के कवियों ने जीवन की अति मार्मिक एवं रचनात्मक आलोचना की। हितकारी तत्वों को प्रोत्साहित करके अहितकारी तत्वों का निराकरण किया। सामाजिक कुरीतियों, अंध विश्वासों, रूढ़ियों, बाह्याडंबरों, आदि को अपना निशाना बनाया तथा परंपरावादी उपयोगी तत्वों, भारतीय संस्कृति का पूर्ण समर्थन किया।

सांस्कृतिक शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया। नवीन मानवतावादी दष्टिकोण की स्थापना की। सामान्य मानव को गौरव तथा प्रतिष्ठा दिलाने का प्रथम बार प्रयास किया गया। देश भक्ति, कृषक मजदूर, प्रकृति, देश की कारुणिक स्थिति को कविता का विषय बनाया गया। काव्य भूमि का विस्तार हुआ। महान कथाओं तथा महान चरित्रों के साथ–साथ अनजाने, छोटे–छोटे नगण्य, अपरिचित प्रसंगों को काव्य का विषय बनाया गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अथक प्रयासों तथा सफल दिशा निर्देशन के परिणामस्वरूप गद्य–पद्य की भाषा का एकीकरण इसी युग में हुआ। ब्रजभाषा के स्थान पर बोलचाल की भाषा अर्थात् व्यवहार में आने वाली खड़ी बोली का स्वरूप अनगढ़, शुष्क तथा अस्थिर था किंतु शनैः शनैः खड़ी बोली सुगढ़, मधुर एवं स्थिर रूप ग्रहण करती चली गई। खड़ी बोली का परिमार्जन एवं संस्कार हुआ। वह सुष्ठु साहित्यिक भाषा बन गई। द्विवेदी युग के प्रारंभ में तुतलाने वाली खड़ी बोली इसके अंत अर्थात् लगभग बीस वर्षों में मानक, साहित्यिक, सर्व सुलभ भाषा के रूप में उपस्थित हो गई।

द्विवेदी युगीन कवियों में छंद का वैविध्य दष्टिगोचर होता है। संस्कृत, हिंदी तथा उर्दू के छंदों का प्रयोग किया गया। भाव, भाषा, छंद में ही नहीं अपितु काव्य रूप तथा काव्य विषय में भी वैविध्य आया। महाकाव्य, खंड काव्य, लंबी कविता, कविता, मुक्तक, प्रबंध मुक्तक आदि अनेक काव्य विधाओं में सजन को सफलता मिली। प्रारंभ में द्विवेदी युगीन काव्य में जो नीरसता, इतिवत्तात्मकता, तथा उपदेशात्मकता थी वह शनैः शनैः समाप्त होती गई। इसका स्थान सरसता, मधुरता तथा भावपूर्णता ने ग्रहण किया।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदी युगीन काव्य सांस्कृतिक पुनरुत्थान, उदार राष्ट्रीयता जागरण, सुधारवादी एवं उच्चादर्शों का काव्य है, जिसमें विषयगत वैविध्य एवं व्यापकता तथा आयाम विस्तार मिलता है। सभी काव्य रूपों का सफल प्रयोग किया गया है। खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण तथा विकास का एक मात्र श्रेय इसी युग को है। द्विवेदी युग में छंद का जो वैविध्य मिलता है वह अन्य युगों में दुर्लभ है। युगीन काव्य में अपेक्षित गहनता का अभाव है। वास्तविक कलात्मकता की समद्धि नहीं हो पाई है। किंतु राष्ट्रीय उद्‌बोधन, जागरण, सुधार, सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अद्‌भुत सामर्थ्य, खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण एवं संस्कार के परिणामस्वरूप हिंदी काव्य के इतिहास में द्विवेदी युग का अत्यधिक महत्व है।

प्रारंभ या समाप्ति एक निश्चित तिथि को नहीं हो जाता है अपितु उस प्रवत्ति का बीजवपन, विकास की एक सतत परिवेश पर आधारित प्रक्रिया है जो समयानुकूल अपनी अस्मिता प्रकट करती है अथवा उसकी अस्मिता का पराभव होने लगता है। इसी के आधार पर निश्चित तिथि का निर्धारण किया जाता है। विद्वानों ने अलग–अलग काल सीमाएं निश्चित की हैं।

प्रवत्ति का अर्थ परंपरा या परिपाटी से है। जब परंपरा में मोड़ आ जाता है तो उसे परिवर्तन को प्रवत्ति की नवीनता की संज्ञा दी जाती है। सन् 1918 ई. से पूर्व साहित्य में एक नए मोड़ का प्रारंभ हो गया था जो पुरानी परंपरा या काव्य–पद्धति के स्थान पर नवीन परंपरा या पद्धति के निर्माण का द्योतन करता था। यह विशिष्ट काव्य पद्धति सन् 1938 ई. तक चलती रही। सन् 1936 ई. में 'प्रांतीय कांग्रेस मंडलों' की स्थापना हुई किंतु अंग्रेजी सरकार की घोषणा के पश्चात् सन् 1939 ई. में मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया। इससे स्पष्ट है कि सन् 1936–1939 ई. का समय आधुनिक भारतीय इतिहास में एक नए मोड़ का सूचक है। कांग्रेस में मंत्रिमंडलों में सम्मिलित होने की विभिन्न प्रक्रियाएं हुईं जो जीवन में नवीन चेतना के आने के प्रतीक स्वरूप हैं। तत्कालीन छायावादी कवि स्वयं भी अपने छायावादी भाव बोध को लांघने का प्रयत्न कर रहे थे। जिसका प्रमाण पंत के 'युगांत' तथा निराला की 'अनामिका' में प्रकाशित अनेक कविताएं हैं जो छायावादी संसार को पार कर एक नए मोड़ पर आ खड़ी ही नहीं हुई थी अपितु ठोस यथार्थ के निकट आने के लिए प्रयत्नरत थीं। पंत का संकलन तथा उसका नामकरण स्पष्ट कर रहा है कि एक युग का अंत हो गया। 'युगांत' उनकी कविता में छायावाद से प्रगतिवाद की ओर जाने का संकेत देता है। छायावादी कवि पंत सन् 1938 ई. तक प्रगतिवाद की ओर अग्रसर हो चुका था। इसलिए सन् 1938 ई. को छायावाद का अंत माना जाना उचित है। यद्यपि कुछ विद्वान दशमलव प्रणाली का आधार लेते हुए बीसवीं सदी के चौथे दशक अर्थात् सन् 1940 ई. तक छायावाद को मानना चाहते हैं जो उचित नहीं प्रतीत होता है क्योंकि काव्य प्रणाली में 1940 ई. से पूर्व ही निश्चित मोड़ आ चुका था। समाज और राजनीति का घनिष्ठ एवं अन्योन्याश्रय संबंध है। तत्कालीन राजनीतिक परिवर्तन एवं साहित्यिक परिवर्तन में घनिष्ठ संबंध है जिसने परिवर्तन के परिणामस्वरूप समाज एवं साहित्य को नवीन सामूहिक चेतना प्रदान की। सन् 1938 के आस–पास छायावादी काव्यधारा की क्षीणता एवं नवीन काव्यधारा का आगम उसी चेतना का परिणाम है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि छायावाद का प्रारंभ सन् 1918 ई. में हो चुका था। लगभग बीस वर्षों तक अर्थात सन् 1938 ई. तक छायावादी काव्य प्रणाली चलती रही।

11. छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवत्तियाँ

हिंदी साहित्य की आधुनिक धाराओं में छायावाद एक प्रमुख धारा है। इस काव्यधारा में अनेक महान कवियों का महत्वपूर्ण योगदान है। छायावाद साहित्य के कला और भाव क्षेत्र में एक अनूठे आन्दोलन के रूप में सामने आया है। इसमें आधुनिक औद्योगिकता से प्रेरित अनूठा व्यक्तिवाद दिखाई देता है। इस काव्यधारा में जीवन दर्शन और सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का सुंदर आंकलन (विवेचन) किया गया है। यह काव्यधारा स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा से कुछ न कुछ प्रभावित अवश्य है। इस पर अंग्रेजी साहित्य का भी कुछ न कुछ प्रभाव दिखाई देता है।

छाया शब्द विशेष संदर्भ से लिया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार बंगला साहित्य में छाया शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ। जयशंकर प्रसाद के मन्तव्य से छाया और छायावाद का अर्थ स्पष्ट होता है–

"मोती के भीतर छाया जैसी तरलता होती है वैसी ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है.....

छाया भारतीय दष्टि से अनुभूति व अभिव्यक्ति की भंगिमा पर निर्भर करती है।

.....अपने भीतर से पानी की तरह अन्तःस्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया..... कान्तिमय होती है।"

परिभाषा- विभिन्न विद्वानों ने इस प्रमुख काव्यधारा को विभिन्न दष्टिकोणों से परिभाषित किया है। जिसमें कुछ इस प्रकार हैं–

1. प्रसिद्ध समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।"
2. डॉ. रामकुमार वर्मा ने रहस्य के संदर्भ से कहा है – "परमात्मा की छाया आत्मा पर पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में, यही छायावाद है।"
3. डॉ. नगेन्द्र के अनुसार – स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह बताते हुए कहा गया है – "छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष भाव दष्टिकोण है।"
4. महान कवयित्री महादेवी वर्मा ने – "छायावाद को आत्माभिव्यक्ति के लिए मनुष्य के हृदय की अकुलाहट का परिणाम माना है।"

इन विभिन्न परिभाषाओं को दष्टिगत कर यह कह सकते हैं कि छायावाद द्विवेदी युग की इतिवत्तात्मक कविता की प्रतिक्रिया है। जिसमें मानवीकरण की प्रधानता के साथ प्रकृति में चेतना का आरोप किया गया है और परमात्मा के प्रति प्रकृति के माध्यम से प्रणय भाव प्रकट किया गया है।

छायावादी काव्य अपनी विशेषताओं के कारण साहित्य में विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान बना चुका है। कुछ महत्वपूर्ण रेखांकन योग्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. **प्रकृति चित्रण**

   छायावादी काव्य में प्रकृति के सर्वाधिक आकर्षक लौकिक तथा अलौकिक रूपों का चित्रण किया गया है। इस धारा के समस्त कवि प्रकृति के पुजारी हैं। पंत, प्रसाद, निराला, दिनकर आदि ने प्रकृति को परम रूपसी नारी के रूप में चित्रित किया है।

   "पगली हाँ सम्भाल ले कैसे छूट पड़ा तेरा आँचल

   देख बिखरती है मणिराणी अरी उठा बेसुध चंचल।"

   प्रातः और सान्ध्यकालीन दश्यों का चित्रण इन कवियों की लेखनी से अत्यन्त अनूठे रूप में हुआ है। संध्या सुंदरी का अनूठा चित्रण निराला के शब्दों में–

"दिवसावसान का समय

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह सन्ध्या सुन्दरी परी - सी

धीरे - धीरे - धीरे।"

इस काव्यधारा के कवियों के प्रकृति चित्रण में कहीं भी वासनात्मक और ऐन्द्रिक चित्रण नहीं है। विषाद और दुख में भी आदर्श चित्रण दष्टिगोचर होता है। छायावादी काव्य का प्रत्येक चित्र विस्मय कार्य है। प्रकृति का रहस्यात्मक रूप मन को बांध लेने वाला होता है।

2. **व्यक्तिवाद की प्रधानता**

द्विवेदी युगीन इतिवत्तात्मक विचारधारा के कारण छायावाद में व्यक्तिवादी भाव उभर आया है। इस काव्यधारा में जहाँ आध्यात्मिक पक्ष सामने आया है वहीं व्यक्तिवादी भाव भी उभरा है। हिन्दी कविता जाति विशेष के सुख दुख तक ही सीमित न रहकर समस्त मानव के सुख दुख की कहानी बन गई है। इस काव्यधारा का कवि विभिन्न समस्याओं और बाधाओं के समाधान को बाह्य जगत में न खोजकर मानव मन में खोजता है। यही कारण है कि छायावाद में वैयक्तिक सुख दुख की अभिव्यक्ति खुलकर हुई है।

जयशंकर प्रसाद की 'आँसू' और पंत की 'उच्छवास' कविता में व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति को अत्यंत आकर्षक रूप मिला है। छायावादी काव्य में यह व्यक्तिवाद 'मैं' के रूप में उभरकर सामने आया है। यह 'मैं' प्रतीकात्मक रूप है जिसमें लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत योजना अपनायी गयी है। भावात्मक केन्द्र होने के बाद भी इसमें प्रेषणीयता और अभिव्यक्ति प्रबल होती है।

"मैंने 'मैं' शैली अपनायी, देखा एक दुखी निज भाई।

दुख की छाया पड़ी ह्रदय में, झट उमड़ वेदना आयी।।"

इस प्रकार कह सकते हैं कि छायावादी काव्य में व्यक्तिगत सुख–दुख की अपेक्षा मानव सुख–दुख की अनुभूति और अभिव्यक्ति को महत्व दिया गया है।

3. **रहस्यानुभूति और देश प्रेम**

छायावादी काव्य में रहस्यात्मक भावना का प्रबल रूप है। इसमें राष्ट्रीय जागरण के साथ रहस्यात्मक भाव का विलक्षण योग दिखाई देता है। इसी राष्ट्रीय जागरण भाव ने छायावाद को असामाजिक पदों पर भटकने से बचा लिया है।

छायावादी कवि अलौकिक आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति में युगीन सन्दर्भों को देखता चलता है। यह छायावादी काव्य की आदर्श प्रवत्ति है। प्रसाद देश और युग पर दष्टि रखकर ही कहते हैं–

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।"

माखनलाल चतुर्वेदी 'पुष्प की अभिलाषा' के संदर्भ से राष्ट्रीय भाव दर्शाते हुए अनूठी भावना सामने रखते हैं–

"मुझे तोड़ लेना वन माली,

उस पथ पर देना तुम फेंक,

मातभूमि पर शीश चढ़ाने

जिस पथ जावें वीर अनेक।"

इस प्रकार छायावादी काव्य में देशकाल को ध्यान में रखकर प्रबल राष्ट्रीय भाव को अभिव्यक्ति दी गई है।

4. **नारी भावना**

छायावादी कवियों ने युग–युग से कारा में बन्द नारी को मुक्त करने और समाज में महत्व दिलाने के लिए उद्घोष किया है। उनकी लेखनी से नारी को श्रद्धा पात्र कहा गया है। नारी को सर्वाधिक आदर छायावादी काव्य में मिला है। प्रसाद ने 'कामायनी' में नारी को महत्व देते हुए लिखा है–

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पगतल में
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।"

उक्त काव्य में नारी चित्रण अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और शील है। इसमें नग्नता और अश्लीलता को स्थान नहीं मिला। प्रसाद ने श्रद्धा के सौन्दर्य का अनूठा रूप प्रस्तुत किया है–

"नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघवन बीच गुलाबी रंग।"

नारी सौंदर्य के चित्रण में उसकी अनूठी लेखनी बहुरंगी रंग भरती हुई सामने आती है। नारी जीवन प्रणय गाथा आशा, निराशा से आप्लावित दिखाई देता है। मिलन और विरह की अनुभूतियाँ अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ी हैं। नारी स्वयं को ही नहीं पुरुष को भी समरसता के मार्ग तक पहुँचाती है।

"तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की।"

5. **मानवतावाद-**

छायावाद भारतीय सर्वात्मवाद और अद्वैतवाद से प्रभावित हुआ है। इतना ही नहीं भारतीय दार्शनिकों के दर्शन से भी प्रभावित हुआ है। इसमें भावनाओं की संकीर्णता नहीं वरन् विस्तत रूप पाकर विश्व मानवतावाद स्थापित हुआ है। उक्त काव्य में नारी के अंग प्रत्यंगों का वर्णन न होकर उसके मानसिक सौन्दर्य का अनूठा रूप प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार छायावादी काव्य में श्रंगार का आदर्श रसात्मक रूप है। जिसमें विलासिता नहीं सात्विकता है। छायावादी कवि युगीन अबला को मुक्त कर मानवतावाद लाना चाहता है।

"खोलो हे मेखला युगों की, कटि प्रदेश से तन से
अमर प्रेम हो उसका बन्धन, वह पवित्र हो मन से।"

या

"शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त, विकल बिखरे हैं निरूपाय।
समन्वय उनका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाये।।"

{मानव तुम सबसे सुन्दरतम्}

इस धारा की कविता में जाति, धर्म प्रदेश और देश की सीमाएं नहीं हैं। वरन् विश्व के समस्त मानव की उन्नति का स्वर है। प्रसाद ने 'कामायनी' में वह मानवतावाद स्थापित करने के लिए कहा है–

"औरों को हँसते देखे मनु हंसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तत कर दो, जीवन सुखी बनाओ।"

6. **आदर्शवाद-**

छायावाद में बाह्य सौन्दर्य के साथ आन्तरिक सौन्दर्य का प्रबल रूप मिलता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि छायावादी कवियों की आदर्शवादी शैली अन्तर्मुखी प्रवत्ति के आधार पर विकसित हुई है। यथार्थ के साथ आदर्श तथ्यों के चित्रण में कल्पनात्मक दष्टिकोण अत्यंत अनूठा बन पड़ा है। आदर्श विचार अथवा कल्पना के कारण छायावादी कविता भाव और कला दोनों ही पक्षों में अनुकरणात्मक विशेषता प्राप्त कर सकती है।

"नरवत की आशा किरण समान, हृदय के कोमल कवि की कान्त
कल्पना की लघु लहरी दिव्य, कर रही मानस हलचल शान्त।"

7. **वेदना का चरित्र-**

छायावादी काव्य में वेदना का प्रभावी चित्रण मिलता है।

"वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।

उमड़कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।।"

इस प्रकार आदर्श तथ्यों के समावेश से छायावाद के लौकिक धरातल पर अनुकरणीय और प्रेरक भाव पक्ष का अनुपमेय उदय हुआ है।

छायावाद में उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त गेयता, चित्रात्मकता, बिम्ब विधान और प्रतीक योजना और वेदना चित्रण आदि के सन्दर्भों से अपने अनूठे भावात्मक और कलात्मक पक्षों को महत्वपूर्ण रूप में सामने प्रस्तुत करता है। निश्चय ही छायावाद हिन्दी साहित्य में विभिन्न वादों में सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक वाद है।

12. छायावादी प्रतिनिधि रचनाकार

छायावादी कवियों के जीवन चरित्र तथा उनके काव्यों के विवेचन से इनकी चार कोटियाँ सामने आती हैं–

(i) **साहित्य साधक** - इनका एक मात्र लक्ष्य साहित्य साधना करना था। आजीवन साहित्य साधना में लगे रहे।

(ii) **जीवन केन्द्रित** - ये कवि तत्कालीन सामाजिक – राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय भाग लेते थे। साथ–साथ काव्य सजन का कार्य भी करते थे। इनका मुख्य लक्ष्य आंदोलन एवं साहित्य सजन दोनों न होकर जीवन में सफलता प्राप्त करना था। इसलिए जीवन केन्द्रित कहा जा सकता है।

(iii) **प्रणयी**- ये कवि प्रेमी थे इनके जीवन का मुख्य लक्ष्य प्रणय था। इन्होंने लौकिक प्रेम को प्रधानता दी है तथा नारी के लौकिक, मांसल सौन्दर्य का चित्रण किया है। लौकिक सौन्दर्य का अनुभूतिपरक वर्णन सराहनीय है।

(iv) **हास्य व्यंग्य**

1. साहित्य साधक

"स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा-

भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति।।" के कहने वाले महाकवि, भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास वास्तविक साहित्य साधक थे। जीवन से दुखी, किसी से मोह माया नहीं रह गई थी अगर रही भी होगी तो स्मति संचारी भाव में। यही स्थिति छायावादी मनीषियों तथा मनीषिणी की थी चारों वैयक्तिक जीवन के दुख से संतप्त होकर उसे विस्मत कर साहित्य साधना में लग गए थे। प्रसाद की पत्नियां मरती गईं, प्रेमिकाओं से सच्चा प्रेम न मिला। पंत आजीवन कुंवारे रहे। प्रेमिका मिली तो प्रकृति। निराला की पत्नी एवं सरोज की मत्यु ने उनकी कमर तोड़ दी। केवल स्मतियों में संजोए रहे। महादेवी वर्मा का विवाह डॉ. एस.एन. वर्मा से हुआ किंतु आजीवन बिना तलाक के रहीं जीवन का सुख नहीं भोगा। रत्नावली का परित्याग कर ही तुलसी गोस्वामी तुलसीदास बने। साहित्य साधना का आनन्द सच्चा साहित्यकार ही जानता है। छायावाद की चतुष्टयी के जयशंकर प्रसाद, सुमित्रा नंदन पंत, पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला तथा महादेवी वर्मा चारों साहित्यकार सच्चे साहित्य साधक थे।

जयशंकर प्रसाद-

व्यक्तित्व- कविवर जयशंकर प्रसाद (सन् 1890–1937 ई.) का जन्म माघ शुक्ल दशमी, संवत् 1946 वि. को वाराणसी के प्रसिद्ध तंबाकू के भारी व्यापारी 'सुंघनी साहू' के पुत्र रूप में हुआ। प्रसाद के पितामह शिवरतन साहू काशी के अति प्रतिष्ठित नागरिक थे। अवधि में 'सुंघनी' सूंघने वाली तंबाकू को कहते हैं। यह परिवार अति उत्तम कोटि की तम्बाकू का निर्माण करता था इसीलिए नाम ही 'सुंघनी साहू' पड़ गया। भरा–पूरा परिवार था। कोई भी धार्मिक अथवा विद्वान काशी में आता तो साहू जी उसकी अत्यधिक सेवा करते थे। दानी परिवार था। कवियों, गायकों तथा कलाकारों की गोष्ठियां उनके घर पर चलती रहती थीं। 'महादेव' नाम से प्रसिद्ध थे। शैशवावस्था में ही खेलने की अनेक वस्तुओं में से लेखनी का चयन किया था। नौ वर्ष की अवस्था में 'कलाधर' उपनाम से कविता रचकर अपने गुरू 'रसमय सिद्ध' को दिखलाई। इनका परिवार शैव था। घर पर ही संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी तथा फारसी आदि भाषाओं के पढ़ने की व्यवस्था थी।

बारह वर्ष की अवस्था में उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। अग्रज शंभुरतन का ध्यान व्यवसाय की ओर अधिक न था। देवी प्रसाद की मत्यु के बाद गहकलह ने जन्म लिया। मकान बिक गया। कॉलेज की पढ़ाई छूट गई। आठवीं कक्षा तक ही पढ़ सके। उपनिषद्, पुराण, वेद एवं भारतीय दर्शन का अध्ययन घर पर चलता रहा। प्रसाद जी कसरत किया करते थे। दुकान बही पर बैठे–बैठे कविता लिखा करते थे। माता की मत्यु के दो वर्ष बाद अनुज भी चल बसे।

सत्रह वर्ष की अवस्था में उत्तरदायित्व का भार आ गया। स्वयं विवाह करना पड़ा। तीन विवाह किए। साहित्य साधना रात्रि में होती थी। प्रसाद की कविता का आरंभ ब्रजभाषा से हुआ।

कृतित्व

काव्य- 'उर्वशी' (चम्पू) 'प्रेम राज्य' (चम्पू), 'वन मिलन', 'अयोध्या का उद्धार', 'शोकोच्छवास', 'बभ्रवाहन', 'कानन कुसुम', 'प्रेम पथिक', 'करुणालय', 'महाराणा का महत्व', 'झरना', 'आंसू', 'लहर' एवं 'कामायनी' (महाकाव्य)।

संकलन- 'चित्राधार'

कविताएं- 'प्रभो', 'रजनीगंधा', 'देव मंदिर', 'दलित कुमुदिनी', 'प्रभात', 'चूक हमारी', 'प्रेमोपालंभ', 'विदाई', 'नमस्कार', 'पतितपावन', 'रमणी हृदय', 'खोलो द्वार', 'श्रीकृष्ण जयंती', 'विनोद बिंदु', 'मकरंद बिंदु', 'गंगा सागर', 'विरह, मोहन', 'मिलन', 'प्रियतम', 'मेरी कचाई', 'तेरा प्रेम', 'तुम्हारी स्मरण', 'हमारा हृदय', 'मिल जाओ गले', 'अनुनय', 'तेरा रूप', 'सागर संगम', 'आत्म कथा', आदि समय समय पर पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित।

कथाएं- 'मर्म कथा', 'सत्यव्रत' तथा 'भरत'।

चतुर्दशपदी- 'स्वभाव', 'विनय', 'दर्शन', 'भुखमरी', 'नींद'।

गद्य काव्य- 'प्रबोधिनी'।

कहानी – 'आकाश द्वीप', 'इन्द्रजाल', 'आंधी', 'प्रतिध्वनि'।

उपन्यास- 'कंकाल', 'तितली', 'ईरावती'।

निबंध- काव्य और कला तथा अन्य निबंध।

साहित्यिक विशेषताएं- 'प्रेम पथिक' की रचना पहले ब्रजभाषा में की गई थी बाद में उसे खड़ी बोली में रूपांतरित कर दिया गया। 'झरना' के पूर्व की सभी रचनाएं द्विवेदी युग में लिखी गई थीं। प्रसाद जी की आरंभिक शैली संस्कृत गर्भित है। 'झरना' में कवि ने आंतरिक कल्पना द्वारा सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त किया है। बाह्य सौंदर्य का चित्रण करते समय भी उन्होंने सूक्ष्म और मानसिक पक्ष को व्यक्त करने की ओर ध्यान दिया है। 'आंसू' का आरंभ कवि की विरह–वेदना से हुआ है। अंत में 'आंसू' को विश्व–कल्याण की भावना से संबंधित कर दिया है। अंत तक आते–आते कवि अपने व्यक्तिगत जीवन की निराशा और विषाद से ऊपर उठकर अपनी पीड़ा को करुणा का रूप देकर विश्व प्रेम में बदल देता है। 'लहर' गीत कला का सुंदर उदाहरण है। कल्पना की मनोरमता, भावुकता तथा भाषा शैली की प्रौढ़ता सर्वत्र दष्टिगोचर होती है। 'कामायनी' अंतिम कृति है। इसके द्वारा मानव सभ्यता दिखलाई गई है। संक्षिप्त कथानक में मानव जीवन के अनेक पक्षों को समन्वित करके मानव जीवन हेतु व्यापक आदर्श व्यवस्था का प्रयत्न किया है। पात्रों के चरित्रांकन में मनुष्य की अनुभूतियों, कामनाओं और आकांक्षाओं की अनेक रूपता वर्णित है। यह कामायनी की चेतना का मनोवैज्ञानिक पक्ष है। मनु श्रद्धा, इड़ा एवं मानव के द्वारा मानव मात्र के मनोजगत के विविध पक्षों का चित्रण चिंता, आशा, वासना, ईर्ष्या, संघर्ष एवं आनंद आदि सर्गों में किया गया है। इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत सम्मिश्रण हो गया है। पात्रों के ऐतिहासिक महत्व के साथ–साथ सांकेतिक अर्थ भी है। मनु–मन, श्रद्धा–हृदय तथा इड़ा–मस्तिष्क का प्रतीक है। बुद्धिवाद के विरोध में हृदय पक्ष की प्रधानता दिखलाई गई है। शैव दर्शन के आनंदवाद को जीवन के पूर्ण उत्कर्ष का साधन स्वीकारा गया है। 'कामायनी' गौरवशाली उपलब्धि है।

सुमित्रा नंदन पंत

व्यक्तित्व- कविवर सुमित्रा नंदन पंत जन्म (सन् 1900 – 1977 ई.) ग्राम कौसानी, जनपद अल्मोड़ा, वर्तमान उत्तरराखंड (पुराने उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इनके पिता का नाम गंगा दत्त पंत तथा माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। सबसे छोटी संतान थे। जन्म देते ही इनकी माता कुछ घंटे बाद ही इनको छोड़कर चल बसीं। जिसके परिणामस्वरूप अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा की गोद में पलने लगे तथा प्रकृति के उस मनोरंजक परिवेश का इनके व्यक्तित्व पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। पंत की प्रारंभिक शिक्षा गांव की पाठशाला में हुई। इसके पश्चात् अल्मोड़ा गवर्नमेंट हाईस्कूल में प्रविष्ट हुए। काशी के जय नारायण हाई स्कूल से स्कूल लीविंग की परीक्षा पास की। सन् 1916 ई. में क्योर सेन्ट्रल कॉलेज प्रयाग से एफ.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। संस्कृत, अंग्रेजी तथा बंगला का अध्ययन किया। सन् 1950 में आल इंडिया रेडियो के परामर्शदाता नियुक्त हुए। सन् 1957 तक रेडियो से संबद्ध रहे। 'कला और बूढ़ा चांद' काव्य ग्रंथ पर साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा 'लोकायतन' पर सोवियत भूमि पुरस्कार, 'चिदंबरा' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। भारत सरकार ने पंत को 'पद्‌म भूषण' की उपाधि से विभूषित किया। पंत में

यथार्थ के विषम एवं दारुण रूप के अभाव का कारण भी कुछ सीमा तक प्रकृति के उस प्रभाव को ही स्वीकारा जा सकता है। प्रकृति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम ने इन्हें जीवन की नैसर्गिक व्यापकता तथा अनेक रूपता से पूर्ण रूपेण वंचित कर दिया।

"छोड़ द्रुसों की मदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लीचन?
छोड़ अभी से उस जग को।"

इस पद्यांश के विवेचन से ऐसा लगता है कि पंत नारी सौंदर्य की अपेक्षा प्राकृतिक सौंदर्य को अधिक महत्व देते हैं। नारी सौंदर्य की यह उपेक्षा जीवन की उपेक्षा के भाव को व्यक्त करती है। बालिका भी नारी का लघु रूप है। इस विश्व के प्रति कवि का मोह अभी समाप्त नहीं हुआ है।

कृतित्व- 'गिरजे का घंटा', 'ग्रंथि', 'वीणा', 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगांत', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'उत्तरा', 'स्वर्ण किरण, 'स्वर्ण धूलि', 'अंतिमा', 'किरण, 'पतझर', 'एक भाव क्रांति', 'लोकायतन', 'कला और बूढ़ा चांद', 'चिदंबरा', 'गीत हंस' तथा 'रजत शिखर' आदि काव्य रचनाएं हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- पंत के काव्य विकास के प्रथम सोपान में 'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव' और 'गुंजन' काव्य आते हैं। ये छायावादी प्रवत्ति की प्रमुख रचनाएं हैं। 'वीणा' में प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति कवि का अनन्य अनुराग है। 'ग्रंथि' से वह प्रेम की भूमिका में प्रवेश करता है तथा उसे नारी–सौंदर्य आकृष्ट करने लगता है। 'पल्लव' छायावादी पंत का चरम बिंदु है। अब कवि अपने ही सुख–दुख में केंद्रित था किंतु 'गुंजन' से वह अपने में केंद्रित न रहकर विस्तत मानव जीवन अर्थात् मानवतावाद की ओर उन्मुख होता है।

द्वितीय सोपान में पंत की तीन रचनाएं 'युगांत', 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' आती हैं। इस काल में कवि पहले गांधीवाद से प्रभावित है। बाद में मार्क्सवाद अपनी ओर आकर्षित कर लेता है तथा अंत में वह प्रगतिवादी बन जाता है।

मार्क्सवाद की भौतिक स्थूलता कवि के मूल संस्कारी कोमल स्वभाव के विपरीत होने के कारण वह पुनः अंतर्जगत की ओर मुड़ जाता है। इस काल की प्रमुख रचनाएं 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'उत्तरा', 'अतिमा', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'किरण', 'पतझर', 'एक भाव क्रांति' तथा 'गीत हंस' है। इस काल में कवि पहले विवेकानंद और रामतीर्थ से प्रभावित होकर बाद में अरविंद दर्शन से प्रभावित होता है।

सन् 1955 ई. के बाद की पंत की कुछ रचनाओं 'कौवे', 'मेंढक' आदि पर प्रयोगवादी कविता का प्रभाव दष्टिगोचर होता है। परंतु कवि को यह रूप सहज नहीं लगता और वह पुनः उसे छोड़कर अपने प्रकृत अर्थात् वास्तविक रूप पर लौट आता है।

पंत छायावादी चार उन्नायकों में से एक हैं। वे अति सुकुमार एवं संवेदनशील कवि हैं। उन्हें 'प्रकृति का मंजुल–मसण कवि' कहा जाता है। वे निरंतर प्रगतिशील रहे हैं। वातावरण तथा अध्ययनशीलता उनकी प्रगतिशीलता के प्रमुख कारण रहे हैं। वातावरण संबंधी प्रभाव उन पर उनकी जन्मभूमि कौसानी का सबसे अधिक पड़ा है जिसकी प्राकृतिक सुषमा में वे पले, बड़े हुए हैं उसने इन्हें मुग्ध कर लिया है। इसके अतिरिक्त वातावरण संबंधी द्वितीय प्रभाव उन पर सन् 1930 ई. के बाद देश में दिखलाई पड़ने वाली विकट राजनीतिक परिवेश तथा जनसाधारण के कष्टों की विभीषिका का पड़ा, जिसने उन्हें गांधीवाद से मार्क्सवाद की ओर मोड़ दिया। दर्शन की दष्टि से वे सबसे अधिक स्वामी विवेकानंद एवं स्वामी रामतीर्थ के वेदांत संबंधी विचारों से प्रभावित हुए तथा अंत में उन पर अरविंद दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। पंत काव्य में प्रकृति के मनोरम रूपों का मधुर एवं सरस चित्रण मिलता है। 'आंसू की बालिका' तथा 'पर्वत प्रदेश में पावस' आदि कविताओं में प्रकृति के मनोहर चित्र विद्यमान हैं जिनमें कवि की जन्मभूमि के प्राकृतिक सौंदर्य का अपूर्व वैभव दष्टिगोचर होता है। कवि पंत आदर्श प्रेमी रहे हैं। कवि की आदर्शवादी भावना निरंतर प्रबल होती गई है। यह आदर्शवादी भावना ही 'परिवर्तन' कविता में 'सर्ववाद' का रूप ग्रहण कर लेती है। कवि 'तिमिर त्रास' का निवारण करना चाहता है किन्तु प्रकृति प्रेम को – जो एक तरह से ठोस यथार्थ जीवन के प्रति आसक्ति की सीमा बन जाता है – त्यागना भी नहीं चाहता है। 'गुंजन' तक की रचनाओं में पंत ने विचार को सजीव सरस रूप में ही प्रस्तुत किया है। पंत की सौंदर्य भावना और कल्पना का प्रसार प्रकृति और जीवन के सुकुमार रूपों

की ओर अधिक रहा है।

'पल्लव' की भूमिका में पंत ने भाषा, अलंकार, छंद, शब्द और भाव के सामंजस्य पर विचार व्यक्त किए हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि कवि भाषा प्रयोग के संबंध में कितना जागरूक है। पंत की शैली में लाक्षणिक वैचित्र्य, विशेषण विपर्यय, विरोध चमत्कार, मानवीकरण, प्रतीक विधान तथा अन्योक्ति विधान विद्यमान हैं। भावों और विचारों की सरलता एवं स्पष्टता के अनुरूप ही शैली प्रायः प्रसादगुण युक्त है। सजगता भाषा के मंथर गंभीर प्रभाव और अलंकार विधान के रूप मं दष्टिगोचर होती है। अनुभूति के प्रवाह एवं वेग के अनुरूप ही भाषा में प्रवाह एवं आवेश है।। 'ग्राम्य' आदि में उनकी भाषा शैली एवं भाव बोध प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित हैं। जहां कविता की भाषा में वक्ता, सांकेतिकता आदि के स्थान पर सरलता तथा सपाट बयानी परिलक्षित होती है आध्यात्मिक सत्य पर कवि की आस्था बनी हुई है किन्तु वह भौतिक समद्धि की अनिवार्यता को भी स्वीकारता है। नई शैली में छायावादी कविता की सांकेतिकता, उपचार वक्रता तथा बौद्धिकता आदि का समावेश है।

पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

व्यक्तित्व- पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला (1897 – 1962 ई.) का जन्म संवत 1953 वि. वसंत पंचमी के दिन ग्राम गढ़कोला जनपद उन्नाव में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. राम सहाय त्रिपाठी था। वे मेदिनीपुर के महिषदल राज्य में नौकरी करते थे। इनकी मां सूर्य का व्रत रखती थी, इनका जन्म भी रविवार को हुआ था इसीलिए इनका नामकरण सूर्य के आधार पर सूर्यकांत किया गया। साहित्य क्षेत्र में अपनी निराली प्रकृति के कारणस्वरूप उपनाम 'निराला' हो गया।

निराला की शिक्षा बंगाल में ही हुई। ये आरंभ से स्वच्छंद प्रकृति के थे। अतः स्कूली शिक्षा में इनका मन न रमा। स्कूल छोड़कर घर पर ही अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। साहित्य, संगीत और कला के अतिरिक्त कुश्ती एवं घुड़सवारी का भी इन्हें अत्यधिक शौक था। हिंदी, अंग्रेजी, बंगला तथा संस्कृत का गहन अध्ययन किया। इनके काव्य पर बंगला का स्पष्ट प्रभाव दष्टिगोचर होता है।

तेरह वर्ष की अवस्था में ही इनका विवाह हो गया था। इनकी दो संताने एक पुत्र एक पुत्री थी। पिता की मत्यु के पश्चात् इन्होंने स्वयं महिषादल राज्य में नौकरी कर ली किंतु बाइस वर्ष की आयु में पत्नी का देहांत हो जाने पर इन्होंने नौकरी छोड़ दी और स्वतंत्र रूप से साहित्य साधना करने लगे।

निराला के विराट वपु में कोमल एवं भावुक हृदय विद्यमान था। वे उदार एवं दानी प्रकृति के थे। असहाय गरीबों के प्रति उनके मन में अपार प्रेम था। ठंड से सिकुड़ते दरिद्रों को देखकर वे उन्हें अपने पहने हुए वस्त्र तक उतारकर दे देते थे। छायावादी चार स्तंभों में प्रमुख होने पर भी वे छायावादी कवियों में सर्वाधिक विद्रोही एवं क्रांतिकारी प्रकृति के थे। वस्तुतः वे स्वच्छंदतावादी थे।

पुत्र छोटी आयु में चल बसा। पत्नी की मत्यु हो जाने पर बालिका सरोज ननिहाल में पली। विवाह योग्य होने पर अपने घर लाकर उसका विवाह बड़ी कठिनाई से किया। एक वर्ष के अंदर ही विधवा होकर बीमार पड़ गई। औषधि के अभाव में नानी के यहां वह चल बसी। निराला की कमर टूट गई। उसकी स्मति में मानों श्राद्ध स्वरूप 'सरोज स्मति' की रचना की।

निराला का जीवन अभावों तथा दुखों से परिपूर्ण था किंतु इन्होंने कभी किसी विपत्ति के समक्ष सिर नहीं झुकाया। अभावों एवं पीड़ाओं की तीव्र एवं मर्मांतक व्यथा को झेलते हुए भी ये साहित्य साधना में तल्लीन रहे। मगर कब तक कोई इस प्रकार जी सकता है? निराला मन और बुद्धि से तो संघर्षों की उपेक्षा करते हुए अविचलित रहे किंतु उनकी चेतना के भीतर जैसे कुछ टूट रहा था, घुल रहा था। उनके जीवन के अंतिम वर्ष जहां उनकी चेतना के अथक–अविचल संघर्ष की कहानी कहते हैं, वहां उनके जीवन की विपत्तियों और व्यथाओं की दुर्निवार शक्ति को भी व्यंजित करते हैं।

कृतित्व- ***काव्य-*** 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'बेला', 'अपरा', 'नए पत्ते', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत कुंज', 'सांध्य काकली', 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज स्मति', (शोक गीत)।

काव्य ग्रंथों के अतिरिक्त इन्होंने उपन्यास, कहानी, आलोचना एवं निबंध आदि के क्षेत्र में अपनी लेखनी चलाई है।

साहित्यिक विशेषताएं- निराला ने क्रांति एवं विरोध का स्वर मुखरित करते हुए समाज की व्यथा एवं वेदना को वाणी दी तथा विषमता से पीड़ित मानवता की छटपटाहट को अंकित किया है। विधवा के प्रति हिंदू समाज जिस प्रकार असहनशील होकर उस दुखों की मारी पर भीषण अत्याचार करता है उससे कवि का भावुक हृदय तड़प उठता है। उन्होंने 'विधवा' कविता में उसके

हाहाकार तथा वेदना को मुखरित किया है। 'रानी और कानी' कविता द्वारा समाज पर करारा व्यंग्य किया है जहां कन्या के विवाह के समय उसके आंतरिक सौंदर्य को न देखकर बाह्य सौंदर्य एवं धन को प्रमुखता दी जाती है।

प्रयोगवाद के जन्मदाताओं में निराला का प्रमुख स्थान है। वे दीन दुखियों की दुर्दशा, पूंजीपतियों द्वारा गरीबों का शोषण, अछूतों का उत्पीड़न आदि देख सिहर उठे हैं जिसके परिणामस्वरूप उनके काव्य में नव जागरण का संदेश सुनाई पड़ता है। आर्थिक विषमता पर तीव्र प्रहार किया है। जिस व्यवस्था में कुछ लोग सुख भोगते रहे एवं विलासिता में निमग्न रहे तथा अन्य जी तोड़ श्रम करके भी पेट भर अन्न के लिए तरसते रहे वह व्यवस्था नष्ट–भ्रष्ट करने की कामना करते हुए कवि बादल से आग्रह करते हुए कहता है –

छिन्न भिन्न कर पत्र, पुष्प, वन, उपवन,

वज्रघोष से ए प्रचंड! आतंक जमाने वाले।

यहां पत्र, पुष्प, पादप उन धनिकों के प्रतीक हैं जो समाज को लूट–लूटकर अपनी तिजोरियां भरने में लगे हुए हैं। कवि कहता है कि हे बादल इन शोषकों को छिन्न–भिन्न करके अपने प्रचंड निर्घोष से उन्हें आतंकित कर दे। कवि का अत्यधिक संवेदनशील एवं परदुख कातर हृदय दीन दुखी, असहायों के प्रति गहरी करुणा से भरा है। इन शोषितों के प्रतिनिधि के रूप में कवि ने मजदूर, किसान और भिक्षुक के चित्र उपस्थित किए हैं। 'भिक्षुक' कविता में कवि ने भिखारी की विपन्नावस्था का चित्रण किया है। 'बादल राग' कविता में कृषकों की विपन्नता का चित्र उपस्थित किया है।

स्वदेशाभिमान एवं राष्ट्र प्रेम की भावना अति ज्वलंत थी। वे भारत माता के साकार रूप की वंदना करते हैं। देश की परतंत्रता से वे इतना व्यथित एवं क्षुब्ध थे कि उन्होंने देशभक्तिपरक अनेक गीत लिखे हैं। उनके अपने उद्‌बोधन गीत में 'भारतीय वंदना', 'तुलसीदास', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' आदि कविताओं में उनके देशभक्ति के भाव मुखरित हुए हैं। निराला का प्रेम एवं सौंदर्य चित्रण अनुपम है। उनकी दष्टि प्रकृति एवं मानव दोनों के सौंदर्य से अभिभूत है। उन्होंने निश्छल पुनीत प्रेम के अनेक गीत लिखे हैं जिनमें कहीं प्रेयसी के मादक एवं पुनीत प्रेम का चित्रांकन किया है, कहीं प्रिया के नूपुरों की कर्णप्रिय झंकार एवं उसकी अलकों की मोहक गंध की संभार है तो कहीं प्रेम की प्रेरणादायक भक्ति का निरूपण।

निराला छायावाद के प्रमुख चार स्तंभों में थे। अतः उनके काव्य में छायावादी प्रवत्ति का मिलना स्वाभाविक है। प्रकृति पर चेतना का आरोप अर्थात् प्रकृति का नर–नारी के रूप में चित्रण निराला काव्य में हुआ है। 'जूही की कली' ऐसी ही कविता है। दर्शन तथा रहस्य भावना निराला में रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद के दार्शनिक विचारों से आई। प्रकृति के अनेक रम्य एवं मनोहारी चित्र अंकित किए हैं। श्रंगार, वीर, रौद्र, करुण आदि विभिन्न रसों का सुंदर परिपाक मिलता है। करुण रस का सुंदर स्वरूप 'सरोज स्मति' में विद्यमान है।

भाषा बंगला से प्रभावित संस्कृतिनिष्ठ एवं समास बहुला है। भाषा भाव, विषय एवं विचारानुसार परिवर्तित होती रहती है। शैली वैविध्यपूर्ण है। छंदों के क्षेत्र में क्रांतिकारी प्रयोग किए हैं। मुक्त छंद के जन्मदाता ही नहीं सफल प्रयोक्ता भी है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह आदि अलंकारों का सक्षम प्रयोग किया गया है। मानवीकरण तथा ध्वन्यार्थ योजना आदि की सार्थक योजना की है। निराला बहुमुखी प्रतिभा के कवि हैं। काव्य में उन्होंने भाव, भाषा तथा छंद की दष्टि से नवीन प्रयोग किए हैं। मुक्त छंद और संगीतात्मकता उनकी विशेष देन है। निराला की देन अविस्मरणीय है तथा आधुनिक काल के साहित्य में उनका स्थान अप्रतिम है।

महादेवी वर्मा-

व्यक्तित्व- महादेवी (सन् 1907 – 1987 ई.) का जन्म फर्रुखाबाद में हुआ। पिता का नाम गोविंद प्रसाद तथा माता का नाम श्रीमती हेमरानी था। पति का नाम रूपनारायण वर्मा था जिन्होंने इस शर्त पर अलगाव कर लिया था कि दोनो पुनः विवाह नहीं करेंगे। महादेवी वर्मा का मुख्य क्षेत्र काव्य है। उनकी गणना छायावादी कवियों की वहत् चतुष्टयी में की जाती है। उनके काव्य में वेदना की प्रधानता है। काव्य के अतिरिक्त उनकी गद्य की श्रेष्ठ रचनाएं भी हैं। प्रयाग में साहित्यकार संसद की स्थापना करके साहित्यकारों का मार्ग दर्शन किया। आरंभिक शिक्षा घर पर ही ग्रहण की। इसके बाद इनकी विधिवत शिक्षा प्रयाग में हुई जहां इन्होंने सन् 1933 ई. में दर्शनशास्त्र में एम.ए. किया। ये कुशल चित्रकार भी थीं। नारी को अपनी स्वतंत्रता तथा अधिकारों के प्रति सजग किया। उनके रेखाचित्रों में गद्य का चित्रात्मक, भावमय एवं कवित्वपूर्ण रूप विद्यमान है। पीड़ित पशुओं,

मानवों तथा पालतू जानवरों के प्रति विशेष लगाव था। इन्होंने मार्मिक शब्द चित्र उपस्थित किए हैं। साहित्य सेवाओं के लिए राष्ट्रपति ने इन्हें 'पद्मभूषण' उपाधि से विभूषित किया। 'नीरजा' पर 'सेक्सरिया पुरस्कार' तथा 'यामा' पर 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' डेढ़ लाख रुपये के पश्चात् 'ज्ञान पीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया जा चुका है। 18 मई, सन् 1983 ई. में इन्हें उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने सर्वश्रेष्ठ कवयित्री के रूप में 'भारत भारती' पुरस्कार से सम्मानित किया और 'भागीरथी की प्रतिमा' भेंट की।

कृतित्वः

काव्य- 'नीरजा', 'नीहार', 'रश्मि', 'सांध्यगीत', 'दीप शिखा' एवं 'यामा'।

गद्य- 'अतीत के चलचित्र', 'स्मति की रेखाएं', 'पथ के साथी', 'मेरा परिवार', तथा 'श्रंखला की कड़ियां'।

अनूदित- 'सप्तपर्णा'।

साहित्यिक विशेषताएं- महादेवी को आधुनिक मीरा कहा जाता है। महादेवी वेदन की कवयित्री हैं। उनके काव्य में करुणा, सहानुभूति, नारी की करुण दशा तथा उसके प्रति संवेदना विद्यमान है। सामाजिक जीवन की विकृतियों पर असंतोष व्यक्त किया है। इनकी कविताओं में आरंभ से ही विस्मय, जिज्ञासा, व्यथा और आध्यात्मिकता के भाव मिलते हैं जो निरंतर प्रौढ़ एवं परिमार्जित होते गए हैं। महादेवी के सभी गीतों में अनुभूति और विचार के धरातल पर एकान्विति मिलती है। इनकी भावभूमि गीतिकाव्य के उपयुक्त हैं क्योंकि ये स्वानुभूति की प्रत्यक्ष विवति करती हैं। इनके गीतों में सफल संयमित भावातिरेक की व्यंजना हुई है। इनके गीत भाव प्रधान हैं। इनके गीतों में व्यथा, पीड़ा, आशा, अज्ञात प्रिय के प्रति प्रणय निवेदन तथा साधना की विविध अनुभूतियों की प्रधानता है। अनुभूति विचार से समन्वित करने का प्रयत्न किया है। हृदय और बुद्धि के विरोध का निराकरण किया है तथा काव्य में दोनों की अखंड स्थिति का समर्थन किया है।

इनका प्रणय निवेदन नहीं अपितु प्रणय वेदना है क्योंकि प्रणय में दुख की प्रधानता है। प्रिय से मिलन की कामना नहीं है क्योंकि मिलन व्यक्तित्व विनाशी है इसीलिए वे कहती हैं –

"मिलन का मत नाम लो, मैं विरह में चिर हूं।"

महादेवी का दुखवाद नैराश्य या कर्महीनता का प्रतिपादन नहीं करता है। महादेवी ने दुख की महत्ता मात्र वैयक्तिक जीवन के संदर्भ में स्वीकारी है। समष्टिगत जीवन के प्रसंग में वे अथक और अमर साधना में विश्वास करती हैं। वे अमरों के लोक की कामना नहीं करती हैं वे तो मात्र 'मिटने के अधिकार' को स्थायित्व प्रदान करने की आकांक्षिणी हैं। उनका दुखवाद एक सीमा तक समाज–कल्याण की भावना से भी संपक्त है। वे जब अपने जीवन की तुलना "नीर भरी दुख की बदली" या "मंदिर के नीरव दीपक" से करती हैं तब वहां आध्यात्मिक साधना के साथ–साथ लोक कल्याण की भावना भी विद्यमान रहती है। जिस प्रकार बादल स्वयं को गलाकर धरती की प्यास बुझाकर सुख एवं शीतलता प्रदान करता है, परिवेश को आलोक प्रदान करने वाला दीपक स्नेह और बत्ती की समाप्ति पर जलकर राख हो जाता है, उसी प्रकार महादेवी स्वयं साधना की आग में जलकर सामाजिक जीवन को अधिक सुखद एवं मंगलमय बनाने की कामना करती हुई लिखती हैं–

"दुख प्रति निर्माण उन्मद
ये अमरता नापते पद
बांध देंगे अंक संसति से तिमिर में स्वर्ण बेला।"

महादेवी बौद्ध–दर्शन के प्रभाव को मात्र अपनी लोकमंगल विधायिनी पीड़ा की स्वीकृति तक सीमित स्वीकारती हैं। अन्यथा जहां तक सत्य के पारमार्थिक स्वरूप का संबंध है वे उपनिषदों की परंपरा को ही स्वीकारती हैं। उनके अनुसार सष्टि उस असीम सत्य की ही सौंदर्यमयी अभिव्यक्ति है–

"मैं कण कण में ढाल रही अलि,
आंसू के मिस प्यास किसी का।"

'दीपशिखा', 'बादल', 'निशा', 'मंदिर', 'दिव' आदि उनके प्रिय बिंब हैं। वे लोकोत्तर सत्ता को स्वीकारती हैं। यह उनकी रहस्यात्मक अनुभूति है जो व्यष्टि तक सीमित न होकर समष्टि तक व्याप्त है। लोक कल्याण की यही भावना उनकी दढ़ आस्था,

अचल साधना, तथा आत्मबलिदान के रूप में गीतों में बिखरी हुई दष्टिगोचर होती है। महादेवी ने मध्यकालीन रहस्य साधना की परंपरा को स्वीकारते हुए उसे लोक–कल्याण के साथ संपक्त करके अपने युगबोध के अनुरूप रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। रहस्यवाद के इस नए आयाम का उद्घाटन करने का श्रेय महादेवी वर्मा को है। इसके लिए उन्होंने अभिव्यक्ति की सांकेतिकता और सूक्ष्मता के अलावा प्रतीक विधान और आलंकारिता का आश्रय लेकर उसे पूर्ण सफलता प्रदान करने के लिए विभिन्न योजनाएं की हैं।

2. जीवन केंद्रित

साहित्य साधक छायावादी चतुष्टयी के अतिरिक्त कुछ अन्य कवि भी हैं जिन्होंने छायावाद के विकास में योगदान किया। ये कवि सेवा कार्य करते थे अथवा सामाजिक–राजनीतिक आंदोलनों में मुख्य रूप से सक्रिय भाग लेते थे तथा अवकाश में साहित्य सेवा भी करते थे। साहित्य सेवा या आंदोलनों में सम्मिलित होना इनका मुख्य उद्देश्य नहीं था अपितु मुख्य उद्देश्य जीवन का विकास करना था। इनकी विचारधारा जीवन बिंदु पर केन्द्रित थी।

इसके अलावा इनमें कवियों का ऐसा समूह भी था जिनका छायावाद युग से इतर युगों से संबंध था तथा उसी से संबंधित काव्य सजन कार्य करते थे। छायावाद के उत्कर्ष को देखकर इसकी ओर आकर्षित हुए तथा छायावादी कविता भी करने लगे। छायावाद की कुछ प्रवत्तियां और विशेषताएं उनके काव्य में परिलक्षित होती हैं। इस प्रकार जीवन केंद्रित कवियों के प्रथम एवं द्वितीय दो वर्ग हैं।

प्रथम वर्ग- इस वर्ग के कवि आंदोलनकारी कवि थे जिनमें माखन लाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बाल कृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान, सियाराम सरण गुप्त तथा भगवती चरण वर्मा आदि प्रमुख हैं। इसमें राम नरेश त्रिपाठी भारतेंदु युग से संबंधित थे। प्रथम वर्ग को 'राष्ट्रीय–सांस्कृतिक धारा' नाम भी दिया गया है।

माखन लाल चतुर्वेदी

व्यक्तित्व- माखन लाल चतुर्वेदी (सन् 1889–1968 ई.) का जन्म ग्राम बाबई, जनपद होशंगाबाद, मध्य प्रदेश में हुआ था। इनके पिता गांव में स्कूल के अध्यापक थे इसलिए इनकी आरंभिक शिक्षा वहीं हुई। ये सजग, उत्साही एवं संवेदनशील थे। देश की दशा के प्रति आरंभ से ही जागरूक थे। इन पर सैयद अमीर अली 'मीर' स्वामी रामतीर्थ तथा माधव राव सप्रे का विशेष प्रभाव पड़ा था। वैष्णव–संस्कार तो इन्हें अपने परिवार से ही मिले थे। जीवन के आरंभिक काल में अध्यापन कार्य करते थे। इनका उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' था। आरंभ में क्रांति–दर्शन से प्रभावित हुए थे किंतु बाद में इनकी आस्था गांधीवाद की ओर हो गई। राजनीतिक सक्रियता के कारण कई बार जेल की यात्राएं की।

कृतित्व- 'हिम किरीटिनी', 'हिमतरंगिनी', 'माता', 'युग चरण', 'समर्पण', 'वेणु लो गूंजे धरा' आदि कविता संग्रह।

पत्रिका- '–कर्मवीर' का संपादन।

साहित्यिक विशेषताएं- जेल में रहते हुए अनेक कविताओं का सजन किया। देश के प्रति गंभीर प्रेम और देश के लिए कल्याणकारी भावना हेतु आत्मोत्सर्ग की उत्कट भावना के दर्शन होते हैं। इस मार्ग पर चलने वाले पथिक को तभी सफलता मिल सकती है जब यह जीवन के सुख और वैभव को ठुकराकर संघर्ष और साधना का मार्ग अपनाएं। इन्होंने भारतवासियों को संघर्ष और साधना के मार्ग का पथिक बनने हेतु प्रेरित किया है। इनकी कई रचनाओं विशेषकर आरंभिक रचनाओं में आध्यात्मिकता को अभिव्यक्ति मिली है। इनकी आध्यात्मिक भावना पर निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति एवं रहस्यवादी भावना का प्रभाव परिलक्षित होता है। इनकी कविताओं की प्रमुख विशेषता राष्ट्रप्रेम तथा आत्मोत्सर्ग है।

रामनरेश त्रिपाठी

व्यक्तित्व- द्विवेदी युगीन राम नरेश त्रिपाठी (सन् 1889–1962 ई.) का जन्म ग्राम कोइरीपुर, जनपद जौनपुर में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव की पाठशाला में ही हुई। अंग्रेजी अध्ययन हेतु जौनपुर के स्कूल में प्रवेश लिया किंतु नौवीं कक्षा तक ही पढ़ पाए। कविता के प्रति इनकी रूचि बचपन से ही थी। गांव के प्रधानाचार्य ब्रजभाषा में काव्य सजन करते थे। उनसे प्रभावित होकर ये भी समस्यापूर्ति करने में लाए गए। 'सरस्वती' पत्रिका के प्रभावस्वरूप खड़ी बोली में लिखने लगे। छायावाद के उत्कर्ष से प्रभावित होकर छायावादी कविता लिखने लगे।

कृतित्व- 'मानसी', 'पथिक', 'स्वप्न' (खंड काव्य)।

साहित्यिक विशेषताएं - अपने खंड काव्यों में परोक्ष रूप से परतंत्रता के बंधन काटने का संदेश दिया है। अनेक कविताओं में पशुबलि की अवहेलना करते हुए निडर होकर स्वतंत्रता के मार्ग का अनुगामी बनने हेतु प्रेरित किया गया है। देशभक्ति की कविताएं भी लिखी हैं। काल्पनिक कथाओं के माध्यम से देशोद्धार हेतु आत्मोत्सर्ग की भावना की अभिव्यक्ति की गई है। इन खंड काव्यों के नायक सामान्य जनता के प्रतिनिधि हैं। 'पथिक' का नायक जनता की विषमता का निवारण करने हेतु राजतंत्र का डटकर सामना करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अंत में उसे अपने परिवार सहित बलिदान देना पड़ता है। 'स्वप्न' में कवि ने संवेदनशील नायक का चयन किया है जो पहले स्वार्थ – लोकसेवा अथवा वैयक्तिक सुख – लोकहित को एक दूसरे का विरोधी मानता था किंतु कर्त्तव्य का बोध हो जाने पर देश कल्याण हेतु तन–मन–धन से दत्त–चित्त होकर लग जाता है। 'पथिक' के विपरीत यह सुखांत काव्य है। इन दोनों काव्यों के द्वारा कवि ने राष्ट्र सेवा के आदर्श की स्थापना की है तथा समाज का विरोध करने वाली शक्तियों के प्रति विद्रोही प्रवत्ति को बढ़ावा दिया है। इस प्रकार ये कल्पित कथानक भी सहज ही कवि के यथार्थ से संबद्ध होकर अधिक सार्थक बन गए हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान-

व्यक्तित्व- सुभद्रा कुमारी चौहान (सन् 1905–1948 ई) का जन्म ग्राम, निहालपुर जनपद प्रयाग में हुआ था। इन्होंने प्रयाग में शिक्षा प्राप्त की। सन् 1921 ई. के असहयोग आंदोलन के परिणामस्वरूप शिक्षा अधूरी छोड़ दी तथा राजनीति में कूदकर सक्रिय कार्य कर्त्ती बन गईं। अपने राजनीतिक कारणों से अनेक बाद जेल की हवा खानी पड़ी। काव्य रचना की प्रवत्ति विद्यार्थी जीवन से ही थी।

कृतित्व- 'त्रिधारा', 'मुकुल', 'झांसी की रानी'।

साहित्यिक विशेषताएं- भाव की दष्टि से इनकी कविताओं के दो वर्ग किए जा सकते हैं–

(i) **राष्ट्रप्रेम-** जिनमें इन्होंने असहयोग आंदोलन या स्वतंत्रता संग्राम में सम्मिलित होने वाले वीरों को अपनी कविता का विषय बनाया है। 'झांसी की रानी' कविता को सामान्य जनता में अत्यधिक ख्याति मिली है।

(ii) **पारिवारिक-** इस वर्ग में वे कविताएं आती हैं जिनके सजन की प्रेरणा इन्हें अपने परिवार से प्राप्त हुई है। ऐसी कविताओं में कुछ कविताएं पति–प्रेम की पारिवारिक भावना से अनुप्राणित हैं एवं कुछ का संबंध संतान प्रेम से है। संतान के प्रति नैसर्गिक वात्सल्य की सहज एवं मार्मिक अभिव्यक्ति इनके काव्य में मिलती है। भाषा शैली भावानुरूप सरल एवं गत्यात्मक है।

सियाराम शरण गुप्त-

व्यक्तित्व- स्वर्गीय राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के अनुज सियाराम शरण गुप्त (सन् 1895–1963 ई) का जन्म ग्राम चिरगांव, जनपद झांसी, उत्तर प्रदेश में हुआ था। शारीरिक रुग्नता एवं पारिवारिक दुखों ने इनके जीवन को अति दुखमय बना दिया था। सरसता एवं नम्रता इनमें कूट कूट कर भरी हुई थी।

कृतित्वः

काव्य- 'मौर्य विजय', 'नकुल', 'अनाथ', 'द्र्वादल', 'विषाद', 'आर्द्रा', 'आत्मोत्सर्ग', 'पाथेय', 'मणमयी', 'बापू', 'उन्मुक्त', 'दैनिकी', 'नोआखाली', 'जयहिंद', 'गोपिका' आदि काव्य कृतियां।

कविताएं- 'इन्दु' एवं 'सरस्वती' में प्रकाशित।

अनूदित- 'गीता संवाद' गीता का अनुवाद।

साहित्यिक विशेषताएं- गांधी की विचारधारा में अत्यधिक आस्था थी। जिसके परिणामस्वरूप इनकी प्रायः सभी रचनाओं में सत्य, अहिंसा, प्रेम के साथ–साथ करुणा, शांति तथा विश्व बंधुत्व की भावना का समावेश दष्टिगोचर होता है। गांधीवादी मूल्यों एवं विचारधारा से इनका सम्पूर्ण काव्य अनुप्राणित है। प्राचीन भारतीय आख्यानों से संबंधित रचनाओं में भी इन्हीं मूल्यों की प्रतिष्ठा करने के प्रयास दष्टिगोचर होते हैं। विषय प्रतिपादन एवं अभिव्यंजना शैली की दष्टि से इनकी रचनाओं पर द्विवेदी युगीन रचना पद्धति का प्रभाव परिलक्षित होता है क्योंकि ये उसी युग से संबंधित थे बाद में छायावादी बन गए। इसलिए

छायावाद की कुछ प्रवत्तियों एवं विशेषताओं के साथ शैली भी छायावादी हो गई है। भाषा शैली में सरलता एवं स्पष्टता है। मुक्त छंदों के प्रयोग में इनको पूर्ण सफलता मिली है।

द्वितीय वर्ग- इस वर्ग के कवि छायावाद से इतर युग के कवि हैं जो छायावाद के उत्कर्ष से आकर्षित होकर छायावादी रचना में संलग्न हो गए उनमें कुछ छायावादी विशेषताएं मिलती हैं। इन कवियों में जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद', रामधारी सिंह दिनकर तथा उदय शंकर भट्ट ऐसी विचारधारा के कवि हैं।

जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद'-

जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद का जन्म सन् 1907 ई. में हुआ। इनकी रचना सन् 1922–1936 के मध्य हुई थी।

कृतित्व- ***कविता संकलन***- 'जीवन–संगीत' – में भारत के सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्रीय चेतना तथा बलिदान की भावना व्यक्त करने वाली कविताओं का संकलन।

रामधारी सिंह दिनकर-

कृतित्व- ***कविता संग्रह*** - रामधारी सिंह दिनकर का इसी शैली का कविता संग्रह 'रेणुका' है।

उदय शंकर भट्ट-

व्यक्तित्व- उदय शंकर भट्ट (सन् 1898–1966 ई.) का जन्म सन् 1898 में हुआ था।

कृतित्व- 'तक्ष शिला' – आख्यान काव्य की गणना भी इसी काव्यधारा के अंतर्गत की जाती है। इस रचना का मुख्य अभीष्ट सांस्कृतिक सौंदर्य गुण गाथा की अभिव्यक्ति है।

3. प्रणय

इस वर्ग के कवियों का मुख्य विषय प्रणय था जो सूक्ष्म या आंतरिक सौंदर्य के प्रति कम बाह्य सौंदर्य की मांसलता के प्रति अधिक था। इन कवियों के काव्य को प्रेम और मस्ती का काव्य भी कहा जा सकता है। पूरी तरह से छायावाद के अंतर्गत न आने वाले कवियों की अपेक्षा हो जाती यदि प्रणय की कल्पना न की जाए। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवती चरण वर्मा, हरिवंश राय बच्चन, नरेंद्र शर्मा आदि कवि इसी कोटि में आते हैं। इन्हीं के संदर्भ में प्रणय मूलक कविताओं का अध्ययन अपेक्षित है। प्रेम और यौवन की प्रखरता तथा आवेश को व्यक्त करने वाली इनकी रचनाओं का प्रकाशन छायावादोत्तर काल में हुआ है किन्तु इनका आरंभिक कृतित्व छायावाद युग में ही प्रकाश में आ चुका था। नवीन की राष्ट्रीय कविताओं के साथ–साथ प्रणय संबंधी रचनाएं भी महत्वपूर्ण हैं।

आलोचकों का कहना है कि प्रणय एवं यौवन का वर्णन, 'आंसू', 'कामायनी', 'पंत के 'पल्लव' तथा निराला के 'तुलसी दास' में मांसल हो गया किन्तु उसका प्रारंभिक रूप ऐसा है कि शीघ्र उसका रूप आध्यात्मिक हो गया है या उसका उदात्तीकरण होकर जन कल्याणकारी हो गया है। इसलिए उसकी मांसलता समाप्त हो जाती है किन्तु इन कवियों की रचनाओं में अंत तक मांसलता विद्यमान रहती है। इसलिए इनकी अलग कोटि बनानी आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

प्रणयवादी इन कवियों की साधना वैयक्तिक है इसका सामाजिक रूप नहीं बन पाया है। जबकि छायावादी व्यक्ति चेतना शरीर से उठकर मन और पुनः आत्मा का स्पर्श करने लगती है। प्रणयवादी कवियों की वैयक्तिक चेतना प्रधान रूप से शरीर और मन के धरातल पर ही व्यक्त होती रही है। इन्होंने प्रणय को ही अपना साध्य बना लिया है। प्रणय का यह काव्य या तो यथार्थ से विमुख होकर प्रणय में तल्लीन दष्टिगोचर होता है या फिर जीवन की व्यापकता को प्रणय की सीमाओं में ही खींच लाता है। नवीन की 'साकी' की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

"हो जाने दे ग़र्क नशे में, मत पड़ने दे फ़र्क नशे में
ज्ञान ध्यान पूजा पोथी के फट जाने दे वर्क नशे में
ऐसी पिला कि विश्व हो उठे एक बार तो मतवाला
साक़ी अब कैसा विलंब भर भर ला तंमयता - लाक्ष्मा।"

प्रणय काव्य में जीवन के विषय में किसी व्यापक परिकल्पना या सिद्धांत का अभाव है। मात्र प्रणय में तल्लीन होने की कामना है – **"वह मादकता ही क्या जिसमें बाकी रह जाए जग का भय।"** प्रणय का यह रूप छायावादी उदात्त प्रेम भावना और अर्वाचीन नई कविता की यौन भावना के मध्य की कड़ी है। छायावादी कवियों ने भी नैतिकता के बोझ से आक्रांत प्रणय को मुक्त करने का प्रयास किया किंतु वे उसे पूरी तरह मुक्त न कर सके उनकी प्रणय भावना आध्यात्मिकता से संपक्त हो गई। प्रणय के साथ–साथ मादकता, शराब, साकी, मैखाना ही नहीं आए अपितु बच्चन की 'मधुशाला' सजकर आ गई।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'-

व्यक्तित्व- बालकृष्ण शर्मा नवीन (सन् 1897–1960 ई.) का जन्म ग्राम भयाना जनपद ग्वालियर में हुआ था। इनकी पढ़ाई ग्यारह वर्ष की अवस्था में शुरू हुई। सन् 1917 ई. में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर कानपुर चले गए। जहां गणेश–शंकर ने इन्हें कॉलेज में प्रविष्ट करा दिया। किंतु सन् 1920 ई. में गांधी के आह्वान पर कॉलेज का अध्ययन त्याग कर राजनीति के सक्रिय कार्यकर्त्ता बन गए। अपने लंबे राजनीतिक जीवनकाल में अनेक बार जेल का सफर करना पड़ा। देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पहले लोक सभा फिर राज्य सभा के सदस्य हो गए।

कृतित्वः

पत्रिकाएं- 'प्रभा', 'प्रताप' का संपादन।

कविता संग्रह- 'कुंकुम'।

काव्य- 'उर्मिला', 'अपलक', 'रश्मिरेखा', 'क्वासि', 'विनोबा स्तवन', तथा 'हम विषपायी जनम के'।

साहित्यिक विशेषताएं- 'उर्मिला' में नवीन ने उर्मिला के चरित्र के माध्यम से भारतवर्ष की प्राचीन आर्य संस्कृति के उज्जवल रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कथानक को अपने परिवेश के यथार्थ से – भारतीय संस्कृति और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के संघर्ष से संबद्ध करने के लिए नवीन ने कुछ प्रसंगों की अत्यंत कौशल पूर्वक संयोजना की है। नवीन की रचनाओं में प्रणय और राष्ट्रप्रेम दोनों भावों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। प्रणय संबंधी रचनाओं में छायावादी प्रणय के समान स्वच्छंदता तथा प्रेम और मस्ती के काव्य – जैसी मार्मिकता दष्टिगोचर होती है। इस रूप में नवीन को परवर्ती प्रेम और मस्ती के काव्य के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इनकी राष्ट्रीय–सांस्कृतिक कविताओं में अनुभूतियों का सीधा संबंध इनके जीवन के साथ है। देश की स्वतंत्रता तथा समाज की नवीन संरचना हेतु इन्होंने जो प्रबल साधना की थी वही साधना निश्छल और सहज शक्ति के साथ इनकी राष्ट्रीय रचनाओं में भी दष्टिगोचर होती है। कविता का विषय अतीत की महिमा का गौरवगान, तत्कालीन भारतीय समाज की रुग्णावस्था के प्रति व्यथा एवं आक्रोश, भविष्य को अवतरित करने की कामना आदि हैं।

कहीं तो नवीन अपना फक्कड़पन दिखाते और मस्ती की अभिव्यक्ति करते हैं, कहीं नशे में गर्क हो जाना चाहते हैं। यथा

"हम अनिकेतन, हम अनिकेतन,
हम तो रमते राम हमारा क्या घर
क्या दर, कैसा वेतन?"

X X X

"हो जाने दो ग़र्क नशे में, मत पड़ने दो फ़र्क नशे में।"

जिस ललक और उत्साह के साथ कर्म और साधना की ओर अग्रसर होते हैं उसी आवेश और आसक्ति के साथ प्रणय में डूब जाना चाहते हैं। फलस्वरूप पहली अवस्था का संघर्ष और तनाव और दूसरी स्थिति की मदहोशी दोनों कार्य कारण भाव से संबद्ध होकर परस्पर पूरक से प्रतीत होते हैं।

भगवती चरण वर्मा-

व्यक्तित्व- भगवती चरण वर्मा का जन्म सन् 1903 ई. में हुआ। इनकी कविताएं सन् 1917 से 'प्रताप' में प्रकाशित होने लगीं थी। स्पष्ट हो जाता है कि चौदह वर्ष की आयु से ही काव्य सजन प्रारंभ कर दिया था।

साहित्यिक विशेषताएं- इनकी अनुभूति दो रूपों में अभिव्यक्त हुई है–

(i) जहां ये अपनी मस्ती एवं फक्कड़पने में अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं–

"हम दीवानों की क्या हस्ती,

हैं आज यहां कल कहां चले।"

ऐसी अनुभूतियां इन्हें नवीन के साथ खड़ा कर देती हैं। किन्तु ऐसी रचनाएं परिमाण में बहुत कम हैं।

(ii) मुख्य रूप से इन्होंने समाज की विषमताओं से पराजित और संघर्ष से विरत एकाकी व्यक्ति की अनुभूतियों को ही अभिव्यक्ति प्रदान की है।

इस प्रकार की रचनाओं में जो बेबसी और कर्म की विमुखता लक्षित होती है वह स्पष्ट ही महान काव्य की रचना में सहायक नहीं हो सकती। छायावादी कवियों में भी इस प्रकार के उद्‌गार मिलते हैं जहां कवि यथार्थ के विषम संघर्ष से विमुख होकर कहीं दूर चला जाना चाहता है। वर्मा की भाषा शैली सरल और स्पष्ट है। छायावादी शैली की तरह तत्सम शब्दों की प्रधानता, सूक्ष्मता या वक्रता के दर्शन नहीं होते हैं। खड़ी बोली कविता के एक नए मोड़ की सूचना देती है।

हरिवंश राय बच्चन-

व्यक्तित्व- हरिवंश राय बच्चन (सन् 1907–2003 ई.) का आरंभिक जीवन कष्टों एवं अभावों में बीता। एम.ए. तक की शिक्षा इलाहाबाद से प्राप्त करके पी.एच.डी. हेतु लंदन चले गए। उससे पूर्व पहली पत्नी की मत्यु हो चुकी थी। दूसरी पत्नी तेजी से विवाह किया। लंदन से वापस आकर विदेश मंत्रालय में सेवारत हो गए। दिल्ली विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर महाविद्यालयों की हिंदी की सभाओं, गोष्ठियों एवं कवि सम्मेलनों में खूब जाते थे। जहां 'मधुशाला' सुनाए बिना छुट्टी नहीं पाते थे। सेवा मुक्त होकर पुत्र अमिताभ बच्चन के साथ मुंबई में रहने लगे वहीं देहावसान हो गया।

असहयोग आंदोलन में सम्मिलित होने के कारण कई बार जेल गए। जिसके परिणामस्वरूप इनकी कविता पूर्णरूपेण जीवन से मुंह नहीं मोड़ सकी। जहां ये 'मधुशाला' में पूरी तरह ग़र्क दष्टिगोचर होते हैं वहां भी इन्हें यह भान रहा है कि मधुशाला धार्मिक – साम्प्रदायिक अंतराल का निवारण कर अनुभूति के धरातल – चाहे वह अनुभूति कर्महीन मस्ती की की क्यों न हो – एकता की स्थापना करती है –

"भेद कराते मन्दिर मस्जिद,

मेल कराती मधुशाला।"

कृतित्व- 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधु कलश'।

साहित्यिक विशेषताएं- इनके काव्य संग्रहों में उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का प्रभाव परिलक्षित होता है। किंतु मधुशाला में डूबा हुआ कवि सामाजिक विषमता से अनजान नहीं है। इसमें एक ओर तो उद्दाम यौवन की लालसा को स्वीकारा है दूसरी ओर उसी स्तर पर सामाजिक संवेदना को भी मुखर करने का सफल प्रयास किया है। परिणामस्वरूप कवि ठोस यथार्थ को पूर्ण रूपेण ग्रहण करने में सफल नहीं हो सका। जीवन की विषमताओं को सामान्य अनुभूति के स्तर पर समाधानित करने का यत्न उसके द्वारा अवश्य किया गया। भाषा की दष्टि से बच्चन का महत्वपूर्ण योगदान है। उनके काव्य में सीधी और स्पष्ट अभिव्यक्ति का स्वरूप मिलता है। कह सकते हैं सरलता एवं स्पष्टता का जो रूप भगवती चरण वर्मा की भाषा का है उसी का विकसित रूप बच्चन की भाषा का है।

नरेंद्र नाथ शर्मा-

नरेंद्र नाथ शर्मा का जन्म सन् 1913 ई. में हुआ।

कृतित्व- 'प्रभात फेरी', 'प्रवासी गीत' तथा 'पलाशवन'।

साहित्यिक विशेषताएं- प्रणयी शर्मा को प्रेम और मस्ती ने प्रभावित तो किया किंतु संयम और निष्ठा ने उन्हें प्रणय के उच्छवास में लड़खड़ाने नहीं दिया। क्योंकि उन्होंने देश के राजनीतिक जीवन में अत्यंत दढ़ता एवं सक्रियता से भाग लिया तथा वे प्रणय को अधिक सहजता के साथ खुलकर व्यक्त कर सके। इनके कविता संकलन भाव प्रधान हैं जिनमें प्रणय के संयोग–वियोग मूलक प्रसंगों का सरल एवं प्रवाहमयी भाषा में चित्रांकन हुआ है।

इस काव्य धारा के अन्य कवियों में गोपाल सिंह नेपाली (जन्म सन् 1902 ई.), हृदय नारायण 'हृदयेश' (जन्म सन् 1905 ई.), हरिकृष्ण प्रेमी (जन्म सन् 1908 ई.) तथा रामेश्वर शुक्ल अंचल (जन्म सन् 1915 ई.) आदि के काव्यों में प्रणय और यौवन की मधुर अनुभूतियों के अनेक मोहक और सरस चित्र मिलते हैं। कवि सम्मेलनों में रंग जमा देते थे। बाद में चलचित्रों के लिए गीत लिखने लगे। इनके गीत भाषा एवं भावभूमि की सरलता के कारण सामान्य जनता को तल्लीन एवं विभोर करने में समर्थ हैं। इनकी कविताओं में प्रणय के अतिरिक्त करुणा एवं हालावाद की अभिव्यक्ति भी मिलती है। हरिकृष्ण प्रेमी की कविताओं में देश प्रेम के साथ साथ प्रणय की तीव्रता एवं यौवन के उल्लास दष्टिगोचर होते हैं। हृदयेश की रचनाओं में विविधता के दर्शन होते हैं। भाषा शैली सरलता के साथ छायावादी वक्रता का पुट भी प्रस्तुत कर देती है। अंचल की कविताओं में मांसल प्रणय की आवेशमयी अभिव्यक्ति मिलती है।

4. हास्य व्यंग्य

छायावाद युग में पर्याप्त मात्रा में हास्य व्यंग्यात्मक काव्य का सजन हुआ है। 'मनोरंजन' के संवादक ईश्वरी प्रसाद इस युग के प्रमुख व्यंग्यकार हैं। तत्कालीन रचित हास्य कविताएं 'मतवाला', 'गोलमाल', 'भूत', 'मौजी', 'मनोरंजन' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं।

ईश्वरी प्रसाद शर्मा-

खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा दोनों में रचनाएं उपलब्ध हैं।

कृतित्व - 'चना चबेना'।

साहित्यिक विशेषताएं- शर्मा ने उस युग के साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दोषों का अन्वेषण किया और उनकी रचना हेतु अपनी पसंद की शैली का व्यवहार किया।

हरिशंकर शर्मा-

इस धारा के वरिष्ठ कवि हैं।

कृतित्व- कोई कविता संकलन प्रकाशित नहीं हुआ है 'पिंजरापोल' तथा 'चिड़ियाघर' नामक गद्य रचनाओं में कुछ हास्य–व्यंग्यात्मक कविताएं एवं पैरोडियों को उसी में सम्मिलित कर लिया है।

साहित्यिक विशेषताएं- सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में व्याप्त पाखंड तथा भ्रष्टाचार पर इन्होंने करारा व्यंग्य किया है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' -

छायावाद युग के व्यंग्यकारों में पांडेय बेचन शर्मा का अलग स्थान है।

साहित्यिक विशेषताएं- व्यंग्य कविताओं एवं पैरोडियों में अत्यधिक नवीनता एवं निडरता विद्यमान है। वर्तमान काल में भी वह प्रभावोत्पादक हैं।

कृष्ण प्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी'-

छायावाद युग में ही नहीं अपितु उसके पश्चात् भी तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक आचार – व्यवहार से संबंधित बुराइयों के प्रति व्यंग्य – विनोद किए हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- उस समय व्यंग्य–विनोद की जो धारा प्रवाहित की वह अपनी व्यावहारिक भाषा–शैली के कारण और भी अधिक महत्व की है। हास्य पुट बर्द्धन करने हेतु इन्होंने अंग्रेजी एवं उर्दू की शब्दावली का अधिक एवं बेधड़क प्रयोग किया है। उपमा तथा वक्रोक्ति के माध्यम से व्यंग्य को प्रखर बनाने में इनको सिद्धहस्तता प्राप्त थी।

हास्य–व्यंग्य की रचना करने वाले अन्य कवियों में अन्नपूर्णानंद (महाकवि चच्चा), कांतानाथ पांडेय, 'चोंच' तथा शिवरत्न शुक्ल आदि भी उल्लेखनीय हैं।

अन्नपूर्णानंद-

साहित्यिक विशेषताएं- अन्नपूर्णानंद ने पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के भौंडे अनुकरण, समाज की कुरीतियों, रूढ़ियों की दासता, मानव स्वार्थ आदि विषयों को व्यंग्य का विषय बनाया तथा उच्च कोटि के व्यंग्य काव्यों की रचनाएं की हैं।

कांतानाथ पांडेय 'चोंच'-

कृतित्व- 'चोंच चालीसा', 'पानी पांडे' तथा 'महाकवि सांड'।

साहित्यिक विशेषताएं- 'पानी पांडे' एवं 'महाकवि सांड़' में इनकी कुछ हास्य रसात्मक कहानियों का भी समावेश किया गया है। सामाजिक कुरीतियों को लक्ष्य करके इन्होंने शिक्षाप्रद व्यंग्य लेखन की नवीन पद्धति का प्रयोग किया है। बेढब बनारसी की तरह अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग द्वारा हास्य की सष्टि करने में इनको अपूर्व सफलता मिली है।

शिवरत्न शुक्ल-

कृतित्व- 'परिहास प्रमोद'

साहित्यिक विशेषताएं- शिव रत्न शुक्ल की विनोदपूर्ण रचनाएं भी अनायास मनमोह लेती थीं। छायावाद में इनकी रचनाएं इनके उपनाम 'बलई' नाम से प्रकाशित होती थीं। समाज में फैले हुए अभिशापों पर व्यंग्य करने के साथ ही इन्होंने पथभ्रष्ट राजनीतिज्ञों को भी नहीं छोड़ा है। उन पर भी करारा प्रहार किया है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरि औध'-

कृतित्व - 'चोखे चौपदे', 'चुभते चौपदे'।

चतुर्भुज 'चतुरेश' -

कृतित्व - 'हंसी का फव्वारा'।

ज्वालाराम नागर 'विलक्षण'-

कृतित्व- 'छायापद'

इसके अतिरिक्त स्फुट व्यंग्य कविता लिखने वालों में जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, मोहन लाल गुप्त तथा श्रीनाथ सिंह आदि हैं। छायावाद युग में समाज, धर्म, राजनीति आदि विभिन्न क्षेत्रों से संबद्ध ऐसी अनेक हास–परिहासात्मक रचनाएं लिखी गईं, जिनमें हास्य की मुखरता और व्यंग्य की तीव्रता स्वाभाविक रूप में विद्यमान है। इन हास्य–व्यंग्यों में छायावादी प्रवत्तियां और विशेषताएं नहीं मिलती हैं क्योंकि विषय की सामान्य सहजता के कारण ये रचनाएं शैली, विचार संरचना आदि की दष्टि से सामान्य ही स्वीकारी जानी चाहिए।

13. उत्तर छायावादी कवि और उनका काव्य

उत्तर छायावादी काव्य की अनेक प्रवत्तियाँ हैं क्योंकि इसे अनेक वादों एवं धाराओं को पार करना पड़ा है जिसके परिणामस्वरूप अनेक जीवन दष्टियां तथा काव्य की वस्तु और शिल्प संबंधी मान्यताएं दष्टिगोचर हुईं। वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता हुई। रोमानी दष्टिकोण आया। बुद्धिवादी यथार्थ दष्टि का प्राधान्य हुआ। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर छायावादी काव्य धारा में उत्तर छायावाद, वैयक्तिक गीति काव्य, राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, नवगीति तथा समकालीन कविता आदि अनेक काव्य धाराओं का आविर्भाव हुआ जिसमें राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य एवं उत्तर छायावाद धाराएं नवीन नहीं हैं। छायावादी काव्यधारा छायावाद में अपना चरम विकास करने के पश्चात् परंपरा का निर्वाह करती हुई परवर्ती काल तक आई। इन कृतियों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है–

राष्ट्रीय सांस्कृतिक- 'नहुष', 'अजित', 'जयभारत', 'कुणालगीत', 'हिमतरंगिनी', 'हिमकिरीटिनी', 'माता', 'समर्पण', 'युगचरण', 'अपलक', 'क्वासि', 'हम विषपायी जनम के', 'विनाबा स्तवन', 'नकुल', 'नोआखाली', 'जयहिंद', 'आत्मोत्सर्ग', 'उन्मुक्त', 'गोपिका', 'हुंकार', 'द्वंद्व गीता', 'इतिहास के आंसू', 'कुरुक्षेत्र', 'दिल्ली', 'रश्मिरथी', 'धूप और धुंआ', 'कुणाल', 'वासव–दत्ता', 'भैरवी, चित्रा', 'युगाधार', 'सूत की माला', 'हल्दी घाटी', 'जौहर', 'विक्रमादित्य', 'मानसी', 'विसर्जन', 'अमत और विष', 'यथार्थ और कल्पना', 'युगदीप', 'विजय पथ', 'एकला चलो रे', 'तप्त गह', 'काल दहन', 'कैकेयी', 'दानवीर कर्ण' आदि।

इनमें 'गोपिका', 'क्वासि', 'अपलक एवं चित्रा' आदि में राष्ट्रीय स्वर गौण है तथा प्रेम का स्वर प्रधान है।

उत्तर छायावाद- 'तुलसीदास', 'अर्चना', 'अणिमा', 'आराधना', 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'मधु ज्वाल', 'युग पथ', 'उत्तरा', 'रजत शिखर', 'शिल्पी', 'अतिमा', 'कला और बूढ़ा चांद', 'लोकायतन', 'दीपशिखा, रूप अरूप', 'शिप्रा', 'अवन्तिका', 'गेघगीत आदि। अणिमा में कुछ कविताएं राष्ट्रीय और सांस्कृतिक व्यक्तियों पर आधारित हैं। पंत की इस काल की सभी उत्तर छायावादी कृतियों में सांस्कृतिक स्वर सुनाई पड़ता है। भौतिकवाद एवं अध्यात्मकवाद के समन्वय की एक बेचैनी इनमें बराबर लक्षित होती है। इस तरह इन कृतियों का मूल स्वर छायावाद है किन्तु विषय की दष्टि से इन्हें अन्याय धाराओं से भी जोड़ा जा सकता है।

वैयक्तिक गीति काव्य- निशा– 'निमंत्रण', 'आकुल अंतर', 'सतरंगिनी', 'मिलन', 'यामिनी', 'रसवंती', 'प्रभात फेरी', 'प्रवासी के गीत', 'पलाशवन', 'मिट्टी और फूल', 'कदली वन', 'मधुलिका', 'अपराजिता', 'लाल चूनर', 'किरण बेला', 'संचयिता', 'कलापी', 'जीवन और यौवन', 'पांचजन्य', 'रूपरश्मि', 'छायालोक', 'उदयाचल', 'मन्वंतर', 'दिवालोक', 'पंछी', 'पंचमी', 'रागिनी', 'नवीन', 'नींद के बादल', 'मंजीर तथा छवि के बंधन आदि। वैयक्तिक गीति काव्य की रोमानी धारा में आने वाली कृतियां छायावाद से अलग हैं। ये कृतियां नई प्रवत्ति की सूचक हैं।

प्रगतिवादी धारा- 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'कुकुरमुत्ता', 'युग की गंगा', 'युगधारा', 'जीवन के गान', 'प्रलय सजन', 'अजेय खंडहर', 'पिघलते पत्थर', 'मेधावी', 'मुक्ति मार्ग', 'जागते रहो आदि कतियों के अतिरिक्त नरेंद्र शर्मा', 'अंचल', 'आरसी प्रसाद सिंह तथ शंभूनाथ सिंह की उपर्युक्त कृतियों की अनेक कविताएं इसी धारा के अंतर्गत आती हैं। प्रगतिवादी और वैयक्तिक धारा की कविताओं का श्रीगणेश सन् 1935 ई. के आस पास हो गया था।

प्रयोगवादी धारा- तार सप्तक (प्रथम)', 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर', 'नाश और निर्माण', 'ठंडा लोहा', 'तार सप्तह (द्वितीय)। प्रगतिवादी और वैयक्तिक कविता धारा की कृतियों के साथ–साथ कुछ ऐसी भी सामने आईं जिन्हें प्रयोगवादी कहा गया। प्रयोगवादी कविताओं का श्री गणेश सन् 1943 ई. के आस–पास हुआ। फिर भी दोनों धाराएं साथ साथ चलती रहीं।

नई कविता- 'तारसप्तक' (द्वितीय) कुछ कविताएं', 'तार सप्तक (ततीय)', 'बावरा अहेरी', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'इंद्रधनुष रौंदे हुए', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'आंगन के पार द्वार', 'शिलापंख चमकीले', 'धूप के धान', 'अनागता की आंखे', 'अर्द्ध शती', 'माध्यम मैं', 'कुछ और कविताएं', 'कुछ कविताएं', 'खंडित सेतु', 'गीत फ़रोश', 'बुनी हुई रस्सी', 'चकित है दुख', 'स्वप्न भंग', 'अनुक्षण कोपल', 'चांद का मुंह टेढ़ा', 'ओ अप्रस्तुत मन', 'वन पाखी सुनो', 'संशय की एक रात', 'सात गीत वर्ष', 'अंधा युग',

'कनुप्रिया', 'मग और तष्णा', 'मछलीकर', 'काठ की घंटियां', 'बांस के पुल', 'एक सूनी नाव', 'चक्रव्यूह', 'आत्मजयी', 'परिवेश हम तुम', 'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्म हत्या के विरुद्ध', 'वंशी और मादल', 'नाव के पांव', 'हिम विद्य', 'माया दर्पण', 'इतिहास पुरुष', 'अकेले कंठ की पुकार', 'एक कंठ विषपायी', 'मुक्ति प्रसंग', 'अतुकांत', 'आत्म निर्वासन तथा अन्य कविताएं', 'अभी बिलकुल अभी', 'पक गई धूप', 'उजली कसौटी', 'इतिहास का दर्द आदि तथा वे सभी कृतियां जिनकी चर्चा तार सप्तकों के बाहर के कवियों के संदर्भ में की गई है', 'नई कविता की कृतियां हैं। प्रतीक', 'नई कविता', 'निकष', 'संकेत', 'विविधा', 'आदि में संकलित कविताएं भी नई कविता के अंतर्गत आती हैं। कल्पना', 'कृति', 'लहर तथा ज्ञानोदय आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएं भी नई कविता में आती हैं।

प्रयोगवाद ही आगे चलकर नई कविता में परिवर्तित हो गया है। इसलिए नई कविता में प्रयोगवाद के अनेक तत्वों का समावेश मिलता है फिर नई कविता का स्वतंत्र विकास हुआ है। बहुत से ऐसे कवि भी हैं जो दोनों धाराओं में कविता करते रहे हैं। इसलिए उनकी कृतियों के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि उनका मिश्रित रूप है। यह कहना कठिन है कि कहां तक प्रयोगवादी है कहां से नई कविता के कवि बन जाते हैं। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि सन् 1950 ई. के बाद की नए भावबोध की कविताओं को नई कविता की संज्ञा दी जा सकती है और प्रयोगवादियों की भी सन् 1950 ई. के बाद की कविताओं को नई कविता कह सकते हैं। फिर भी सन् 1952 ई. में प्रकाशित तारसप्तक (द्वितीय) की अधिकांश कविताएं अपने व्यक्तिवादी दष्टिकोण के कारण प्रयोगवाद में ही समाविष्ट की जाती हैं। इसलिए नई कविता को प्रयोगवाद के क्रम में ही मानना औचित्यपूर्ण है। यदि सन् 1950 ई. को विभाजक रेखा मान लिया जाये तो द्वितीय तार–सप्तक की कुछ कविताएं नई कविता के अंतर्गत आ जाती हैं।

उत्तर छायावादी काव्य-

उपर्युक्त काव्यों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता के पश्चात् काव्य रूप में इस प्रकार मोड़ आया जो सर्वथा नवीन था उसे प्रगतिवाद की संज्ञा दी गई। उसके बाद परिवर्तन आते गए। किन्तु छायावाद के पश्चात् ऐसा निश्चित मोड़ नहीं आया जिसे नया नाम दिया जा सके।

भारतेंदु युग से चली आती राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा इस काल तक आई। यही स्थिति वैयक्तिक गीतों की रही। छायावाद के बाद काव्य प्रणाली में परिवर्तन आया। यद्यपि छायावादी कुछ प्रवत्तियां विद्यमान रहीं। इस दष्टि से उत्तर छायावादी काव्य को (i) उत्तर छायावाद, (ii) वैयक्तिक गीत काव्य तथा (iii) राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता तीन उप वर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

(i) उत्तर छायावाद

छायावाद की काल सीमा सन् 1918 से सन् 1939 ई. तक मानी गई। छायावादी महान चतुष्टयी के मूर्धन्य महाकवि जयशंकर प्रसाद की मत्यु सन् 1936 ई. में हो गई। चतुष्टयी के मात्र तीन ही उत्तर छायावाद में अवशिष्ट हैं पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रा नंदन पंत तथा महादेवी वर्मा जिनकी काव्यकृतियों में छायावाद के बाद विशिष्ट परिवर्तन परिलक्षित होता है।

पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला-

निराला के गीत नई संभावनाओं के सूचक हैं। उनमें लोकोन्मुखता की शक्ति का विकास परिलक्षित होता है। यह लोकोन्मुखता निराला काव्य में प्रारंभ से दष्टिगोचर होती है। निराला का जीवन संघर्षमय तथा लोक–संपक्त था। इसलिए स्वाभाविक रूप से वे प्रेम सौंदर्य के साथ–साथ जीवन के अन्य अनुभवों को भी अपने में समेटे हुए हैं। वे व्यक्तिगत प्रणय के गीत न गाकर लोक जीवन से संबंधित सुख–दुख, मानव यातना एवं जीवन संघर्ष की सशक्त अभिव्यक्ति करते आए हैं। ऐसे समय में उनकी वैयक्तिक प्रणयानुभूति भी एकांतवासिनी न होकर लोक–गंधित हो उठती है। निराली की इस प्रवत्ति को उत्तर छायावाद काल में विशेष रूप से विकसित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जिसके परिणामस्वरूप उनकी इस प्रवत्ति ने दो रूप धारण किए – (i) छायावाद इतर प्रगतिवादी कविताएं लिखना (ii) छायावादी काव्यधारा के स्वर का अधिक लोकोन्मुखी होना। प्रगतिवादी कविताओं में छंद, भाषा एवं भाव सभी दष्टियों से छायावादी प्रभाव से पूर्ण मुक्तता परिलक्षित होती है। इस प्रकार की कविताओं में 'कुकुरमुत्ता', 'प्रेम संगीत', 'गर्म पकौड़ी', 'रानी कानी', 'मास्को डायलाग्स', 'खजोहरा', 'नए पत्ते' तथा 'स्फटिक शिला' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं जिनमें प्रगतिशीलता दार्शनिक रूप में नहीं अपितु लोकानुभूतियों के रूप में है। इनकी भाषा लोकभाषा

है। मुहावरे लोक तथा शैली भी लोक हैं। लोक कथात्मक तथा संवादात्मक शैली प्रयुक्त है। निराला इस तथ्य से अवगत थे कि लोक जीवन को केवल उसके भाव, दश्य एवं व्यापार से नहीं ग्रहण किया जा सकता अपितु उस हेतु भाषा अपेक्षित है।

निराला ने छायावादी 'अणिमा', 'अर्चना' तथा 'आराधना' आदि कविताओं में एक से स्वानुभूतिपरक गीतों की संरचना की है दूसरी ओर 'विजय लक्ष्मी पंडित', 'प्रेमानंद', 'संत रविदास', 'प्रसाद एवं बुद्ध' आदि व्यक्तियों को अपनी प्रशंसात्मक कविताओं का विषम बनाया है। ये गीत विभिन्न प्रकार के हैं – प्रेमसंवेदना प्रार्थना परकता, मानवीय संवेदना आदि की इनमें अभिव्यक्ति हुई है। सन् 1938 ई. से पूर्व की कविताओं में भी निराला की ये विशेषताएं दष्टिगोचर होती हैं। अनुपात भिन्नता अवश्य है। 'तुलसीदास' उत्तर छायावाद को निराला की विशिष्ट देन है। जिसमें भारत को सांस्कृतिक एवं सामाजिक पराजय के ग्हवरगर्त से उबारने का दढ़ संकल्प है। निराला की लोकवादी कविताएं इस युग की नवीन देन हैं यद्यपि उन्हें कविता की उपलब्धि के स्वरूप स्वीकारा नहीं गया है किंतु भाषा एवं नवीन प्रयोग के रूप में उनका विशेष महत्व है। इन कविताओं में ठहराव को तोड़ने की शक्ति है जो जनजीवन से समग्र रूप से जोड़ती है। निराला इस काल की कविताओं में जीवनानुभूति के स्वरों में टूटन एवं पराजय की प्रमुखता है। जो उन्हें भक्तिभावना की ओर प्रेरित करती है। साथ ही कवि का संतुलित मानस प्रेम, भक्ति, खुलेपन एवं उलझाव का ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत करता है कि ये कविताएं उस उलझाव से ग्रसित हो जाती हैं।

सुमित्रानंदन पंत-

पंत इस कालावधि में स्वचिंतन एवं विषय में अधिक विकासशील रहे। सन् 1936 ई. में 'युगांत' की घोषणा करके पंत ने सन् 1939 ई. में 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचना की। जहां वे मार्क्सवाद, भौतिक दर्शन तथा जन–जीवन के सत्यों की ओर झुक गए। निराला ने चिंतन के द्वारा नहीं अपितु संवेदना और अनुभव के द्वारा जन–जीवन को अपनाया। इसलिए उनके काव्य को मार्क्सवादी या समाजवादी दर्शन का स्पष्ट स्वरूप नहीं मिल सका। जनजीवन अपने समस्त संवेदन के साथ व्यक्त हुआ। पंत ने मार्क्सवादी दर्शन को चिंतन के स्वर पर स्वीकारा। इसलिए वे मार्क्सवादी सिद्धान्त की अभिव्यक्ति करने में व्यस्त रहे। कवि ने मार्क्सवादी दष्टि के प्रकाश में ग्रामीण जीवन की विविध छवियों का अति रमणीय चित्रांकन किया है। कुशल शिल्पी पंत को ग्रामीण बाह्य जीवन के यथार्थ ने जितना अपनी ओर आकर्षित किया है उतना आंतरिक चेतना ने नहीं।

'ग्राम्या' के पश्चात् का कवि अरविंद के प्रभाव में आकर प्रगतिवाद के भौतिक भटकाव से मुक्त होकर आध्यात्मिक लोक की ओर अग्रसर हो जाता है। जिससे वैचारिक स्तर पर छायावाद को एक नवीन दिशा एवं समद्ध आधार सुलभ हो जाता है। मार्क्सवाद से संतुष्ट न होकर उसकी आवश्यकता को स्वीकारता है। प्रारंभ से ही कवि मानस मात्र के सुख, प्रेम एवं शांति का प्रबल कांक्षी रहा है। पंत इस तथ्य से अवगत थे कि एकांगी मार्क्सवाद मात्र भौतिक योग क्षेम की व्यवस्था करने में समर्थ है। इसे पर्याप्त न मानकर पंत अरविंद में भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद को समन्वित करने की अन्वेषणा करने में लग जाते हैं। समन्वय का यही स्वर उनकी परवर्ती रचनाओं 'स्वर किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'शिल्पी' तथा 'लोकायतन' में दष्टिगोचर होता है।

पंत की काव्य विकासीय यात्रा में काव्य पक्ष दबता गया है, धारणा पक्ष उठता गया है जिसके परिणामस्वरूप वे मानव समाज की समस्याओं, उनके समाधानों तथा नवीन विचारों को धारणा एवं आकांक्षा के स्तर पर स्वीकारते हैं, अनुभूति के स्तर पर नहीं। मार्क्सवाद एवं अरविंद दर्शन दोनों ही पंत काव्य को समद्ध बनाने में सहायक एवं सफल नहीं हो सके हैं।

महादेवी वर्मा-

'दीपशिखा' महादेवी वर्मा का उत्कृष्ट काव्य है। प्रेम उनका प्रमुख विषय है। संयोग–वियोग के उभार में प्रेम को विभिन्न दष्टिकोणों से उन्होंने अपने अनुभव के आलोक में झांका है। वेदना उनकी मूल संवेदना है जो विरह जन्य है। करुण वेदना एवं निराशा से आक्रांत इनका प्रारंभिक काव्य 'दीपशिखा' कुछ आलोक प्राप्त करने में सफल हो सका है। आशा, उल्लास एवं मिलन भाव द्रष्टव्य हैं–

(i) सब बुझे दीपक जला लूं।
फिर रहा तम आज दीपक रागिनी अपनी जगा लूं।

(ii) हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन।
अगरु धूम सी सांस सुधि गंध सुरभित।

महादेवी में गीति काव्य के उत्कर्ष की अति संभावना है। लेकिन यह रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता को कुंठित करने में सफल हो जाता है। संवदेनाएं सीमित हैं जो विभिन्न प्रतीकों एवं रूपकों के आधार पर अभिव्यक्ति प्राप्त करती हैं। प्रतीक एवं रूपक भी अति सीमित एवं अभिजात हैं।

लौकिक संवेदनाएं रहस्यवादी आभास से संपक्त होकर नए अर्थ का विस्तार करती हैं किन्तु उनकी लौकिक मूर्तता, प्रत्यक्षता तथा तीव्रता विलीन हो जाती है। महादेवी के प्रमुख प्रतीक चंदन, दीप, मेघ, क्षितिज, मंदिर, करुण, आकाश, धूलि, सागर, विद्युत हैं जिन्हे पुनः–पुनः भावाभिव्यक्ति हेतु प्रयुक्त किया जाता है। परिणाम यह होता है कि रहस्यात्मक संकेत उन्हें उलझा लेते हैं। वैयक्तिक एवं छायावादी सीमाओं के होते हुए भी महादेवी छायावाद की विशिष्ट ही नहीं समर्थ कवयित्री हैं तथा 'दीपशिखा' उनकी विशिष्ट कृति है। रहस्य एवं संकोच के आवरण के होते हुए भी कवयित्री की अंतरंग निजता उनके गीतों में प्रवाहमान रहती है। कहीं–कहीं उनकी पारदर्शिता समग्र दश्यों को समेटकर उसी की ओर संकेतित करने लग जाते हैं वहां उनके गीतों की रचना अति उत्कृष्टता को प्राप्त करती है। महादेवी के गीतों में सूक्ष्म चित्रात्मकता सर्वत्र विद्यमान है। उनके चित्र रूप जगत तथा भावजगत दोनों के हैं। रूप जगत के चित्रों की संयोजना कवयित्री के मानसिक संदर्भ में ही की गई है। लोक परिवेश और लोक भाषा से दूर, सीमित आत्मानुभूति की परिधि में विचरण करने वाले, भाषा की अभिजात छवि से मंडित ये गीत शब्द चयन, पद संतुलन, बिंब ग्रहण, प्रांजलता, कोमलता और स्वर लय में अपनी अति विशिष्टता का प्रतिपादन करते हैं।

वैयक्तिक गीति काव्य- कवि दष्टि एवं विषय के दष्टिकोण से छायावाद एवं वैयक्तिक गीति काव्य में अत्यधिक समानता है। कवि दष्टि रोमानी है वस्तु जगत के प्रति इनकी प्रतिक्रिया अत्यंत भावुक है। इनका संबंध वस्तु जगत से नहीं अपितु वस्तु जगत की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न स्व सुख–दुखात्मक आवेग से था। इनकी कविताओं में भयंकर आत्म संपक्ति एवं उत्तेजना मिलती है। इनका काव्य विषय मूलतः सौंदर्य एवं प्रेम तथा उसके कारण उत्पन्न उल्लास एवं विषाद की अनुभूति थी। गीति को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। क्योंकि इनके काव्य विषय की प्रकृति छायावादी काव्य की प्रकृति के समान गीतात्मक है। इनकी कृतियों में संकोच, रहस्यमत्यता तथा आदर्शवादिता को स्थान नहीं मिला है। बड़े उत्साह के साथ स्पष्ट तौर पर ये अपने वैयक्तिक प्रेम संवेग एवं सुख–दुख को व्यक्त करने के लिए छटपटाते रहते हैं। इनकी वेदना सामान्य न होकर वैयक्तिक है जो अनुभव का बिंब उकेरने में पूर्ण सफल हैं। 'मैं' द्वारा वैयक्तिक गीत स्व अनुभव व्यक्त करते हैं। वैयक्तिक गीत काव्य का 'मैं' बिना किसी संकोच, मर्यादा, भय या आतंक डर के निर्व्याज भाव से राग विराग के साथ स्वतः बह निकलता है।

लौकिक प्रेम इनकी केन्द्रीय वत्ति है। प्रेम के संयोग–वियोग जन्य उल्लास, पीड़ा, उदासी, टूटन एवं असंतोष आदि का सघन स्वर इनकी कविताओं में मुखरित हो उठता है। परिवेश, अनुभव एवं संस्कारानुसार कवि स्वरों में वैविध्य पाया जाता है किंतु मूल वत्ति में कोई अंतर दष्टिगोचर नहीं होता है। प्रेम लौकिक सौंदर्यालंबन पर आधारित होने के फलस्वरूप अधिक मूर्तता ग्रहण करता है। इनका हर्ष–विषाद, आदर्श का छलिया नहीं है जो भू–नभ के मध्य झुकना नहीं जानता है। पथ्वी के विशुद्ध धरातल पर यात्रा करने वाला भू परिवेश के मध्य एवं स्व–स्वरूपानुसार अत्यधिक स्पष्ट एवं उघड़ा हुआ होता है। हरिवंश राय बच्चन के 'निशा निमंत्रण' एवं 'एकांत संगीत' काव्य यदि प्रेम के विषाद की गहनता को व्यक्त करते हैं तो मिलन–यामिनी, मिलन की मादकता तथा उमंग को। नरेंद्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत' में यदि लौकिक विरह–व्यथा की प्रधानता है तो अन्य कृतियों में प्रेयसी के सौंदर्य, भोग और संयोग की ऊष्मा के मादक चित्र भी विद्यमान हैं। यही स्थिति इस धारा के अन्य कवियों अंचल, नवीन एवं दिनकर आदि की कविताओं में दष्टिगोचर होती है।

वैयक्तिक गीति काव्य धारा का मूल स्वर प्रेम है। प्रेम जन्य व्यथा एवं उदासी सर्वत्र व्याप्त है। इनकी स्वच्छंद वत्ति सौंदर्य और प्रेम की पिपासा लिए उड़ान भरती है, उसकी तप्ति कहीं नहीं हो पाती थी जिससे उड़ान की तीव्रता में इनका सामाजिक प्रतिबंधों से टकराव होता था। परिणाम टूट जाते थे। टूटन विरह व्यथा का रूप धारण कर लेती थी जिससे कवि को यह अनुभूति होती थी कि विश्व को उसके ये गीत वासना के गान प्रतीत हो रहे हैं। अनुभव के इन सत्यों को उसका स्वच्छंद हृदय अनियंत्रित, निर्लिप्त भाव से गाना चाहता था। हरिवंश राय बच्चन ने अपने और सामाजिक तनाव को स्पष्ट अनुभव करते हुए 'मधुकलश' में लिखा है–

(i) "कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्‌गार मेरा।"

(ii) "वद्ध को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी।"

(iii) "शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा।"

निराशा एवं उदासी के स्वर की मुखरता मात्र प्रेम मूलक नहीं है अपितु जीवन के अन्य संदर्भों को भी उसकी मुखरता का अवलोक कहा जा सकता है। देश की परतंत्रता, सामाजिक कुरीतियों अंध विश्वासों, धार्मिक बाह्याडंबरों, आर्थिक विषमता आदि के अनुभव की भयंकरता से गुजरता हुआ अकेला, स्वच्छंद, संवेदनशील युवा मानव पुनः पुनः अपनी टूटन का अनुभव कर रहा है। उसका वैयक्तिक आक्रोश का स्वर संपूर्ण कुरूपताओं को अस्वीकारता हुआ, स्वयं को कहीं स्वीकृत न पाता हुआ 'स्व' में ही प्रत्यावर्तित हो जाता था। अपने को आत्मपीड़न, कुंठा, संत्रास, टूटन, घुटन की एक नवीन चादर से आच्छादित कर उन्हीं अनुभूतियों को गाता चलता था। इनके पास जीवन दष्टि का अभाव था न तो पुरानी आध्यात्मिक जीवन दष्टि थी न नवीन समाजवादी दष्टि। इनके अनुभव ही इनका परिचालन कर रहे थे। इनके अनुभव भावुक हृदय के अनुभव थे। उनका दष्टिकोण रोमानी था अतः वे व्यक्ति को न तो सामाजिक शक्ति से जोड़ सके न आध्यात्मिक आदर्शों से। जीवन दष्टि के अभाव में ये व्यक्तिवादी अनुभव निराशा, मत्यु की छाया और नियति बोध से ग्रसित हैं। इनका अनुभव जहां अपनी तीव्रता में सूक्ष्म, किंतु खुले हुए बिंबों की रचना में एक नवीन साहित्यिक सौंदर्य की सष्टि करता है। वहां अपने आत्यंतिक अकेलेपन, उदासी और अपने दोहराव में क्षयोन्मुख दष्टिगोचर होने लगता है। जहां यह काव्यात्मक दष्टि से सपाट हो जाता है वहां अपनी सार्थकता किसी भी प्रकार प्रमाणित नहीं कर पाता है।

"कितना अकेला आज मैं
संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूटा हुआ
परिवार से छूटा हुआ, किंतु अकेला आज मैं।"

-एकांत संगीत

वह अकेला अपने चारों ओर मात्र अवसाद देखता है। अवसाद खुला हुआ लौकिक अवसाद है। कवि का साथ ईश्वर ने भी छोड़ दिया है। देवता भी नहीं है। समाज की रूढ़िवादिता भी नहीं है। कोई संस्था नहीं है। उसे किसी का आश्रय अर्थात् तिनके का भी सहारा प्राप्त नहीं है। सहारा मात्र प्रेयसी के मिलन की आशा है जो दूर कहीं तारा सी टिमटिमा रही है किन्तु मग मरीचिका में प्रेयसी से मिलन भी नहीं हो पाता है। ऐसी अवस्था में कवि अपनी नंगी पीड़ा, असफलता, निराशा को प्रत्यक्ष बेलौस झेलता हुआ जीवन को असफल एवं निराधार अनुभव करता है।

इस प्रकार की वैयक्तिक, निराशापूर्ण, निराधार अनुभव–यात्रा के दो परिणाम दष्टिगोचर होते हैं–

(i) यह विश्वास निश्चित हो गया है कि जीवन क्षणभंगुर है। इस अवसाद–विषय के विस्तार में यदि उल्लास के कुछ क्षण मिल जाते हैं तो उन्हें मस्ती से भोगो। भोग के समय आगा–पीछा मत देखो।

(ii) कवि को विश्वास है मद्यपान दुखों से छुटकारा दिलाता है इसलिए अपने दुखों को भुलाने के लिए मधु का सहारा लेता है। क्योंकि अन्य सहारों का उसे सहारा नहीं है। इतना ही नहीं वह अपनी मादकता, प्रेम या उल्लास की उत्तेजना को तीव्र करने हेतु मधुशाला के मार्ग पर चल पड़ता है क्योंकि मधुपान करना चाहता है।

यह मधु शनैः शनैः इतना आत्मीय हो जाता है कि वह अन्य जीवन सत्यों का प्रतीक बन जाता है। 'मधुशाला' एवं 'मधुबाला' में ऐसा ही हुआ है। वैयक्तिक गीति काव्य में कहीं–कहीं प्रगतिवादी कविता जैसा विद्रोह ध्वनित हुआ है जैसे बच्चन के 'बंगाल का काल' नरेन्द्र शर्मा के 'अग्निशस्य' अंचल की 'किरण बेला' तथा शंभुनाथ सिंह के 'मन्वंतर' आदि में। समाज में व्याप्त असंतोष तथा वैयक्तिक अस्वीकृति की प्रबल भावना के कारण कवियों में विद्रोही भावना परिलक्षित होती है। विद्रोह के ये दो प्रमुख कारण हैं किन्तु इस धारा में व्याप्त समस्त विद्रोह स्वर मूलरूप से समान है। उसमें वैयक्तिक भावावेश का आधिक्य है। सामाजिक दर्शन तथा रचनात्मक चिंतन अपेक्षाकृत न्यून है।

अभिव्यक्ति की सादगी वैयक्तिक गीति काव्य की प्रमुख विशेषता एवं देन है। कवि अति सीधे–सादे शब्दों का प्रयोग करके अपने गहनातिगहन भावों की अभिव्यक्ति अति सहजता एवं सरलता से करता है। सर्व परिचित चित्रों, तथा सरल, लघु, सारगर्भित कथन भंगिमा से अपने कथ्य को सहृदय तक प्रेषित कर देता है। इसलिए कवि की शक्तियां–अशक्तियां दोनों अति स्पष्टता

से उभर कर सामने आती हैं। शक्तियों की यह विशेषता है कि वे अस्पष्ट बिंबों में अपने को उलझाकर अपनी तीव्रता एवं प्रभाव नष्ट नहीं करती हैं तथा अशक्तियां रहस्यात्मकता का लाभ उठाकर अपनी महानता को आभासित नहीं कर पातीं। गीति काव्य के कवियों की संवेदना भक्तिवादी है। किन्तु वे अपने को जिस माध्यम, परिवेश, प्रकृति चित्र, बिम्ब, उपमा, भाषा आदि के द्वारा व्यक्त करना चाहते हैं वह अति परिचित होता है, लोक का निकटस्थ होता है इसलिए मांसल एवं मूर्त की प्रतीति करवाता है। काव्य भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी शब्द चयन, पद विन्यास हमें अपना सा प्रतीत होता है। बोलचाल के शब्दों और मुहावरों का पर्याप्त प्रयोग भाषा को जीवंत रूप प्रदान करता है। वैयक्तिक गीति काव्य धारा के कवियों में हरिवंशराय बच्चन, नरेंद्र शर्मा तथा रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के नाम प्रमुख हैं–

हरिवंशराय बच्चन-

वैयक्तिक गीति काव्य धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हरिवंश राय बच्चन हैं। धारा की समस्त संभावनाएं एवं सीमाएं बच्चन में एकत्रित हैं। बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं। आत्मानुभूति की सघनता वाली कृतियां तीव्र प्रभावोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी हैं। आत्मानुभूति के साथ अवधारणा का समावेश हो जाने के परिणामस्वरूप प्रभावान्विति टूट–टूट गयी है। 'निशा निमंत्रण', 'एकांत संगीत' तथा 'मिलन यामिनी' के गीत इस दष्टिकोण से यदि गीत काव्य की उपलब्धियां हैं तो अवधारणाएं अनुभूतियों के रंग में सराबोर हैं। बच्चन ने स्वानुभूति जन्य सौंदर्य, सुख–दुख तथा प्रेम विषयक गीत अति उन्मुक्तता तथा सहजता से गाए हैं। यहीं तक अपने को सीमित न करके सामाजिक विकृतियों के चित्रण तक पहुंचाया है। उनके प्रति विद्रोही भावना भी दष्टिगोचर होती है। बच्चन के गीतों ने अपनी सहज भाषा और अनुभूति की निश्छलता के फलस्वरूप गीति काव्य को नवीन गरिमा प्रदान की है। लेकिन जब उनमें उत्तेजना आ जाती है, भाषा सपाट हो जाती है, शब्द बिंबों का अपव्यय होता है तथा स्फीति आ जाती है तब अप्रभावी हो जाते हैं। बच्चन के काव्य सौंदर्य के धरातल, ऊंचाई–निचाई एवं सपाटता की अत्यधिक विषमता दष्टिगोचर होती है। बच्चन ने निर्भय भाव से अपने परिचित विश्व का परित्याग कर यथार्थवादी नवीन विश्व में पदार्पण किया है तथा उसके अनुसार भाषा की खोज की है।

नरेंद्र शर्मा-

नरेंद्र शर्मा के गीत अपनी विशिष्टता के फलस्वरूप औरों से भिन्न हैं। उनमें आत्मीयता एवं चित्रात्मकता की प्रधानता है। सुख–दुख का निवेदन बिना किसी माध्यम के सीधे प्रेमपात्र को किया गया है। माध्यम के अतिरिक्त किसी अवधारणा या छल कपट अथवा बांकपने को भी अवसर नहीं मिला है। गीतों के परिवेश में कवि एवं सहृदय दोनों के परिवेश का समन्वय होता है। जो कवि के अनुभवों को जीवंत बनाता है। ऐसा लगता है नरेंद्र शर्मा के गीत अपने हैं। इनमें प्राकृतिक परिवेश भी होता है। नरेंद्र के गीति काव्यों का विषय मानवीय सौंदर्य, प्राकृतिक सौंदर्य तथा तज्जन्य विरह मिलन की अनुभूतियां हैं। इन्होंने सामाजिक यथार्थ का सफल चित्रण किया है। सामाजिक विसंगतियां इनके लिए असह्य हैं इसलिए उनके प्रति इनकी विद्रोही प्रवत्ति परिलक्षित होती है। नरेन्द्र की दष्टि रोमानी है जिसमें सामाजिकता का समावेश है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

व्यक्तित्व- रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का जन्म सन् 1915 ई. में किशनपुर में हुआ था एम.ए. की शिक्षा प्राप्त करके जबलपुर के इंस्टीट्यूट ऑफ लैंग्वेजेज़ ऐंड रिसर्च के हिंदी विभागाध्यक्ष रहे। बाद में राजकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रायगढ़ के आचार्य हो गए।

साहित्यिक विशेषताएं- 'अंचल' तीव्र रोमानी संवेदना के कवि हैं। उनकी यायावर प्रवत्ति के फलस्वरूप उनके सामाजिक यथार्थ वाले काव्यों में रोमानी संवेदना प्रमुख रूप से दष्टिगोचर होती है। रूपासक्ति, वासना, पीड़ा एवं जिजीविषा में इनका उद्दाम रूप ही दिखलाई पड़ता है जिसने इनके काव्य का सजन किया है। वासना की प्रबलता इनके काव्य को सामाजिक संयम से अलग कर देती है। रचनात्मक स्तर पर उनमें गहनता तथा संश्लिष्टता का अभाव आ जाता है उसका स्थान उत्तेजना ग्रहण कर लेती है। 'अंचल' के व्यक्तित्व पर स्नायविक तनाव इतना हावी है कि वे लगातार येनकेन प्रकारेण काव्य में श्रंगारिक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करते रहते हैं इसके अभाव में उन्हें संतुष्टि नहीं मिलती है।

14. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा

परिवेशानुसार 'राष्ट्रीय' शब्द में अर्थ परिवर्तन होता रहता है। राष्ट्रीय शब्द में आधुनिकता के समावेश से जाति, धर्म, संप्रदाय, निश्चित भू–भाग आदि की संकीर्णता के स्थान पर आधुनिक काल में समग्र देश, उसके अंदर निवास करने वाली सभी जातियां, विभिन्न भूखंडों, संप्रदायों एवं रीति–रिवाजों के लोगों का संश्लिष्ट, सामूहिक रूप उभर कर सामने आया है क्योंकि भूमि, भूमिवासी जन और उनकी संस्कृति को राष्ट्र की संज्ञा दी जाती है। राष्ट्र में संस्कृति समाहित होती है। संपूर्ण भारतवर्ष की अखंडता एवं एकता के रूप में राष्ट्रीयता का अर्थ विकसित हुआ। अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत अनेक छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। उस समय राष्ट्रीयता में अखंडता के स्थान पर हिंदुत्व आदि को प्रधानता दी जाती थी रीति कालीन भूषण की राष्ट्रीयता ऐसी ही थी। आजादी से पूर्व सभी धर्म एवं जाति के लोग एकत्रित हो अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होने के लिए स्वतन्त्रता संग्राम में एकजुटता राष्ट्रीयता बन गई। स्वधीनता आंदोलन और उसका देशव्यापी प्रसार राष्ट्रीय क्रिया कलाप में समाहित हो गया। पाश्चात्य राष्ट्रीयता भारतीय राष्ट्रीयता से भिन्न है क्योंकि वहां परतंत्रता नहीं थी। भारतीय राष्ट्रीयता में स्वरक्षा एवं स्वविकास दोनों हैं जबकि पश्चिम में स्वविकास ही प्रधान है। भारत में संस्कृति, भाषा की भिन्नता होते हुए भी राष्ट्रीय एकता मुख्य है। प्राचीन संस्कृति एवं प्राचीन आध्यात्मिकता राष्ट्रीय एकता का वह मूल स्रोत है जो सबको सूत्रबद्ध करता है। इस कालावधि की राष्ट्रीयता में (i) पराधीनता की यातना का अनुभव तथा उससे मुक्ति पाने हेतु किये गए प्रयत्न। (ii) पश्चिमी सभ्यता और अलगाव की भावना से आक्रांत होती हुई भारतीय चेतना का उद्धार करने हेतु उसमें एकता एवं स्वाभिमान का बल फूंकने के लिए अपनी प्राचीन संस्कृति के समुज्जवल रूप का प्रस्तुतिकरण तथा (iii) उपयोगी आधुनिक मूल्यों के संदर्भ में राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिकता का पुनर्विचार तथा पुनर्गठन। स्वतंत्रता के पश्चात् प्रथम दो उद्देश्य पूरे हो गए हैं। मात्र तीसरे तत्व की सार्थकता अवशिष्ट है। नवीन विशेषताएं देश का विकास, राजनीतिक व्यवस्था की प्रतिष्ठा एवं नवीन राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय परिवेशों के कारण उत्पन्न समस्याएं तथा उनके समाधान खोजने की चेष्टा। आधुनिक राष्ट्रीयता का प्रारंभ भारतेंदु युग से हुआ। वर्तमान राष्ट्रीयता मानवीय एवं सार्वभौम प्रश्नों तथा संवेदनाओं से संपक्त होती चली जा रही है। इस काल में राष्ट्रीयता कहीं खंडित रूप में कहीं संश्लिष्ट रूप में दष्टिगोचर होती है। इस काल में राष्ट्रीयता का मूल रूप विदेशी शासन के अत्याचारों, उनके कारण जन्मी अनेक जन–यातनाएं तथा जनता के मन में उठती हुई क्रोध तथा असंतोष की ललकारों का चित्रण है। दिनकर, सोहन लाल द्विवेदी, नवीन, माखन लाल चतुर्वेदी आदि की कृतियों में दिखलाई पड़ती है।

सन् 1938 ई. के आस–पास राष्ट्रीय जीवन की यातना और आक्रोश के स्वर में एक नया उभार परिलक्षित होता है। परिवेश जन्य कारणों से राष्ट्रीय साहित्य का स्वर उग्रतर यथार्थोन्मुख तथा लोकोन्मुख होता चला गया। प्रगतिवाद से पूर्व भी शोषक–शोषित की समस्या उठ खड़ी हुई थी। राष्ट्रीयता दिनकर काव्य में उभर कर आयी।

संस्कृति का संबंध इसी आत्मा अथवा चेतना से होता है। संस्कृति इतिहास के रूप में मानव के लिए पष्ठभूमि एवं प्रेरणा बनती है तथा वर्तमान चेतना से स्पंदित होकर मानव जीवन का स्वरूप धारण कर लेती है। प्रतिभा संपन्न कवियों ने संस्कृति के उदात्त अतीत रूप को वर्तमान जीवन के परिप्रेक्ष्य में पुनर्परीक्षित करके ही स्वीकारा है। यह प्रयास छायावादी कृतियों में परिलक्षित होता है।

इस कालावधि में प्रकाशित 'कुरुक्षेत्र', 'जय भारत', 'नकुल', 'उन्मुक्त', 'रश्मिरथी' तथा 'विक्रमादित्य' आदि काव्यों में भी राष्ट्रीय–सांस्कृतिक भावना का चित्रण किया गया है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त 'इतिहास के आंसू' की फुटकल कविताओं में भी इस संदर्भ का अवलोकन किया जा सकता है।

मैथिलीशरण गुप्त-

मैथिलीशरण गुप्त इस धारा के श्रेष्ठ कवि हैं। गुप्त ने तत्कालीन राष्ट्र चेतना को अपने काव्यों में मुखरित किया है। जिसमें वैविध्य की स्थिति देखी जा सकती है। आधुनिक काल के राष्ट्रीय इकलौते कवि स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त हैं।

माखन लाल चतुर्वेदी-

राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविताएं माखन लाल ने लिखीं। इनका संबंध तत्कालीन राष्ट्रीय व्यवस्था से है। पराधीन राष्ट्र की व्यथा, अंग्रजों के अत्याचारों आदि का चित्रण किया है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'-

नवीन सौंदर्य एवं प्रेम लिखने के कारण छायावादी कवियों का सान्निध्य प्राप्त कर लेते हैं। राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना का चित्रण किया जिसमें राष्ट्रीयता प्रमुख है। संस्कृति के प्रति विशेष रूचि नहीं थी।

रामधारी सिंह दिनकर-

व्यक्तित्व- रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 30 सितम्बर, सन् 1908 सिमरिया जिला मुंगेर में हुआ था। बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त कर हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक बन गए। बिहार सरकार के अधीन सब रजिस्ट्रार, बिहार सरकार के प्रचार विभाग के उपनिदेशक, मुजफ्फरपुर कॉलेज में हिंदी विभागाध्यक्ष तथा भारत सरकार के सलाहकार रह चुके हैं। ये राज्य सभा सदस्य भी रहे हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- इस काल में सबसे अधिक सशक्त कवि रामधारी सिंह दिनकर थे। संवेदना एवं विचार का अति सुंदर समन्वय इनमें दष्टिगोचर होता है। प्रेम सौन्दर्य मूलक एवं राष्ट्रीय कविताएं कवि की संवेदना से स्पंदित है। परिवेश संपक्त करने की इनमें प्रबल आकांक्षा थी। लोकोन्मुखता, सहजता इनकी विशेषता है। इनकी कविता में वैयक्तिक कुंठा, अवसाद तथा निराशा का स्थान प्रसन्नता तथा सर्वत्र सौंदर्य के प्रति स्वस्थ मानवीय प्रतिक्रिया ने लिया है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता देश एवं युग सत्य के प्रति जागरूकता है। जिसे ग्रहण करने में अनुभूति और चिंतन दोनों स्तरों पर पूर्ण सफलता मिली है।

कवि ने राष्ट्र को उसकी सामयिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं तथा समताओं आदि के रूप में नहीं, उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं के रूप में पहचाना है और उसके प्राचीन मूल्यों का नए जीवन संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवंतता प्रदान की है, दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्व देते हुए उन्हें अपने प्राचीन किंतु जीवंत मूल्यों से जोड़ने का प्रयत्न किया है। 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म के माध्यम से बुद्धि से वस्तु स्थिति की तीखी पहचान और हृदय में सार्वभौम सुख–साम्राज्य की स्थापना की सुंदर कामना का अनुपम समन्वय किया है–

कर पाता यदि मुक्त हृदय को
मस्तक के शासन से
उतर पकड़ता बांह दलित की
मंत्री के आसन से
स्यात् सुयोधन भीत उठाता
पग कुछ और संभल के
भरत भूमि पड़ती न स्यात्
संगर में आगे चल के।
-कुरुक्षेत्र।

सियाराम शरण गुप्त-

सियाराम शरण गुप्त इस धारा के विशिष्ट कवि हैं। इनकी कृतियां गांधीवाद की अभिव्यक्ति से भरपूर हैं। देश की ज्वलंत घटनाओं एवं समस्याओं का चित्रण बड़ी सफलता से इनके काव्य में हुआ है। घटनाओं, अवस्थाओं तथा समस्याओं को तत्कालीन न मानकर उनको मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं से संदर्भित कर देते हैं। आधुनिक या अतीत की पष्ठभूमि को आधुनिक मानवता की करुणा, यातना, द्वंद्व से समन्वित करके चित्रित किया है। किसी भी भारतीय घटना का उदात्तीकरण कर उसे वहत्तर मानवीय मूल्यों का स्तर प्रदान किया है। राष्ट्रीयता के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीयता को महत्व दिया है। 'उन्मुक्त' आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय संदर्भो का द्योतन करने वाली प्रमुख कृति है। जिसमें कवि ने अपने तरीके से युद्ध की अनिवार्यता, बलिदान, त्याग, यातना, विभीषिका तथा मानवीय करुणा का अद्भुत समन्वय किया है।

15. प्रगतिवाद

छायावाद का व्यष्टिगत दष्टिकोण उसके ह्रास एवं पतन का प्रधान कारण था क्योंकि महादेवी वर्मा के शब्दों में वह "वष्टिगत सत्य की समष्टिगत परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहा था"। साथ पंत के शब्दों में – "छायावाद के शून्य सूक्ष्म आकाश में अति काल्पनिक उड़ान भरने वाली अथवा रहस्य के निर्जन अदश्य शिखर पर विराम करने वाली कल्पना" को जन जीवन का सच्चा मित्र अंकित करने के लिए "एक हरी भरी ठोस जनपूर्ण धरती" की आवश्यकता थी। प्रगतिवाद उपर्युक्त व्यष्टिगत भावना की अवहेलना कर समष्टिगत स्वरूप को लेकर आगे बढ़ा और उसने "अति काल्पनिक उड़ान भरने वाली" कल्पना को "एक हरी भरी ठोस जनपूर्ण धरती" पर उतार कर उसे जन–जीवन का चित्रण करने के लिए प्रेरित किया। जिस समय छायावाद अपने व्यष्टि की साधना में तन्मय, जगत की वास्तविकता की ओर से आंखें बंद करके आत्म विभोर होकर आगे बढ़ा जा रहा था उसी समय जगत की नग्न वास्तविकता, "रोटी का राग" और "क्रांति की आग" लिए प्रगतिवाद आगे आया तथा उसने झकझोर कर साहित्यकार को एक नवीन समस्या, एक नवीन चेतना का आलोक दिखाया। उसने छायावाद की अति सूक्ष्म काल्पनिक भावनाओं का विरोध कर उसे स्थूल जगत की कठोर वास्तविकता के समक्ष खड़ा कर दिया। कुछ लोगों की मान्यता है कि प्रगतिवाद विचारधारा की देन है।

इसका प्रारंभ सन् 1936 ई. में लखनऊ में होने वाली 'प्रगतिशील लेखक संघ' की पहली बैठक से हुआ। सन् 1936 ई. में सज्जाद जहीर और डॉ. मुल्क राज आनंद के प्रयत्नों से भारत वर्ष में भी इस संस्था की शाखा की स्थापना हुई। लखनऊ का अधिवेशन प्रेम चन्द की अध्यक्षता में हुआ था। इससे एक वर्ष पूर्व ही सन् 1935 ई. में पेरिस में ई.एम. फार्स्टर के सभापतित्व में "प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन" नामक अंतर्राष्ट्रीय संस्था का अधिवेशन हुआ था। इस वर्ष तक साम्यवादी या समाजवादी आंदोलन का श्रीगणेश हुआ। इससे एक वर्ष पूर्व सन् 1935 ई. में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हुआ। गांधी जी के नेतत्व में स्वाधीनता आंदोलन चल रहा था। युवा ह्रदय अपनी विद्रोही भावना की अभिव्यक्ति हेतु साधन की तलाश में था। गांधीवादी विचारधारा में अहिंसावादी सिद्धांतों से असंतुष्टों का विकास हो रहा था। अधिक उग्र वैचारिकता वालों का उग्र आचरण में विश्वास था। अहिंसावादी गांधी ने हिंसा के डर से अनेक बार जन आंदोलन को रोक दिया था। उमड़ता हुआ जन–जीवन सहज रूप से इसे स्वीकार नहीं कर पाता था। मजदूरों का आंदोलन भी बढ़ता जा रहा था। शनैः शनैः राजनीति में वामपंथी शक्तियों का जोर बढ़ने लगा। समसामयिक परिवेश, वैचारिक उग्रता तथा समाजोन्मुखता को बल दे रहा था। राजनीतिक दासता में एक ओर पूंजीवाद और सामंतवाद की शोषण प्रवत्ति को बढ़ावा मिल रहा था और दूसरी ओर जन–सामान्य के लिए भयावह गरीबी, अशिक्षा, असुविधा और अपमान अपना प्रबल रूप धारण करता जा रहा था। इसके अतिरिक्त अकाल एवं युद्ध की भीषण विभीषिकाएं देश को निगलती चली जा रही थीं। द्वितीय महायुद्ध और बंगाल का अकाल देश का बेड़ा गर्क करने वाली भयानक घटनाएं थीं। युद्ध के दबाव में जनता अत्यधिक आक्रांत हो रही थी। जगती हुई उग्र चेतना, रूस में स्थापित समाजवाद तथा पश्चिम के अन्य देशों में प्रचारित कम्युनिज़्म के सिद्धांतों से उत्पन्न विश्वव्यापी प्रभाव के फलस्वरूप भारत में प्रगतिवाद का उदय हुआ।

'प्रगतिवाद' रचना एवं आलोचना के क्षेत्र में सर्वथा नवीन दष्टिकोण लेकर आया। प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही रचना का उद्देश्य स्वीकारता है। प्रत्येक युग में यथार्थ की दो शक्तियों का द्वंद्व चलता रहता है – मरणोन्मुख पुरानी शक्तियों और नवीन जीवंत शक्तियों का। सामाजिक स्तर पर पुरानी शक्तियों में शोषक होते हैं तथा नवीन शक्तियों में शोषित गरीब, किसान मजदूर होते हैं। किसान–मजदूर शोषित का अंत कर नवीन जन मंगलशाली समाज की स्थापना हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। शोषक–शोषित संघर्ष सनातन है सदियों से चलता आया है चल रहा है और अनादि काल तक चलता रहेगा। नवीन शक्तियां वैयक्तिक नहीं अपितु समष्टिगत होती हैं। उनमें पीड़ा और अभाव के साथ जीवनसंघर्ष, अडिग विश्वास और भविष्य की दिव्य आकांक्षा विद्यमान रहती है। अनेक बुनियादी तत्वों को ग्रहण करने वाला सच्चा यथार्थवादी है। ऐसा साहित्ययुगीन वास्तविक का सच्चा प्रतिनिधि होता है।

कुछ लोग प्रगतिवाद के जन्म में भारतीय परिवेश को न मानकर रूसी कम्युनिस्टों का प्रचार मात्र मानते हैं उनकी भूल है क्योंकि हमारा साहित्य का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि हमारे साहित्य की कोई भी विचारधारा ग्रियर्सन की 'भक्तिधारा' के समान एकाएक न तो उत्पन्न होती है न कोई भी विदेशी प्रभाव उसे इतना लोकप्रिय एवं सशक्त बना सकता है। प्रत्येक विचारधारा अपने स्वतंत्र रूप से क्रमशः विकसित होती हुई अग्रसर होती है। सामयिक परिवेश, युग की मांग के अनुरूप, उसका 3स्वरूप निश्चित करते हुए उसे निरंतर आगे बढ़ाती रहती है जो विचारधारा जन–मन से अनुप्राणित न होकर मात्र किसी विदेशी साहित्य की नकल के आधार पर आगे बढ़ती है उसका वही परिणाम होता है जो 'हालावाद' का हुआ था। 'हालावाद' मात्र चार वर्ष ही जीवित रह सका।

प्रगतिवाद युग की पुकार है। इसकी उत्पत्ति एकाएक न होकर या रूसी प्रभाव से न होकर बहुत पहले से चली आती हुई असंतोष और विद्रोह की भावनाओं का स्वाभाविक प्रतिफलन है। इसमें सन्देह नहीं कि साहित्य की अन्य धाराओं के समान इस पर विदेशी प्रभाव भी दष्टिगोचर होता है। किन्तु इस प्रभाव ने उसके स्वरूप को अधिक उन्नत, स्वस्थ एवं सशक्त बनाया है।

प्रगतिवादी विचारधारा रूस की बपौती न होकर विश्वव्यापी असंतोष की वाणी है। भारत में यह विचारधारा अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध बहुत पहले से चली आ रही थी जिसका स्वरूप अनुकूल परिवेश पाकर अब अधिक स्पष्ट और मुखर हुआ है जो भावी युगों हेतु प्रेरणा स्रोत होगा।

प्रगतिशील साहित्य समाज के युगीन संबंधों को त्यागकर हवा में शाश्वत महल का निर्माण करने वाले साहित्य को नकली एवं निर्जीव मानता है। यदि कोई शाश्वत वस्तु है तो यही नवीन सामाजिक मानवता जो सदैव पुरानी और जर्जर शक्तियों से युद्ध करती है। आज के युग में बुनियादी शक्तियां वे हैं जो पूंजीवाद को नष्ट कर समाजवाद की स्थापना करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इसका समर्थक साहित्य अनिवार्य रूप से किसानों, मजदूरों के संघर्ष को रूपायित कर उसे बल प्रदान करता है तथा पूंजीवादी या सामंतवादी शक्तियों की शोषक, स्वार्थी, स्वकेंद्रित, जर्जर विसंगतिमय प्रवत्तियों पर करारी चोट करता है।

प्रगतिवाद ने सौंदर्य का नवीन स्वरूप निर्मित किया है। वह वर्तमान जनजीवन में वास्तविक सौंदर्य की अन्वेषणा करता है। सौंदर्य का संबंध हमारे हार्दिक आवेगों और मानसिक चेतना से होता है। प्रगतिवादी कवि नए उदीयमान समाज में सौंदर्य का दर्शन करेगा। सौंदर्य का दर्शन करने के लिए अतीत या कल्पना लोक में गोता न लगाएगा। सौंदर्य जीवन है।

प्रगति साहित्य को सोद्देश्य स्वीकारता है। उद्देश्य सहित होने का अर्थ किसी विशेष अभिप्राय या किसी विशेष दष्टि से कला का सजन करना है। प्रगतिवाद का मुख्य उद्देश्य कुरुप, शोषक, सड़ी–गली, विसंगतिग्रस्त शक्तियों पर से पर्दा हटाना एवं नई सामाजिक शक्तियों के संघर्षों, युयुत्सा तथा आस्था को सबल बनाना है। साहित्य जनता का जनता के लिए चित्रण करता है। प्रसार साहित्य को प्रगतिवादी नकारता है। प्रचारवादी साहित्य अपने परिवेश से अलग होकर लाल सेना, लाल रूस, एवं लाल चीन की प्रशंसा के गीत गाता है। प्रचार का एक दूसरा खतरा यह भी हुआ कि कवियों ने जन–जीवन से अपने को संबद्ध किए बिना ही जन–जीवन का गीत गाना प्रारंभ कर दिया। अनुभव के स्थान पर फार्मूला कविताओं की प्रेरणा बन गया।

प्रगतिवादी कविता सामाजिक जीवन की वास्तविकता को लेकर चली है इसलिए जनता तक पहुंचना तथा जनता के जीवन की बात कहना उसका लक्ष्य बन गया। यही कारण है कि उसने छायावाद की वायवी, असामान्य, रेशमी परिधान शालिनी सूक्ष्म भाषा का परित्याग कर सुस्पष्ट, सामान्य, प्रचलित भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। उसने प्रतीकों, शब्दों, मुहावरों तथा चित्रों का चयन जन–जीवन से किया है। इसलिए उसकी भाषा में सादगी होते हुए भी जीवंतता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रगतिवादी कवि छायावादी रंगीन कुहासे को तोड़कर विषम यथार्थ के धरातल पर आ गया है। या तुलसीदास का रूप धारण कर छायावादियों की संस्कृतनिष्ठता अर्थात् संस्कृत भाषा को छोड़कर हिंदी की बोलचाल की भाषा को अपने काव्य का विषय बनाया जैसे तुलसीदास ने अवधि में 'रामचरितमानस' की रचना की।

शैली सांकेतिक, और चित्तात्मक न होकर उपदेशात्मक हो गई है। इसीलिए काव्य का सौंदर्य निखार को प्राप्त नहीं कर सका। प्रगतिवाद ने अपनी सीमाओं के बावजूद हिंदी काव्य–धारा के विकास में एक महत्वपूर्ण अध्याय जोड़ा है। उसने काव्य को वैयक्तिक यथार्थ के बंद कमरे से निकालकर जनजीवन के मध्य प्रवाहित कर दिया है। जीवन और साहित्य के मूल्य, सौंदर्य बोध तथा लक्ष्य को समाज के यथार्थ और उसकी रचना से संबद्ध किया, भाषा को कुहरे से निकालकर मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया। प्रगतिवादी काव्यधारा के कवियों में पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, केदार नाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, त्रिलोचन तथा मुक्तिबोध आदि प्रमुख हैं।

16. प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख प्रवत्तियाँ

समय परिवर्तन के साथ परिवर्तन होता रहता है। वैचारिक राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद दर्शन के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद है।

इस प्रकार मार्क्सवादी दष्टिकोण से निर्मित काव्यधारा प्रगतिवाद है।

शोषक तथा शोषित वर्ग में समाज को बाँटकर यदि विचार किया जाए तो साम्यवाद का केन्द्र श्रमिक वर्ग ही है। प्रगतिवादी रचना में दलित, मजदूर शोषित के प्रति विशेष भाव व्यक्त किया जाता है।

प्रगति का सामान्य अर्थ है– आगे बढ़ना, जो साहित्य जीवन को आगे बढ़ाने में सहायक हो वह प्रगतिशील साहित्य है।

प्रगतिवादी कवियों में सुमित्रानंदन पंत, शिवमंगला सिंह, सुमन, उदयशंकर भट्ट, नागार्जुन, नरेन्द्र शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, राम विलास शर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि।

प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. **रूढ़ियों का विरोध**- प्रगतिवादी कवियों का ईश्वर की सत्ता, आत्मा, परमात्मा, परलोक, भाग्यवाद, धर्म, स्वर्ग, नरक आदि पर विश्वास नहीं है। उनकी दष्टि में मानव की महत्ता सर्वोपरि है। उनके लिए धर्म एक अफीम का नशा है। प्रगतिवादी कवियों ने अंधविश्वास और रूढ़ियों पर गहरा प्रहार किया है।

2. **शोषकों के प्रति विद्रोह, शोषितों के प्रति सहानुभूतिः** प्रगतिवादी कवियों ने शोषक वर्ग को घोर स्वार्थी, निर्दयी एवं कपटी के रूप में चित्रित किया है। इनकी मान्यता है कि पूँजीपति निर्धनों का रक्त चूस–चूसकर सुख की नींद सोते हैं। वह बड़े व्यापारी, जमींदार तथा उद्योगपति जैसे शोषकों के चिथड़े–चिथड़े होते हुए देखना चाहता है। उनकी दष्टि में शोषण की नींव पर खड़े समाज का नष्ट हो जाना ही श्रेयस्कर है–

   दिनकर के शब्दों में –

   "श्वानों को मिलता वस्त्र, दूध बच्चे अकुलाते हैं,

   माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं।"

   इस काव्यधारा का मूल केन्द्र शोषित वर्ग है। कवियों ने शोषण से पीड़ित मजदूरों और किसानों की करुण दशा का सुन्दर चित्रण किया है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'भिक्षुक' का वर्णन इस प्रकार करते हैं –

   "वह आता दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।"

3. **क्रांति की भावना**- प्रगतिवादी कवियों ने शोषित वर्गों के प्रति सहानुभूति दर्शाने तथा प्राचीन परम्पराओं को नष्ट–भ्रष्ट करने के लिए क्रान्ति का आह्वान किया है। वे समानता स्थापित करने के लिए समाज में आमूलचूल परिवर्तन करना चाहते हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की यह पंक्तियाँ देखने योग्य हैं–

   "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,

   जिससे उथल-पुथल मच जाए।"

4. **यथार्थ चित्रण**- प्रगतिवादी काव्य में निम्नवर्ग के जीवन की प्रतिष्ठा हुई। इससे पहले साहित्य में मध्यवर्ग तथा उच्चवर्ग का जीवन प्रतिबिम्बित हुआ था। कवियों ने प्रकृति के रमणीय चित्र खींचने की बजाय नगर और ग्रामीण जीवन के नग्न यथार्थ रूप का चित्रण किया है। शोषण के दुष्परिणाम दिखलाने के लिए उन्होंने ऐसा वर्णन किया है। निम्न वर्ग के कुरुचिपूर्ण जीवन के साथ उन्होंने सहानुभूति व्यक्त की है। एक उदाहरण देखिए–

   "सड़े घूर की गोबर की बदबू से दबकर,

महक जिन्दगी के गुलाब की भर जाती है।"

-केदारनाथ अग्रवाल

कवि को व्यक्ति तथा समाज के कटु सत्यों के सामने ऐश्वर्य, विलास एवं मादक वसंत सभी फीके लगने लगते हैं। जीवन के अनाचार, पीड़ित की हाहाकार ने उसे व्यथित बना दिया है। ताजमहल के संबंध में पंत जी लिखते हैं–

"हाय मत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन

जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।"

इसी प्रकार भारत के ग्रामों का वर्णन करते हुए कवि पंत लिखते हैं–

"यह तो मानव लोक नहीं है, यह है नरक अपरिचित।

यह भारत का ग्राम सभ्यता संस्कृति से निर्वासित।"

5. **मानवतावादी दष्टिकोण**- प्रगतिवादी साहित्यकार मानव की शक्तियों पर असीम आस्था रखता है। उसके अनुसार ईश्वर नहीं, मानव ही अपने भाग्य का निर्माता है। ईश्वर के नाम पर हो रहे शोषण से कुपित होकर वह कहता है–

"जिसे तुम कहते हो भगवान

जो बरसाता है जीवन में

रोग, शोक, दुःख-दैन्य अपार

उसे सुनाने चले पुकार।"

उसे ईश्वर पर आस्था नहीं है।

6. **मार्क्स का गुणगान**- प्रगतिवादी कवियों ने इस बात का बिना विचार किए हुए कि रूस की मान्यताएं भारत के लिए उपयोगी हैं या नहीं, धारा के बहुत से कवियों ने मार्क्स और रूस का गुणगान किया है। पंत जी कार्ल मार्क्स के प्रति कुछ इस प्रकार के भाव प्रदर्शित करते हैं –

"धन्य मार्क्स चिर तमाच्छन्न पथ्वी के उदय शिखर,

तुम त्रिनेत्र के ज्ञात चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।"

उपर्युक्त पंक्तियों में पंत जी ने मार्क्स को प्रलयंकारी शिव का तीसरा नेत्र बताया है तो नरेन्द्र शर्मा रूस का गुणगान करते हुए कहते हैं–

"लाल रूस है ढाल साथियों

सब मजदूर किसानों की।"

7. **सांस्कृतिक समन्वय**- प्रगतिवादी साहित्यकार की दष्टि व्यक्ति, परिवार, स्वदेश तक सीमित न होकर सम्पूर्ण विश्व तक व्याप्त है। उसका स्वर मान्यतावादी है। जापान के ध्वस्त नगरों की पीड़ा से वह भी व्यथित है। अतः यह क्रन्दन और चीत्कार कर पुकार उठता है–

"एक दिन न्यूयार्क भी मेरी तरह हो जाएगा

जिसने मिटाया है मुझे, वह भी मिटाया जाएगा।"

प्रगतिवादी कवि की दष्टि में हिन्दु, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी मानव के नाते बराबर हैं।

8. **नारी भावना**- प्रगतिवादी कवि नारी–स्वतंत्रता का पक्षधर है। उसने नारी को पुरुष के समकालीन उसकी सहयोगिनी के रूप में स्वीकार किया है। साथ ही उसे उसका हक दिलाने के लिए प्रबल आवाज भी उठाई है।

प्रगतिवादी कवि के लिए मजदूर तथा किसान के समान नारी भी शोषित है जो कि युग–युग से सामंतवाद की धारा में पुरुष की दासता की श्रंखलाओं में बन्दिनी के रूप में पड़ी है। वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो चुकी है और वह केवल मात्र रह गई है पुरुष की वासना–तप्ति का उपकरण। अतः पंत कहते हैं –

"योनि नहीं रे नारी, वह भी मानव प्रतिष्ठित है।

उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रे न नर पर अवसित।।"

कवि पंत पुनः कहते हैं –

"मुक्त करो नारी को।"

9. **वेदना चित्रण-** प्रगतिवाद की वेदना संघर्षो से जूझने की सामाजिक वेदना है। निराशा के लिए उसमें कोई स्थान नहीं। प्रगतिवादी इसी संसार को स्वर्ग बनाना चाहते हैं जिसमें वर्ग भेद, शोषण और रूढ़ियों का नामोनिशान नहीं होगा। कवि निराला की बंगाल के अकाल पर अभिव्यक्ति वेदना हृदय को दहला देने वाली है–

"बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकर,

धर्म धीरज प्राण खोकर, हो रही अनरीति बर्बर

राष्ट्र सारा देखता है।"

नागार्जुन आज की थोथी आजादी पर अपनी वेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं –

"कागज की आजादी मिली

ले लो दो-दो आने में।"

10. **शिल्प योजना-** प्रगतिवादी साहित्य जनता का साहित्य है। इसलिए उसकी भाषा भी जनभाषा है। भाषा सरल है। प्रगतिवादी कवियों का आदर्श था–जन–मन–तक अपने विचारों को पहुँचाना। इसके लिए उन्होंने बोलचाल की शब्दावली को भी ग्रहण किया है। प्रायः इस युग का साहित्य अमिधाप्रधान है। अलंकारों के सहज प्रयोग से अभिव्यक्ति स्पष्ट है। प्रगतिवादी काव्य में मुक्तक और अतुकान्त छंदों के साथ गीतों और लोकगीतों की शैली का भी प्रयोग किया गया है। प्रगतिवादी काव्य का अपना अलग महत्व है। वह जीवन के भौतिक पक्ष का उत्थान करना चाहता है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में – "भारत में प्रगतिवाद का भविष्य साम्यवाद के साथ बंधा हुआ है। लेकिन फिर भी आधुनिक काव्य के अध्येयता को उसका अध्ययन आदर और धैर्यपूर्वक करना होगा। उसने हिंदी काव्य को जीवंत चेतना प्रदान की है। इसका निषेध नहीं किया जा सकता।" इस प्रकार प्रगतिवादी कविता का अपना महत्व है।

17. प्रगतिवादी प्रमुख रचनाकार

केदारनाथ अग्रवाल

व्यक्तित्व- केदारनाथ अग्रवाल का जन्म 9 जुलाई सन् 1911 ई. में कमासिन जनपद बांदा में हुआ। बी.ए. एल.एल.बी. उत्तीर्ण कर बांदा में ही वकालत करते थे।

कृतित्व

संकलन - "फूल नहीं रंग बोलते हैं" संकलन में 'मांझी न बजाओ वंशी' तथा 'वसंती हवा' आदि कविताएं संग्रहीत हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- अग्रवाल प्रगतिवादी वर्ग के सशक्त कवि हैं। इनकी कविताओं में उद्‌बोधन अधिक है। अग्रवाल की कविताओं में मानव एवं प्रकृति के सौंदर्य का अति सहज, वेगवान तथा उन्मुक्त रूप प्रस्तुत किया गया है। 'मांझी न बजाओ वंशी' तथा 'वसंती हवा' आदि कविताओं में प्रगतिकालीन सहज सौंदर्य का स्वरूप अवलोकनीय है–

"आज नदी बिलकुल उदास थी
सोयी थी अपने पानी में,
उसके दर्पण पर
बादल का वस्त्र पड़ा था
मैंने उसका नहीं जगाया
दबे पांव वापस घर आया।"
-'फूल नहीं रंग बोलते हैं'।

रामविलास शर्मा

व्यक्तित्व- डॉ. राम विलास शर्मा का जन्म सन् 1912 ई. में झांसी में हुआ था। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. करके पी.एच.डी. की। बलवंत राजपूत कॉलेज आगरा में अंग्रेजी के प्राध्यापक रहे। उसके पश्चात् केन्द्रीय हिंदी संस्थान आगरा में कार्य किया। प्रगतिशील लेखक संघ के मंत्री तथा 'हम' के संपादक भी रहे हैं। प्रख्यात प्रगतिवादी समीक्षक हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- राम विलास शर्मा की कविताओं में सादगी, वेग तथा सहजता की प्रधानता रही है। प्रचार एवं नारे बाजी से अपने को मुक्त नहीं कर पाए। स्थूल व्यंग्यों का इनकी कविताओं में आधिक्य है। अतिवादिताओं से मुक्त होकर तथा सामाजिक संवेदना को आत्मसात कर उसे सरल वेगवान भाषा में अभिव्यक्ति प्रदान की है।

नागार्जुन

व्यक्तित्व- नागार्जुन का जन्म सन् 1910 ई. में तरौना जनपद दरभंगा में हुआ था। स्कूल शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। घर पर ही हिंदी संस्कृत का अच्छा स्वाध्याय किया। इनका स्वभाव घुमक्कड़ी था। स्वतंत्र लेखन कार्य किया। इनका असली नाम वैद्यनाथ मिश्र था। उपनाम 'यात्री' था इसी नाम से मैथिली में कविताएं लिखते थे। कवि के साथ–साथ हिंदी के प्रमुख उपन्यासकार भी थे।

कृतित्व- 'बादल को घिरते देखा', 'पाषाणी', 'चंदना', 'रवीन्द्र के प्रति' 'सिंदूर तिलकित भाल', 'तुम्हारी दंतुरित मुसकान' आदि इनकी उत्तम प्रगतिवादी कविताएं हैं।'

साहित्यिक विशेषताएं- नागार्जुन की कविताएं मुख्यतः तीन प्रकार की हैं–

(i) कुछ कविताएं गंभीर संवेदनात्मक और कलात्मक हैं जिनमें कवि ने मानव मन की रागात्मक एवं सौंदर्यमयी छवियों को अंकित किया है तथा मानवीय संभावनाओं के प्रति आस्था की अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) सामाजिक कुरूपता, राजनीतिक अव्यवस्था तथा धार्मिक अंधविश्वास पर करारा व्यंग्य किया है। शिक्षा पद्धति पर किया गया व्यंग्य अवलोकनीय है –

"घुन खाए राहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बांचे,
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर विस्तुइया नाचे,
बरसा कर बेबस बच्चों पर , मिनट-मिनट पर पांच तमाचे,
इसी तरह से दुखरन मास्टर, गढ़ता है आदम के सांचे।"

-'युगधारा'

(iii) इस कोटि की रचनाएं उद्‌बोधनात्मक हैं, किन्तु काव्य–तत्व की दष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं।

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

व्यक्तित्व– शिव मंगल सिंह 'सुमन' का जन्म 14 अगस्त सन् 1915 ई. को झामपुर मध्य प्रदेश में हुआ था। हिंदी साहित्य में एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण कर पी.एच.डी. एवं डी.लिट. किया। सन् 1942 ई. में विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर में प्राध्यापक नियुक्त हुए। तब से शिक्षा संबंधी विभिन्न कार्य करते रहे। विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के कुलपति रहे। सन् 1956–61 ई. तक भारतीय दूतावास काठमांडु, नेपाल में सूचना तथा सांस्कृतिक सहचारी के रूप में कार्य किया।

साहित्यिक विशेषताएं- डॉ. शिव मंगल सिंह 'सुमन' की कविताएं दो प्रकार की हैं–

(i) गीत अथवा छोटी–छोटी कविताएं हैं।

(ii) कविताएं लंबी–लंबी तथा उपदेशात्मक हैं।

उनकी छोटी–छोटी कविताएं और गीत कला और प्रभाव के दष्टिकोण से अलग प्रतीत होते हैं। लंबी कविताएं आयाम बड़ा होने से स्थान तो अधिक घेरती हैं उनका प्रभाव भी समन्वित न होकर बिखराव का हो जाता है। लंबी कविताएं ध्वन्यात्मक एवं चित्रात्मक न होकर इतिवन्तात्मक हैं।

त्रिलोचन

व्यक्तित्व- त्रिलोचन का जन्म 20 अगस्त, 1917 ई. को कटघरा पट्टी जनपद सुलतानपुर में हुआ। शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके पश्चात् बी.ए. की परीक्षा पास की। 'हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' तथा 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी' के कोश निर्माण कार्य से सम्बद्ध रहे। वाराणसी के 'जनवार्ता' सम्पादकीय विभाग में भी कार्य किया। 'हंस' का संपादन किया। वास्तविक नाम वासुदेव सिंह था।

साहित्यिक विशेषताएं- इनकी कविताओं में अत्यधिक सादगी विद्यमान है। प्रत्येक कविता में धरती की सोंधी गंध भरी है। सतसैया के दोहों के समान इनकी कविताएं – "देखन में छोटी लगें, भाव करें गंभीर' अर्थात इनकी कविताओं का आकार छोटा है किंतु प्रभाव में तीव्रता है।

मुक्तिबोध- विश्वासों एवं संवेदनाओं में जनवादी हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- इनकी कविताएं प्रगतिशील हैं। किन्तु इन्हें नई कविता के अंतर्गत रखना औचित्य पूर्ण होगा। इन कवियों के अतिरिक्त अज्ञेय, भारत भूषण अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, शमशेर बहादुर सिंह तथा धर्मवीर भारती भी किसी न किसी रूप में प्रगतिवादी हैं किन्तु मूलतः इन्हें प्रगतिवाद में स्थान नहीं दिया जा सकता है।

18. प्रयोगवाद

छायावादी एवं प्रगतिवादी कुछ कवियों का विद्रोह अपनी मूल प्रवत्ति में दब नहीं सका वह अनुकूल परिवेश एवं वातावरण में उभरता रहा और प्रयोगवाद के रूप में विकसित हुआ। वैसे प्रयोग प्रत्येक काल, युग या समय में होता रहता है किन्तु इस कालावधि में प्रवत्ति विशेष के रूप में विकसित हुआ। अपने क्रमिक विकास में प्रगतिवाद ने प्रयोगवाद को विकसित किया। हिंदी में काव्य की नवीनतम प्रवत्तियों का समारंभ 'तार सप्तक' के प्रकाशन सन् 1943 ई. से माना जा सकता है। पुरानेपन के प्रति सबके मन में असंतोष की भावना थी जिससे नवीनता की खोज में नए–नए प्रयोगों में जुट गए। ऐसे ही वैचारिक संक्रांति बिंदु पर 'अज्ञेय' ने अपने मित्रों – डॉ. राम विलास शर्मा, गिरिजा कुमार माथुर, नेमिचंद जैन, प्रभाकर माचवे, गजानन माधव मुक्तिबोध तथा भारत भूषण अग्रवाल के सहयोग से 'तारसप्तक' का प्रकाशन किया। जिसके संबंध में पंत ने लिखा कि अज्ञेय ने 'तारसप्तक' का संपादन करके हिंदी पाठकों के लिए प्रयोगशील कविता का सर्वप्रथम संग्रह प्रस्तुत किया। 'तार सप्तक' के सात कवियों के एकत्र होने का एक विशिष्ट कारण एवं प्रयोजन था। वे एक स्कूल के नहीं थे, किसी मंजिल पर पहुंच हुए नहीं थे, राही थे, राही नहीं – राहों के अन्वेषी थे। काव्य के प्रति इनका एक अन्वेषी दष्टिकोण था और दष्टिकोण की समानता ने ही इन्हें एकत्रित किया था।

'तारसप्तक' के समान अज्ञेय द्वारा संपादित सन् 1946 ई. की पत्रिका 'प्रतीक' को भी प्रयोगवादी कविता का मुख्यपत्र कहा जा सकता है क्योंकि द्वितीय महायुद्ध के आस–पास ही साहित्यिक चेतना 'प्रतीक' के माध्यम से ही सर्वप्रथम मुखरित हुई थी।

प्रयोगवाद नाम से भ्रम उत्पन्न होता है कि इन कवियों ने प्रयोग को साध्य मानकर एक नया वाद चलाया। अज्ञेय के दष्टिकोण से प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है वरन् वह साधन है। दोहरा साधन–

(i) सत्य को जानने का साधन जिसे कवि प्रेषित करता है।

(ii) उस प्रेषण–क्रिया को और उसके साधनों को जानने का साधन है।

'तारसप्तक' के कवियों में एकरूपता नहीं है। इनके तीन वर्ग दष्टिगोचर होते हैं–

(i) कुछ ऐसे हैं जो विचारों से समाजवादी हैं और संस्कारों से व्यक्तिवादी – जैसे शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता और नेमिचन्द्र जैन।

(ii) कुछ ऐसे हैं जो विचारों और क्रियाओं दोनों से समाजवादी हैं – जैसे राम विलास शर्मा तथा गजानन माधव मुक्तिबोध।

(iii) कुछ ऐसे हैं जो प्रगतिशील कविता के द्वारा व्यक्त होते हुए जीवन–मूल्यों और सामाजिक प्रश्नों को असत्य या सत्याभास मानकर अपने व्यक्तिगत जीवन में तड़पने वाली गहरी संवेदनाओं को ही रूपायित करना चाहते हैं।

छायावादी काव्य की भाव–वस्तु और उसके शिल्प विधान के प्रति विद्रोह, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों का जन्म एक ही परिवेश में हुआ। प्रगतिवाद के मार्ग को अवरुद्ध करने वाली प्रतिक्रियावादी विचारधारा प्रयोगवाद है।

सन् 1951 ई. में दूसरे 'तारसप्तक' के कवि – भवानी प्रसाद मिश्र, शकुंतला माथुर, हरि नारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती हैं।

'पाटल' तथा 'दष्टिकोण' नामक पत्रिकाओं में भी पर्याप्त प्रयोगवादी कविताओं को स्थान मिला। 'तारसप्तक' की परंपरा में इधर सन् 1954 ई. से 'नई कविता' नाम से प्रयोगवादी कविताओं का एक अर्द्ध वार्षिक संग्रह निकलने लगा जिसके संपादक डॉ. जगदीश गुप्त थे। सन् 1936–37 ई. में छायावाद का पतन हुआ और प्रगतिवाद नवीन युग चेतना के साथ अग्रसर हुआ। बेकारी और भुखमरी का युग था। जनता में भयंकर असंतोष व्याप्त हो रहा था जिसके परिणामस्वरूप पूंजीवादी शोषकों और उसके द्वारा शोषित मजदूर वर्ग में संघर्ष प्रारंभ हो गया था। छायावाद पतनोन्मुख सामंतवाद और विकासोन्मुख पूंजीवाद की

ही अभिव्यंजना कर रहा था। प्रगतिवाद ने शोषित वर्ग का समर्थन किया और प्रगतिवादी साहित्यिकों की वाणी में सामान्य, दुखी, दलित जनता का क्षोभ मुखरित हो उठा। पंत, निराला आदि छायावाद के उन्नायक प्रगतिवाद से प्रभावित होकर छायावाद की रंगीन स्वप्नों की दुनिया छोड़ कर जन–जीवन की ठोस कर्ममय भूमि पर उतर आए। प्रगतिवाद में जनता का स्वर, जनता की भावनाएं, जनता का क्षोभ और विद्रोह मुखरित हो रहा था। इस बीच शाश्वतवाद, प्रतीकवाद, अभिव्यंजनावाद तथा स्वच्छंदतावाद आदि पानी के बुलबुलों रूपी वादों की पानी के ऊपर बाढ़ सी आ गई। ये सतही उथली चीजें जनता को अपनी ओर आकर्षित न कर सकीं। क्योंकि जनता साहित्य में अपनी समस्याओं का समाधान चाहती थी। ऐसे में प्रयोगवाद का श्रीगणेश हुआ।

पूंजीवाद पतनोमुख था। रूस का सर्वहारा वर्ग क्रांति कर अग्रसर हो रहा था। इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में भी साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ने लगा था। इस युग के कवियों की सारी शक्ति तकनीक के नए प्रयोगों की तरफ लग गई। पश्चिमी प्रयोग ने साहित्य को जनता का खिलौना बनाना चाहा जिसमें इसके जन्मदाता टी.एस. इलियट तथा आई.ए. रिचड्र्स का नाम विशेष उल्लेखनीय है। कविता में सरलता, सहजता का स्थान दुरुहटा ने ले लिया। हिंदी का प्रयोगवाद पश्चिमी की जूठन है। इन लोगों का साहित्य, कला और जनता के प्रति जो दष्टिकोण है वह कुत्सित है, संकीर्ण और पूर्णतः प्रगति विरोधी है क्योंकि ये लोग कला को जीवन के लिए न मानकर केवल कला के लिए मानते हैं। प्रयोगवादी व्यक्ति की परिधि में केन्द्रित होकर साहित्य को सामाजिक जीवन से दूर रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। प्रयोगवादी भी जीवन से पलायन कर रहा है परंतु सचेत रूप में जान बूझकर। शैली के क्षेत्र में छायावाद का अनुगामी है। प्रयोग शैली दुरूहतर होती गई है। प्रयोगवादियों का मूल उद्देश्य कविता द्वारा अपनी विद्रोहात्मक भावनाओं का प्रचार करना है। सामाजिक उत्तरदायित्व की समस्या प्रयोग वादियों के सम्मुख नहीं है, ऐसी स्थिति में प्रयोगवादी कविता का जन–जीवन से क्या संबंध हो सकता है। पुरानी भाषा प्रयोगवादी नवीनता की अभिव्यक्ति करने में समर्थ नहीं है।

प्रयोगवादी नवीन दष्टि द्वारा न्यूनता उत्पन्न न कर मात्र शब्दों तथा अलंकारों की विलक्षणता द्वारा प्रभाव उत्पन्न करना चाहते हैं। चौकाने, ध्यान आकृष्ट करने तथा नई शैली का आभास पैदा करने की ओर ज्यादा उन्मुख हैं। इन्हें नवीनता का मोह सता रहा था। इसलिए ये नवीन विषय, नवीन भाषा, सब कुछ नवीन लाना चाहते हैं। निराला की सरस्वती वंदना का यही भाव देखा जा सकता है। 'तारसप्तक' द्वितीय को ही प्रयोगवादी कविताओं का प्रथम संग्रह माना जाना चाहिए। प्रयोगवाद एक वर्ग विशेष का साहित्य है जिसका तात्कालिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि समस्याओं से कोई संबंध न होकर केवल काव्य शैली शिल्प में नए–नए परिवर्तन करने के लिए उपमानों, प्रतीकों और नए–नए शब्दों को ढूंढने से ही संबद्ध है। नए–नए प्रयोग करते हैं–

"चांदनी उस रूपये सी है जिसमें
चमक पर खनक ग़ायब है।
हम कहेंगे ज़ोर सेः
मुंग घर अजायब है।
जहां पर बेतुकु, अनमोल, जिंदा और मुर्दा भाव रहते हैं।"

ये लोग जन–भाषा को अपनाने का नारा लेकर आगे आए हैं लेकिन इनका काव्य इतना दुरूह और जटिल है कि उसके सींग–पूंछ का भी पता नहीं लगता है। इन कवियों के शब्द, पद, वाक्य, छंद, वर्णावस्तु, विचार, मानसिक दशाएं, रूचि, क्षेत्र सब भिन्न हैं। प्रयोगवादी 'सर्वथा नवीन' की ही टोह में रहते हैं। डॉ. प्रेम नारायण शुक्ल ने प्रयोगवादियों की प्रवत्ति को थोथा एवं निस्सार माना है।

प्रयोगवादी कविता के विषय में पंत का कहना है – "प्रयोग की निर्झरिनी कल–कल, छल–छल करती हुई, फ्रायडवाद से होकर, उपचेतन की रुद्ध–क्रद्ध ग्रंथियों को मुक्त करती हुई, दमित, कुंठित आकांक्षाओं को वाणी देती हुई लोक चेतना के स्रोत में नदी के द्वीप की तरह प्रकट होकर अपने पथक अस्तित्व पर अड़ गई। अपनी रागात्मक विकृतियों के कारण अपने निम्न स्तर पर इसकी सौंदर्य भावना, केंचुओं, घोघों, मेढ़कों के उपमानों के रूप में सरीसपों के जगत से अनुप्राणित होने लगी।"

अरविंद वादी पंत प्रगतिवाद के विरोधी हैं। प्रगतिवाद भी प्रयोगवाद का विरोध कर रहा है। वही पंत प्रयोगवाद में विकृतियों को मानने वाले उसी में रागात्मकता की खोजकर उसकी प्रशंसा करने लगे थे।

डॉ. देवराज ने नए मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए नवीन प्रयोगों को स्वीकारा है।

नंद दुलारे वाजपेयी ने लिखा है, "किसी भी अवस्था में यह प्रयोगों का बाहुल्य वास्तविक साहित्य–सजन का स्थान नहीं ले सकता।" क्योंकि काव्य का क्षेत्र प्रयोगों की दुनिया से बहुत दूर है। प्रयोगवादी कविताएं चौहद्दी में नहीं आती, वैचित्र्य प्रिय हैं तथा अनुभूति के प्रति ईमानदार नहीं है। प्रयोगवादी साहित्य मात्र चमत्कार के चक्कर में पड़कर काव्य के अभिन्न अंगों को भूल गया है। वह व्यक्तिवादी तथा अंतर्मुखी हो गया है। परिचित का परित्याग कर अपरिचित की तलाश में लगा रहता है। कुछ लोग प्रयोगवाद को परराष्ट्रीय प्रतीकवाद का दूसरा रूप मानते हैं तो कुछ प्रभावित स्वीकारते हैं।

उपमा का नवीन मोह अवलोकनीय है–

"मेरे सपने इस तरह टूट गए

जैसे भुंजा हुआ पापड़।"

कहीं–कहीं मात्र क्रियाहीन शब्दों के प्रयोग से ही क्रिया को ध्वनित करने का प्रयत्न किया जाता है–

"मेंढक पानी झप्प"

यह चीनी कविता की नकल है।

प्रायः सभी कवि मध्य वर्ग के हैं। प्रयोगवादी कविता ह्रासोन्मुखी मध्यवर्गीय समाज के जीवन का चित्र है। प्रयोगवादी कवि ने जिस नए सत्य के शोध और प्रेषण के माध्यम की नई खोज की घोषणा की थी, वह सत्य इसी मध्यवर्गीय समाज के व्यक्ति का सत्य था। वास्तविकता यह है कि हमने लिए हुए अंश को कितना जिया है कितना भोगा और कितनी ईमानदारी और सच्चाई के साथ व्यक्त किया है। वह अपने जिए हुए जीवन के ही विभिन्न दर्दों को अंकित करना पसंद करता है।

प्रयोगवादी कवि यथार्थवादी नहीं हैं। वे भावुकता के स्थान पर ठोस बौद्धिकता को स्वीकारते हैं। इनमें दमित कामवासना की अभिव्यक्ति अधिक परिलक्षित होती है। काम संवेदना में तीव्रता है जिससे यौन वासना का उभार कुंठित हो गया है। यह कुंठा ही दर्द, टीस या पीड़ा बन गई है। उन्होंने कल्पना का रंगीन आवरण हटाकर दमित यौन–वासनाओं के नग्म रूप को स्पष्ट कर दिया है। फ्रायड का नाम सिद्धांत इनका प्रधान जीवन दर्शन बन गया है। इन कवियों ने कहीं स्पष्ट रूप से कहीं बारीक प्रतीकों तथा बिंबों के माध्यम से दमित काम वासनाओं और उलझी हुई संवेदनाओं को रूपायित किया है।

अज्ञेय, शमशेर, गिरिजा कुमार माथुर तथा धर्म वीर भारती इस संदर्भ में विशिष्ट कवि हैं। प्रयोगवादी कवियों, ने व्यक्ति के अंतः संघर्षों, क्षणिक अनुभूतियों तथा सूक्ष्म में सूक्ष्म, लघु से लघु संवेदनाओं और मन की विभिन्न स्थितियों को लेकर छोटी–छोटी तीव्र प्रभावशाली कविताएं लिखी हैं।

19. प्रयोगवादी काव्य की प्रमुख प्रवत्तियाँ

'तारसप्तक' ने उसको समेकित रूप से एक निश्चित रूपाकार प्रदान किया तथा, हिन्दी कविता के अन्तर्गत यह नव्य काव्यधारा प्रयोगवाद की संज्ञा से जानी गई है। प्रयोगवादी कविता प्रयोग पर आधारित थी। इस काव्यधारा की कुछ उल्लेखनीय विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. **वैयक्तिकता**- प्रयोगवादी कविता में वैयक्तिकता की अभिव्यंजना अनेक रूपों में हुई है। सामान्य रूप में, रचनाकार की यही आत्मानुभूति सर्वानुभूति बनकर साहित्य की संज्ञा धारण करती थी, और करती है, लेकिन सबसे पहले प्रयोगवादी काव्य में नितान्त व्यक्ति की अपनी अनुभूति और भावना अभिव्यंजित हुई है। प्रयोगवादी कवियों के अहं भाव से ही उनमें गहन वैयक्तिकता पैदा हुई है। वहाँ पर अहं एक सम्पूर्ण वाद के रूप में आया है। कवि नरेश कुमार कहते हैं–

   "विश्व के इस रेल-वन पर
   मैं अहं का मेघ हूँ
   X X X
   क्या नहीं तुम देखते?
   आज मेरे कन्धों पर गगन बैठा हुआ है।"

   अज्ञेय ने भी इस अहंनिष्ठ वैयक्तिकता को अपने काव्य में स्वर प्रदान किया है। अज्ञेय को इस बात का पूर्वाभास था कि प्रयोगवादी कवि जिस गहन वैयक्तिकता से परिधित हैं, वह उनका वरेण्य नहीं हो सकता है, जिससे उनको निकालना ही पड़ेगा। 'हरी घास पर क्षण भर', 'कितनी शांति', 'छंद है यह फूल' आदि कविताओं में अहं की काया से मुक्त होने की कामना को कवि ने रेखांकित किया है।

2. **अति बौद्धिकता**- अतिशय बौद्धिकता प्रयोगवादी काव्य की अन्यतम विशेषता है। प्रयोगवादी कवि सारे तथ्यों का दर्शन बुद्धि के ही आलोक में करते हैं। धर्मवीर भारती के अनुसार इस बौद्धिकता का जन्म हर भावना के आगे लगे हुए एक प्रश्नचिन्ह से होता है। वे लिखते हैं कि 'प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है। इसी प्रश्नचिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढांचा चरमरा उठा है और यह प्रश्नचिन्ह उसी की ध्वनिमात्र है।' डॉ. नगेन्द्र को इस काव्य में बौद्धिकता के व्यवहार पर चिन्ता है। वे कविता में राग तत्व को ही प्रधान मानते हैं, क्योंकि उनका दष्टिकोण है कि जिस काव्य में बुद्धित्व रागतत्व से प्रबल हो जाता है, वहाँ काव्यात्मकता धूमिल हो जाती है।

   प्रयोगवादी कविता की अतिशय बौद्धिकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। प्रयोगवादी कवियों ने आक्रोश, झुँझलाहट, व्यंग्य, विद्रोह, सत्यकथन, स्वविश्लेषण, पर–विश्लेषण तथा तथ्य–निरूपण पर अपने बौद्धिक उत्कर्ष का परिचय दिया है। अज्ञेय की 'हरी घास पर क्षणभर' काव्य संग्रह में अनेक कविताएँ बौद्धिकता से उत्पन्न हुई हैं। एक उदाहरण अवलोकनीय है–

   "चलो उठें अब
   अब तक हम थे बन्धु
   सैर को आए
   और रहे बैठे तो
   लोग कहेंगे
   धुंधले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं

वह हम हों भी

तो यह हरी घास ही जाने"

संशय और प्रश्नाकुलता इस अवतरण–संदर्भ को बौद्धिकता से बांध रही है। कवि के मन में समाज से एक अज्ञात भय समाया हुआ है। यहाँ पर तर्क का आश्रय लेकर कवि ने अपनी उसी सन्देहास्पद स्थिति को स्पष्ट करना चाहा है।

यह बौद्धिकता प्रयोगवाद में कई रूपों में प्रकट हुई है। अज्ञेय और मुक्तिबोध आदि तो स्व या अपने का विश्लेषण करते हुए इसका सहारा लेते हैं और प्रभाकर माचवे तथा भारतभूषण आदि वार्तालाप की शैली में इसकी अभिव्यक्ति करते हैं।

3. **अनास्था**- बौद्धिकता से रागतत्व नष्ट हो जाता है और रागात्मिका शक्ति के विनाश से ही संशय और अनास्था की उत्पत्ति होती है। अतिशय बौद्धिकता के कारण ही प्रयोगवादी कविता में अनास्था की भावना उत्पन्न हुई है। इसी अनास्था के कारण प्रयोगवादी कवियों के मन में निराशा, कुण्ठा, पाप–बोध, वेदना और पराजय की भावना को स्थान मिला है। अज्ञेय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध आदि रचनाकार ने अपने काव्य में अनास्था के कारण पूजा की एक नयीं व्याख्या करते हुए कहते हैं –

"मैं छोड़ कर पूजा

क्योंकि पूजा है पराजय का विनत स्वीकार

बाँधकर मुट्ठी तुझे ललकारता हूँ।

सुन रही है तू?

मैं खड़ा तुमको यहाँ ललकारता हूँ।"

'सागर–मुद्रा' में अज्ञेय ने युग–युग से कृष्ण के पवित्र–प्रतिष्ठित प्यार को प्रश्न के घेरे में घेर दिया है। वे 'कन्हाई ने प्यार किया' नामक कविता में कृष्ण के प्यार पर उँगली उठाते हुए कह रहे हैं कि –

"कन्हाई ने प्यार किया कितनी गोपियों को कितनी बार।

पर उड़ेलते रहे अपना सारा दुलार

उस एक रूप पर जिसे कभी पाया नहीं-

जो कभी हाथ नहीं आया।

कभी तो प्रेयसी में उसी को पा लिया होता

तो दोबारा किसी को प्यार क्यों किया होता?"

4. **आस्था की भावना**- प्रयोगवादी कवियों ने अपनी कविताओं में अनास्था और शंका को ही नहीं, आस्था और विश्वास को भी स्थान दिया है। उनकी यह आस्था उनकी अनास्था से ज्यादा सहज और शक्तिवान् लगती है। यद्यपि ये कवि निराशा, कुण्ठा, वेदना और पराजय की भावना से ग्रस्त हैं, फिर भी ये उसी के अन्तराल से ऊर्ध्वगामी चेतना का उन्मेष करते हैं, अपनी रुग्ण मानसिकता को स्वस्थ आलोक प्रदान करते हैं। अज्ञेय आस्था के प्रति कृतज्ञता और उसकी सुदढ़ता की कामना व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि–

"हम में तो आस्था हैं, कृतज्ञ होते।

X X X

आस्था न काँपे

मानव फिर मिट्टी का भी, हो जाता है।"

प्रयोगवादी कवियों ने पराजय, अविश्वास तथा मरण का ही वरण नहीं किया। यदि उनमें ऐसा ही भाव होता तो प्रभाकर माचवे प्रकाश–प्रसन्न ऐसी उत्साहित कविता क्यों लिखते–

"नया प्रकाश चाहिए, नया प्रकाश चाहिए
पुकारती दिशा-दिशा
मिटे तषा, मिटे निशा
बहुत हुआ उदास मन
हमें सुहास चाहिए"

प्रयोगवाद के सम्पूर्ण भाव–बोध को देखकर कहा जा सकता है कि प्रयोगवादी कवियों की पराजय और अनास्था की भावना एक सीमा तक है। उसके बाद उनकी समस्त रुग्ण मानसिकता आस्था की सजल सरिता में स्नात होकर स्वस्थ और सबल बन जाती है। यह एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जीवन की निर्मिति एक जैसे प्रकृति तत्वों के सम्मेल से नहीं हो सकती है। सुख–दुःख, आस्था–अनास्था, जय–पराजय के ताने–बाने से ही उनकी सफल रचना होती है। ये द्वंद्व ही जीवन को अस्तित्व प्रदान करते हैं। और जीवन को अपने चक्राकार भ्रमण से व्याप्त बनाते हैं।

5. **यथार्थ चित्रण-** माना जाता है कि प्रगतिवाद में समाजवाद की और प्रयोगवाद में व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा हुई है लेकिन जहाँ तक दोनों के तात्त्विक स्वरूप का प्रश्न है, दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। समाजवाद के अन्तर्गत व्यक्ति का अध्ययन समाज से शुरू होकर व्यक्ति पर पहुँचता है और प्रयोगवाद के अंतर्गत यही अध्ययन व्यक्ति से शुरू होकर समाज तक पहुँचता है। दोनों धाराओं के अंतर्गत व्यक्ति की सत्ता को अस्वीकार नहीं किया गया है, क्योंकि समाज की निर्मिति व्यक्ति से ही तो होती है। डॉ. रघुवंश ने प्रयोगवादी सामाजिकता के संदर्भ में लिखा है कि इन सभी कवियों में सामाजिकता के प्रति जागरूकता है, इनमें से कोई भी उस कोटि का असामाजिक नहीं है, जिस कोटि के योरोप के पिछले युग से ही भिन्न वादों के अंतर्गत हुई हैं।

अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा आदि सभी कवियों की रचनाओं में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ पर एक तथ्य और इंगित कर देना समीचीन प्रतीत होता है कि तारसप्तक अथवा प्रयोगवाद के कवि का यह सामाजिक यथार्थवादी दष्टिकोण कहीं–न–कहीं मार्क्सवादी चिन्तनधारा और उसके समाजवाद से अवश्य अनुप्रेरित है। मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा और नेमिचन्द्र जैन तो अपने को मार्क्सवादी स्वीकार भी कर चुके हैं। अज्ञेय पर व्यक्तिवादी होने का सबसे बड़ा आरोप लगाया जाता है। उनके काव्य को पढ़ने के उपरान्त यह स्थापना मिथ्या प्रतीत होने लगती है। अज्ञेय ने समाज को उसकी विराटता और यथार्थता के साथ स्वीकार किया है। 'इन्द्रधनुष रौंदे हुये ये' नामक कविता में अज्ञेय ने समाज को उसकी समग्र यथार्थता के साथ ग्रहण किया है–

"रुई धुनता है, गारा सानता है, खटिया बुनता है,
मशक से सड़क सींचता है,
रिक्शा में अपना ही प्रतिरूप लादे खींचता है,
जो भी जहाँ भी पिसता है
पर हारता नहीं, न मिटता है-
पीड़ित श्रमरत मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी स्रष्टा
उसकी मैं कथा कहता हूँ
दूर दूर दूर... मैं वहाँ हूँ..."

6. **क्षणवाद-** क्षणवादी प्रवत्ति की पष्ठभूमि में अस्तित्ववादी विचारधारा काम करती है। प्रयोगवादी काव्यधारा के अंतर्गत यह प्रवत्ति पाश्चात्य चिन्तन के परिणामतः आई है। क्षणवादियों की मान्यता है कि जीवन का एक आनन्दमय क्षण सम्पूर्ण जीवन से अधिक वरेण्य होता है। क्षणवादी वर्तमान में ही जीता है, भविष्य के प्रति उसके मन में कोई स्वर्णिम सपना नहीं होता है। हिन्दी के प्रयोगवादी कवियों ने क्षणवाद को बड़ी व्यापकता के साथ ग्रहण किया है। अज्ञेय तो इस क्षण की जोरदार वकालत करते ही हैं और धर्मवीर भारती भी इससे ग्रस्त दिखाई पड़ते हैं।

क्षण की इसी पकड़ ने प्रयोगवादी कवियों को अस्तित्व का भी बोध कराया। अज्ञेय की 'नदी के द्वीप', गिरिजाकुमार माथुर के 'शिलापंख चमकीले', 'पथ्वीकल्प', मुक्तिबोध का 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' और भारती का 'टूटा पहिया' नामक कविताओं अथवा काव्य–संग्रहों में अस्तित्वबोध का गहरा भाव विद्यमान है। सम्पूर्ण 'अंधायुग' त्रासद अस्तित्व की गाथा है। पौराणिक आख्यान के माध्यम से धर्मवीर भारती लघु से लघुतर और लघुतम व्यक्ति और पदार्थ की अस्मिता को अस्तित्व प्रदान करते हुए लिखते हैं कि –

"मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
क्या जाने कब इस दुरूह चक्रव्यूह में
अक्षैहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाये
बड़े-बड़े महारथी
अपने पक्ष को असत्य जानते हुए भी
निहत्थी अकेली आवाज को
अपने ब्रह्मास्त्रों से कुचल देना चाहें
तब मैं रथ का टूटा हुआ पहिया
उनके हाथों में ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूँ।"

7. **मानवतावाद**- मानव और मानवतावाद की उपेक्षा करके कोई भी साहित्य रचा नहीं जा सकता है। रचनाकार का परिवेश उसकी रचना में विद्यमान रहता है। परिवेश रचनाकार को विषयवस्तु देता है। सारे सुखद और दुखद भाव, उछलती और घुटती जिन्दगी अपनी सर्वांगीणता के साथ रचना के अमूर्त रचनात्मक उपादान होते हैं। कतिपय समालोचकों की मान्यता है कि प्रयोगवादी कविता व्यक्तिनिष्ठ है समाजसापेक्ष नहीं, इसलिए वहाँ मानवतावादी विचारधारा को स्थान नहीं मिला है, लेकिन इस दष्टिकोण की संगति प्रयोगवादी कविता के प्रतिपाद्य–पदार्थ के साथ नहीं बैठती। कहने का केन्द्रीय पदार्थ–प्रतिपाद्य मानव ही है। यह मानव विराट्–जगत् में कहाँ–कहाँ किस–किस प्रकार से जी रहा है। इसका जीवन्त और सजल चित्रण प्रयोगवादी कविता में हुआ है। अज्ञेय (इन्द्रधनुष रौंदे हुये ये), प्रभाकर माचवे (बीसवीं सदी), गिरिजाकुमार माथुर (धूप के धान), मुक्तिबोध (चाँद का मुँह टेढ़ा है), सर्वेश्वर दयाल (पोस्टर और आदमी), भारती (सात गीत वर्ष) की अधिकांश रचनाओं में समसामयिक मानव के वास्तविक रूप को ग्रहण किया गया है। अज्ञेय जीवन जीने के लिए और रोजी–रोटी के लिए संघर्ष करने वाले मनुष्यों की कथा कहने की प्रतिबद्धता की घोषणा करते हुए लिखते हैं कि–

"जो भी जहाँ भी पिसता है
पर हारता नहीं, न मरता है-
पीड़ित श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी, स्त्रष्टा
उसकी मैं कथा कहता हूँ"

अज्ञेय हों चाहे धर्मवीर भारती, मुक्तिबोध हों चाहे सर्वेश्वरदयाल सक्सेना या कुँवर नारायण आदि कवि हों, सभी की रचनात्मक प्रकृति अस्तित्ववादी और क्षणवादी चिन्तन से प्रभावित हैं। हाँ, यह अवश्य है कि अज्ञेय और भारती इससे अधिक प्रभावित दिखाई पड़ते हैं।

8. **श्रंगारिकता**- प्रयोगवादी कवियों ने फ्रायड के मनो–विश्लेषणवाद से काफी कुछ ग्रहण किया है। इसीलिए इनकी रचनाओं में जहाँ एक तरफ श्रंगार की पवित्र और सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है वहीं दूसरी तरफ मांसल श्रंगार और भोग–भावना का

भी व्यापक चित्रण हुआ है। कविवर अज्ञेय ने आधुनिक मानव को यौन वर्जनाओं का पुंज माना है। वे 'तारसप्तक' में लिखते हैं कि –'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है..... आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा है और वे कल्पनाएँ सब दमित और कुण्ठित हैं। उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रान्त है, उसके उपमान सब यौन–प्रतीकार्थ रखते हैं। 'सावन मेघ' नामक कविता में अज्ञेय ने उक्त मान्यता के आलोक में एक बिम्ब बनाया है। देखें–

"घिर गया घन, उमड़ आए मेघ काले,
भूमि के मम्पित उरोजों पर झुका सा
छा गया इन्द्र का नील वक्ष
बाध्य देख,
स्नेह से आलिप्त
बीज के भवितव्य से उत्फुल्ल
बद्ध
वासना के पंक-सी फैली हुई थी
धारयित्री सत्य की निर्लज्ज नंगी और समर्पित।"

उक्त अवतरण में कवि ने पर्वत पर होने वाली वर्षा और रतिक्रिया का एक जैसा रूप बिम्बित किया है। सामान्य रूप से, प्रयोगवादी कविता के अन्तर्गत भोग और वासना को ही प्रमुखता मिली है।

प्रयोगवादी कवियों ने श्रंगार को जिस रूप में लिया है, उसको देखकर यह कहना पड़ता है कि उन्होंने इसको प्रकृत रूप में ही ग्रहण किया है। इन रचनाकारों ने प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से अपनी कुण्ठित और दमित संवेदनाओं को शब्दाकार प्रदान किया है।

9. **कुण्ठा और निराशा-** डॉ. शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि 'निराशा, कुण्ठा और घुटन का व्यापक प्रदर्शन प्रयोगवादी काव्य की एक महत्वपूर्ण दिशा है, जिसका स्रोत भी उसके निर्माताओं की एकान्त व्यक्तिवादिता, आत्मलीनता एवं सामाजिक विषमताओं से एकाकी ही संघर्ष करने से प्राप्त असफलताओं में ही निहित है तथा जो बहुत कम अनुभूत और अधिकतर गढ़ी हुई है।

मुक्तिबोध, अज्ञेय, दुष्यंत कुमार आदि अनेक प्रयोगवादी कवियों ने अपनी रचनाओं में इन रूपों को चित्रित किया है। भारतभूषण अग्रवाल निराशा का निरूपण करते हुए लिख रहे हैं कि–

"न देखो नयन कोरों से
गिरा दो पलक का परदा
कि मूँदों कान
हो सुनमान
दरवाजा करो सब बन्द
सपनों की अटारी के
कि बाहर गरजता हुआ तूफान आता है।"

संत्रास, दुःख, कुण्ठा, निराशा, जुगुप्सा आदि से सारे प्रयोगवादी कवि अभिभूत दिखाई पड़ते हैं। लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि इन कवियों ने आशा, आह्लाद, आस्था आदि उज्जवल भावों का निरूपण किया ही नहीं है। वस्तुतः संत्रास, कुण्ठा, अनास्था की ही कुक्षि से आशा, आह्लाद और आस्था का जन्म होता है।

10. **प्रकृति चित्रण-** छायावादी कवि ने प्रकृति को जिस बहुरंगी आभा के साथ प्रस्तुत किया है, वह अत्यंत विलक्षण है। प्रयोगवादी कवि में वैसा रूप नहीं दिखाई पड़ता है जैसा छायावादी कविता में है। इस कविता में कवि मनुष्य के जीवन

की विसंगतिपूर्ण स्थिति को शब्दायित करने में सचेत और संलग्न है। प्रयोगवादी कवियों में अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता आदि की रचनाओं में प्रकृति का सुंदर और_हृदयाकर्षी रूप दिखाई पड़ता है।

प्रकृति के विविध रूप हैं। कहीं पर उसका स्वतंत्र (आलम्बनगत) रूप अपनी सहजता के कारण आकर्षित करता है और कहीं उद्दीपनगत रूप चित्त को चंचल बनाकर आनन्दित–पीड़ित करता है। अज्ञेय की 'अरी ओ करुणा प्रभामय' तथा 'ऋतुराज' में प्रकृति का आलम्बनगत तथा 'बावरा अहेरी' की कतिपय कविताओं में प्रकृति का उद्दीपनगत रूप उकेरा गया है।

"यह झकझक रात
चाँदनी उजली कि सुई में पिरोलो ताग
चाँदनी को दिन समझकर बोलते हैं काग
हो रही ताजी सफेदी नर्म चूने से
पुत रहे हैं द्वार
चाँद पूरा साथ"

भवानी प्रसाद मिश्र प्रकृति के अनन्य प्रेमी हैं। 'गीत फरोश' नामक उनके काव्य संग्रह में प्रकृति बड़े सहज और आत्मीय रूप में स्वयं आकर बैठ गयी है–

"सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डुबे हुए से
ऊंघते अनमने जंगल।
झाड़ ऊंचे और नीचे
चुप खड़े हैं और आँख मींचे।
घास चुप है, कास चुप है
मूक शाल, पलाश चुप है
बन सके तो धँसों इनमें
सतपुड़ा के घने जंगल
ऊँघते अनमने जंगल।"

11. **आंचलिकता**- प्रयोगवादी कविता में अंचल प्रेम की भी छवि छायी हुई है। अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, भवानी प्रसाद मिश्र आदि की कतिपय रचनाओं में अंचल विशेष की जीवंत चेतना की खनक सुनी जा सकती है। 'वैशाख की आँधी' (अज्ञेय), 'सावन का गीत' और 'झूले का गीत' (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना), 'मंगल वर्षा' (भवानीप्रसाद मिश्र), लेण्डस्केप (गिरिजाकुमार माथुर) आदि कविताओं में आंचलिक परिवेश का सचेत समाहरण हुआ है।

12. **भदेस या नग्नता**- गर्हित, घणित और अश्लील शब्द चित्रों को भदेस कहा जाता है। प्रयोगवादी कवियों ने भदेस दश्यों का भी आयोजन अपने काव्य में किया है। इस योजना से एक तरफ तो कवि की दमित भावनाओं की अभिव्यंजना होती है और दूसरी तरफ उनका नवीनता के प्रति आग्रहवादी दष्टिकोण भी प्रस्तुत होता है। सामान्य रूप से ये चित्रण काव्य सौन्दर्य के सम्वर्धन में सहायक नहीं हें, लेकिन कतिपय आलोचक इसे भी सौन्दर्याभिव्यक्ति का शक्तिशाली उपादान स्वीकार करते हैं। इस दष्टि से, लक्ष्मीकांत वर्मा का दष्टिकोण है 'विरूपता अश्लीलता नहीं है। असुंदर में भोड़ापन नहीं है परिवेश खोखला नहीं है। इन सबका सौंदर्य पक्ष में महत्व है। ये सब सौन्दर्य को सम्पूर्ण बनाते हैं। उनके आयामों को विकसित करते हैं, यह वर्मा का अतिवादी दष्टिकोण है। यदि असुंदर को भी सुंदर मान लिया जाएगा फिर असुंदर किसे कहा जाएगा। अंतर की सीमा समाप्त हो जाएगी।

प्रयोगवादी कविता में भदेस का निरूपण कवियों ने निस्संकोच भाव से किया है। अज्ञेय जैसा सुसंस्कृत और बहुपठ रचनाकार भी इसके चित्रण का व्यामोह संवरित नहीं कर पाया–

"निकटतर धसती हुई छत, आड़ में निर्वेद
मूत्र सिंचित मत्तिका के वक्ष में
तीन टांगों पर खड़ा नत ग्रीव
धैर्य मन गदहा।"

13. **भाषा शैली**- प्रयोगवादी कवियों ने भावपक्ष में जिस प्रकार से वैविध्यपूर्ण प्रयोग किए हैं, वैसे ही वे शैल्पिक क्षेत्र में भी नवीनता के आग्रही रहे हैं।

अ) **काव्य भाषा**- प्रयोगवादी कवियों ने भाषा को भावाभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अंगीकार किया है। शब्द चयन में वे अत्यंत उदार हैं। जीवन और समाज को बिम्बित करने में जो स्पष्ट हो वही भाषा और वे ही शब्द उन्हें ग्राह्य हैं। हरिनारायण व्यास भाषा के संदर्भ में लिखते हैं भाषा जीवन और समाज का एक प्रबल शास्त्र है, किन्तु उसे जीवन से अलग होकर नहीं जीवन में ही रहना है। यदि कविता की भाषा दुर्बोध रही तो उसका कर्म अर्थात् लड़ने में मनुष्य का सहायक होना अधूरा ही रह जाता है।.... पुरानी मान्यताओं, पुराने शब्दों, पुरानी कहावतों को नए अर्थ से विभूषित करके कविता में प्रयोग करने से पाठक की अनुभूतियों को छूने में सहायता मिलती है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रयोगवादी कवि भाषा में सुस्पष्टता, सहजता और सुबोधता के पक्षधर रहे हैं। इसीलिए उन्होंने अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी के तत्सम तथा ग्रामीण बोलचाल के शब्दों का निस्संकोच व्यवहार किया है।

प्रयोगवादी कवियों की भाषा भावानुकूल है। भावानुरूप शब्दों का व्यवहार करके उन्होंने अपनी अपूर्व क्षमता का परिचय किया है। उनके ऐसे शब्द बिम्बात्मकता तथा भाव सम्वर्धन में विशेष सहायक सिद्ध हुए हैं।

आ) **व्यंग्यात्मकता**- व्यंग्यात्मकता प्रयोगवादी काव्यभाषा की एक विशेष प्रवत्ति है। इसके आविर्भाव के मूल उत्स पर प्रकाश डालते हुए मदन वात्स्यायन ने लिखा है कि 'जहां दारिद्रय की दवा दया नहीं, पंचवर्षीय योजना है, वहां कवि की प्रतिक्रिया व्यंग्यात्मक हो सकती है।' प्रयोगशील कवियों में अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल आदि अच्छे व्यंग्यकार माने गए हैं। 'साँप' के माध्यम से आज के जहरीले शहरीपन पर व्यंग्य करते हुए अज्ञेय लिखते हैं कि –

"सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होगे
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ! उत्तर दोगेद्य
फिर कैसे सीखा डसना
विष कहाँ से पाया।"

इ) **छंदयोजना**- प्रयोगवादी कवियों ने प्रगतिवादी कवियों की ही तरह छंद के रूढ़ बन्धनों को स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने मुक्त छंद में काव्यरचना की है। गिरिजाकुमार माथुर इस संदर्भ में लिखते हैं कि 'कविता में मुक्त छंद ही पसन्द करता हूँ। मुक्त छंद में अधिकतर मैंने विरामान्त (एण्ड स्टाफ) पंक्तियाँ नहीं रखीं, धारावाहिक (रन ऑन) ही रखी हैं। आगत पंक्ति के आरम्भ में विगत पंक्ति की ध्वनि सम संगीत उत्पन्न करने के लिए वर्तमान रहने दी है। इसी कारण मैं मुक्त छंद में संगीत प्रधान गीत सम्भव कर सका हूँ जिन्हें गाते समय तुक की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

प्रयोगवादी काव्यधारा के कवियों ने नवीन छंदों के व्यवहार के साथ अंग्रेज़ी के कवियों के प्रमुख छंदों (लिरिक, एलेजी, सोनेट, ओड आदि) और उर्दू के ग़ज़ल एवं रुबाई से भी प्रभाव ग्रहण करके काव्य रचनाएँ की हैं।

प्रयोगवादी कवियों ने लोकधुनों में भी छंद रचनाएँ की हैं। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि छंद और लय की दष्टि से भी प्रयोगशील कविता अत्यंत सम्पन्न है।

ई) **बिम्ब योजना-** काव्य की सम्प्रेषणीयता और सजीवता के लिए आचार्यों ने बिम्ब योजना को आवश्यक माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो यहां तक कह डाला कि बिना बिम्ब ग्रहण के अर्थ ग्रहण हो ही नहीं सकता है। वस्तुतः आचार्य शुक्ल का यह कथन बहुत कुछ सही है। प्रयोगवादी कवियों ने सर्वथा नवीन और विविध बिम्बों का प्रयोग किया है। प्रयोगवादी कवियों की रचनाओं में प्राकृतिक बिम्ब, पौराणिक बिम्ब, कलात्मक बिम्ब, दश्यात्मक बिम्ब, सान्द्र बिम्ब आदि दिखाई पड़ते हैं। कतिपय बिम्ब योजना द्रष्टव्य है।

अज्ञेय दश्य बिम्ब प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि–

"उठी एक किरण,
धायी,
क्षितिज को नाम गयी,
सुख की स्मित,
कसक भरी,
निर्धन की नैन कोरों में काँप गयी,
बच्चे ने किलक भरी,
माँ की नस-नस में वह व्याप गयी"

प्रयोगवादी कवि बिम्बों के विधान में बड़े निष्णात हैं। वे बड़ी सफलता से साथ स्पर्श, रंग, स्वाद, श्रवण, स्मति आदि गुणों के आधार पर भी अत्यंत सारगर्भित और सान्द्र बिम्ब की रचना कर देते हैं।

उ) **प्रतीक योजना-** प्रतीक का शाब्दिक अर्थ है 'चिह्न'। जो वस्तु हमारे सामने नहीं है उसको प्रत्यक्ष करना। काव्य के अंतर्गत सम्प्रेषणीयता के लिए प्रतीकों का बहुत बड़ा महत्व है। प्रयोगवादी कवियों ने व्यापक धरातल पर प्रतीकों की नियोजना अपने साहित्य के अंतर्गत की है। मुख्य रूप से प्रयोगवादी रचना कलात्मक, प्राकृतिक, पौराणिक, वैज्ञानिक और यौन प्रतीकों का व्यवहार किया गया है। प्रतीकों के कुछ उदाहरण देखें–

कलात्मक प्रतीक–

"हम सबके दामन पर दाग
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में
टूटी तलवारों की मूठ।"

युग की राजनीतिक और वैज्ञानिक प्रगति ने प्रयोगवादी कवियों को बहुत प्रभावित किया है। इसीलिए उनकी कविता में वैज्ञानिक प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। गिरिजाकुमार माथुर की 'रेडियम की छाया', भारतभूषण अग्रवाल की 'विलायती स्पंज' आदि कविताएँ इस दष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अज्ञेय की सोन मछली जीवन की जिजीविषा का प्रतीक बनकर आई है–

"वह उजली मछली है
भेद गयी जो मेरी
बहुत-बहुत पहचानी
बहुत-बहुत अपनी यह
बहुत पुरानी छाप।"

प्रयोगवादी कविता के विषय में डॉ. नगेन्द्र का कथन उद्धरणीय है। एक गहन बौद्धिकता इन कवियों पर शीशे की पर्त की तरह जमती जाती है। छायावाद के रंगीन कल्पना वैभव और सूक्ष्म सरल भावना चिन्तन के स्थान पर यहाँ ठोस बौद्धिक तत्व का बाझीलापन है। ये कविताएँ अनिवार्य रूप से ही नहीं, सिद्धान्त रूप से भी दुरूह हैं।

प्रयोगवादी कविता जीवनानुभूत कविता है, सीधे मिट्टी और आदमी की गहरी संवेदना से संलिप्त है। वह आदमी की सम्पूर्ण चेतना को प्रकृत रूप में शब्दायित करती है। डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा ने प्रयोगवादी कविता के अस्तित्व और प्रदेय के संदर्भ में बिलकुल उचित ही लिखा है कि 'यह कहना सर्वथा असंगत है कि प्रयोगवाद ने हिन्दी साहित्य को कुछ दिया ही नहीं। उसने और कुछ भले ही न दिया हो, परन्तु सड़ी–गली परम्पराओं और जीवन मूल्यों के विरुद्ध विद्रोह की भावना अवश्य दी। साथ ही भाषा और शैली के नए–नए प्रयोग करने की प्रेरणा प्रदान कर भाषा को और अधिक सशक्त और प्रांजल बनाया।'

20. नई कविता - नामकरण और विशेषताएँ

नामकरण

नई कविता के नाम का आधार 'तारसप्तक' की परंपरा में निकलने वाला अर्द्ध वार्षिक संग्रह है जो सन् 1954 ई. में नई कविता के नाम से प्रकाशित हुआ था। यद्यपि इस संग्रह में संग्रहीत कविताएं प्रयोगवादी हैं जिसका संपादन डॉ. जगदीश गुप्त ने किया है। इसी के आधार पर नई कविता नाम पड़ा। नए नए प्रयोगों का कारण भी सार्थक है।

डॉ. जगदीश गुप्त का नई कविता विषयक कथन अवलोकनीय है–

"कुछ व्यक्ति ऐसे भावुक होते हैं कि अपनी तन्मयता में कविता का अर्थ बिना समझे उसके संगीत पर ही मुग्ध हो उठते हैं। नई कविता कदाचित ऐसे व्यक्तियों के लिए भी नहीं है। वह उन प्रबुद्ध विवेकशील आस्वादकों को लक्षित करके लिखी जा रही है जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतना नए कवि के समान है अर्थात् जो उसके समान धर्मा है; एक ओर जो पुरानी कविता की अभिव्यंजना प्रणालियों, शक्तियों और सीमाओं से परिचित हैं और जिनकी परितप्ति वस्तु और अभिव्यक्ति से नहीं होती या होती है तो संपूर्ण रूप से नहीं। दूसरी ओर जो नई दिशाएं खोजने में संलग्न नूतन प्रतिभा की क्षणिक असफलताओं और कठिनाइयों के प्रति सहानुभूतिशील होकर नए कवि की वास्तविक उपलब्धि की प्रशंसा करने में संकोच नहीं करते।.... बहुत अंशों में नई कविता की प्रगति ऐसे प्रबुद्ध भावुक वर्ग पर आश्रित रहती है। भले ही यह वर्ग संख्या में कम हो, क्योंकि इसका महत्व संख्या से नहीं उस स्थिति से आंका जाता है जिस तक अनेक अनुभवों को संचित करता हुआ यह पहुंचा होता है।"

पंत के काव्य का विकास छायावाद, प्रगतिवाद प्रयोगवाद से होता हुआ नई कविता तक आ पहुंचा। सन् 1954 ई. में अरविंद वादी पंत का रंग पलटा और उन्होंने नई कविता के विषय में लिखा है–

"नई कविता ने मानव–भावना को छायावादी सौंदर्य के धड़कते हुए पलने से बलपूर्वक उठाकर उसे जीवन समुद्र की उत्ताल लहरों में पेंग भरने को छोड़ दिया है....। नई कविता विश्व वर्चस्व से प्रेरणा ग्रहण करके तथा आज के प्रत्येक पल बदलते हुए युग पट को अपने मुक्त छंदों के संकेतों की तीव्र मंद गति लय में अभिव्यक्त कर, युग मानव के लिए नवीन भाव भूमि प्रस्तुत कर रही है।.... नई कविता अपनी शैली तथा रूप विधान में जहां अधिक मौलिक, वैचित्र्य पूर्ण तथा वैयक्तिक हो गई है, वहां अपनी भावना में अधिक रागात्मक तथा मानवतावादी बन गई है।"

भारतीय स्वतन्त्रता के बाद लिखी गई उन कविताओं को नई कविता की संज्ञा दी गई है जिनमें परंपरा कविता से आगे नए भाव बोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नए मूल्यों और नए शिल्प विधान का अन्वेषण किया गया। यह अन्वेषण साहित्य में कोई नई वस्तु नहीं है। इतिहास के संदर्भ में देखा जाए तो प्रायः सभी नए वाद या सभी नई–नई धाराएं अपने पूर्ववर्ती वादों या धाराओं की अपेक्षा कुछ नवीनता की खोज करती हुई दष्टिगोचर होती हैं। साहित्य में इस नवीनता की सदा प्रशंसा की जाती है, यदि वह अपना संबंध बदलते हुए सामाजिक जीवन के मूल सत्यों से बनाए रखे। इस प्रकार नित्य नित नवता की परंपरा अतीत् काल से गतिमान देखी जा सकती है। फिर स्वतंत्रता के पश्चात् लिखी जाने वाली उन कविताओं के लिए 'नई कविता' नाम रूढ़ हो गया जो अपनी वस्तु छवि एवं रूप छवि दोनों में पूर्ववर्ती प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद से विकसित होने पर भी अपना विशिष्ट स्थान बनाए हैं।

विशेषताएं- आस्था – नई कविताओं की प्रमुख विशेषता जीवन के प्रति आस्था है। नई कविता के कवियों में यह आस्था प्रायः सभी में दष्टिगोचर होती है। आधुनिक क्षणिक एवं लघु मानवतावादी दष्टि जीवन–मूल्यों के प्रति सकारात्मक है। नई कविता में जीवन को पूर्ण रूपेण स्वीकार करके जीवन भली–भांति भोगने की प्रबल आकांक्षा विद्यमान है। मनोविज्ञान ने इस तथ्य को प्रमाणित कर दिया है कि हमारा जीवन क्षणभंगुर एवं क्षणिक है जिसके अनेक लघु क्षण हैं उन्हीं क्षणों में हम जीवन यापन करते

हैं। क्षणिक अनुभूतियां संपूर्ण जीवनाभूति में कहीं अवरोध उत्पन्न नहीं करती हैं अपितु उनकी साधिका स्वरूप उपस्थित होती है। क्षण की सत्यता का अभिप्राय यह है कि जीवन की प्रत्येक अनुभूति, प्रत्येक व्यथा, प्रत्येक सुख को सत्य मानकर जीवन को सघन रूप से स्वीकार किया जाए।

2. **लघुमानव-** नई कविता में लघु मानवत्व के तथ्य को उभारा गया है उसे भी जीवन की संपूर्णता के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। लघु मानव का अभिप्राय उस सामान्य मनुष्य से है जो अपनी संपूर्ण संवेदना, क्षुधा–तष्णा कुंठा–संत्रास तथा मानसिक ताप को लिए दिए सदैव उपेक्षित रहा है। सामान्य मनुष्य से अभिप्राय यदि मनुष्य की लघुता का अन्वेषण कर वास्तविक सत्य के रूप में उसकी प्रतिष्ठा करने से है तो निश्चय ही यह अतिवादी, प्रतिक्रियावादी और असत्य जीवन धारणा है। स्वस्थ नई कविता ने कभी भी इस तथ्य को नहीं स्वीकारा है।

   नई कविता ने न तो जीवन को एकांगिता में परखा या देखा है न मात्र महान रूप में अपितु किसी भी वर्ग विशेष से संबंधित, वैयक्तिक या सामाजिक जीवन को जीवन के रूप में ही देखा है। इसमें किसी सीमा की अवधारणा नहीं की है। मनुष्य किसी वर्गीय चेतना, सिद्धांत अथवा आदर्श के सहारे गतिमान होकर यहां तक नहीं आया है। वह अपने संपूर्ण जीवन के सुख–दुख तथा राग विराग की विभिन्न परिस्थितियों में बंधा हुआ शुद्ध मानव रूप में आया है।

3. **वादमोह-** इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी वाद विशेष के मोह में पड़कर नई कविता का सजन नहीं किया है। नयी कविता न कोई वाद है न किसी वाद के अंतर्गत आती है क्योंकि एक कालावधि होती है। वाद अपने कथ्य एवं दष्टिकोण में बंधा हुआ तथा सीमित होता है। नयी कविता की ऐसी कोई कालसीमा नहीं होती।

4. **वैयक्तिकता-** नयी कविता में एक विशिष्ट प्रकार की वैयक्तिकता पायी जाती है जिसका स्वाभाविक एवं मर्यादित सामाजिकता से कोई सैद्धान्तिक या व्यावहारिक विरोध नहीं था। वह न तो व्यक्ति निरपेक्ष सामूहिकता थी, न समाज–निरपेक्ष अहंवादिता। कवि अधिकतर एक सामाजिक व्यक्ति के रूप में ही अपनी रचनाओं में प्रकट हुए। कहीं वे अपनी आन्तरिक स्थितियों के प्रति संवेदनशील हो उठे, कहीं बाह्य परिवेश के प्रति। दोनों से जन्य अनुभूतियाँ कवि की अपनी थीं, किसी सैद्धान्तिक आग्रह से अनुप्राणित नहीं। एक प्राकृतिक दश्य के प्रति कवि की प्रतिक्रिया दर्शनीय है–

   "दिन बीते कभी इस शाख पर,
   किसी कोयल को कूकते सुना था;
   ...बार-बार कानों में कही कुहू, गूँजती हुई पाती हूँ।"

   नई कविता में कुछ ऐसी भी कविताएं मिलती हैं, जहां कवि प्रयोगवादियों की तरह परिवेश–निरपेक्ष होकर अपनी आन्तरिक स्थिति की अभिव्यक्ति करते हैं। कुंवरनारायण की 'गहरा स्वप्न' नामक रचना उदाहरण–स्वरूप ली जा सकती है, जिसमें कवि ने 'भग्नावशेषों की दुर्व्यवस्थ छायाएँ', 'उलझी हुई ईर्ष्यालु लपटें', आदि जीवन की अनेक पर्तों को खोलकर अपने जीवन–सत्य को स्वप्न में देखा है।

   दूसरी और नई कविता में उभरती हुई सामाजिक चेतना भी द्रष्टव्य है क्योंकि ऐसे भी नये कवि हुए जो मानते थे कि "समाज के प्रत्येक सदस्य की छोटी सी चेतन क्रिया भी किसी न किसी अंश में सामाजिक होती है। फिर कविता तो समाज के सबसे अधिक संवेदनशील व्यक्ति की चेतन क्रिया है। अतः उसकी सामाजिकता असंदिग्ध है।" कवि कथन उद्धरणीय है–

   "मेरी प्रतिभा यदि कल्याणी, तो दर्द हरे,
   सुख सौख्य भरे
   यह नहीं कि अपने तन-मन के निजी
   व्यक्तिगत
   दुःखों दर्दो में जिये-मरे!"

   सामाजिक कल्याण करने में असमर्थ होने वाला कवि–कार्य करना नहीं चाहता।

"अगर नहीं है मेरे स्वरों में तुम्हारा स्वर
तो... पछाड़ खाये बादलों की तरह टूट
जाने दो।"

यद्यपि नए कवि वैयक्तिक अनुभूतियों को ही अधिकतर कविताबद्ध करते रहे, तथापि उसमें उभरती हुई सामाजिक चेतना लक्षित हुए बिना नहीं रही।

5. **मानव-मूल्यों का विघटन-** जिन नैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक मूल्यों को शाश्वत मानकर मानव–समाज उनके सहारे जीवन में शांति और सुख प्राप्त करने के लिए युगों–युगों से प्रयत्नशील रहा है, उनको प्रथम एवं द्वितीय महायुद्धों ने झूठा, खोखला, अस्थायी, पंगु और अविश्वसनीय ठहराया। सर्वत्र बढ़ती हुई व्यक्तिगत स्वार्थ–साधना, बेईमानी, चोर–बाजारी, घूसखोरी आदि ने युग–युगों से समादत मानव–मूल्यों के सम्मुख भारी प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिये। ईश्वर के अस्तित्व पर विज्ञान ने अविस्मरणीय प्रहार किया। संसार की सभ्य समझी जाने वाली जातियों द्वारा ह्वाइटमैंत बरडन, वर्ण विवेचन जैसे असभ्य सिद्धान्तों का समर्थन और प्रचार होने लगा तो राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों पर ठहर पाना असंभव हो गया। इस विघटित स्थिति में नए मूल्यों की स्थापना भी आसान न थी। मार्क्सवादी दर्शन में पहले–पहल आकर्षण देखा गया पर वह भी युगीन बुद्धिजीवियों की अतिचेत और अतितार्किक कसौटी पर खरा उतर नहीं सका। इस विघटित अवस्था का सही–सही चित्रण नई कविता में बहुतायत से हुआ।

आगे की अवतारणा में कवि इस मूल्यगत शून्यावस्था के कारण परम्परा के विश्वासों के प्रति विद्रोही हो उठता है–

"आओ, हम अतीत को भूलें, जिसके यक्ष-
यक्षिणी हमकों
प्रिय लगते थे -क्योंकि वे नहीं रहे।"

इस प्रकार मूल्यों की दष्टि से विघटित दुनिया को कुँवरनारायण इस प्रकार देखते हैं–

"पागल से लुटे-लुटे, जीवन से छुटे-छुटे
ऊपर से सटे-सटे
अन्दर से हटे-हटे-
कुछ ऐसी भी दुनिया जानी जाती है।"

विघटित मूल्यों पर भी विश्वास रखने की भयानक स्थिति को देख कवि पूछ उठता है–

"कितना भयप्रद है, प्रभु, इन सबका सच होना।"

इस प्रकार विघटित मूल्यों का स्वर नयी कविता में मुखर सुनायी पड़ता है।

6. **खंडित व्यक्तित्व-** ठीक ही है कि कवि का व्यक्तित्व नई कविता में उभर आता है। पर उपर्युक्त मूल्यों का विघटन और तज्जन्य सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं नैतिक अव्यवस्था के अनिवार्य परिणामस्वरूप जो कुछ काव्य में उभर आता है, वह उसका खंडित, घायल एवं पंगु व्यक्तित्व ही है। जो कवि बेकार रहता है, उस पर समाज, परिवार, मित्र सभी टूट पड़ते हैं और जो नौकरी पर है वह यंत्र और नौकरशाही का क्रीतदास बनकर उन दोनों के बीच पिसता जाता है। किन्तु उसकी बौद्धिक चेतना भौतिक जीवन के दब जाने से नहीं दबती। अतः उसका व्यक्तित्व कटकर दुहरा हो जाता है। एक दिखावे का, दास का व्यक्तित्व जिसने परिवेश से समझौता कर लिया है, दूसरा अन्तर का क्रांतिकारी का व्यक्तित्व जो परिस्थिति के प्रति तीव्र विद्रोही हो उठता है।

इसके अतिरिक्त, आर्थिक दष्टि से अधिकांश नये कवि निम्न–मध्यवर्ग के थे उनका भी समाज में दुहरा व्यक्तित्व दिखा। एक दिखावा, ठाटबाट और भौतिक दष्टि से सम्मानित बनने के सफल–असफल प्रयासों से युक्त नुमाइशी व्यक्तित्व, दूसरा परिवार–हीन–आर्थिक स्थिति में पिसने वाला वास्तविक व्यक्तित्व। इन विरोधी तत्वों के बीच पिस–पिसकर उसका व्यक्तित्व खंडित हो गया जिसकी अभिव्यक्ति हम नयी कविता में बहुतायत से पाते हैं। अविराम संघर्ष के फलस्वरूप अपने थके–हारे घायल व्यक्तित्व का चित्रण कुँवरनारायण ने भारतीय चक्रव्यूह ग्रस्त अभिमन्यु से रूपक बाँधकर किया–

"मेरे हाथ में टूटा हुआ पहिया... बदन पर टूटा हुआ कवच,
सारी देह क्षत-विक्षत.....
में बलिदान उस संघर्ष में, कटु व्यंग्य हूँ
उस तर्क पर
जो जिन्दगी के नाम पर हारा गया।"

एक दूसरा खंडित व्यक्तित्व देखिए–

"मेरे बाँझ दिन की साँझ, पंख थका गयी
बैठा हूँ मैं दुबक कर घोंसले में"

किन्तु इस खंडित व्यक्तित्व की विशेषता यह है कि कवि इस अवस्था को शाश्वत मानकर और क्षयी मनोवत्तियों को अपनाकर अपने को उसके अनुरूप बनाने के बजाय उससे ऊपर उठकर अपने व्यक्तित्व की खोई हुई पूर्णता एवं संतुलितावस्था को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील बना रहा।

7. **नूतन-मानव की कल्पना**- नए कवियों की नवीन मूल्य भावना से सम्बद्ध है या हम कह सकते हैं कि यह नूतन मानव कवियों द्वारा समर्थित नूतन मूल्यों का पुतला है। जीवन को उसकी व्यापक संपूर्णता एवं समग्रता में चित्रित न करके उसकी जगह खण्ड चित्रों को प्रस्तुत करने की प्रवत्ति के कारण इस नव–मानव की भी समग्र एवं चतुर्मुखी कल्पना हमें नयी कविता में नहीं मिलती। विभिन्न कवियों ने अपनी–अपनी विभिन्न रचनाओं में इस नव–मानव के 'गुण विशेष' और उसको अनुशासित करने वाले 'मूल्य विशेष' की ओर अवश्य संकेत किया जिनको संगहीत करने पर नव–मानव की स्पष्ट मूर्ति पाठक के समक्ष आ सकती है।

यह नव मानव निरंकुश स्वतंत्रता का अचूक प्रेमी है जिसको पाने या बनाये रखने के संग्राम में पराजित होने की अपेक्षा वीरों की मत्यु मरना ही उसे वरणीय है। इतना स्वतंत्रता प्रेमी होते हुए भी वह अपने सामाजिक कर्त्तव्यों के प्रति सदा जागरूक है, क्योंकि वह जानता है कि 'मेरा भाग्य जुड़ा है उनसे जो मेरे हैं'। और युग जीवन की क्षयी प्रवत्तियों एवं अनिश्चयात्मकता से वह प्रभावित अवश्य है पर उनसे ऊपर उठने का आग्रह भी उसमें है। किसी भी एकांगी दष्टिकोण के चरणों में आत्मसमर्पण करने के लिए वह तैयार नहीं होता। भावुकता की जगह बौद्धिकता और विश्वासों की जगह तार्किकता से वह काम लेता है। अपने को सम्पूर्ण रूप से व्यवहारवादी बनाकर परिवर्तनशील परिवेश के अनुरूप ढाल लेने का आग्रह भी उसमें पाया जाता है।

8. **आशा-निराशा, आस्था-अनास्था का मिश्रित स्वर**- अनास्था और निराशा को पनपाने वाली परिस्थितियों में भी अपने जीवन–दर्शन के बल पर प्रगतिवादी कविता ने आशा और आस्था को मुखर किया है। इसकी प्रतिक्रियाजन्य अतिवादिता प्रयोगवादी कविता की विशेषता रही जहां अनुभूत या आरोपित निराशा एवं अनास्था से कवि की भावभूमि आक्रांत हो गई।

शायद निराशा और अनास्था के बीच में भी आशा और आस्था को प्रेरित करने वाली सामयिक परिस्थिति की ओर संवेदनशील होने के कारण या कभी आरोपित निराशावादिता में रमने और कभी उससे ऊपर उठकर बाहर की ओर खुली दष्टि रखने के कारण इन विरोधी तत्वों का मिश्रित स्वर नयी कविता में सुनाई पड़ा। इस विरोधाभास का कारण यह भी हो सकता है कि 'आज का कवि विभिन्न तत्वों से मिलकर बना है, उसने विभिन्न क्षेत्रों से प्रभाव ग्रहण किया है और वर्ण्य विषय के प्रति उसकी प्रतिक्रिया यहाँ भी विविध है।"

अब सवाल है कि इसमें कौन–सा स्वर नयी कविता में अधिक मुखर रहा। तमाम कवि निराशा और आस्था को ही काव्य में उतारते रहे, पर ऐसे भी कवि हुए जो इस प्रकार के चित्रण की परिसमाप्ति में आशा और आस्था का संदेश देना नहीं भूले। डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने माना कि 'नयी कविता' में 'मानव व्यक्तित्व को उभारने तथा उसमें आत्मविश्वास और आस्था के साथ सामाजिक दायित्व को भरने के भी अंकुर विद्यमान हैं। अतः यही कहना समीचीन होगा कि नयी कविता में इन विरोधी प्रवत्तियों का मिश्रित स्वर पाया जाता है। संसार की निराशामय स्थिति का चित्र देखिए–

"हर अलौकिक रूप पथ्वी पर बिगड़ता ही रहा

एक धब्बा हर उजाले पर सदा पड़ता रहा.....

आदमी हर दिव्यता के बाद भी सड़ता रहा।"

लगातार घायल होने और आशाओं पर निराशा की काली घटा घिरने के बाद भी कवि अग्रसर तो होते हैं पर "किसी भी ओर से संकेत की कोई किरन भी" नहीं फूटती। 'नई कविता' में अभिव्यक्त आशा और आस्था के भी एक दो स्वर सुनिए–

"फूलेंगे फूल लाल लाल करूँगी प्रतीक्षा अभी

पौधा है वर्तमान...

कल उगूंगी मैं, आज तो कुछ भी नहीं हूँ।"

9. **कथ्य की व्यापकता**- नई कविता का विषय क्षेत्र विशाल है तथा काव्य रचना में स्वच्छंदता है। नई कविता में नवीन बोध किंतु यह नवीन बोध भारतीय संस्कृति की भांति परंपरा या पुरातनता से अलग नहीं है। अपितु इसमें पुरातनता एवं अद्यतना का पूर्व सामंजस्य है। नई कविता के अधिकांश कवियों का संबंध प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद की एक निश्चित सीमा एवं प्रवत्ति थी जिसका इन्हें पूर्व ज्ञान था। सीमाबंधन के कारागार से मुक्त होने के लिए वे आकुल व्याकुल थे। कारागार से मुक्त होकर उन्मुक्त विस्तत काव्य जगत के प्रांगण में विचरण करने की असीम कामना थी। नई कविता ने ऐसे कवियों को सामान्य स्वच्छंद भूमि प्रदान की।

   नई कविता के प्रमुख दो तत्व हैं – (i) अनुभूति की सच्चाई तथा (ii) बौद्धिक यथार्थवादी दष्टिकोण। इन दोनों तत्वों की कोई सीमा नहीं थी अनुभूति की सत्यता का संबंध क्षणिक जीवन से भी हो सकता है। अथवा यह अनुभूति की सत्यता किसी समग्र काल की भी हो सकती थी। बौद्धिक यथार्थवादी दष्टि किसी व्यक्ति विशेष अथवा समष्टिगत अर्थात् सामाजिक जीवन से संबंधित आशा–निराशा, सामान्य व्यक्ति–विशिष्ट व्यक्ति, प्रेम–ईर्ष्या, अनुराग–विराग आदि किसी की भी सच्चाई में कविता एवं जीवन के लिए अमूल्य है। नई कविता की बौद्धिकता नवीन यथार्थवादी दष्टि तथा नवीन जीवन चेतना की पहचान के दोनों रूपों में दष्टिगोचर होती है। अनुभवों का मूल्यांकन करने वाली दष्टि है जो उनसे तटस्थ बनाए रखने हेतु सदैव प्रयास करती है तथा जीवन चेतना की पहचान हेतु सदैव प्रयास करती है तथा जीवन चेतना की भावात्मक सत्ता को नवीन समझ से संक्रांत बनाती है जिसके परिणामस्वरूप संवेदना का रूप ज्ञानात्मक हो जाता है।

10. **अनुभूति**- प्रश्न यह उठता है कि अनुभूति कवि या समाज किसकी होती है। साहित्य समाज का दर्पण है से स्पष्ट हो जाता है कि अनुभूति समाज की नहीं अपितु कवि की होती है। यह अनुभूति कभी मीरा जैसी अथवा कल्पित या क्रीत सूरदास जैसी होती है किंतु होती कवि की है। सामाजिक अनुभूति को कवि आत्मसात कर अथवा अपनी वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यंजना कर काव्य सजन करता है। कवि का सर्जक व्यक्तित्व कोई यंत्र नहीं है। वह प्रत्येक परायी अनुभूति को आत्मसात कर उसे स्वानुभूति का रूप प्रदान करने के पश्चात् ही काव्य सजन में सफलता प्राप्त करता है। जितना अधिक उसकी ग्रहण शक्ति होती है उतनी ही प्रबल उसकी अभिव्यंजना शक्ति होती है यही काव्य का सत्य है। समाज से लेने और समाज को देने में ही उसकी वास्तविक सच्चाई का ज्ञान होता है। इसलिए उसके व्यक्तित्व को संस्कारित करने वाली युग–सत्यग्राही चेतना की आवश्यकता होती है। कवि का युग बोध से संस्कृत व्यक्तित्व अपने द्वारा सबका अवलोकन कर लेता है। क्योंकि अपने मूल दर्द में एक है और कवि का व्यक्तित्व दर्द की संवेदना का जागरूक भोक्ता है–

"वही परिचित दो आंखे ही

चिर माध्यम हैं

सब आंखों से सब दर्दो से

मेरे चिर परिचय का।"

-अज्ञेय

11. **जीवन सत्य-** नई कविता जीवन के प्रत्येक क्षण की सत्यता को स्वीकारती है तथा उसे सहृदयता एवं पूर्ण चेतना से भोगने का समर्थन करती है। क्षण एवं शाश्वत बोध परस्पर विरोधी नहीं अपितु सहयोगी हैं। बूंद–बूंद जल से तालाब का निर्माण होता है। क्षण ही शाश्वत का निर्माता है इससे स्पष्ट हो जाता है कि क्षण शाश्वत को प्राप्त करने की यथार्थ प्रक्रिया है। क्षणिक जीवन सौंदर्य, क्षणिक अनुभूत व्यथा, या उल्लास, क्षणों में लक्षित होने वाली मनःस्थिति अथवा बाह्य व्यापार, क्षणों में स्फूर्जित हो जाने वाला कोई सत्य छोटा नहीं है। सत्य छोटा हो या बड़ा सत्य सत्य ही होता है। अनुभूति शून्यता तथा व्यथाहीनता इतिहास को असत्य का रूप प्रदान करती है। ऐसे इतिहास की कोई सार्थकता नहीं है। इसलिए नई कविता अनुभूतिपूर्ण गहरे क्षण प्रसंग, व्यापार या किसी भी सत्य को उसकी आंतरिक मार्मिकता के साथ ग्रहण करना चाहती है। इस प्रकार जीवन में सामान्य से सामान्य दष्टिगोचर होने वाला व्यापार या प्रसंग नई कविता में आकर नए अर्थ की अभिव्यक्ति करता है।

    क्षणिक अनुभूतियों के संदर्भ में नई कविता में मर्मस्पर्शी एवं वैचारिक प्रेरणा प्रदायिनी अनेक कविताएं उपलब्ध हैं। ये कविताएं मात्र क्षणों, प्रसंगों या दश्यों की लघुता का चित्रण नहीं करती अपितु संगत–असंगत बिंबों के द्वारा क्षणों की परिसीमा में उफनते हुए मानव जीवन की संश्लिष्टता को मूर्तिमत्ता प्रदान करती है। इन कविताओं का आकार लघु एवं प्रभाव अति तीव्र होता है। कुछ आलोचक नई कविता पर पूर्ण पाश्चात्य प्रभाव स्वीकारते हैं जिसमें आंशिकता सत्यता है। किन्तु इसे नई कविता धारा का मूल स्वर नहीं स्वीकारा जा सकता है। पाश्चात्य प्रभाव अपवाद स्वरूप है। कवि अपने परिवेश में जन्मता, पलता तथा अनुभूति ग्रहण करता है। इसलिए नई कविता परिवेश के जीवन सत्यों को छोड़कर परराष्ट्रीय प्रभाव की वैसाखी के सहारे खड़ी नहीं हो सकती है।

    सत्य रूप- जीवन सत्य के दो रूप हैं–

    (i) **कालजयी एवं सार्वभौम सत्य**– ये सत्य प्रकृति से ही देश–काल की सीमा में प्रतिबद्ध नहीं होते हैं।

    (ii) **देश-काल बद्ध सत्य-** कुछ जीवन सत्य किसी विशेष काल एवं स्थान के होते हैं। कविता में आकर काल एवं स्थान की सीमा लांघ जाते हैं।

12. **परिवेश-** कविता एक ऐसी संश्लिष्ट कृति है जिसमें हम परिवेशगत एवं परिवेशमुक्त सत्य को अलग–अलग नहीं कर सकते हैं क्योंकि सत्य की कोई विभाजक रेखा नहीं है। नई कविता का स्वर अपने परिवेश की जीवनानुभूति से प्रस्फुटित हुआ है। भिन्न–भिन्न कविताओं के जीवनानुभव विभिन्न परिवेशों से संबद्ध हो सकते हैं। नई कविता में ग्रामीण एवं नागरिक दोनों परिवेशानुसार काव्य सजन करने वाले कवि हैं। अज्ञेय का अनुभव क्षेत्र अति व्यापक है किन्तु अन्य कवियों का अनुभव क्षेत्र सीमित है।

    नागरिक परिवेश- इन कवियों में, बालकृष्ण राव, शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, कुंवर नारायण, विजय देव नारायण साही, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय आदि प्रमुख हैं।

    ग्रामीण परिवेश- ग्रामीण संस्कार एवं अनुभूतियों से निर्मित कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र, ठाकुर प्रसाद सिंह, केदार नाथ सिंह, नागार्जुन, शंभूनाथ सिंह तथा केदार नाथ अग्रवाल आदि प्रमुख हैं। इसे एकांतिक अलगाव नहीं कहा जा सकता है। कवियों का संक्रमण एक परिवेश से दूसरे परिवेश में होता रहता है। परिवेश के प्रभावानुसार काव्य सजन होता है। यथा – मदन वात्स्यायन की यांत्रिक परिवेश की कविताएं तथा ठाकुर प्रताप सिंह की संथाली परिवेश के आर्द्र गीत। परिवेश का वैषम्य अज्ञेय की कविताओं में दष्टिगोचर होता है। उनकी कविताओं में मध्यवर्गीय कुंठा–निराशा, औद्योगिक नगरों की असंगतिपूर्ण सभ्यता का तीव्रता से ग्रहण मिलता है। दूसरी ओर उन्मुक्त प्रकृति या ग्रामीण जीवन – छवि तथा विषमता या व्यथा को व्यंजित करते हैं अथवा प्रकृति एवं ग्राम जीवन के बिंबों के आधार अनुभूति या सौंदर्य का स्वर मुखरित करते हैं।

    नई कविता का परिवेश भारतीय जीवन है किंतु कुछ आलोचकों की मान्यता है कि नई कविता पर राष्ट्रीय परिवेश से प्रेरणा ग्रहण करने के परिणामस्वरूप अतिरिक्त अनास्था, निराशा, मरणधर्मिता तथा वैयक्तिक कुंठा आदि विशेषताओं का पश्चिम की नकल के आधार पर चित्रण किया गया है। यह सत्य है कि नई कविता में अतिरिक्त अनास्था, निराशा, मरणधर्मिता तथा वैयक्तिक कुंठा आदि चित्रित हैं किंतु ये विशेषताएं पाश्चात्य नहीं हैं अपितु इन विशेषताओं के जन्मदाता कारक भारतीय समाज में विद्यमान हैं। भारतीय समाज का परिवेश अति विषम एवं व्यापक है।

13. **क्षण-शाश्वत-** जीवन के प्रत्येक क्षण को विश्वास के साथ भोगना, उसकी पीड़ा और निराशा को जीवन सत्य के रूप में स्वीकार करके सच्चे रूप में भोगना ही जीवन का सच्चा उपभोग है। वास्तव में यही जीवन की आस्था है। किंतु जीवन का मूल्य सत्य मात्र पीड़ा एवं निराशा को मानकर अहोरात्रि शोक गीत गाने का उपदेश देना सामाजिक जीवन के संपूर्ण विकास के पीछे कार्य करने वाली मनुष्य की जिजीविषा, प्रेम एवं उल्लास को नकारता है। नई कविता में भी पीड़ा–निराशा को यत्र–तत्र जीवन का एक पक्ष न मानकर जहां समग्र जीवन सत्य को स्वीकारा गया है वहां पीड़ा को जीवन की सर्जनात्मक शक्ति न मानकर उसे गतिहीन करने वाली बाधा बनकर आने वाली माना है। ऐसा दष्टिकोण समाज या व्यक्ति जीवन के अभाव पक्ष को उद्घाटित करने में ही आनंदित होता है। अभाव पक्ष का उद्घाटन तभी सार्थक है जब यह सुधार या पूर्ति हेतु व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया हो। नई कविता जीवन मूल्यों की पुनः परीक्षा करती है। ये मूल्य नवीन युग की आवश्यकताओं के परिवेश में कितने सही प्रमाणित होते हें अथवा अपने रूढ़ रूप में कितने असंगतिपूर्ण हो गए हैं। इनका कितना अंश ग्राह्य या अग्राह्य है? जागरूक कवि या चिंतक हेतु यह परीक्षण अनिवार्य है।

14. **लोकोन्मुखता-** लोकोन्मुखता नई कविता की मुख्य विशेषता है कि वह सहज लोक जीवन के सन्निकट पहुंचने के लिए प्रयत्नशील है। नई कविता ने लोक जीवन की अनुभूति, सौंदर्य बोध, प्रकृति और उसके प्रश्नों को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया है। लोक जीवन के बिंबों, प्रतीकों, शब्दों एवं उपमानों को उन्हीं के मध्य से चुनकर उसने अपने को अत्यधिक संवदेनापूर्ण एवं सजीव बनाया है। बिंब कविता की मूल छवि है इसलिए नई कविता बिंब बहुल है।

15. **भाषा एवं बिंब-** भाषा मुक्त भाव से ऐसे शब्दों को ग्रहण करती है जो अभिजात न होकर सशक्त हैं। अपने में मिट्टी की सौंधी गंध छिपाए हुए हैं। नयी कविता जीवन के नए संदर्भों में उभरने वाली अनुभूतियों, सौंदर्य प्रतीतियों और चिंतन आयामों से संपक्त बिंब ग्रहण करती है। शहरी कवि विशेष रूप से नागरिक जीवन–बिंब ग्रहण करते हैं। जबकि ग्रामीण जीवन के संस्कारों से युक्त कवि ग्रामीण बिंबों का चयन करते हैं। व्यक्तित्व और सामाजिक दोनों प्रकार के बिंब नई कविता में विद्यमान हैं। कुछ बिंब नई कविता ने पुराणों एवं इतिहास से भी चुने हैं किन्तु उन्हें संदर्भानुसार नवीन अर्थ प्रदान किया गया है। बिंब विधान की दष्टि से 'अंधा युग', 'कनुप्रिया' तथा 'आत्मजयी' महत्वपूर्ण कृतियां हैं। रोमानी या बोझिल पदावली का प्रयोग। लोक शब्दों का चयन है। नई कविता की भाषा में खुलापन एवं ताजगी है।

अनुभूति शून्यता की अभिव्यक्ति की अस्पष्टता, अटपटेपन, दुरूहता में छिपाने का फैशन यहां तक बढ़ गया कि ढेर सी नई कविताओं के मध्य में बहुत से कवियों के व्यक्तित्व को पहचानना कठिन कार्य हो गया।

21. नई कविता के प्रमुख रचनाकार

सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय

व्यक्तित्व– अज्ञेय का जन्म (7 मार्च 1911–1987 ई.) ग्राम कसया जनपद देवरिया में हुआ था। पिता का नाम हीरानंद था। बी.एस.सी. परीक्षा उत्तीर्ण की। अंग्रेजी, हिंदी तथा संस्कृत का स्वाध्ययन किया। अज्ञेय का जीवन यायावरी एवं क्रांतिकारी था। इसलिये ये किसी व्यवस्था में बंधकर नहीं रह सके। सन् 1943–1946 ई. तक सेना में सेवा की। कई बार सांस्कृतिक कार्यों हेतु अमेरिका गए। कुछ दिनों तक जोधपुर विश्वविद्यालय में कार्य किया। कवि होने के साथ–साथ प्रख्यात कथाकार, समीक्षक एवं चिंतक–विचारक थे।

कृतित्वः

काव्य- 'आंगन के पार द्वार', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'हरी घास पर क्षण भर', 'इन्द्र धनु रौंदे हुए ये'।

कविताएं- 'भग्न दूत' एवं 'चिंता' नामक छायावादी कविताओं से काव्य यात्रा प्रारंभ की। 'दुख सबको मांजता है', अच्छा 'खंडित सत्य सुघर नीरंघ्र मषा से' एवं 'सांप'।

संपादन- 'तारसप्तक', 'इत्यलम्'।

साहित्यिक विशेषताएं- छायावादी कविताओं से काव्य–यात्रा प्रारंभ करने वाले अज्ञेय प्रयोगवाद एवं नई कविता के विशिष्ट कवि हैं। इस धारा के कवियों में इनका काव्य सबसे अधिक वैविध्यपूर्ण है। उनका स्वर अहं – समाज, प्रेम–दर्शन, आदिम गंध – विज्ञान चेतना, यंत्र–सभ्यता – लोक परिवेश, यातना – बोध – विद्रोह की ललकार, प्रकृति सौंदर्य – मानव सौंदर्य तक विस्तत है। इस व्याप्ति में संवेदनशीलता या अनुभूति सर्वत्र साथ नहीं देती है। कहीं कहीं कोरा बुद्धिवाद या नीरसता उभर आती है।

'तारसप्तक' की कविताओं के साथ अज्ञेय की नई कविता यात्रा का आरंभ होता है। जो बाद में 'इत्यलम्' में संग्रहीत दष्टिगोचर होती है। अज्ञेय में संवेदना के साथ सजगता एवं बुद्धिवाद की प्रधानता है। बुद्धिवाद उनकी संवेदना को नियंत्रित करता है साथ ही कभी सूक्तियों के रूप में कभी व्यंग्य के रूप में, कभी युग चिंतन और युग बोध के बिंब विधान के रूप में व्यक्त होता है जो संवेदना या अनुभूति से अंतरंग भाव से जुड़ा न होने के कारण बिंब रचना के होते हुए भी बहुत दूर तक प्रभावविहीन हो जाता है। अज्ञेय की कविताओं में स्वर वैविध्यता का कारण उनका बुद्धिवाद है। संवेदना एवं बुद्धिवाद की यह सहयात्रा जहां रोमानी परंपरा को तोड़कर नए सौंदर्यबोध से सम्पन्न स्वस्थ काव्य की सष्टि करती है वहीं बुद्धिवादिता का अतिरेक शुष्क, दुरूह और नव रहस्यवादी कविता को जन्म देता है। अज्ञेय की छोटी–छोटी कविताएं सौंदर्य और प्रभाव की सष्टि की दष्टि से विशिष्ट एवं सक्षम हैं – वे चाहे व्यंग्य करती हों, चाहे कोई सौंदर्य का अनुभव जगाती हों, चाहे रूप की अभिव्यक्ति करती हों।

गिरिजा कुमार माथुर

व्यक्तित्व- गिरिजा कुमार माथुर का जन्म सन् 1918 ई. को मध्य प्रदेश के एक कस्बे में हुआ था। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. तथा एल.एल.बी. परीक्षा उत्तीर्ण कर वकालत प्रारंभ की। कुछ समय पश्चात् दिल्ली सेक्रेटियेट में सेवा की । अंत में आल इंडिया रेडियो में कार्य करने लगे।

कृतित्व- 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान', तथा 'शिलापंख चमकीले'।

साहित्यिक विशेषताएं- माथुर में प्रयोग एवं संवेदना का सुंदर सामंजस्य है। अर्थात् बुद्धिवाद या फैशन के कारण कहीं प्रयोग नहीं किया गया है। उनका प्रयोग उनकी अनुभूतियों और संवेदनाओं के सूक्ष्म कोणों, रंगों एवं प्रभावों को व्यक्त करने की आकुलता से संबद्ध है। छंद, भाषा, बिंब विधान सभी दष्टियों से प्रयोग किए गए हैं। इनके छंदों में लयात्मकता सर्वत्र देखी

जा सकती है। कहीं कहीं कवि ने सवैया छंद को तोड़कर उसे नए छंद में परिवर्तित कर दिया है। उनके काव्य के दो स्वरूप हैं–

(i) **व्यक्तिगत अनुभूतियां-** 'मजीर' एवं 'तारसप्तक' में उनकी वैयक्तिक अनुभूतियां दष्टिगोचर होती हैं।

(ii) **सामाजिक अनुभूतियां-** 'नाश और निर्माण' तथा 'शिलापंख चमकीले' में सामाजिक जीवन की अनुभूतियां एवं यथार्थ का स्वर मुखरित हुआ है।

'तारसप्तक' में जीवन यथार्थ के नए आयाम का प्रयोग नहीं किया गया है। वे अपने परिवेश में जीवन सत्यों से अलग दष्टिगोचर होते हैं उनसे जुड़ाव की प्रतीति नहीं होती है। संवेदना रोमानी है। प्रकृति की रंगमयता, उसकी उदासी, सौंदर्य–प्यास, प्रेम–प्रसंगों की स्मतियों का दंश, सुंदर वातावरण, साथी विहीनता तथा अकेलेपन का बोध आदि इनके अनुभव एवं संवेदना के अंग हैं। इनके रचना लोक में विभिन्न रूप–रंगों, ध्वनियों, गंधों एवं स्पर्शों में इन्हीं का रूप दिखलाई पड़ता है। सीमित जीवन अनुभवों में भी माथुर एक विशिष्ट कवि हैं क्योंकि वे इन अनुभवों, अति गहन एवं सूक्ष्म छायाओं के सच्चे पारखी हैं।

'नाश और निर्माण' में 'तारसप्तक' की कविताएं भी संकलित हैं इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी कविताएं भी हैं जो सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं। इनकी कविताओं में शक्ति, उल्लास एवं सामाजिक जीवन का स्पंदन है। पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के रूप में विषम परिणामों का तीव्र अनुभव तथा उनके विरुद्ध समाजवादी चेतना का प्रसार है।

गजानन माधव 'मुक्ति-बोध'

व्यक्तित्व- इनका जन्म (सन् 1917–1964 ई.) ग्वालियर के एक कस्बे में हुआ। बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर अध्यापन कार्य करने लगे। पत्रकारिता का कार्य प्रारंभ कर दिया पुनः अध्यापन कार्य करने लगे। ये विशिष्ट विचारक, समीक्षक तथा कथाकार थे। अपनी पूरी पीढ़ी में मुक्तिबोध का व्यक्तित्व विशेष महत्व रखता है।

कृतित्व- 'ब्रह्म राक्षस' तथा 'अंधेरे में' इनकी प्रमुख कविताएं हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- इस पीढ़ी और इससे लगी हुई परवर्ती पीढ़ी के लगभग सारे महत्वपूर्ण जिनमें अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, शमशेर बहादुर सिंह तथा धर्मवीर भारत आदि प्रमुख हैं – कवियों ने रूमानी कविता का त्याग कर नया प्रयोग करने का प्रयास किया किंतु रूमानी संवेदना और तत्कालीन भाषा से उनको मुक्ति नहीं मिल पाई। किंतु मुक्तिबोध मात्र ही ऐसे कवि हैं जिनका अनुभव जगत अति व्यापक है। उनकी प्रगतिवादी दष्टि परिवेश बोध, सामाजिक चिंतन तथा अनुभव वैविध्य को और बलवान बनाती है। जिसके फलस्वरूप कहा जा सकता है कि बाद में जीवन की बहुविध छवि को लेकर विकसित होने वाली नई कविता के अग्रज एवं श्रेष्ठ कवि सच्चे अर्थों में मुक्तिबोध ही हैं। लोक परिवेश गहन संपक्ति तथा लोक जीवन के प्रति अटूट विश्वास एवं आस्था उनकी सबसे बड़ी शक्तियां हैं।

शिल के प्रति असावधानी उनके अनुभव – खंडों को एक सूत्र में बांध नहीं पाती और समग्रतः बिंबों की रचना में संश्लिष्टता एवं सघनता नहीं भर पाती है। मुक्तिबोध में फैंटेसी है अर्थात् एक जादुई कथा में आधुनिक जीवन अनुभव की अभिव्यक्ति है। 'अंधेरे में' एवं 'ब्रह्मराक्षस' इस दष्टि से विशेष महत्व की कविताएं हैं। उनकी अनुभूति वैयक्तिक ही नहीं है अपितु अपने परिवेश से गहनता से संबद्ध है तथा अनेक आवर्तों से लिपटी है। कवि आलोच्च दष्टि रचनात्मक संदर्भ में लक्षित होने वाली सार्थकता–निरर्थकता को परखती चलती है।

भवानी प्रसाद मिश्र

व्यक्तित्व- भवानी प्रसाद मिश्र का जन्म सन् 1914 ई. में मध्य प्रदेश में हुआ। बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की। 'कल्पना' पत्रिका के संपादक बन गए। वहां से आल इंडिया रेडियो की सेवा में लग गए। अवकाश प्राप्त करने तक संपूर्ण गांधी वाङ्मय के संपादक मंडल में रहे।

कृतित्वः

कविताएं- 'कमल के फूल', 'वाणी की दीनता', 'टूटने का सुख', 'सतपुड़ा के जंगल', 'सन्नाटा', 'गीत फरोश', 'असाधारण' एवं 'स्नेह शपथ' आदि प्रमुख कविताएं हैं। जिनमें 'गीत फरोश' को विशेष ख्याति मिली।

साहित्यिक विशेषताएं- ये सहज संवेदना के कवि हैं। इनकी संवेदना कहीं अति सूक्ष्म एवं आत्मसात हैं, जैसे 'कमल के फूल', 'वाणी की दीनता' तथा 'टूटने का सुख' आदि में। कहीं अति प्रत्यक्ष और परिवेश संपक्त है, जैसे–'सतपुड़ा के जंगल', 'सन्नाटा' तथा 'गीत फरोश' आदि कविताओं में कवि की सहजता, सघन अनुभूति तथा संयत अभिव्यक्ति के क्षणों में जहां अति रम्य काव्य का सजन करती है वहीं फॉर्मूलाबद्ध आदर्शवादिता, अनुभूति के सतहीपन तथा अभिव्यक्ति के तुकांतवादी विस्तार की अव्यवस्था में सामान्य काव्य की। 'असाधारण' एवं 'स्नेह शपथ' जैसी उनकी अनेक कविताएं सामान्य हैं। उनकी भाषा और अभिव्यक्ति में लोक जीवन का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है।

शमशेर बहादुर सिंह

व्यक्तित्व- शमशेर बहादुर सिंह का जन्म 3 जनवरी सन् 1911 ई. में देहरादून में हुआ। बी.ए. की शिक्षा प्राप्त कर लेखन कार्य में रत हो गए। 'कहानी' एवं 'नया साहित्य' के संपादक मंडल में कार्य करने लगे। काफी दिनों तक बेकार भी रहे। दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली के उर्दू विभाग में कोश संबंधित कार्य भी किया।

साहित्यिक विशेषताएं- शमशेर बहादुर सिंह के संस्कार व्यक्तिवादी हैं, अनुभव रूमानी हैं, तथा विचार मार्क्सवादी हैं। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व विभिन्नता में एकता स्थापित करने वाला है। उनकी अधिकांश कविताओं की विषयवस्तु कुंठित प्रेम है। संवेदना एवं अभिव्यक्ति की दष्टि से ये प्रयोगवाद की अतिशय व्यक्तिवादिता के प्रतीक हैं। इनकी अतिशय व्यक्तिवादिता मात्र अपने प्रति प्रतिबद्ध है जिसके फलस्वरूप वह पाठकों के संज्ञानक की उपेक्षा कर जाती है तथा ऐसे–ऐसे बारीक जाल बुनती है, खंडित बिंबों की योजना करती है कि संपूर्ण कविता अपने इच्छित मंतव्य के साथ व्यक्त नहीं हो पाती है। शमशेर का सौंदर्य बोध अति सूक्ष्म है किंतु कठिनाई यह है कि सौंदर्य यत्र–तत्र की पंक्तियों में येनकेन प्रकारेण उभार का अवसर प्राप्त करता है। मुक्त आसंग, चेतना प्रवाह, अमूर्त चित्रात्मकता तथा शब्द–संगीत आदि शमशेर बहादुर सिंह के शिल्प को सर्वथा एक नवीन रूप अवश्य प्रदान करते हैं किन्तु वे अनुभव लोक मूर्तता प्रदान करने की अपेक्षा उलझाव प्रदान करते हैं। अभिप्राय यह कि उनकी कविता पाठकों के लिए सहज ग्राह्य न होकर कष्ट साध्य एवं श्रम साध्य है।

धर्मवीर भारती

कृतित्व- 'अंधा युग', 'कनुप्रिया' तथा 'सात गीत वर्ष'।

साहित्यिक विशेषताएं- वास्तविकता यह है कि धर्मवीर भारती की उपलब्धियां उनकी अंतिम कृतियों में दष्टिगोचर होती हैं। आरंभिक कविताएं उनकी किशोरावस्था की भावुकता से विशेष रूप से आक्रांत दष्टिगोचर होती हैं। भारत में आदिम गंध की तड़पन और जनजीवन की रूमानी छवि की पकड़ है। इसलिए इनकी कविताएं विशेष रूप से गीत परक हो गई हैं जिनमें लोक–परिवेश की मस्ती एवं उल्लास की स्थानापन्न उदासी एवं सूनापन ही अधिक उभरकर सामने आया है।

"घाट के रस्ते उस बंसवट से
इक पीली सी चिड़िया
उसका कुछ अच्छा नाम है
मुझे पुकारे ताना मारे
उन्मन यह फागुन की शाम है।"

-ठंडा लोहा

भारती के काव्य की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उसका मूर्तविधान एवं पारदर्शिता जो उनके परवर्ती गंभीर एवं चिंतन से संवरे काव्यों में लक्षित होती है। 'सात गीत वर्ष' की कविताओं में कवि की रूमानी भाव प्रधानता ने यथार्थ की गहनता को प्राप्त कर लिया है। यहां भी अनेक कविताएं प्रेम प्रधान हो गई हैं किन्तु प्रेम के अति सूक्ष्म संक्रांत अनुभवों को उभार प्रदान की गई हैं। इनमें कुछ कविताएं व्यंग्य की प्रधानता लिए हुए हैं जो किसी सांस्कृतिक, सामाजिक या राजनीतिक विसंगतियों पर हल्की–हल्की चोट पहुंचाती हैं। मूल्य से संबंधित प्रश्न भी उभारे गए हैं किन्तु मान संवेदना की सेंक से तप्त हैं।

प्रबंध काव्य- नई कविता काल में कुछ प्रबंध काव्यों का भी सजन हुआ है जिनमें मैथिलीशण गुप्त –'जय भारत' एवं 'विष्णु प्रिया', गुरुभक्त सिंह 'भक्त' – 'विक्रमादित्य', मोहन लाल महतो वियोगी – 'आर्यावर्त', रामधारी सिंह दिनकर – 'उर्वशी', 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी', सियाराम शरण गुप्त – 'उन्मुक्त', सुमित्रा नंदन पंत – 'लोकायतन', केदार नाथ मिश्र प्रभात – 'ऋतंवरा', धर्मवीर भारती – 'कनुप्रिया', ठाकुर प्रसाद सिंह – 'महामानव', नरेन्द्र शर्मा – 'द्रौपदी' तथा उत्तर जय एवं कुंवर नारायण – 'आत्मजयी' आदि उल्लेखनीय हैं।

युद्ध काव्य- कुछ युद्ध से संबंधित काव्य भी इस काल में लिखे गए जिसमें प्रमुख – 'कुरुक्षेत्र', 'आर्यावर्त' तथा 'उन्मुक्त' हैं।

22. नवगीत और नव गीतकार

नवगीत को नव्य गीत या नए गीत भी कहा गया है। पद्य काव्य की एक विद्या गीत है। समसामयिक परिवर्तनों की दष्टि से इसे चिरंतन विद्या की संज्ञा दी जा सकती है। युगीन संदर्भानुसार मानव मन के संवेग, भाव या विचार परिवेश में नए–नए रूप ग्रहण करते रहते हैं। इन संवेगों की अभिव्यक्ति हेतु मानव मन आकुल–व्याकुल रहता है जब तक इन्हें मुक्त कंठ से गा नहीं लेता उसे संतुष्टि नहीं मिलती है। यह कटु सत्य है कि काल एवं परिवेश मानव मन के संवेगों को परिवर्तित करते रहते हैं। यही कारण है कि आधुनिक व्यक्ति के सुख–दुख, राग–विराग, ईर्ष्या–द्वेष आदि की संवेदना आदिम कालीन मानव संवेदना की भांति प्रत्यक्ष, सीधी और आवेगात्मक नहीं हैं क्योंकि उसमें बौद्धिक युग की अनेक जटिलताएं समाहित हो गई हैं। इसलिए आधुनिक संवेदना आदिकालीन, मध्ययुगीन संवेदना रूमानी गीतों की संवेदना की भांति एक लय में वेग से नहीं फूट चलती है अपितु वह एक विशिष्ट मानसिक परिवेश में अपने अनुकूल बिखरे हुए संवेगों से जुड़ती है। अभिप्राय यह है एक संवेग दूसरे से संक्रांत होता है। ये संक्रांत संवेग एक आंतरिक एकता से अनुशासित होते हैं। देखने में ये संवेग बिलकुल भिन्न–भिन्न प्रतीत होते हैं किंतु मूलतः आंतरिक संगीत से समन्वित होते हैं। वर्तमान में यह सत्य भाव नई कविता और नवगीत दोनों में व्यक्त हो रहा है। इन संक्रांत संवेगों को रूपायित करने के लिए कवि को अनिवार्य रूप से बिंबों, प्रतीकों और लाक्षणिकता की योजना करनी पड़ती है। बिंबों और प्रतीकों के बिना संवेगों की संश्लिष्टता और सूक्ष्मता व्यंजित नहीं हो पाती है।

जहां मानव मन सौंदर्य, राग एवं सत्य के किसी पहलू को गहराई से स्पर्श करता है वहां गीत की भूमि होती है। यह कथ्य अपेक्षाकृत आत्मप्रधान होता है। इसे विश्लेषण या विवेचन की आवश्यकता नहीं होती हैं न ही अति व्यापक या जटिल होता है कि उसको सुलझाने में बुद्धि को प्रयास करने में थकावट का अनुभव हो। बुद्धि भार से दबती नहीं है। हिंदी में प्रायः गीतों का एक आकार स्वीकार कर लिया गया है। उस आकार में अधिक से अधिक सामग्री अर्थात् विषय वस्तु भरने का अथक प्रयास किया जाता है। जितना संभव था उतना उसमें ठूंस–ठूंसकर भरा गया। जिसके परिणामस्वरूप नया कवि गीतों को अच्छी दष्टि से न देखकर उससे घणा का भाव रखने लगा है। उन गीतों को आज के लिए अनावश्यक तथा अपर्याप्त स्वीकारने लगा है। गीत की इन व्यावहारिक सीमाओं के कारण उसकी मौलिक शक्तियों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किंचित इन्हीं शक्तियों के कारण बहुत से अच्छे नए कवि गीतकार भी हैं। उनके गीतों की तरलता, अनुभूति सघनता और प्रभावान्विति का प्रभाव उनकी नई कविताओं पर भी पड़ता है। प्रचलित रंगमंचीय अश्लील एवं भद्दे गीतों से अलग करने के लिए इन गीतों को नवगीत कहा गया है। समसामयिक गीतकारों में प्रमुखतः अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, जगदीश गुप्त, शंभू नाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, केदार नाथ सिंह, रवींद्र भ्रमर तथा वीरेंद्र मिश्र आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी गीतकारों का अपना–अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है किंतु इनके गीतों की एक सामान्य भूमि भी है। अनुभूति की सच्चाई, अनुभूति की अपनी–अपनी विशिष्टता, नवीन सौंदर्य बोध, आकार लघुता, नवीन बिंब–प्रतीक उपमान–योजना इनकी सामान्य विशिष्टता है। इसलिए ये गीत प्रभावान्विति की दष्टि से अंतर्दीप्त प्रतीत होते हैं। इन सभी गीतों में लोकजीवन का आनंद है। इस अर्थ में नहीं कि इन्होंने प्रचलित गीतों की भांति लोकभाषा से अपने गीतों 'दूध–बताशा', 'पनघट', 'वंशीवट', 'चुनरिया' तथा 'ओढ़निया' आदि अनेक शब्दों को चुना है अपितु इसलिए कि इसमें इन्होंने लोक जीवन की वस्तु योजना को पकड़ा है। उसकी संवेदना को स्वीकारा है। ये गीत जिस भूमि पर उत्पन्न हुए हैं उस भूमि के रसगंध को अपने में समेटे हुए हैं। इसलिए इन गीतों में नागरिक, ग्रामीण, व्यक्तिगत, सामाजिक, प्रेम की प्रेमेत्तर प्रकार की संवेदनाओं के भिन्न–भिन्न स्वरूप कवियों के व्यक्तित्वों एवं मानस संस्कारों के अनुसार लक्षित होते हैं। नव गीत में रस का बासीपन सा सड़ांध नहीं होती है अपितु अंतर की दमक होती है। इन गीतों की उपलब्धि इनके तरल, सरल, रसमय, उच्छल प्रवाह और आवेगों में नहीं है अपितु इनकी बुद्धि संयत हार्दिकता, संवेदना के अनुभूत स्तरों में नियोजन, एक विशेष प्रभाव भूमि के अंतर्गत आने वाले बिखरे किंतु एक दूसरे से संक्रमित बोधों के संश्लेषण और अनुकूल बिंबो, प्रतीकों और लाक्षणिक प्रतीकों की खोज में हैं। कवि अपने अपने संस्कारानुसार इस सामान्य भूमि पर नूतन बिंब प्रतीकों का विधान करते हुए चले हैं।

नवगीत के अंतर्गत प्रयोगवादी एवं नई कविता के अधिकांश कवि आ गए हैं। नव कवि की प्रतिभा इसी में है कि वह इन्हें नव संदर्भों में जांच–परखकर नवगीत की संरचना करे। नवगीत के प्रयोजन को रसानुभूति नहीं कहा जा सकता है। अनुभूति को नकारा नहीं जा सकता है। साधारणीकरण का रूप बदल गया है। आज पहले की भांति सामान्य प्रतीतियां नहीं है जिनमें सभी लोग सांझी हो सकें। विभक्त प्रतीतियों के समय में प्रेषणीयता का कार्य पर्याप्त कठिन हो गया है। नवगीत में प्रेषणीयता अनिवार्य तत्व है। नवगीत में पुरानी काव्य–रूढ़ियां भी मिलेगीं, पर युगीन संदर्भ से युक्त होने के कारण वह नव होकर रूढ़ि मुक्त हो गया है। परंपरा से कटकर लिखे गद्य नव गीत की संपक्तता सर्वथा संदिग्ध है। परंपरा को नया संदर्भ देना उसे जीवंत बनाना है।

गीत विहीन जीवन शुष्क एवं नीरस हो जाता है। गीत के भाव सीधे हृदय से आते हैं।

महादेवी वर्मा ने नवगीत को परिभाषित करते हुए लिखा है –

"सुख–दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेषकर गिने–चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। साधारण गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र और सुख दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"

गीत का संबंध मानव के अंतस्तल से होता है जो सुख–दुख से प्रेरणा प्राप्त करके तीव्रतम भावों की अभिव्यक्ति करता है। वही भाव संगीत के साथ लयबद्ध होकर गीत कहलाते हैं। प्रायः सभी कालों में गीत की संरचना हुई है किन्तु नई कविता के बाद के नवगीत उन सबसे अपना अस्तित्व भिन्न बनाए हुए हैं। परंपरा से अपने को मुक्त करके इन्होंने अपना संबंध जन–जीवन से जोड़ा है। गीतकारों ने आधुनिक गीत को नया भावबोध तथा विस्तत आयाम प्रदान किया है जिसमें सर्वसाधारण मानव के जीवन–संघर्षों का चित्रण किया गया है। निराला के गीतों में नवगीत का आरंभिक स्वरूप देखने को मिलता है। छायावाद युग में ही नवगीत का बीजवपन हो चुका था। नवगीत आंदोलन नहीं अपितु विकास की परंपरा है।

नवगीतकारों ने गीत को छायावादी गीत से बाहर निकाला है तथा समष्टि के यथार्थ एवं परंपरागत सौंदर्य से निकालकर नए सौंदर्य से भंडित किया है।

गीतकार- गीतकारों में हरिवंश राय बच्चन, रामेश्वर शुक्ल अंचल, गोपाल सिंह नेपाली, नरेन्द्र शर्मा, नीरज, जानकी वल्लभ शास्त्री तथा सोम ठाकुर आदि प्रमुख हैं।

नवगीत बीसवीं सदी के छठे दशक की देन है। सन् १९५८ ई. में राजेन्द्र सिंह ने मुजफ्फरपुर बिहार से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'गीतांगिनी' में इन गीतों को 'नवगीत' नाम से विभूषित किया। वैमत्य के होते हुए राजेन्द्र सिंह को 'नवगीत' का प्रवर्तक स्वीकारा गया।

नवगीत के बीज छायावादोत्तर गीत लेखन में अर्थात् बच्चन, भगवती चरण वर्मा एवं रामेश्वर शुक्ल अंचल में खोजे जा सकते हैं। इसके बाद यह गीतधारा, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के गीतकारों के कंठों को सुसज्जित करती हुई नई कविता धारा में पहुंच गई तथा पंत, निराला, केदार नाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, अज्ञेय, शंभूनाथ सिंह, धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद मिश्र आदि का सानिध्य प्राप्त किया।

नवगीत की भाव चेतना के आधार पर नवगीतकारों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) **आधुनिकता बोध संपन्न**- आधुनिकता की प्रवत्ति निम्नलिखित गीतकारों में दष्टिगोचर होती है। ओम प्रभाकर, सोम ठाकुर, भगवान स्वरूप नईम, विनोद गौतम, विजय किशोर, डॉ. सुरेश, राजेन्द्र गौतम, उमा शंकर तिवारी, राम चन्द्र भूषण, कुमार रवींद्र, शंभू नाथ सिंह, श्री कृष्ण तिवारी, राम सेंगर तथा अमर नाथ।

(ii) **लोक बोध सम्पन्न**- ठाकुर प्रसाद सिंह, दिनेश सिंह, अनूप अशेष, सुधांशु उपाध्याय, गुलाब सिंह, अखिलेश कुमार आदि।

(iii) **प्रकृति बोध सम्पन्न**- देवेन्द्र कुमार, ठाकुर प्रसाद सिंह, शिव बहादुर सिंह भदौरिया, अनूप अशेष तथा गुलाब सिंह आदि।

(iv) **जातीय बोध सम्पन्न**- उमाकांत मालवीय, देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र', सोम ठाकुर, शंभूनाथ सिंह, राधे श्याम शुक्ल तथा नीरज आदि।

"नवगीत" के संदर्भ में सोम ठाकुर ने लिखा है–

'नवगीत सामाजिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के नग्न चित्र प्रस्तुत करता है परन्तु वह उसे निरीह नग्न रूप में अकेला नहीं छोड़ता, वरन् उसके शरीर पर उभरे हुए अनेक घावों का वैद्य बनकर रोगी की मरहम पट्टी करता है तब उसमें दिखावा, बनावटीपन एवं कृत्रिमता लेशमात्र भी दिखाई नहीं देती। उसने पूर्व के गीत से चली आ रही विसंगति पर खुलकर चोट की, उसके पारंपरिक ढांचे को ध्वस्त किया और नवीन जीवन दष्टि लेकर जनसाधारण के बीच खड़ा होकर दैनिक समस्याओं का सामना किया है।"

सोम ठाकुर ने आगे लिखा है–

"नवगीत का कथ्य हमारे देश की निजी, कड़वी–मीठी संवेदनशीलता का आसव है और उसका शिल्प निजी अभ्यासों के अनुकूल अपनी मिट्टी की नई तराश और पकड़ की गुंजाइश का पात्र, जिसके सर्जक की कसौटी में स्वयं का व्यक्तित्व स्पष्ट निजता के साथ ध्वनित हो रहा है। यह सार्वजनिक निजता ही नवगीत का परस्तरित सेतुबंध है।"

नवगीत में सामाजिक यथार्थ का निरूपण, नगरी एवं महानगरीय परिवेश का चित्रण, व्यवस्था का विरोध, बौद्धिकता की प्रधानता, ग्रामीण एवं आंचलिक चित्रण, प्रेम एवं श्रंगार की अभिव्यक्ति, राष्ट्रचेतना का चित्रण आदि विशेषताएँ पाई जाती हैं।

डॉ. कुंवर बेचैन ने नवगीत के शिल्प के विषय में लिखा है–

"आकार–प्रकार में सक्षिप्त गेयता को सुरक्षित रखने वाली उस काव्यविद्या को नवगीत कहेंगे, जिसमें सामाजिक यथार्थ की छाया में वैयक्तिक अनुभूतियों को ताजे टटके प्रतीकों, बिंबों एवं ऐसी नई शब्दावली में अभिव्यक्त किया जाता है, जिसमें समसामयिक बोध की दीप्ति बलवती है। अनुकृति की सच्चाई, रागात्मकता की चमक, नवीन लाक्षणिक प्रतीकों की खोज, सामाजिक यथार्थ से व्यक्ति की समझ का टकराव, रचनात्मक स्तर पर जड़ परंपराओं का विरोध, भाव और विचारों का समन्वय ऐसे तत्व हैं जिनकी छाया में नवगीतों को पहचाना जा सकता है।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि नवगीत पारंपरिक गीतों से भिन्नता में विशेष रूप से पहचाना जाता है। शब्दों का चयन ग्रामीण अंचल एवं नागरिक परिवेश से किया जाता है। वस्तु पक्ष की भांति ही नवगीत का शिल्पपक्ष भी अति विशिष्टता एवं व्यापकता लिए हुए है।

23. समकालीन कविता

नामकरण

समकालीन कविता से पूर्व गद्य विद्या में कहानी के पश्चात् अकहानी तथा लघु कथा का रूप प्रचलित हो चुका था उसी को आधार बनाकर नवगीत के पश्चात् पद्य विधा में जिस नवीन विधा का आविर्भाव हुआ उसे अकविता, अतिकविता, अस्वीकृत कविता, विद्रोही पीढ़ी, कबीर पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी, भूखी पीढ़ी आदि अनेक नाम दिए गए।

सन् 1960 ई. के आस–पास नई कविता और नवगीत की धारा अपने से कुछ अलग होती हुई परिलक्षित है जिसे अनेक नाम दिए गए हैं। उपर्युक्त नामों में दो वर्ग दष्टिगोचर होते हैं

(i) अकविता, अति कविता, अस्वीकृत कविता।

(ii) विद्रोही पीढ़ी, कबीर पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी, भूखी पीढ़ी।

प्रथम वर्ग के तीनों नामों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इन की निर्मिति नञ् समास के आधार पर हुई। दो मदों को समस्त पद रूप से समन्वित करके नामकरण किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्योमितीय शब्दावली में कहा जा सकता है कि 'कविता' शब्द और 'अ' उपसर्ग उभयनिष्ठ हैं। उभयनिष्ठ को अलग कर दिया जाए तो 'अ' एवं 'कविता' शब्द शेष रह जाते हैं ये दोनों ही बहुचर्चित पद हैं इनके विवेचन की आवश्यकता नहीं है। नकारात्मक 'अ' का अर्थ विहीनता एवं न होना है। कविता के तत्वों को नहीं नकारा गया है जो नहीं है वह क्या है? लगता यह है कि मात्र अकहानी के आधार अकविता कहां कैसे कविता एवं अकविता में कोई भेदक तत्व प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह तथ्य अवश्य सामने आया है कि अकविता में नकारात्मक नहीं अपितु विशिष्टता अथवा चमत्कार का भाव भरा गया है। यथा 'खालिस' शुद्धता का द्योतक शब्द है उसमें 'नि' नकारात्मक उपसर्ग इसी अर्थ में नहीं लिया जाता है अपितु विशिष्टता या चमत्कारी अर्थ देने के लिए 'खालिस' से 'नि' + 'खालिस' = निखालिस शब्द का निर्माण किया गया है जो विशेष शुद्धता का द्योतन करता है। उसी प्रकार 'कविता' से अलग उसमें विशिष्टता तथा चमत्कार का भाव भरने के लिए 'अकविता' शब्द का निर्माण किया।

द्वितीय वर्ग के नामों के विश्लेषण से ज्ञात है यह नामकरण भी दो समस्त पदों से निर्मित है। ये पद विद्रोही, कबीर, क्रुद्ध तथा भूखी एवं पीढ़ी है। पीढ़ी पद उभयनिष्ठ है। 'पीढ़ी' का अर्थ वर्ग होता है। मानव सभ्यता का विकास पीढ़ी दर पीढ़ी अग्रसर है। इसी प्रकार नई कविता, नवगीत के पश्चात् आने वाले वर्ग को पीढ़ी का नाम दिया गया है। पीढ़ी विकास वंश परंपरा का विकास होता है। दादा के पश्चात् पिता, पिता के पश्चात् पुत्र अस्तित्व में आता है। दादा–पोते की धारणा, भाव, चिंतन एवं दर्शन में समयांतराल के परिणामस्वरूप परिवर्तन आ जाता है यह परिवर्तन ही संघर्ष का कारण है। कुछ समय पूर्व तक दादा–पोता से संघर्ष पीढ़ी संघर्ष का रूप धारण कर गया अर्थात–पिता–पुत्र में पीढ़ी संघर्ष आया। वर्तमान में यह पीढ़ी संघर्ष दशक संघर्ष का रूप धारण कर गया है अर्थात् दस वर्ष के अंतराल में वैचारिक भिन्नता आ जाती है जिसके परिणामस्वरूप पुरातन नवीन का संघर्ष चलता है। यह संघर्ष अनादि काल से चलता रहा है चल रहा है चलता रहेगा। पुरातन पीढ़ी नवीन पीढ़ी को जन्म देती है तथा उससे संघर्ष करती है।

नई कविता एवं नवगीत ने समकालीन कविता को जन्म दिया। अब रह गया प्रश्न पीढ़ी से पूर्व लगे पूर्व पदों 'विद्रोही', 'कबीर', 'क्रुद्ध' तथा 'भूखी'। इन शब्दों में रूप भेद हैं किन्तु आत्मा एक है इसलिए अर्थ भेद नहीं है। विद्रोह का अर्थ पुरानी मान्यता को अस्वीकारना तथा नवीन मान्यता की स्थापना करना है। इस कार्य में प्राचीन पुरातनवादी कवि नवीनतावादियों का विरोध करता है, नवीनतावादी कवि प्राचीनतावादी अथवा पुरातनवादियों का विरोध करता है। यह विरोध विद्रोह या संघर्ष कहलाता है। कबीर विद्रोही कवि थे इसलिए कबीर को विद्रोह का प्रतीक बना दिया गया। कबीर को बाह्याडंबर, अंधविश्वास तथा रूढ़ियों से अत्यधिक नफरत थी इनको देखते ही वे क्रुद्ध हो जाते थे उनमें ऽक्रोध भावना का उदय हो जाता था।

'क्रोध' विद्रोह का पर्यायवाची बन गया। अधिकांश समकालीन कविता के कवियों का संबंध निम्न मध्यवर्गीय परिवार से था जो भूख प्यास से आकुल–व्याकुल होकर क्षुधा मिटाने के लिए विद्रोही हो गया। भूखी–नंगी पीढ़ी विद्रोही होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि समकालीन कवि विद्रोही, कबीर जैसे विद्रोही, क्रुद्ध एवं भूखी–नंगी पीढ़ी अर्थात् वर्ग था। इन सभी नामों का एक ही अर्थ अपनी पूर्व पीढ़ी के विद्रोह में नवीन मान्यता एवं धारणा की स्थापना करना था। अपने उद्देश्यानुसार उन्होंने अपनी कृतियों की प्रवत्ति विशेष का नामकरण किया है। ये नामकरण अनुभूतिजन्य, संवेदनशील तथा यथार्थ पर आधारित हैं। इनके दर्शन एवं मूल्यों में परिवर्तन आ गया है।

सन् 1960 ई. के बाद काव्य क्षेत्र में नवीन मोड़ परिलक्षित हुआ। वह एकाएक दष्टिगोचर होने वाली कोई नवीन वस्तु नहीं है अपितु नई कविता एवं नवगीत से ही विकसित, प्रस्फुटित हुआ है। अकविता वालों ने अपनी कविता को अलग करने के लिए उसे अकविता नाम दिया। इस प्रकार समकालीन कविता अर्थात् अकविता नई कविता तथा नवगीत से बिलकुल अलग नहीं अपितु उसी का विकसित रूप है। यही कारण है कि अकविता वाले मौलिकता के आधार अकविता को कविता, नई कविता या नवगीत से अलग स्थापित नहीं कर सके। वास्तविकता यह है कि सन् 1960 ई. के बाद अकविता में जो स्वर उगे हैं बीजवपन नई कविता में हो चुका था। नवगीत में अंकुरित होकर इस कालावधि में प्रस्फुटित हुआ है। ये स्वर नई कविता के मौलिक स्वरूप या मूलाधार नहीं थे किंतु नई कविता तथा नवगीत से इनको सर्वथा भिन्न भी नहीं कहा जा सकता है जैसा अकविता वाले करते हैं।

काव्यगत विशेषताएं

1. **विद्रोही स्वर**- अकविता के नामकरण विवेचन से ही ये स्पष्ट हो गया है सन् 1960 ई. के बाद आविर्भाव में आने वाली अकविता में असंतोष, अस्वीकृति, क्रोध तथा विद्रोह भाव अत्यधिक स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आया है। असंतोष एवं अस्वीकृति का स्वर नई कविता में विद्यमान रहा है। मुक्तिबोध के अतिरिक्त अन्य कवियों में भी विद्रोह स्वर था। कहीं व्यंग्य का रूप धारण कर आया था कहीं स्पष्ट विद्रोह के रूप में। अंतर इतना है कि सन् 1960 ई. के बाद इस स्वर ने अकविता में आकर अत्यंत करारे व्यंग्य एवं विद्रोह का रूप धारण कर लिया। जीवन के टूटते हुए क्षणों की सन्निकट अनुभूति ने उसकी संवेदना को तलख, व्यथामय तथा उसमें फूटती हुई अस्वीकृति की उग्रता से भली भांति अवगत हो गया। अकविता की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसने समग्र जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों को उनके जीवंत परिवेश में अभिव्यक्ति प्रदान की है। विषय या अनुभूति के अभिजात्य तथा विभिन्न दष्टियों अथवा वादों से निर्मित घेरों, परिसीमाओं तथा अवरोधों को तोड़कर व्यक्ति द्वारा भोगे जाते हुए मानव जीवन के प्रत्येक क्षण के छोटे–बड़े सत्यों को प्रतीकों –बिंबों द्वारा उभारने में ही उसने अकविता की सार्थकता का अनुभव किया है किंतु अंतोगत्वा कहना होगा कि अकविता संत्रासजन्य कुंठा, संक्रांतिजन्य संत्रास, यातना, टूटन, घुटन, दुविधा की अनुभूति की कविता है जिसमें रह रह कर सुंदर अनागत के आगमन की आशा, स्वयं को अंधेरे में प्रकाश की भांति जलाकर पुष्प की भांति पुष्पित एवं प्रफुल्लित करके अपने को सार्थक एवं अपने द्वारा युग को मूल्यवान बनाने की आस्था कौंध स्वरूप चमक–चमक कर रह जाती है।
2. **पीड़ाबोध**- अकविता जिस युग की उपज है वह युग पीड़ा बोध अधिक दे सकता था विद्रोह कम। स्वराज्य प्राप्ति की आरंभिक बेला में जो यातना, पीड़ा या दर्द अत्यंत हो गया था वह अपने साथ भविष्य के प्रति आशा तथा विश्वास का स्वर भी अवश्य समेटे था किंतु एक दुविधा थी पीड़ा–आशा, टूटन की वास्तविकता–बनने का स्वप्न, जिसमें पीड़ा तथा टूटन अधिक थी बनने की आशा तथा स्वप्न कम। मोहभंग पूर्ण रूप से नहीं हुआ था। इसलिए अकविता में पीड़ा, यातना तथा अस्वीकृति बोध है। यातना एवं अस्वीकृति भी पीड़ा के प्रतिरूप हैं। पीड़ा बोध का स्वर उभर कर आया है किंतु विद्रोह का उभार नहीं है। शनैः शनैः मोह भंग हुआ। व्यक्ति का सामाजिक परिवेश अधिक कुरूप होता गया। भविष्य के आशा के स्वप्न टूट टूटकर बिखरते गए।

विभिन्न मार्ग- ऐसे परिवेश में साहित्य अर्थात् अकविता या समकालीन कविता के समक्ष दो मार्ग उभर कर आए –

(i) वह अकविता के प्रधान स्वर में स्वर मिला कर पीड़ा की मुक्त अनुभूति को और गहराई से अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

(ii) अथवा ये पूर्ण परिवेश उसके संवेदनशील मन को झकझोरता और पीड़ा के मध्य से उभार कर उसे विद्रोही बनाता हुआ सब कुछ अस्वीकृत करने हेतु प्रेरणा देता।

अकविता में दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाएं दष्टिगोचर होती हैं। अकविता वाले संवेग, संचेतना को, नव विकसित सत्य को, सहज और एक सरल ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान करने की घोषणा करते हैं। ये अव्यवस्था, विसंगति, मूल्य हीनता, विरोधाभास और आदर्शों के अकाल से आंदोलित नहीं होते।

दूसरी प्रक्रिया विद्रोह की थी। विद्रोह की दो प्रवत्तियां होती हैं–

(i) अस्वीकृति या ध्वंस

(ii) रचना।

अकविता में 'विद्रोह' के नाम पर लिखी जाने वाली अकविताएं उनमें अधिकांश लक्ष्यविहीनता का प्रतिनिधित्व करती थीं या यौन की विकृति का प्रतिपादन करने वाली थीं। लक्ष्य–विहीनता ने इन्हें सुविधा वादी या अवसर वादी बना दिया। ये सुविधा का विद्रोह करते थे अर्थात् जहां उन्हें करने की सुविधा का अवसर प्रतीत होता था वहां विद्रोह कर डालते थे किंतु जहां उन्हें प्रतीत होता कि विद्रोह का परिणाम खतरा मोल लेना है वहां वे दुम दबाकर पतली गली से भाग लेते थे। अकविता या समकालीन कविता के कवियों को सबसे बड़ी विसंगति 'यौन' विसंगति के रूप में दष्टिगोचर होती थी यदि इनकी दष्टि से ओझल हो जाती थी तो इन्हें शारीरिक वीभत्सता दिखलाई पड़ती थी।

3. **आंदोलन नहीं विकास**- समकालीन कविता या अकविता आंदोलन नहीं नई कविता की जीवनोन्मुख धारा का विकास है जिसमें प्रयत्नज आंदोलन की योजनाबद्ध रेखाएं नहीं हैं अपितु वर्तमान जीवन की अनुभवजन्य विषम संवेदनाएं एवं पीड़ा–बोध हैं। ये अनुभव एवं बोध आंदोलन से नहीं अपितु सत्य से प्रेरणा प्राप्त करके वर्तमान विषम परिवेश की प्रतीति, अस्वीकृति एवं विद्रोह सभी को आवश्यकतानुसार अपने में समन्वित किए हुए हैं। सन् 1960 ई. के बाद की धारा में कवि भी आ जाते हैं जो नई कविता के विशिष्ट कवि रहे हैं जिनमें जीवनधारा की उर्जस्वलता ही प्रधान रही है या जो नई कविता की बनती हुई सीमाओं से अवगत होकर उन्हें तोड़ने हेतु पुनः अकुला उठे हैं तथा वे कवि भी हैं जिनका आविर्भाव सन् 1960 ई. के बाद हुआ है। इन कवियों ने एक ओर जीवन की विकसित चेतना और जटिलता का अनुभव किया तथा दूसरी ओर यह देखा कि नई कविता के भी फार्मूले लदने लगे हैं। उसके प्रतीक और दर्द रूढ़ बनते जा रहे हैं। प्रतीकों की ऊंची गुफा में बंद होकर कविता सर्वथा अंतर्मुखी तथा निस्पंद होती जा रही है। इस ठहराव को तोड़ना था। अकविता को पुनः जीवन निकट लाना था अथवा समकालीन कविता की जीवनधारा से अवगत होकर अग्रसर होना था।

4. **सामान्योन्मुखी**- समकालीन कविता परिवेशानुसार सामान्योन्मुखी हो गई, चीन एवं पाकिस्तान के अतिक्रमणों के अवसर पर सामान्य जवानों का बलिदान, लघु दष्टिगोचर होने वाले लोगों का त्याग, कृषकों, श्रमिकों की महत्ता का अनुभव उभर कर सामने आया। समकालीन कविता नई कविता के उस स्वर का विकास है जो वर्तमान की प्रतिदिन के जीवन की अनुभूतियों को अति सहजता व्यक्त करता है। उन अनुभूतियों को वाणी देता है जो पल–पल के अंतर्विरोध की उपज हैं। समसामयिक कविता में एक ओर व्यक्तिगत पीड़ा या स्थिति की विषमता को व्यक्त करने वाले कवि हैं, तो दूसरी ओर स्थिति की विषमता के विरुद्ध विद्रोह का आक्रोश व्यक्त करने वाले कवि भी हैं। क्रुद्ध और विद्रोही पीढ़ी की कविताएं अधिक तेज, धक्कामार और वर्तमान जीवन की सड़ांध अधिक प्रत्यक्षता से उभारने वाली हैं। समकालीन कविता में वे कवयित्रियां भी आती हैं जिनमें वर्तमान की व्यथा अनुभूति के अति सूक्ष्म, बारीक, एवं संयत स्तर के उभार हैं। नारी की अपनी विशेषताएं होती हैं। जिसके परिणामस्वरूप कवयित्रियां कवियों की भांति उच्छंखल या यौन संबंधों को व्यक्त करने में प्रत्यक्ष या सामाजिक विद्रोह के प्रति अधिक अनुभववान तथा पूर्ण सक्रिय नहीं होती हैं। वे अपने परिवेश के दबाव से अनुभव करती हुई पीड़ा बोध तथा सौंदर्य बोध को अधिक तीव्रता, गहनता तथा सफलता से व्यक्त कर सकती हैं।

5. **जनक्रांति**- कवि को पूर्ण विश्वास है कि विषम व्यवस्था को दूर करने का मात्र उपाय जनक्रांति है। एकमात्र जनक्रांति के द्वारा ही अपने अस्तित्व का संज्ञान कराया जा सकता है। इसलिए कवि बैठे–बैठे काव्य सजन में ही अपना समय व्यर्थ नष्ट नहीं करता है अपितु वह आगे बढ़कर एक दावानल भड़काना चाहता है जो जनक्रांति लाए तथा विषम व्यवस्था का निवारण कर सके।

6. **राजनेताओं के प्रति क्षोभ**- देश की उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुखी स्थिति के लिए कवि भ्रष्ट राजनेताओं को दोषी ठहराते हैं क्योंकि इनकी क्षुद्र राजनीति मात्र कुर्सी तक सीमित है। इनका दीन ईमान सब कुर्सी है। कुर्सी के लिए वे अपना धर्म ईमान सब बेचने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं। आवश्यकतानुसार दलबदल करना इनका परम धर्म बन गया है।

कवि ऐसी विषम परिस्थितियों में घबराने एवं चुप बैठने वाला नहीं है साफ–साफ विरोध करता है।

7. **भाषा-भंगिमा-** समकालीन कवियों की भाषा विचार एवं भावानुसारिणी है। सपाटपना अधिक है। लोक मानस की सहज, सरल एवं स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया गया है पारिवेशिक विसंगतियों – विद्रूपताओं के चित्रण में मार्मिक शैली अपनाई गई। वहां भाषा को नवीन शक्ति प्राप्त हो जाती है। समकालीन कविता की भाषा अभिजात्य सांस्कारिक नहीं है, अपितु अनुजन्य आम बोलचाल की भाषा है। अप्रस्तुत विधान, बिंब विधान एवं प्रतीक योजना का आवश्यकतानुसार पूर्ण समावेश है।

क्षणिकाएं- बीसवीं सदी के सातवें दशक में गद्य विद्या में कहानी का लघु रूप 'लघु कथाओं' ने लिया। उसके आधार पद्य विद्या में कविता के लघु रूप में 'क्षणिकाएं' आईं। जिनका आयाम अति लघु होता है। वर्तमान काल में भी क्षणिकाएं पत्र पत्रिकाओं में यत्र–तत्र प्रकाशित होती रहती है। ये भी समकालीन कविता का लघु–संस्करण हैं।

रचनाकार-

समकालीन कविता के क्षेत्र में नई कविता के कवि भी हैं तथा बीसवीं सदी के सातवें दशक के उभरने वाले कवि भी हैं। इन युवा कवियों में पद्माधर त्रिपाठी, धूमिल, ऋतुराज, चंद्रकांत देव ताले, लीलाधर जगूड़ी, विष्णु चन्द्र शर्मा, प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी गद्य

हिन्दी गद्य - विधाओं का उद्‌भव एवं विकास

साहित्य की प्रमुख विधाएं पद्य एवं गद्य हैं। गद्य की प्रमुख विधाएं कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध एवं आलोचना हैं। इनके अतिरिक्त गद्य की कुछ अन्य विधाएं संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा तथा रिपोर्ताज हैं।

24. कहानी : उद्‌भव एवं विकास

मानव के आदि काल से कहानी कहने, सुनने, सुनाने की प्रवत्ति चली आ रही है। विश्व के प्राचीनतम ग्रंथों में कहानी का महत्व प्रायः देशों में है। भारतीय वांगमय में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी हिंदी में किसी न किसी स्वरूप में कहानी विद्यमान है, इसके अतिरिक्त पुराणों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, रामायण, महाभारत, पालि जातक, तथा पंचतंत्र आदि में कहानियों का भंडार भरा पड़ा है। इन सभी कहानियों में उपदेशात्मक अथवा धार्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। आधुनिक अर्थ में इन्हें कहानी नहीं कहा जा सकता है।

कहानी शब्द की व्याख्या

'कहानी' शब्द संस्कृत कथानिका प्राकृत कहाणिआ, सिंहली–मराठी कहानी से विकसित हुआ है जिसका अर्थ मौखिक या लिखित कल्पित या वास्तविक, तथा गद्य या पद्य में लिखी हुई कोई भाव प्रधान या विषय प्रधान घटना, जिसका मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना, उन्हें कोई शिक्षा देना अथवा किसी वस्तु स्थिति से परिचित कराना होता है। इसका अंग्रेजी पर्याय 'स्टोरी' है।

आधुनिक हिंदी कहानी का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी में हुआ जिसे कहानी या कथा कहते हैं इसका शाब्दिक अर्थ 'कहना' है। इस अर्थ के अनुसार जो कुछ भी कहा जाये कहानी है। किंतु विशिष्ट अर्थ में किसी विशेष घटना के रोचक ढंग से वर्णन को 'कहानी' कहते हैं। 'कथा' एवं 'कहानी' पर्यायवाची होते हुए भी समानार्थी नहीं हैं। दोनों के अर्थों में सूक्ष्म अंतर आ गया है। कथानक व्यापक अर्थ की प्रतीति कराता है इसमें कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी आदि का समावेश हो जाता है। कथा साहित्य के अंतर्गत मुख्य रूप से कहानी एवं उपन्यास को ही माना जाता है जबकि कहानी के अंतर्गत कहानी और लघु कथाएं ही आती हैं।

यूरोप में विकसित कहानी का स्वरूप अंग्रेजी और बंगला के माध्यम से बीसवीं शताब्दी के आरंभ में भारत आया।

प्राचीन कहानी एवं आधुनिक कहानी के स्वरूप में पर्याप्त अंतर है। आधुनिक कहानी जनसाधारण मनुष्य जीवन से संबंधित लौकिक यथार्थवादी, विचारात्मक धरती के सुख तक सीमित है।

हिंदी की प्रथम कहानी

हिंदी की प्रथम कहानी किसे माना जाए इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। लगभग दर्जन भर कहानियां प्रथम कहानी की होड़ में सम्मिलित हैं जिन्हें आलोचक मान्यता प्रदान करते हैं।

सन् 1803 ई. में लिखी गई, हिंदी गद्य में कहानी शीर्षक से प्रकाशित होने वाली प्रथम रचना 'रानी केतकी की कहानी' है। इस कहानी के लेखक इंशा अल्ला खां हैं। डॉ. राम रतन भटनागर ने 'रानी केतकी की कहानी' को हिंदी प्रथम कहानी स्वीकारा है। किंतु इसकी संयोग बहुलता, अतिमानवीयता के कारण इसे प्रथम कहानी के रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता है क्योंकि ये विशेषताएं आधुनिक कहानी में क्षम्य नहीं है। इसके विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन समीचीन प्रतीत है कि यह नई परंपरा की प्रारंभिक कहानी नहीं है, बल्कि मुस्लिम प्रभावापन्न परंपरा की अंतिम कहानी है।

डॉ. बच्चन सिंह ने किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'प्रणायिनी परिणय' (सन् 1887 ई.) को हिंदी की प्रथम कहानी माना है जबकि स्वयं इसके लेखक ने इसे उपन्यास कहा है। कारण यह बताया गया है कि सन् 1900 ई. तक कथा साहित्य को उपन्यास कहने की परिपाटी थी। इसलिए यह भी प्रथम कहानी नहीं है। क्योंकि इसका विभाजन सात निष्कों में किया गया है। प्रत्येक निष्क को अलग खंड मान लेने पर कहानी कई खंडों में विभक्त प्रतीत होती है। इस तरह खंडों में विभाजित कर कहानी लिखने की परिपाटी चलती रही है। प्रत्येक निष्क या खंड के प्रारंभ में श्लोक बद्ध नीति कथन हैं जो कहानी के रूप विन्यास में बाधक सिद्ध होते हैं। इस कहानी के रूप बंध पर आख्यान पद्धति का पूर्ण प्रभाव हैं। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में केन्द्रीय भाव प्रगाढ़ प्रेम की सुखद परिणति दिखलाई गई है।

रैवरेंट जे. न्यूटन कृत 'जमींदार का दष्टांत' तथा अनाम 'छली अरबी की कथा' नामक दो कहानियां अलीगढ़ से प्रकाशित 'शिलापंख' मासिक के 'कल की कहानी' स्तंभ में प्रकाशित देखकर यह अनुमान लगाया किंचित ये ईसाई धर्म प्रचार हेतु लिखी गई है। 'शिलापंख' के संपादक राजेंद्र गढ़वालिया ने सन् 1871 ई. में प्रकाशित इस कहानी को अब तक प्राप्त कहानियों में प्राचीनतम माना है। प्राचीनतम होकर भी प्रथम कहानी नहीं क्यों धर्म प्रचार हेतु लिखी गई है।

डॉ. सुरेख सिन्हा गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' को प्रथम कहानी मानने पर बल देते हुए लिखा है, "प्रथम कहानी का निर्धारण समय क्रम से होना चाहिए न कि कथानक, शिल्प, विचार धारा, या अन्य किसी दष्टिकोण से।"

'रानी केतनी की कहानी' के पश्चात् राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद कृत 'राजा भोज का सपना'; भारतेंहु हरिश्चन्द्र कृत 'अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें कहानी की सी रोचकता विद्यमान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक ढंग की कहानियों का आरंभ 'सरस्वती पत्रिका' के प्रकाशन काल से स्वीकारा है। 'सरस्वती' में प्रकाशित कहानियां इस प्रकार हैं–

(i) इंदुमती – किशोरी लाल गोस्वामी (1900 ई.)

(ii) गुलबहार – किशोरी लाल गोस्वामी (1902 ई.)

(iii) प्लेग की चुडैल – मास्टर भगवान दास (1902 ई.)

(iv) ग्यारह वर्ष का समय – राम चन्द्र शुक्ल (1903 ई.)

(v) पंडित और पंडितानी – गिरजादत्त बाजपेयी (1903 ई.)

(vi) दुलाई वाली – बंग महिला (1907 ई.)

ये सभी कहानियां 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थीं। इस प्रकार प्रथम कहानीकार किशोरी लाल गोस्वामी तथा प्रथम कहानी 'इंदुमती' प्रमाणित होती है। 'इंदुमती' की चर्चा प्रायः प्रत्येक समीक्षक ने की है। इस पर टेम्पेस्ट की छाया मानकर इस की मौलिकता पर भी प्रश्न चिह्न लगा दिया। रामचन्द्र शुक्ल 'इंदुमती' को ही प्रथम कहानी मानते हैं।

रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, "यदि 'इंदुमती' किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो हिंदी की यही पहली मौलिक कहानी ठहरती है इसके उपरांत 'ग्यारह वर्ष का समय' और 'दुलाईवाली' का नंबर आता है।"

सुरेश सिन्हा को शुक्ल के कथन में चालाकी की गंध आती है। उन्हें लगता है कि इंदुमती को अनूदित करार देकर अपनी कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। किंतु यह प्रमाणित हो चुका है कि 'इंदुमती' मौलिक रचना नहीं है।

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल शिल्प की दष्टि से रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' (सन् 1903) हिंदी की प्रथम कहानी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसे आधुनिकता के लक्षण से युक्त माना है।

देवी प्रसाद वर्मा, ओंकार शरद और देवेश ठाकुर आदि समीक्षकों ने 'छत्तीसगढ़ मित्र' में प्रकाशित माधव राव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी' (सन् 1901) को हिंदी की प्रथम कहानी का श्रेय दिया है। देवेश ठाकुर के अनुसार काल क्रमानुसार अपने समय के यथार्थ परिवेश से जुड़ी है। शिल्प की दष्टि से सहजता, सरलता तथा भाषा की शुद्धता इसमें है। अतः जब तक इस दिशा में और अधिक शोध न हो जाए मान लेना चाहिए कि माधव राव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी' हिंदी की प्रथम कहानी है।

आर्थिक चेतना की कहानी होने के कारण यह आधुनिक अर्थमूला कहानियों की पहचान की पहली हिंदी कहानी है। (डॉ.

रामदरश मिश्र) 'दुलाईवाली' (सन् 1907 ई.) को यथार्थवादी चित्रण की सर्वप्रथम रचना माना है। किंतु वंग महिला का नाम नहीं ज्ञात है।

प्रो. वासुदेव 'इंदु' में प्रकाशित 'ग्राम' (1911 ई.) को हिंदी की पहली कहानी का गौरव प्रदान करते हैं। प्रसाद की यह पहली कहानी है।

शिवदान सिंह चौहान के विचार में हिंदी कहानी का श्रीगणेश प्रसाद और प्रेमचन्द से माना जाना चाहिए।

राजेन्द्र यादव चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कृत – 'उसने कहा था' (1916) को हिंदी की पहली मौलिक कहानी मानते हुए इसी से आधुनिक हिंदी कहानी का श्रीगणेश मानना चाहिए

अब तक 'दुलाई वाली' को ही प्रथम कहानी माना जाता है। 'जमींदार का दष्टांत' (1871 ई.) को अंग्रेजों की लिखी कहानी को प्रथम श्रेय नहीं मिलना चाहिए।

'दुलाईवाली' या 'ग्यारह वर्ष का समय' को हिंदी की प्रथम कहानी का श्रेय मिलना श्रेयस्कर है।

हिंदी कहानी - विकास- हिंदी कहानी के विकास में प्रेम चन्द केन्द्र बिन्दु हैं जिन्हें आधार बनाकर प्रेम चन्द पूर्वोत्तर, प्रेमचन्द, प्रेमचन्द परवर्ती युग के विभाग द्वारा संपूर्ण कहानी काल का विवेचन किया जाता रहा है। यह कहना कि प्रसाद का महत्व खो जाता है उनका युग नहीं बन पाता है। वे मूलतः कवि हैं उनका युग माना जा सकता है माना जाए। चरणों में अध्ययन वैज्ञानिक न होते भी आसान है किंतु सन् 1950 ई. से आज तक एक ही चरण नहीं माना जाना चाहिए। लगभग पांच चरणों में कहानी के विकास को विभाजित किया जाना श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

(i) प्रथम चरण (सन् 1870 – 1915 ई.)

(ii) द्वितीय चरण (सन् 1916 – 1935 ई.)

(iii) ततीय चरण (सन् 1936 – 1955 ई.)

(iv) चतुर्थ चरण (सन् 1956 – 1975 ई.)

(v) पंचम चरण (सन् 1976 से आज तक)

प्रथम चरण (सन् 1870-1915 ई.)

हिंदी का प्रारंभिक कहानियों के विषय में डॉ. रामदरश मिश्र का कथन सत्य है कि इनमें यथार्थ समर्थित आदर्श की व्यंजना लक्ष्य रूप में विद्यमान है। 'इंदुमति', 'दुलाई वाली', 'ग्यारह वर्ष का समय', 'जमींदार का दष्टांत', 'प्रणयिनी परिणय', 'छली अरब की कथा' तथा 'एक टोकरी भर मिट्टी' आदि प्रमुख कहानियां हैं। जमींदार का दष्टांत तथा प्रणयिनी परिणय में परोपकारी भावना का चित्रण किया गया है। 'एक टोकरी भर मिट्टी' की परिणति परहित में हुई है। 'जमींदार का दष्टांत' में महाजन कृषकों की परेशानी से अवगत होकर सोचता है कि मेरे पास अपार धन दौलत है। इनके आर्थिक संकट का निवारण मैं कर सकता हूं। 'प्रणयिनी परिणय' में राजाराम शास्त्री की सहायता करता है। परोपकारी वत्ति के आदर्श के साथ राज्य कर्मचारियों की धन लिप्सा के यथार्थ की ओर भी संकेत किया गया है – "ऐसी चपलता, क्या राज्य कर्मचारी ऐसे–ऐसे भयंकर लालच से बच सकते हैं? फिर तब क्या अनर्थ न्यून होने की संभावना हो सकता है? यदि इस समय मैं न होता तो इधर न्यायाधीश अवश्य ही घूस लेकर इसे छोड़ देते।" 'ग्यारह वर्ष का समय' में प्रेम के आदर्श की अभिव्यक्ति हुई है – इस अदष्ट प्रेम का कर्म और कर्त्तव्य से घनिष्ठ संबंध है। इसकी उत्पत्ति केवल सदाशय और निःस्वार्थ हृदय में ही हो सकती है।

इस कालावधि की अधिकांश कहानियों में भावुकता और संयोग का बाहुल्य दष्टिगोचर होता है। 'ग्यारह वर्ष का समय' में दीर्घ काल के उपरांत पति पत्नी का मेल एकाएक एक टूटे फूटे निर्जन भवन में हो जाता है। 'इंदुमती' में भी संयोग से ही चन्द्रशेखर इंदुमती का अतिथि बन जाता है। राधिका रमण सिंह कृत 'कानों में कंगना' में गहरी भावुकता के दर्शन होते हैं। अधिकांश कहानियां अंग्रेजी एवं बंगला कहानियों से प्रभावित हैं। कहानी शिल्प अति अव्यवस्थित है मात्र 'छली अरब की कथा' और 'एक टोकरी भर मिट्टी' शिल्प की दष्टि से कसी हुई कहानियां हैं। यद्यपि इन कहानियों का महत्व नहीं है। इतना अवश्य है कि अब तक कहानीकारों के एक मंडल का गठन हो चुका था तथा पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से कहानी एक लोकप्रिय विधा का रूप धारण करती जा रही थी। (देवेश ठाकुर)

द्वितीय चरण (सन् 1916-1935 ई.)

प्रेमचन्द-

द्वितीय चरण को कहानी की प्रेमचन्द की अपूर्व देन के कारण प्रेमचन्द युग कहा जाता है। मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित कहानियों की संख्या लगभग तीन सौ से अधिक है जो मान सरोवर के आठ भागों में संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त इनकी कहानियों के संग्रह 'सप्तसरोज', 'नव निधि', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम तीर्थ', तथा 'सप्त सुमन' आदि हैं। प्रेमचन्द पहले उर्दू में लिखते थे। उनका उर्दू में लिखा हुआ प्रसिद्ध कहानी संग्रह सोचे वतन सन् 1907 ई. में प्रकाशित हुआ था जो स्वातंत्र्य भावनाओं से ओत–प्रोत होने के कारण अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। सन् 1919 ई. में उनकी हिंदी रचित प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' प्रकाशित हुई। उनकी कहानियों में इसके अतिरिक्त 'आत्माराम', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'रानी सारंघा', 'वज्रपात', 'अलग्योझा', 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'सुजान भक्त', 'कफन', 'पंडित मोटे राम' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्द की कहानियों में जन साधारण के जीवन की सामान्य परिस्थितियों, मनोवत्तियों एवं समस्याओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। वे साधारण से साधारण बात को भी मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत करने की कला में निपुण कहानीकार थे। उनकी शैली सरल स्वाभाविक एवं रोचक है। जो पाठक के हृदय पर सीधा प्रहार करती है। उनकी सभी कहानियां सोद्देश्य हैं – उनमें किसी न किसी विचार या समस्या का अंकन हुआ है किन्तु इससे उनकी रागात्मकता में कोई न्यूनता नहीं आई है। भाव–विचार, कला–प्रचार का सुंदर समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण प्रेम चंद का कहानी साहित्य है।

द्वितीय चरण में हिंदी कहानी दो विशिष्ट धाराओं में विभक्त होकर चलती है–

(i) प्रथम धारा व्यक्ति हित या व्यक्ति सत्य के भावात्मक अंकन की है, जिसके सर्वप्रथम प्रमुख कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं और रायकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास तथा चतुरसेन शास्त्री इस परंपरा को अग्रसर करने वाले सहयोगी हैं।

(ii) द्वितीय धारा के विषय में डॉ. इंद्रनाथ मदान का कथन है "हिंदी कहानी के विकास की दूसरी दिशा जिसमें समष्टि–सत्य की संवेदना है, समष्टि – विकास की संचेतना है, समष्टि मंगल की भावना है, समष्टि यथार्थ को आत्मसात करने की प्रेरणा है, प्रेम चन्द के कहानी साहित्य से आरंभ होती है।" प्रेमचन्द के समसामयिक कहानीकार सुदर्शन और विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक प्रेमचन्द की कथा दष्टि का समर्थन करते हुए दष्टिगोचर होते हैं।

प्रेमचन्द और उनके सहयोगी कहानीकारों में समकालीन यथार्थ की आदर्शात्मक परिणति मिलती है। अपनी कहानी यात्रा के अंतिम चरण में प्रेमचंद ने स्वयं को आदर्श के मोह से अलग कर दिया था लेकिन सुदर्शन, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' ज्वाला दत्त शर्मा आदि बराबर आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियां लिखते रहे। इस दष्टि से कौशिक की 'रक्षा बंधन', 'सुदर्शन की एलबम', 'हार जीत' और 'एथेन्स का सत्यार्थी' उल्लेखनीय कहानियां हैं। प्रेमचन्द की कहानी यात्रा के तीन मोड़ माने जा सकते हैं।

(i) 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा' आदि प्रारंभिक कहानियों में उनका आग्रह पुरातन आदर्शों को प्रतिष्ठित करता प्रतीत होता है। इन कहानियों में उपदेश का प्रच्छन्न स्वर सुनाई देता है।

(ii) सन् 1920–30 ई. के मध्य लिखी गई गांधी वादी विवाद धारा सतह पर है।

(iii) 'मैकू', 'शेख नाद', 'दुर्गा मन्दिर', 'सेवा मार्ग' आदि कहानियों में प्रेम चन्द स्थूल कथात्मकता को छोड़कर यथार्थ को विश्लेषण और संकेत के स्तर पर ग्रहण करते दिखाई देते हैं। डॉ. बचन कुमार सिंह के अनुसार, "चरित्रों के चित्रण में मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं का समावेश भी उनमें आ गया है। नाटकीयता तथा व्यंग्य के पैनेपन के कारण उसमें जीवंतमयता और प्रभान्विति की घनता आ गई है। 'नशा', 'पूस की रात' और 'कफन' आदि कहानियां प्रेम चन्द की कहानी कला के अंतिम चरण की है। यहां तक आते–आते प्रेम चन्द अपनी सारी आस्थाओं का परित्याग कर देते हैं और जीवन के प्रति उनकी दष्टि अधिक तीखी और निर्मम हो गई है। इन कहानियों में जो सूक्ष्मता और सांकेतिकता विद्यमान है वह 'नई कहानी' की अच्छी कहानियों में भी नहीं है। यह कम महत्वपूर्ण नहीं है कि हिंदी कहानी का विकास प्रेमचन्द द्वारा संकेतित दिशा में ही हुआ है।

प्रेमचन्द की कहानियों में जहां एक ओर युग का सच्चा चित्रण है, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संदर्भों के विश्लेषण की कोशिश है वहीं दूसरी ओर प्रेम, सहानुभूति, तपस्या, सेवा आदि महनीय मूल्यों का जोरदार समर्थन उनमें है। अधिकांश कहानियों

में प्रेम चंद ने जन साधारण के जीवन को उसी की भाषा में उपस्थित किया है। वे संभवतः पहले कहानीकार हैं जिनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन अपनी समूची शक्ति और सीमा के साथ उभरा है। डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र ने लिखा है, "मानव स्वभाव के परिचय, युगबोध, विषय क्षेत्र के विस्तार, कहानी कला के उत्कर्ष आदि की दष्टि से प्रेमचन्द स्कूल का एक भी कहानीकार प्रेमचन्द की गरिमा को नहीं पहुंच सका।"

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' सन् 1911 ई. में 'इंदु' में प्रकाशित हुई और जीवनपर्यंत उन्होंनके कुछ 69 कहानियां लिखीं। देवेश ठाकुर का कथन है, "प्रसाद जी पहले कहानीकार हैं जिन्होंने हिंदी को बंगला, अंग्रेजी तथा फ्रेंच अनुवादों सें मुक्त कर, उसके स्वरूप को मौलिकता और स्थिरता प्रदान की।" इसी आधार पर कुछ आलोचक प्रसाद को प्रथम कहानीकार तथा उनकी कहानी 'ग्राम' को प्रथम कहानी मानते हैं। प्रसाद की कहानियों की विशिष्टता उनके पात्रों के अंतर्द्वन्द्व उद्घाटन, काव्यात्मक अभिव्यक्ति और कहानी के मार्मिक अंत में निहित है, यद्यपि कविता और नाटक का शिल्प कभी कहानी में प्रमुख हो उठता है और उसकी संरचना में गड़बड़ी पैदा करता है।

प्रसाद की कहानियों में वस्तुगत वैविध्य बिलकुल न हो, ऐसा नहीं है। 'पुरस्कार', 'दासी तथा गुंडा' आदि में इतिहास का प्रयोग किया गया है जबकि 'मछुआ बड़ा' और 'छोटा जादूगर' में सामाजिक विषमता को उभारा गया है। अधिकतर कहानियों में कथा सूत्र की क्षीणता दष्टिगोचर होती है। लेकिन 'दासी' एवं 'सालवती' आदि कहानियों में अनावश्यक अंश भी कम नहीं है। भावुकता की स्फीति कहानी को प्रतिघातित करती है। इन दोषों के होते हुए भी प्रसाद की कथन भंगिमा और चारित्रिक सष्टि कहानियों को अविस्मरणीय बना देती है। प्रसाद का शिल्प प्रायः 'ग्राम' कहानी से लेकर 'सालवटी' तक एक समान रहा है और इसका अनुकरण नहीं हो पाया है। प्रसाद की शैली में लिखी गई ह्रदयेश और विनोद शंकर व्यास की अनेक कहानियां असफल रही हैं। उनके शिल्प के संबंध में डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने लिखा है, "हिन्दी कहानी साहित्य में प्रसाद जी एक ऐसे कहानीकार हैं जिनकी कहानी भावों की अनुवर्तिनी रही है। शिल्प की अनुवर्तिनी नहीं।"

विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक'

विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' (सन् 1891 – 1946 ई.) उर्दू से हिंदी में आने वाले प्रेमचंद युगीन कहानीकार हैं। उनकी प्रथम कहानी 'रक्षाबंधन' सन् 1913 ई. में प्रकाशित हुई थी। विचारधारा की दष्टि से कौशिक प्रेमचन्द की परंपरा में आते हैं। उन्होंने समाज सुधार को कहानी का लक्ष्य बनाया। उनकी कहानियों की शैली अत्यंत सरस, सरल एवं रोचक है। उनकी हास्य एवं विनोद से भरी हुई कहानियां 'चांद' में 'दुबे जी की चिट्ठियां' के रूप में प्रकाशित हुई थीं। उन्होंने लगभग 300 कहानियां लिखीं। जो 'कल्पमंदिर', 'चित्रशाला' आदि में संग्रहीत हैं।

आचार्य चतुर सेन शास्त्री

आचार्य चतुर सेन शास्त्री ने अपनी कहानियों में सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। उनकी कहानियों के संग्रह 'रजकण' और 'अक्षत' आदि प्रकाशित हुए हैं। उनकी प्रमुख कहानियां में 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी', 'दे खुदा की राह पर', 'भिक्षुराज' तथा 'ककड़ी की कीमत' विशेष उल्लेखनीय हैं।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

प्रेमचन्द युगीन कहानीकारों में मात्र तीन कहानी लिखकर ख्याति प्राप्त करने वाले चंद्रधर शर्मा गुलेरी हैं। हिंदी कहानी साहित्य में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। उनकी प्रथम कहानी 'उसने कहा था' सन् 1915 में प्रकाशित हुई थी जो अपने ढंग की अनूठी रचना है। इसमें किशोरावस्था के प्रेमांकुर का विकास, त्याग, और बलिदान से ओत–प्रोत पवित्र भावना के रूप में किया गया है। कहानी का अंत गंभीर एवं शोकप्रद होते हुए भी इसमें हास्य एवं व्यंग्य का समन्वय इस ढंग से किया गया है कि उसमें मूल स्थायी भाव को कोई ठेस नहीं पहुंचती है। विभिन्न दश्यों के चित्रण में सजीवता, घटनाओं के आयोजन में स्वाभाविकता एवं शैली की रोचकता सभी विशेषताएं एक से बढ़कर एक हैं। कहानी की प्रथम पंक्ति ही पाठक के ह्रदय को पकड़कर बैठ जाती है और जब तक वह पूरी कहानी को पढ़ नहीं लेता है उसे छोड़ती नहीं है तथा जिसने एक बार कहानी पढ़ लिया वह 'उसने कहा था' वाक्य को आजीवन विस्मत नहीं कर पाता है। भाव, विचार, शिल्प तथा शैली आदि सभी दष्टियों से यह कहानी एक अमर कहानी है। गुलेरी की दूसरी कहानी 'सुखमय जीवन' भी पर्याप्त रोचक एवं भावोत्तेजक है। इसमें एक अविवाहित

युवक के द्वारा विवाहित जीवन पर लिखी गई पुस्तक को लेकर अच्छा विवाद खड़ा किया गया है। जिसकी परिणति एक अत्यंत रोचक प्रसंग में हो जाती है। 'बुद्धू का कांटा' भी अच्छी कहानी है।

पं. बद्रीनाथ भट्ट 'सुदर्शन'

सुदर्शन का जन्म सन् 1896 ई. में हुआ था। कहानी कला में इनका महत्व कौशिक के समान स्वीकारा गया है। इनकी प्रथम कहानी 'हार की जीत' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। तब से अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जैसे 'सुदर्शन सुधा', 'सुदर्शन सुमन', 'तीर्थ यात्रा', 'पुष्प लता', 'गल्प मंजरी', 'सुप्रभात', 'नगीना', 'चार कहानियां', तथा 'पनघट' आदि। उन्होंने अपनी कहानियों में भावनाओं एवं मनोवत्तियों का चित्रण अत्यंत सरल एवं रोचक शैली में किया है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

उग्र का हिंदी कहानी जगत में प्रवेश सन् 1922 ई. में हुआ। उग्र की उग्रता को परिलक्षित आलोचकों ने उन्हें 'उल्कापात', 'धूमकेतु', 'तूफान' तथा 'बवंडर' आदि नामों से विभूषित किया। इसी से आपकी विद्रोही प्रवत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है जिसको ऐसी ऐसी उपमाएं या उपाधियां मिली हों उसकी कहानी कला कैसी होगी? सहज अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी कहानियों 'वीभत्स' एवं 'कुरूपता' को भी स्थान मिल गया है किन्तु उग्र का उद्देश्य जीवन की कुरूपता का प्रचार करना नहीं था अपितु कुरूपता का समूल अंत करना था। उनके कहानी संग्रह 'दोजख की आग', 'चिंगारियां', 'बलात्कार' तथा 'सनकी अमीर' आदि प्रकाशित है।

ज्वालादत्त शर्मा

ज्वालादत्त शर्मा ने बहुत कम कहानियां लिखी हैं किन्तु हिन्दी जगत ने उनका अच्छा स्वागत किया है। उनकी कहानियों में 'भाग्य चक्र' तथा 'अनाथ बालिका' आदि उल्लेखनीय हैं।

इन कहानीकारों के अतिरिक्त द्वितीय चरण के अन्य कहानीकार रामकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

ततीय चरण (सन् 1936-1955 ई.)

हिंदी कहानी का ततीय चरण जैनेंद्र के आगमन से आरंभ होता है। ततीय चरण की कहानियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) **व्यक्ति** – सत्य का उद्‌घाटन, मनोवैज्ञानिक धारणाओं के संदर्भ में करने वाली कहानियां – जिनका प्रतिनिधित्व जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी और पहाड़ी आदि कहानीकार करते हैं।

(ii) **समाज सापेक्ष**– इस वर्ग की कहानियों का समाज सापेक्ष प्रश्नों से संबंध है। इस वर्ग के प्रमुख कहानीकार यशपाल, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और अमत राय हैं।

(iii) **व्यक्ति सत्य-समष्टि सत्य**- इस वर्ग में वे कहानीकार आते हैं जो व्यक्ति सत्य तथा समष्टि सत्य दोनों को सुविधानुसार अपनी कहानियों का आधार बनाते हैं। अश्क और भगवती चरण वर्मा आदि इसी वर्ग में आते हैं।

जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्र कुमार ने स्थूल समस्याओं को कहानी का विषय न बनाकर सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विषयों को कहानी का विषय बनाया। उन्होंने हिन्दी कहानी को एक नवीन अंतर्दष्टि, संवेदनशीलता एवं दार्शनिक गहनता प्रदान की। सामान्य मानव की सामान्य परिस्थितियों को न लेकर असामान्य मानव की असामान्य परिस्थितियों से प्रभावित मानसिक प्रक्रियाओं का व्यापक विश्लेषण किया है। उनका दष्टिकोण समष्टिगत न होकर व्यष्टिगत था, भौतिकवाद की अपेक्षा आध्यात्मिक वाद था। उनके पास विषय सामग्री का अभाव दष्टिगोचर होता है। इसलिए प्रत्येक रचना में एक ही तथ्य का पिष्टपेषण करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। घटनाओं की अपेक्षा उन्होंने चरित्र–चित्रण तथा शैली को अधिक महत्व दिया है। इनकी कहानियों के संग्रह 'वातायन', 'स्पर्धा', 'पाजेंब', 'फांसी', 'एक रात', 'जयसंधि' तथा 'दो चिड़िया' आदि हैं।

जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज'

जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' ने अपनी कहानियों में करुण रस की अभिव्यक्ति मौलिक ढंग से की है। उनके कहानी संग्रह 'किसलय', 'मदुल' तथा 'मधुमयी' आदि प्रकाशित हुए हैं। इनकी कहानियों में मार्मिकता का हृदय ग्राह्य रूप मिलता है। इसलिए इनकी कहानियों का स्थान अत्यधिक ऊंचा है।

चंडीप्रसाद 'हृदयेश'

चंडी प्रसाद हृदयेश का दष्टिकोण आदर्शवादी था। उनकी कहानियों में सेवा, त्याग, बलिदान तथा आत्म शुद्धि आदि की उच्च भावनाओं का चित्रण किया गया है। उनमें भावुकता की प्रधानता है। उनकी कहानी के संग्रह 'नंदन निकुंज' तथा 'वनमाला' आदि नामों से प्रकाशित हुए हैं।

गोविंद वल्लभ पंत

गोविंद वल्लभ पंत की कहानियों में यथार्थ की कटुता तथा कल्पना की रंगीनी का दिव्य समन्वय मिलता है। उनमें प्रणय–भावनाओं का चित्रण अति मधुर रूप में किया गया है।

सियाराम शरण गुप्त

सियाराम शरण गुप्त ने कविता की तरह कहानी क्षेत्र में भी अच्छी सफलता प्राप्त की है। उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'झूठ–सच' है जिसमें आधुनिक युगीन यथार्थ वादी लेखकों पर तीखा व्यंग्य किया है। कहानी कला की दष्टि से भी यह कहानी अद्वितीय है। उनकी कहानियों का संग्रह 'मानुषी' है।

वंदावन लाल वर्मा

वंदावन लाल वर्मा ने कहानी की अपेक्षा उपन्यास के क्षेत्र में अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है। उनकी कहानियों में भी कल्पना एवं इतिहास का समन्वय मिलता है। इनकी कहानियों का संग्रह 'कलाकार का दंड' है। वर्मा की शैली में सरलता एवं स्वाभाविकता होती है।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

अज्ञेय की कहानियां अभिजात्य बौद्धिकता द्वारा लिखी गई मनोवैज्ञानिक कहानियां हैं। कथ्यगत विविधता के होते हुए भी इन कहानियों का अनुभव सांसारिक, व्यक्तिगत तथा अत्यधिक सीमित है। मनोविज्ञान के सिद्धांतों का स्मरण और सचेत रूप से केन्द्रित करने का आग्रह भी 'कड़ियां', 'पुलिस की सीटी', 'लेटर बॉक्स', 'हीलोबीन बतखें' आदि कुछ कहानियों में अत्यधिक मुखर हो उठा है। डॉ. रामदरश मिश्र का कथन है, "अज्ञेय का गरिष्ठ व्यक्तित्व उनकी कहानियों को एक निजता प्रदान करता है। इस निजता की बनावट बड़ी जटिल है। इसीलिए इनकी कहानियों में लेखक की वैचारिकता, अनुभव, अध्ययन, तटस्थता, मानवीय प्रतिबद्धता आदि का बड़ा ही जटिल सहअस्तित्व दिखाई पड़ता है। इस जटिल सहअस्तित्व का परिणाम शुभ–अशुभ दोनों है। एक ओर वे इसके चलते 'रोज' जैसी अच्छी कहानी लिखने में समर्थ एवं सफल सिद्ध हुए हैं, वहीं दूसरी ओर घोर बौद्धिकता से परिपूर्ण रचनाएं भी उन्होंने की हैं। 'रोज' में एक रस और यांत्रिक ढंग से जीवन जीने का संदर्भ अति सहजता किंतु तीखेपन के साथ चित्रित हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि अज्ञेय मनोविज्ञान के किसी सिद्धांत के प्रतिपादन हेतु कहानी लिख रहे हैं।

यशपाल, रांगेय राघव, अमत लाल नागर एवं बेचन शर्मा 'उग्र'

सामाजिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करना तथा उसी में जूझते रहने का क्रियाकलाप करने का श्रीगणेश मुंशी प्रेमचंद ने किया था। सामाजिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करने में यशपाल, रांगेय राघव, अमतलाल नागर एवं बेचन शर्मा 'उग्र' उनके अनुगामी रहे हैं।

यशपाल

यशपाल सामाजिक प्रश्नों एवं समस्याओं को मार्क्सवादी जीवन दष्टि के माध्यम से देखते हैं क्योंकि वे मार्क्सवादी कामरेड था। साम्यवाद को प्रधानता देते थे। सन् 1936 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। जिसने तत्कालीन रचनाकारों पर अपना प्रभाव डालना प्रारंभ कर दिया तथा प्रगतिशील रचनाएं सामने आने लगीं।

यशपाल इन प्रतिबद्ध रचनाकारों में अग्रगण्य थे। यशपाल का अनुभव संसार अति व्यापक तथा वैविध्यपूर्ण है। एक ओर मध्यवर्गीय जीवन की विसंगति, असहायता और यातना को व्यक्त करने वाली 'परदा', 'फूलों का कुरता', 'प्रतिष्ठा का बोझ' आदि कहानियां है। दूसरी ओर श्रमशील विश्व के संघर्ष और शोषण तंत्र की विरोधी कहानियां हैं, जिनमें 'राग', 'कर्मफल', 'वर्दी' तथा 'आदमी का बच्चा' महत्वपूर्ण कहानियां हैं। पुरातन मूल्यों, अप्रासंगिक रूढ़ियों और नैतिक निषेधों को तिरस्कृत करने का उनका ढंग वैयक्तिक है। धारदार व्यंग्य उनकी अभिव्यंजना का सर्वाधिक सबल अस्त्र है। यशपाल में जहां कथ्यगत समद्धि है वहीं शिल्पगत प्रभाव भी है। कुछ प्रगतिवादी कहानीकारों की तरह उनकी कहानियों में शिल्प का अवमूल्यन नहीं दिखलाई पड़ता है।

रांगेय राघव

रांगेय राघव की कहानियां मार्क्सवादी बोध से सम्पन्न होकर भी कहीं–कहीं उससे बाहर जाती हुई दष्टिगोचर होती है। अनुभव की वास्तविकता उनकी प्रथम विशेषता है। रांगेय राघव की सर्वश्रेष्ठ कहानी मदल है।

बेचन शर्मा उग्र

बेचन शर्मा 'उग्र' को प्रेमचंद युगीन कहानीकारों में गिना जाता है। वास्तव में उनकी कहानी कला का उमभांश प्रेम चंदोत्तर युग में ही अस्तित्व में आया। वे घोषित मार्क्सवादी न थे लेकिन सामाजिक विसंगतियों को उधेड़ने में वे प्रगतिशीलता का परिचय देते हैं। 'कला का पुरस्कार', 'ऐसी होली खेलो लाल', 'उसकी मां' आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियां हैं।

उपेन्द्र नाथ 'अश्क'

अश्क को न तो प्रगतिवादी कहानीकार कहा जा सकता है न व्यक्तिवादी। डॉ. रामदरश मिश्र ने अश्क के मार्क्सवादी दष्टिकोण को लेकर कहानी लिखने वालों को प्रगतिशील कोटि में रखा है। वस्तुतः अपनी संवेदना के दष्टिकोण से वे प्रगतिशील कथा चेतना से स्पष्ट अलगाव रखते हैं। उनके भाषा शिल्प पर प्रेम चन्द का गहन प्रभाव दिखलाई पड़ता है। एक ओर अश्क ने 'डाची' और 'कांड़ा का तेली' जैसी अति चुस्त प्रभावशाली कहानियां लिखी हैं वहीं दूसरी ओर 'एंबेसडर' तथा 'बेबसी' जैसी यौन समस्याओं वाली कहानियों में उनको सफलता नहीं मिली है। उनकी कहानियों पर टिप्पणी करते हुए ह्रषिकेश ने लिखा है –

"वह इतनी सपाट और आत्मीय हैं कि पढ़कर चिंता नहीं होती, न खेद होता है, न आश्चर्य न जिज्ञासा और न ही व्यामोह, केवल तरल अनुभूति देने वाली अश्क की कहानियां अन्वेषण तो करती हैं अन्वेषक नहीं बनाती और पाठक के समक्ष आत्म निर्णय का संचार नहीं करती।" अश्क की बहुत सी कहानियों पर यह टिप्पणी सटीक बैठती है।

भगवती चरण वर्मा

भगवती बाबू अपनी व्यंग्यात्मक कहानियों के लिए चर्चा का विषय बने रहे। उनको प्रतिष्ठित करने में 'प्रायश्चित', 'दो बांके', और 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' आदि कहानियों का विशेष योगदान रहा है। किन्तु 'मोर्चा बंदी' संग्रह की कहानियां उनको चुकाने में सहयोगी सिद्ध हुई है।

इन कहानीकारों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा पहाड़ी का नाम भी उल्लेखनीय है। प्रगतिवादी कहानीकारों में भैरव प्रसाद गुप्त तथा अमत राय का भी कहानी साहित्य को प्रमुख योगदान है।

चतुर्थ चरण (सन् 1956-1975 ई.)

हिंदी कहानी के चतुर्थ चरण में जैनेंद्र द्वारा प्रवर्तित मनो–विश्लेषण की परंपरा का विकास हुआ। भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा राम प्रसाद आदि का योगदान मिला।

भगवती प्रसाद वाजपेयी

वाजपेयी ने अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्यों को उद्‌घाटित किया। उनके अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें 'हिलोर', 'पुष्करिणी' तथा 'खाली बोतल' आदि प्रमुख हैं। उनकी कहानियों में 'मिठाई वाला', 'झांकी', 'त्याग', तथा 'वंशीवादन' आदि श्रेष्ठ कहानियां मानी जाती हैं। भगवती चरण वर्मा ने कहानी के क्षेत्र में असाधारण सफलता प्राप्त की है। उनमें विश्लेषण की गरिमा तथा गंभीरता है। मार्मिकता एवं रोचकता का गुण भी विद्यमान है। उनके कहानी–संग्रह 'खिलते–फूल', 'इंस्टालमेंट'

तथा 'दो बांके' आदि उल्लेखनीय हैं।

सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय

चतुर्थ चरण के मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में भी अज्ञेय का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने मनोविश्लेषण परंपरा को और आगे बढ़ाया है। 'विपयाग', 'परंपरा', 'कोठरी की बात' तथा 'जयदोल' इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

इला चन्द्र जोशी

इनके कहानी संग्रह 'रोमांटिक छाया', 'आहूति' तथा 'दीवाली और होली' आदि हैं। जोगी ने मनोविज्ञान के सत्यों का उद्‌घाटन किया जिससे अन्य लेखकों की अपेक्षा इनका अधिक मर्मस्पर्शी रूप सामने आया।

उपेंद्र नाथ 'अश्क'

सामाजिक विषयों को अपनाने वाले लेखकों में उपेंद्रनाथ 'अश्क' का नाम चतुर्थ चरण में भी प्रमुख है। उनकी कहानियों में 'पिंजरा', 'पाषाण', 'मोती', 'दूलो', 'मरुस्थल', 'गोखरू', 'खिलौने', 'चट्टान', 'जादूगरनी' तथा 'चित्रकार की मौत' आदि प्रमुख हैं। इनको अत्यधिक लोकप्रियता मिली। अश्क की विषय वस्तु, शैली एवं रोचकता की दष्टि से प्रेम चंद की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कहानीकार हैं।

यशपाल

यशपाल ने अपनी कहानियों में आधुनिक समाज की विषमताओं पर करारा व्यंग्य किया हैं उनकी कहानियों में पराया सुख, 'हलाल का टुकड़ा', 'ज्ञान दान', 'कुछ न समझ सका', 'जबरदस्ती' तथा 'बदनाम' आदि उल्लेखनीय हैं।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विद्यालंकार का कहानी क्षेत्र में विशेष नाम है। आपकी कहानियों के द्वारा कहानी–कला का विकास हुआ है। विद्यालंकार के कहानी संग्रह 'चन्द्रकला' तथा 'अमावस' है।

राम प्रसाद पहाड़ी

पहाड़ी का हिंदी कहानी को विशेष योगदान है। पहाड़ी के कहानी संग्रह 'सड़क पर', 'मौली' तथा 'बरगद की जड़े', आदि उल्लेखनीय हैं।

हास्य रस की कहानियां

हिंदी में हास्य रस की कहानियां लिखने वालों में जी.पी. श्रीवास्तव, हरिशंकर शर्मा, कृष्ण प्रसाद गौड़, बेढब बनारसी, अन्नपूर्णानंद, मिर्जा अजीम बेग, चुगताई तथा जयनाथ नलिन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जी.पी. श्रीवास्तव की कहानियों में अत्यधिक वैविध्य उपलब्ध है। इनकी कहानियों में 'पिकनिक', 'भड़ाम सिंह शर्मा', 'गुदगुदी' तथा 'लतखोरी लाल' आदि महत्वपूर्ण हैं। उनका हास्य साधारण स्तर का है। 'बेढब बनारसी' और 'अन्नपूर्णानंद' की कहानियों में अधिक परिष्कृत हास्य मिलता है। अन्नपूर्णानंद की कहानियों में 'महाकवि चच्चा', 'मेरी हजामत', 'मगन रहु चोला' आदि उल्लेखनीय हैं। मिर्जा ने 'गीदड़ को शिकार', 'लेफ्टिनेंट', 'कोलतार' आदि कहानियां लिखीं। नलिन के कहानी संग्रह में 'नवाबी सनक', 'शतरंज के मोहरे', 'जवानी का नशा', 'टीलों की चमक', आदि उल्लेखनीय हैं।

चतुर्थ चरण को स्वतंत्र्योत्तर हिंदी कहानी युग भी कहा जाता है। इस अवधि में तीन पीढ़ियों की लिखी कहानियां आती हैं–

(i) यशपाल, जैनेंद्र, भगवती चरण वर्मा जैसे पुरानी पीढ़ी के कहानीकार सक्रिय रहे।

(ii) आजादी मिलने के समय वयस्क हो रही पीढ़ी के कहानीकारों राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, रेणु, मोहन राकेश आदि ने खूब कहानियां लिखीं।

(iii) सन् 1960 ई. के अत में युवा पीढ़ी ने लिखना प्रारंभ किया जिसने स्वतंत्र भारत में आंखे खोली थीं। इस पीढ़ी के कहानीकारों में ज्ञानरंजन, रवींद्र कालिया, कामता नाथ, इब्राहिम शरीफ, हिमांशु जोशी तथा महीपाल सिंह आदि प्रमुख हैं।

स्वतंत्रता के बाद की हिंदी कहानी का इतिहास आंदोलन का इतिहास है। चार–पांच साल की अवधि बीतते–बीतते एक आंदोलन उठ खड़ा होता रहा जिसे लेकर खूब ढोल पिटे तथा नारे लगे। इसके परिणामस्वरूप कहानी एक गंभीर एवं केन्द्रीय विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। सन् 1950 ई. के बाद कहानी में एक नवीन मोड़ आया जिससे नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी सहज और समानांतर कहानी के अलग अलग झंडे लहराने लगे। इस ढाई–तीन दशक की अवधि में ढेरों अच्छी बुरी कहानियां लिखी गईं। नई कहानी के नई होने की घोषणा कम, स्वतंत्रता पूर्व की कहानी के पुरानी हो जाने की घोषणा अधिक थी। सन् 1950 ई. तक आते आते ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैनेन्द्र की चौंकाने वाली दार्शनिक कथा, मुद्रा, अज्ञेय की सतही प्रगतिशील कहानियां तथा कथा एवं शिल्प के द्वंद्व में फंसी हुई यशपाल की कहानियों की प्रासंगिकता समाप्त प्राय है। ऐसा प्रतीत होता था कि या तो वे कहानीकार बुझ चुके हैं अथवा कहानी लेखन का आत्म विश्वास उन्हें अनाथ बनाकर चला गया है। ऐसी स्थिति में एकाएक कहानी के नएपन के आग्रह का उभर कर आंदोलन का रूप ग्रहण कर लेना आकस्मिक घटना नहीं अपितु पुराने के प्रति नए का विद्रोह तथा नवीन कहानी लेखक की तड़प तथा छपास है।

हिंदी कहानी साहित्य की अभिवद्धि में महिला कहानीकारों ने भी कम योगदान नहीं किया है। सुभद्रा कुमारी चौहान, उमा नेहरू, शिवरानी देवी, तेजरानी पाठक, ऊषा देवी मित्रा, सत्यवती मलिक, कमला देवी चौधरानी, महादेवी वर्मा, चंद्रप्रभा, तारा पांडेय, चन्द्र किरण सौन रिक्शा, रामेश्वरी शर्मा, पुष्पा महाजन, विद्यावती शर्मा आदि ने अनेक कहानियों की रचना की है। इनकी कहानियों में प्रायः पारिवारिक जीवन और हिंदी समाज में नारी की दारुण स्थिति के चित्र हैं। फिर वे जीवन के उस गरिमा द्वंद्व को उस व्यापक दष्टि से आंकने में सफल नहीं हो सकी हैं जैसा कि विश्व के महान कहानीकारों ने किया है।

पंचम चरण (सन् 1976 से आज तक) नई कहानी

नामकरण

कमलेश्वर का कथन है कि जितेंद्र एवं ओम प्रकाश श्रीवास्तव ने कहानी को नवीन रूप देने का प्रयास किया। कहानी के नवीन रूपों को 'नई कहानी' नाम देने का श्रेय दुष्यंत कुमार को है। डॉ. बच्चन सिंह ने सन् 1950 ई. में शिवप्रसाद सिंह द्वारा प्रकाशित 'दादी मां' में नयी कहानी के तत्वों का अवलोकन किया। उनके विचार से सन् 1956–57 में नई कविता के साम्य पर इसका नाम 'नई कहानी' रख दिया गया। सूर्य प्रकाश दीक्षित नई कहानी के शुभारंभ का श्रेय कमलेश्वर मोहन राकेश तथा राजेन्द्र यादव को संवेत रूप में देते हैं। वास्तव में किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों को किसी आंदोलन का श्रेय देना उचित प्रतीत नहीं होता है। सार्थक आंदोलन परिवेश की मांग तथा पूरी पीढ़ी के प्रयास की उपज होता है। हिंदी कहानी साहित्य में नएपन का प्रारंभ 'पूस की रात', 'नशा' तथा 'कथन' जैसी कहानियों से हो चुका था। सन् 1950 ई. तक आते आते कहानी के कथा शिल्प में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका था। नएपन की यह प्रवत्ति सन् 1956-57 ई. में आंदोलन का रूप ग्रहण कर चुकी थी। डॉ. नामवर सिंह उन आलोचकों में से हैं जिन्होंने नई कहानी के प्रवक्ता की भूमिका निभाई है। कहानी के नववर्षांक सन् 1956–58 में प्रकाशित उन लेखों से इस आंदोलन को अति बल मिला।

नई कहानी उस समय लिखी गई जब कहानीकारों में देश की स्वतंत्रता को लेकर संशय की भावना का उदय हो रहा था। मोह भंग की पष्ठ भूमि का निर्माण हो रहा था। हिन्दुस्तान–पाकिस्तान के विभाजन के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर मूल्य संक्रमण तथा मूल्य–विघटन का परिवेश तैयार हो गया था। राजनीतिक पष्ठभूमि में भी सेवा, त्याग, करुणा, सत्य, प्रेम आदि गांधीवादी मूल्य कड़ी आजमाइश में पड़ गए थे। डॉ. भगवान दास वर्मा का कथन है, "परंपरावादी जीवन–दर्शन की असारता, भारतीय संस्कृति की नए युग के संदर्भ में निरर्थकता, स्वतंत्रता प्राप्ति और भ्रम भंग की अवस्था, जीवनादर्शों की अनिश्चितता, व्यक्ति जीवन, अकेलेपन एवं अजनबीपन एहसास आदि अनुभूत सत्यों के अनेक स्तरीय संदर्भों के परिपार्श्व पर नई कहानी विकसित हो रही है।

नई कहानी की विशेषताएं

नई कहानी की अनेक विशेषताएं उभरकर सामने आईं जिनमें प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

जटिल एवं व्यापक यथार्थ की अभिव्यक्ति

नई कहानी की प्रमुख विशेषता जीवन के जटिल एवं व्यापक यथार्थ की अभिव्यक्ति है। परिवर्तित परिवेशानुसार, अपने नवीन दष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में कहानीकारों ने समाज को बहुरंगी कहानियां प्रदान कीं। कहानीकार व्यक्त सत्य की परिधि एवं सामाजिकता के बंद कठघरे में अपने को मुक्त करके नई कहानी कर रहे थे। जिसके परिणामस्वरूप उनकी कहानियों में एक ओर पारिवारिक विघटन दिखलाई पड़ता है। दूसरी ओर आर्थिक सामाजिक तीव्र गति के परिवर्तनों को नई कहानी का विषय बनाया गया है। मध्यवर्गीय, निराशा, हताशा एवं पीड़ाओं को नई कहानी में विस्तार से उभारा गया है। देश–विभाजन के परवर्ती परिवेश तथा समस्याओं को कुछ कहानीकारों ने अपनी नई कहानी का विषय बनाया है। व्यापक यथार्थ बोध की कहानियों में ऊषा प्रियंवदा–'वापसी', राजेंद्र यादव – 'छूटना', कमलेश्वर 'राजा निरबंसिया', राकेश 'एक और जिंदगी', मार्कंडेय – 'हंसा जाइ अकेला', शिव प्रसाद सिंह – 'कर्मनाशा की हार', मोहन राकेश – 'मलवे का मालिक', आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें ग्राम, कस्बा, नगर एवं महानगर के व्यापक फलक पर जीवन की सच्चाइयों को उकेरा गया है।

सांकेतिकता

मोहन राकेश के अनुसार नई कहानी की प्रमुख विशेषता सांकेतिकता है। सांकेतिकता पुराने कहानीकारों में भी है लेकिन उनका संकेत यदा–कदा था। उनकी सांकेतिकता वैचारिक स्तर तक सीमित थी। नई कहानी कथ्य–कथन दोनों स्तरों पर सांकेतिकता को प्रमाणित करती हैं। सुरेंद्र के अनुसार वह किसी स्तर पर संकेत का उपयोग न होकर स्वयं संकेत होती हैं सांकेतिकता की दष्टि से भीष्म साहनी – 'चीफ़ की दावत', अमरकांत – 'जिंदगी और जोंक' आदि अवलोकनीय हैं। नई कहानी ने स्थापित नैतिक बोध को चुनौती दी है। कमलेश्वर – 'तलाश' तथा राजकमल चौधरी – 'दांपत्य' जैसी कहानियों में परंपरागत नैतिक वर्जनाओं एवं मान्यताओं को झटका सा दिया गया। डॉ. भगवान दास वर्मा के अनुसार–स्थापित नैतिक बोध का विघटन आधुनिक कहानी का तथ्य बनकर चित्रित हुआ है। कहीं वह चित्रण परंपरागत मूल्यों के साथ खंडन का है, कहीं उनकी आग्रहमूलकता के खंडन का है तो कहीं उनका मखौल उड़ाने वाले प्रसंगों का है।"

भाषिक संरचना एवं शिल्प

नई कहानी की भाषिक संरचना एवं शिल्प भी नवीनतामय है। बिंबात्मक एवं सांकेतिक भाषा के साथ–साथ स्पष्ट बयानी की प्रवत्ति भी इसमें है। नई कहानी ने कहानी को नए मुहावरे, भाषायी सपाटन, एवं समसामयिक चेतना से संबद्ध कर दिया – डॉ. पवन कुमार मिश्र। नई कहानी का शिल्प इसके कथ्य की आंतरिक मांग के परिणामस्वरूप स्वतः नया हो गया है। यह सचेष्ट सायास न होकर अयत्नज है। राजेन्द्र यादव जैसे इने–गिने कहानीकारों में शिल्प की अतिरिक्त सजगता दष्टिगोचर होती है, अन्यथा अधिकांश नई कहानियां सहज संप्रेषणीय हैं। नई कहानी में रेखाचित्र, रिपोर्ताज, ललित निबंध एवं यात्रावत्त का शिल्प भी समाहित हो गया है। इस प्रकार नई कहानी ने कहानी के परंपरागत पुराने ढांचे को चकनाचूर कर दिया है। निश्चित ढंग से कहानी गढ़ना और उसे समाप्त करना नई कहानी की प्रवत्ति नहीं है। फॉर्मूला बद्ध शिल्प नई कहानी में समाविष्ट नहीं हुआ, इसलिए निश्चित आदि, अंत, चरम सीमा अथवा इन्हीं जैसे अन्य नुक्तों का प्रयोग, नए कहानीकारों ने अपने यहां नहीं किया है। जबकि इन नुक्तों ने पुरातन कहानी के शिल्प को दूर तक निर्देश दिए थे। युगीन विडंबना का तलख व्यंग्य का संप्रेषण नई कहानी में इतना सकल हुआ है कि उसके चलते व्यंग्य भाषा का रूप एक खास कोने से उभर सका है – सुरेंद्र। व्यंग्य हेतु हरिशंकर परसाई की नयी कहानियां विशेष उल्लेखनीय हैं। अति यथार्थ की प्रवत्ति के प्रस्फुटन एवं विकास ने नई कहानी के स्वरूप को निखारा। नई कहानी का नारा बुलंद करते हुए नवोदित कहानीकार नग्न यथार्थ का चित्रण स्वच्छंद रूप से अपनी कहानियों में कर रहे हैं आधुनिकता, समसामयिकता, न्यूनता आदि आकर्षक शब्दों की आड़ में अपनी भोगवादी प्रवत्तियों की अभिव्यक्ति को अवगुंठित करने के प्रयास में संलग्न है। इनके पास व्यक्तिगत दष्टिकोण एवं वैयक्तिक मान्यताओं का अभाव है, इसलिए स्वदेश–विदेश की प्रत्येक नवोदित प्रवत्तियों का अंधानुकरण करने के लिए वे सदा तत्पर रहते हैं। एक ही कहानीकार विभिन्न समयों में अनेक प्रवत्तियों से आक्रांत रहता है। प्रगतिशीलता का गुणगान करने वाले कहानीकार नग्न यौनवाद के पंक में सूकर जैसे लोट रहे हैं। उपेंद्रनाथ अश्क ने इस प्रवत्ति को फैशन का नाम दिया है तथा कहा है "हिंदी कहानी में किसी प्रकार एक के बाद एक नए नए फैशन प्रचलित होते जा रहे हैं कभी अश्लील कहानियों का फैशन चलता है, कभी आंचलिक कहानियों का, अभी सेक्स तथा प्रतीकवाद का। वास्तव में नए कहानीकारों में सुदढ़ आस्था, स्वस्थ जीवन दर्शन तथा व्यापक जीवन दष्टि का नितांत अभाव है। वे वासना की संकीर्ण घाटियों और विलासिता की खंदक में फंसकर प्रगति की राह

से विमुख होते हुए दष्टिगोचर होते हैं। यह स्थिति न केवल साहित्यकारों या साहित्य जगत के लिए घातक है अपितु मानव समाज के लिए विनाशक है।

उपर्युक्त नई कहानी की विशेषताओं की सम्यक विवेचना तथा कहानीकारों की सामान्य विवेचना करके इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि नई कहानी को प्रवत्तियों की दष्टि से छः वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) **शहरी मध्यवर्गीय जीवन चित्रण**- इस वर्ग में आने वाले कहानीकारों ने मुख्यतः नगरीय मध्यवर्गीय जीवन की आंतरिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। इनके दष्टिकोण का अति यथार्थवादी लक्ष्य यौन विकृतियों, कुंठाओं, अभावों आदि के चित्रण का रहा है। शिल्प–शैली के क्षेत्र में भी इन्होंने नूतन पर जोर दिया है। इस वर्ग में आने वाले मुख्य कहानीकार एवं उनकी कृतियां इस प्रकार हैं–

राजेन्द्र यादव- कहानी संग्रह – 'जहां लक्ष्मी कैद है', 'छोटे छोटे ताजमहल', 'एक पुरुष एक नारी', आदि; **मोहन राकेश** – संग्रह – 'नए बादल', 'जानवर और जानवर', 'एक और जिंदगी'; **अमर कांत**- 'जिंदगी और जोक' तथा **धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, मार्कंडेय, कमलेश्वर, डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, रमेश वक्षी, शैलेश भटियानी, नरेश मेहता, मन्नू भंडारी**, आदि कहानीकार इस वर्ग में आते हैं।

(ii) **ग्रामीण जीवन**- इन्होंने आंचलिक पष्ठभूमि पर ग्रामीण जीवन को अंकित करने का प्रयास किया है। जिनमें फणीश्वर नाथ रेणु – संग्रह – 'ठुमरी'; राजेन्द्र अवस्थी तषित – संग्रह – 'गंगा की लहरें' मार्कंडेय – 'महुआ आम के जंगल'; शिव प्रसाद सिंह – 'इन्हें भी इंतजार है' तथा शेखर जोशी आदि के नाम इस वर्ग में लिए जा सकते है।

(iii) **हास्य व्यंग्यमयी**- इस वर्ग में हास्य व्यंग्यमयी कहानियों के लेखकों को लिया जा सकता है जिनमें केशवचन्द्र वर्मा, श्री लाल शुक्ल, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र त्यागी, शांति मेहरोत्रा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(iv) **व्यापक प्रगतिशील**- यह वर्ग ऐसे कहानीकारों का है जिसमें व्यापक प्रगतिशील दष्टि से जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया गया है। इस वर्ग में कृष्ण चन्द्र–संग्रह – 'गरजन की शाम', 'काला सूरज', 'घूंघट में गोरी जले'। अमत राय – संग्रह 'भोर से पहले', 'तिरंगे कफ़न', 'नूतन आलोक', भैरव प्रसाद आदि को स्थान दिया गया है।

(v) **अन्य**- इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे कहानीकार हैं जिन्हें किसी एक वर्ग में स्थान नहीं दिया जा सकता क्योंकि किसी विशिष्ट वर्ग से उनका संबंध नहीं है। जैसे विष्णु प्रभाकर, सत्यपाल आनंद, कृष्ण बलदेव वैद्य आदि।

(vi) **नए कहानीकारों के विरुद्ध मोर्चा**- इस वर्ग को सचेतन भी कहा गया। नए कहानीकारों की अति सूक्ष्मता, अति वैयक्तिकता, संकीर्णता, एवं निष्प्राणता की प्रवत्तियों के विरुद्ध संगठित मोर्चा स्थापित करने एवं जीवन के व्यापक एवं स्वस्थ रूप को कहानी में स्थापित करने के लक्ष्य से अनेक कहानीकारों ने सचेतन कहानी के नाम से एक वर्ग की स्थापना की है। इस वर्ग में डॉ. महीष सिंह, मनहर चौहान, कुलभूषण, रमेश गौड़, हिमाशु जोशी, सुदर्शन चोपड़ा, सुरेन्द्र मल्होत्रा, जगदीश चतुर्वेदी, वेद राही, धर्मेंद्र गुप्त, योगेन्द्र कुमार लल्ला, राजीव सक्सेना, देवेन्द्र सत्यार्थी जैसे अनेक प्रतिभाशाली कहानीकार सम्मिलित हैं। यदि इन लेखकों ने मात्र वर्ग विशेष के विरोध को अपना लक्ष्य न बनाकर युग की व्यापक समस्याओं एवं जीवन की गंभीर अनुभूतियों के आधार पर जीवन के स्वस्थ, व्यापक एवं उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया होता तो वे निश्चित ही कहानी साहित्य को सही दिशा देने में सफल हो जाएंगे अन्यथा 'सचेतन कहानी' भी नई कहानी की तरह मात्र एक फैशन बन कर रह जाएगी।

हिंदी कहानी क्षेत्र में अवत्तीर्ण होने वाली अन्य नई प्रतिभाओं में कृष्णा सोबती, रजनी पनिकर, पुष्पा जायसवाल, उषा प्रियंवदा, विजय चौहान, सलमा सिद्दकी, डॉ. वीरेंद्र मेहंदीरत्ता – संग्रह – 'शिमले की क्रीम', 'पुरानी मिट्टी' तथा 'पुराने सांचे', सोमवीरा, प्रयाग शुक्ल, मेहरून्निसा परवेज, रघुवीर सहाय, शांति मेहरोत्रा, दूधनाथ सिंह, इंदु बाली, सुरेन्द्र पाल, गिरिराज, धर्मेंद्र, रवीन्द्र कालिया, मत्युंजय उपाध्याय, अवध नारायण सिंह, बलवंत सिंह, गंगा प्रसाद विमल, परेश आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

वास्तव में विषय वस्तु की दष्टि से तथाकथित नई काहनी एक ऐसे वर्ग के कहानीकारों के व्यक्तित्व, चरित्र एवं जीवन दर्शन का प्रतिनिधित्व करती है जिनका जीवन घर के बंद दरवाजों, कॉलेज की दीवारों, शहर की गलियों, और नगर के मदिरालयों में बीता है, जिनकी जीवन–यात्रा काफी हाउसों से लेकर पत्र संपादकों के कार्यालयों तक सीमित है, जिनकी सबसे बड़ी समस्या

दमित वासना, सेक्स की भूख, सुंदर प्रेयसियों की चाह, और भोगी हुई पत्नियों का तलाक है, जिनका आदर्श फ्रायड, सार्त्र और कामू हैं जो रहते हैं भारत में किन्तु स्वप्न लंदन की रात या पेरिस के मध्याह्न का लेते हैं तथा काफी का प्याला, सिगरेट का धुंआ और संपादक का मनीऑर्डर ही जिनकी रचनाओं का सबसे बड़ा प्रेरणा स्रोत है। ऐसी स्थिति में उनसे किसी गंभीर अनुभूति, व्यापक अनुभव एवं बड़े सत्य की आशा करना व्यर्थ है। कहानी के 'नई कहानी' स्वरूप के आगमन से अन्य नामों से कहानी के अनेक रूप प्रचलन में आ गए–

हिन्दी कहानी

नई कहानी के बाद उसकी दुर्बलताएं और उसकी उपलब्धियां कहानी की तरह स्पष्ट रहीं। यौन प्रसंगों के प्रति आवश्यक मोह, क्षणवादी–भोगवादी दष्टि, शिल्पगत चमत्कारी प्रवत्ति आदि ने कई कहानी का अवमूल्यन किया। विरोधी प्रवत्ति से भी आहत हुई। यही कारण है कि सन् 1960 ई. में ही नई कहानी एवं उसके लेखक पुराने लगने लगे। फिर नएपन की मांग आई जिसके फलस्वरूप अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समानांतर कहानी, सक्रिय कहानी तथा जनवादी कहानी के आंदोलन प्रारंभ हो गए। डॉ. देवीशंकर अवस्थी ने सन् 1960 ई. के बाद की कहानी में नई कहानी से भिन्न पाया। उनके अनुसार चौथे–पांचवे दशक के कहानीकार यथार्थ का सजन करते हैं। पांचवे–छठे दशक के कहानीकार यथार्थ की अभिव्यक्ति करते थे किन्तु समकालीन कहानीकार यथार्थ को खोजता है। नई कहानी के लेखकों के समक्ष कुछ मूल्य थे लेकिन साठोत्तरी कहानीकार असमंजस्य की स्थिति में आ गया। सन् 1960 ई. के बाद सामाजिक परिवेश में व्यापक परिवर्तन आने के परिणामस्वरूप गद्य–पद्य की सभी विधाओं में परिवर्तन परिलक्षित होता है। अस्पष्ट देखते हुए भी त्वरा में लिखता चला गया। दष्टि भेद आ गया। सातवें दशक की कहानी बदली हुई मानसिकता की कहानी है। युवा कहानीकारों ने सभी सीमाएं फलांग कर अपने जिए हुए 'सत्य' को कहानी का रूप दिया।?

अकहानी

अकविता के वजन पर गद्य में अकहानी का आविर्भाव हुआ। इसकी प्रेरणा परराष्ट्रीय 'एंटी स्टोरी' की प्रेरणा है। इसे भारतीय संस्करण कहा जा सकता है। अकहानी के प्रबल समर्थक गंगा प्रसाद विमल ने अकहानी को अभारतीय कहने वालों को 'अज्ञान का आग्रह भोही' कहा है। उन्होंने इसे अपरिभाषेय स्वीकारा। डॉ. रामदरश ने अकहानी को स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'अकहानी का 'अ' वस्तु एवं मूल्य के स्तर पर भी निषेध का स्वर मुखर करता है। 'वस्तु' के स्तर पर उसने सामाजिक संघर्षों से संबंधित विषयों को ग्रहण न करके यौन प्रसंगों को ही कहानी का विषय बनाया है। सभी मूल्यों का निषेध करते हुए साहित्यिक मूल्य को भी अस्वीकार कर दिया है। यथार्थ बोध या विसंगति को अपना केन्द्र बिन्दु बना लिया है। श्रीकांत वर्मा – झाड़ी, प्रयाग शुक्ल – 'अकेले आकृतियां' एवं 'विश्वेश्वर' – 'दूसरी गुलामी' आदि कहानियों में व्यर्थता बोध को विभिन्न संदर्भों में उभारा गया है। अकहानी में विद्रोही स्वर के साथ साथ यौन संदर्भों तक सीमित रहने में वह विकृत और सतही बन गया। दूधनाथ सिंह – 'रीछ', गंगाप्रसाद विमल – 'विध्वंस', ज्ञान रंजन – 'छलांग', कृष्ण बलदेव वैद – 'त्रिकोण' आदि कहानियां इसी को संदर्भित करती हैं। अकहानीकारों को सर्वाधिक सफलता संबंधाभाव और मूल्यहीनता की स्थितियों को उभारने में मिली हैं। नैतिक वर्जनाओं और निषेधों के प्रति दष्टि बहुत आक्रामक रही है।

डॉ. नामवर सिंह ने रवींद्र कालिया आदि के शिल्प को सराहा है। उनके अनुसार "कहानी के रूपाकार और रचना विधान की दष्टि से ये कहानियां पर्याप्त समय से उपयोग में आने वाले कथागत साज संभार को एक बारगी उतारकर काफी हल्की हो गई। हल्की, लघु और ठोस। यहां तक कि कभी–कभी कथा चरित्रों के नाम, ग्राम परिचय का उल्लेख करना अनावश्यक प्रतीत होता है।" 'वह' 'मैं' 'तुम' वाली कहानियों में गंगा प्रसाद विमल – 'इंताकिता', रवींद्र कालिया – 'काला रजिस्टर' तथा दूधनाथ सिंह – 'रीछ' का उल्लेख किया जा सकता है।

अकहानी का महत्व जहां पुरामूल्यों के अस्वीकारने और बिगड़े हुए आपसी संबंधों के यथार्थ चित्रण में हैं, वहीं सेक्स केन्द्रित होने के कारण अकहानी न तो व्यापक बन सकी और न अधिक प्रामाणिक। जीवन की बुनियादी सच्चाईयों की अवहेलना करने से अकहानी दीर्घजीवी भी न हो सकी। अकहानी के प्रमुख हस्ताक्षरों में दूधनाथ सिंह, ज्ञान रंजन, रवीन्द्र कालिया, भीमसेन त्यागी, विश्वेश्वर, गंगाप्रसाद विमल, कृष्ण बलदेव वैद तथा श्रीकांत वर्मा आदि प्रमुख हैं।

सहज कहानी-

सहज कहानी की बात उठाने वाले अमत राय हैं वे इसके प्रथम एवं अंतिम प्रवक्ता हैं। नई कहानी की असमर्थता ने राम को सहज कहानी की अवधारणा करने के लिए विवश किया। अमत राय के अनुसार "सहज कहानी से हमारा अभिप्राय इनमें से किसी एक से या दो से या दस से नहीं बल्कि इन सबसे और इनसे अलग और भी बहुत से हैं। क्योंकि सहज कहानी से हमारा अभिप्राय उस मूल कथारस से है, तो कहानी की अपनी खास चीज है और जो बहुत सी नई कही जाने वाली कहानियों में एक सिरे नहीं मिलता।" इस उद्धरण में इनमें से पद द्वारा हितोपदेश जातक कथाओं, परी कथाओं आदि की ओर संकेत किया गया है। अमत राय सहज कथारस पर बहुत जोर देते हैं और उनके विचार से कहानी संबंधी सभी प्रयोग सहज कथा रस को ध्यान में रखकर ही सार्थक हो सकते हैं।

सहजता की व्याख्या करते हुए अमत राय ने लिखा है, "सहज वह है जिसमें आडंबर नहीं है, ओढ़ा हुआ मैनरिज्म या मुद्रादोष नहीं है, आईने के समान आत्मरति की भावना से अंग–प्रत्यंग को अलग–अलग कोणों से निहारते रहने का प्रबल मोह नहीं है। अमत राय ने सहज कहानी के संबंध मे यह स्पष्ट कर दिया था कि यह न तो कोई नारा है न कोई आंदोलन। वास्तव में सहज कहानी अकेले कंठ की पुकार बनकर रह गई, इसकी वैचारिकता को कहानीकारों का समर्थन नहीं मिला है।"

सचेतन कहानी

जब नई कहानी से संबद्ध कहानीकारों की जीवन दष्टि लड़खड़ाने लगी तथा अव्यवस्थित हो गई। गुटबंदी की प्रवत्ति प्रधान हो गई तब कुछ युवा कहानीकारों ने यथार्थवादी दष्टि से सचेतनता पर बल दिया। 'आधार' के सचेतन कहानी विशेषांक में कहा गया, "सचेतनता एक दष्टि है, जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है।" डॉ. महीप सिंह ने सचेतना दष्टि को आधुनिकता की एक गतिशील स्थिति स्वीकारा है, जो हमारे सक्रिय जीवन–बोध और मनुष्य को उसकी अनुभूतियों के साथ समग्र परिवेश के संदर्भ में स्वीकार करती है। यह सापेक्षता पर बल देती है। डॉ. धनंजय के अनुसार, "समाज और व्यक्ति के ऊपरी संबंधों पर सूक्ष्मता से उसकी दष्टि डाली जाती है, उतनी ही व्यक्ति के आंतरिक संबंधों पर भी। व्यक्ति वहां आवेगों संवेगों के साथ व्यवस्थित भावभूमि में रहता है किंतु उसकी कार्यशीलता मात्र अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की संकुचित पष्ठभूमि में नहीं होती।" सामाजिक चेतना का नैरंतर्य सदैव विद्यमान रहता है। सचेत दष्टि पर्याप्त सीमा तक संतुलित एवं सामयिक होती है। जो नई कहानी में ओझल थी। 1964–65 के निकट यह स्पष्ट हुई। डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार, "सन् 1960 ई. के बाद अनेक अश्लील कहानियों की भीड़ में सामूहिक स्वर में रचनात्मकता के स्तर पर उसका प्रतिवाद करने का प्रयास सचेतन कहानी को एक ऐतिहासिक महत्व प्रदान करता है। सचेतन कहानीकारों में मनहर चौहान, महीप सिंह, कुलभूषण, राम कुमार 'भ्रमर' तथा बलदेव वंशी आदि उल्लेखनीय हैं।

अकहानी सेक्स से पूर्णतया आक्रांत है। सचेतन कहानी इससे मुक्त है। अधिकांश सचेतन कहानियों में किसी न किसी सामाजिक, राजनीतिक अथवा वार्षिक विसंगतियों को उघाड़ा गया है। इसमें अनुभूति की गहनता एवं विविधता है। एक युद्ध की विभीषिका को लेकर की गई वेद राही – 'दरार', महीप सिंह 'युद्ध मन', शैलेश मटियानी – 'उसने नहीं कहा था' आदि कहानियां हैं दूसरी ओर हिमांशु जोशी – 'चीलें', राजकुमार भ्रमर – 'गिरस्तिन', मनहर चौहान – 'उड़ने वाली लाशें', आदि कहानियां काम संबंधों के यथार्थ का उद्‌घाटन करती हैं। जीवन की कटु विडंबना पर आधारित कहानियों में एक और सुखवीर – 'नारायणे' तथा बलदेव वंशी – 'एक खुला आकाश' उल्लेखनीय हैं।

समांतर कहानी

समांतर कहानी का बीजवपन सन् 1971–72 ई. में ही हो चुका था। सारिका सन् 1974 ई. से समांतर कहानी के विशेषांकों और दौर प्रारंभ हुआ। समांतर कहानी आंदोलन में वद्धि होती गई। सन् 1972 ई. में समांतर प्रथम के प्रकाशन से इसका विधिवत आरंभ माना जा सकता है। इसके मुख्य रचनाकार कमलेश्वर रहे हैं उनके अतिरिक्त, शरीफ, कामता नाथ, मधुकर सिंह, जितेंद्र भाटिया से रा. यात्री मिथलेश्वर, निरूपमा सेवती आदि कहानीकारों ने स्पष्ट समर्थन दिया। समांतर कहानी के कुछ पक्षधर इसे आंदोलन नहीं स्वीकारते थे। से.रा. यात्री ने आंदोलन से असहमति दिखलाई है। समांतर कहानी को लेकर जागरूक समीक्षकों की टिप्पणियों में मतैक्य नहीं है। इब्राहिम शरीफ तथा विनय प्रशंसक हैं तो शैलेष मटियानी ने तीखी

आलोचना की है। मटियानी के अनुसार यह आन्दोलन हिंदी कहानी के समकालीन दौर का सर्वाधिक हास्यास्पद ही नहीं क्षतिकारक है। समांतर कहानी आंदोलन की वैचारिकता की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:–

(i) समांतर कहानीकार रचना एवं सामयिक सत्यों के मध्य सामंजस्य की स्थापना करता है। अर्थात् उसका चिंतन एवं लेखन परिवेशानुसार होता है।

(ii) समांतर कहानी का केन्द्र बिंदु सामान्य मानव है। यह सामान्य मानव के संघर्षों की पक्षधर है क्योंकि उसका पूर्ण विश्वास है कि एकजुटता ही सामान्य मानव संघर्षों में विजयी होगी। शोषक शक्तियां परास्त होंगी। समांतर कहानी मानव को व्यष्टि रूप में न देखकर उसे समष्टि रूप में देखते हुए उसको उसके पूर्ण संघर्षों में दिशा निर्देशन एवं स्वरूप प्रदान करती रहती है।

(iii) आंदोलन सुनिश्चित परिवर्तन हेतु जन–संपर्क के प्रति समर्पित है। कहानीकार जन–संघर्ष का द्रष्टा नहीं अपितु सक्रिय सदस्य है।

(iv) समांतर आंदोलन राजनीतिक महत्व को स्वीकारता है। राजनीति में सक्रिय भाग लेते हुए क्रांति हेतु कार्य करना समांतर कहानीकार को रूचिकर प्रतीत होता है। राजनीतिक संघर्षों को वह सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अवलोकता है। एवं सांस्कृतिक संघर्ष को राजनीतिक स्वरूप प्रदान करता है। समांतर कहानी ने भाषित स्तर पर भावुकता का निराकरण करके उसे स्पष्ट, प्रत्यक्ष एवं प्रभावपूर्ण स्वरूप प्रदान किया है। डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ का कथन है, 'कार्य का कोई आग्रह इसमें नहीं है।

समांतर कहानी के विचार अति स्पष्ट हैं। आंदोलन ने विचारों का दुरूपयोग किया है। समांतर कहानियां विचारों का प्रतिबिंबन नहीं करती है। भारी वेतन भोगी समांतर कहानीकार सामान्य मानव का उथला चित्रण करते हैं जो पाठक पर प्रभाव नहीं डालती। यह सब कुछ होते हुए भी इब्राहिम शरीफ, सूर्यबाला, दिनेश पालीवाल, हिमांशु जोशी, प्रभु जोशी, मिथिलेश्वर तथा देवकी अग्रवाल आदि की कुछ अच्छी कहानियां समांतर कहानी की उपलब्धि कही जा सकती हैं।

सक्रिय कहानी

सक्रिय कहानी की अवधारण सन् 1979 ई. में राकेश वत्स ने की। राकेश वत्स के अनुसार "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी। उस समझ और अहसास की कहानी जो आदमी को बेबसी, वैचारिक निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर पहले स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर लेती है। सक्रिय कहानी एक बिंदु पर जनवादी कहानी के अति निकट है। यह बिंदु व्यवस्था विरोध का है। सक्रिय आंदोलन से संबद्ध कहानीकार आर्थिक – सामाजिक शोषण का विरोध करते हैं। इसके लिए वे वर्तमान व्यवस्था को उत्तरदायी बतलाते हैं। सक्रिय कहानी से जुड़े कहानीकारों में सुरेंद्र कुमार, विवेक निझावन, रमेश बतरा तथा सच्चिदानंद धूमकेतु आदि मुख्य हैं। अनेक कहानीकारों ने आंदोलन धर्मिता से अलग रहकर भी सार्थक सजन किया है। रामदरश मिश्र, मदुला गर्ग, विवेकी राय मैत्रेयी पुष्पा, ललित शुक्ल, प्रेम कुमार, शशि प्रभा शास्त्री, मंजुला तथा हरिमोहन आदि की कहानियां इस संदर्भ में अवलोकनीय हैं।

जनवादी कहानी

जनवादी कहानी एक पत्रिका और व्यक्ति पर केन्द्रित नहीं रही। सातवें–आठवें दशक में इसराइल, असगर वजाहत, मार्कंडेय, प्रदीप मांडव, नमिता सिंह तथा सूरज पालीवाल आदि की कहानियों का तेवर जनवादी है। जनवादी कहानी व्यवस्था विरोध के बिंदु पर सक्रिय कहानी के अति निकट है। जनवादी आंदोलनकारी कहानी के अति निकट हैं। जनवादी आंदोलनकारी कहानीकार आर्थिक सामाजिक शोषण का विरोध करते हैं तथा इसका उत्तरदायी वर्तमान व्यवस्था को बनाया है।

नौंवे दशक की कहानी में दो परिवर्तन स्पष्ट दष्टिगोचर होते हैं।

(i) वह पंजाब समस्या, सांप्रदायिक द्वेष आदि समसामयिक समस्याओं को अपने विचार का विषय बनाती है।

(ii) वाद या आंदोलन से उसने अपने को मुक्त कर लिया है। शिल्प की दष्टि से नौंवे दशक में किस्सागोई का प्रत्यावर्तन दष्टिगोचर होता है। इस दशक में शिवमूर्ति, संजय, अवधेश प्रीत नारायण सिंह, सुनील सिंह, शिवजी श्रीवास्तव, शोभा

नाथ लाला, जनकराज फरीक ललित शुक्ल, कमर मेवाड़ी, मैत्रेयी पुष्पा, नमिता सिंह तथा चित्रा मुद्‌गल आदि कहानीकारों ने सार्थक कहानियां लिखी हैं। वर्तमान कहानी अपने जनर्धी परंपरा को बढ़ातें हुए समूचे परिदश्य से साक्षात करने में संलग्न हैं। इस साक्षात्कार में तीक्ष्णता तथा ईमानदारी है।

लघु कथा

वर्तमान समय कार्यव्यस्तता का काल है। पाठकों के पास कालाभाव है। पद्य में क्षणिकाओं को आधार बनाकर गद्य विद्या में लघु कथा का आविर्भाव हुआ है। जिससे संबंधित अनेक लघु कथा संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिन में विषय वैविध्य है। उद्देश्य मनोरंजन समाज सुधार शैली व्यंग्य प्रधान, भाषा सरल भाव मार्मिक है।

25. उपन्यास : उद्‌भव एवं विकास

उपन्यास शब्द : व्याख्या एवं अर्थ

सं. उप. / नि. / अस् + घञ् प्रत्यय लगाकर 'उपन्यास' शब्द व्युत्पन्न हुआ है। 'अस्' + क्षेपण अर्थ में लिया गया है। उपन्यास का अर्थ वाक्य का उपक्रम। बंधान; अमानत/धरोहर; प्रमाण; वह बड़ी और लंबी आख्यायिका जिसमें किसी व्यक्ति के काल्पनिक या वास्तविक जीवन –चरित्र का चित्र अंकित या उपस्थित किया जाता है। इस शब्द का अंग्रेजी पर्याय 'नॉवेल' है। बंगला में 'नवल कथा' कहते हैं।

'उपन्यास' शब्द का मूल अर्थ – निकट रखी हुई वस्तु (उप–निकट, न्यास–रखी हुई), आधुनिक साहित्य में इसका अर्थ गद्य की एक विशिष्ट विधा हेतु किया जाता है जो आयाम में विस्तत होती है। ऐसी आख्यायिका जिसमें समाज के किसी अंग का चरित्र–चित्रण, काल्पनिक एवं वास्तविक के समन्वित रूप में अंकित होता है। सर्वांगीण व्यापक सामाजिक चित्रण उपन्यास कहलाता है। उपन्यास के मूल अर्थ एवं आधुनिक अर्थ में यद्यपि साम्य नहीं रह गया है किन्तु विद्वानों ने उसका समन्वित प्रस्तुत करने का यत्न किया है। उनके अनुसार उपन्यास में मानव जीवन को उसके अति निकट उपस्थित कर देने वाली विधा उपन्यास कहलाती है। इस दष्टि से यह नाम सर्वथा उचित प्रतीत होता है किन्तु यही कार्य नाटक, एकांकी एवं कहानी भी करते हैं। माना कि एकांकी एवं कहानी का आयाम छोटा होता है किन्तु नाटक की कथा तो लंबी और बड़ी होती है। उपस्थिति करने की प्रवत्ति उसकी भी उपन्यास जैसी ही है।

प्राचीन काव्य शास्त्र में उपन्यास शब्द का प्रयोग भी 'प्रतिमुख संधि' के एक उपभेद के रूप में किया गया है। भरतमुनि ने इसके लिए 'उपपत्ति कृत्तों ह्यर्थ' तथा 'प्रसादनम्' आदि विशेषण प्रस्तुत किए हैं जिनका अर्थ होता है – किसी अर्थ को युक्तिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने वाला तथा प्रसन्नता प्रदान करने वाला' 'किंतु यही स्थिति साहित्य की अन्य विधाओं की भी है।

आधुनिक उपन्यास अंग्रेजी पर्याय नॉवेल के अर्थों में प्रयुक्त होता है। उपन्यास शब्द पूर्ण अर्थ न प्रदान करते हुए भी साहित्य की विधा विशेष के लिए अत्यधिक प्रचलित रूप धारण कर चुका है।

प्रथम उपन्यास

आधुनिक उपन्यास साहित्य रूप विधान का विकास योरप माना जाता है किन्तु उससे पूर्व प्राचीन भारत में इस विधि का प्रचार प्रसार था, पंचतंत्र, हितोपदेश, वैताल पंचविंशति, वहत् कथा मंजरी, वासवदत्ता, कादंबरी और दशकुमार चरित आदि के रूप में औपन्यासिकता का विकास मिलता है। मराठी साहित्य में 'उपन्यास' का पर्यायवाची ही कादंबरी है। किन्तु यह उचित प्रतीत नहीं होता है।

यथार्थवादी दष्टिकोण एवं शैली की स्वाभाविकता की दष्टि से लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास कहा जा सकता है। हिंदी में उपन्यास का आविर्भाव उन्नीसवीं सदी के अंतिम काल में हुआ। बंगला में इस विधा का उद्‌भव हिंदी से पूर्व हो चुका था क्योंकि अंग्रेजी का प्रभाव पहले बंगला भाषा पर पड़ा।

हिंदी में सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' भारतेन्दु के जीवन काल में ही सन् 1882 ई. में प्रकाशित हो गया था जिसकी रचना का श्रेय लाला श्रीनिवास दास को है। यद्यपि लाला जी ने इसकी भूमिका में स्पष्ट लिख दिया है कि इसके लेखन में–

"महाभारतादि संस्कृत, गुलिस्तां वगैरह फारसी, स्पेकटेटर, लार्ड बेकन, गोल्ड स्मिथ, विलियम कपूर आदि पुराने लेखों और स्त्री बोध आदि के वर्तमान रिसालों से बड़ी सहायता मिली है।" इससे तथा इसके ढांचे से ज्ञात होता है कि इसकी रचना बंगला उपन्यासों के आधार नहीं की गई है अपितु लेखक ने सीधे अंग्रेजी के उपन्यासों से प्रेरणा ग्रहण की है।

'परीक्षा गुरु' में दिल्ली के एक सेठ पुत्र की कहानी है, जो कुसंगति में पड़ गया था जिसका उद्धार अंत में एक सज्जन मित्र ने किया। लेखक इसमें अत्यधिक उपदेशात्मक हो गया है जिसके परिणामस्वरूप यह रचना सफल उपन्यास का रूप ग्रहण नहीं कर सकी। डॉ. विजय शंकर मल्ल ने फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' को प्रथम उपन्यास कहा।

विकास - भारतेंदु युग या प्रेमचन्द -पूर्वोत्तर

भारतेंदु ने सर्व प्रथम 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' नामक उपन्यास का अनुवाद किया। एक मौलिक उपन्यास की रचना भी प्रारंभ की थी दुर्भाग्य से पूर्ण न हो सका। भारतेंदु युग के अन्य कई लेखकों ने भी उपन्यासों की रचना की, जिनमें श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती', रत्न चंद प्लीडर का 'नूतन चरित्र' – 1883, बालकृष्ण भट्ट – 'नूतन ब्रह्मचारी' – 1886 तथा 'सौ अजान एक सुजान' – 1892; राधा कृष्ण दास – 'निस्सहाय हिंदू' – 1890; राधा चरण गोस्वामी – 'विधवा विपत्ति' – 1888; कार्तिका प्रसाद खत्री – 'जया' – 1896 बालमुकुन्द गुप्त – 'कामिनी' आदि उल्लेखनीय हैं।

डॉ. विजय शंकर मल्ल ने फिल्लौरी के 'भाग्यवती' को हिंदी का प्रथम उपन्यास घोषित किया है किन्तु उन्होंने अपनी घोषणा की पष्टि अपेक्षित प्रमाणों या कारणों से नहीं की।

अनूदित

इन लेखकों ने मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त बंगला के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। बाबू गदाधर सिंह – 'बंगविजेता', 'दुर्गेश नंदिनी'; राधा कृष्ण दास – 'स्वर्ण लता'; प्रताप नारायण मिश्र – 'राज सिंह', 'इंदिरा तथा राधारानी', राधाचरण गोस्वामी 'विरजा', 'जावित्री', तथा 'मण्मयी' आदि का अनुवाद किया। बाबू रामकृष्ण वर्मा एवं कार्तिका प्रसाद खत्री ने उर्दू और अंग्रेजी के अनेक रोमांटिक एवं जासूसी उपन्यासों का अनुवाद हिंदी में किया। भारतेंदु युग में अनूदित उपन्यासों की प्रधानता रही है। मौलिक उपन्यासों का अनुवाद हिंदी में किया। भारतेंदु युग में अनूदित उपन्यासों की प्रधानता रही है। मौलिक उपन्यासों में भी कला विकास दष्टिगोचर नहीं होता है। उनमें इतिवत्त एवं घटनाओं की प्रधानता, चरित्र–चित्रण का अभाव, उपदेशात्मकता का आधिक्य एवं शैली की अपरिपक्वता दिखलाई पड़ती है।

हिंदी के मौलिक उपन्यासों की रचना का श्रेय भारतेंदु कालीन उपन्यासकार त्रयी–देवकी नंदन खत्री, गोपाल राम गहमरी तथा राधाचरण गोस्वामी को है। देवकी नंदन खत्री ने सन् 1891 ई. में 'चंद्रकांता' एवं 'चंद्रकांता संतति' की रचना की जिनमें तिलस्मी एवं ऐय्यारी का वर्णन है। इन उपन्यासों को इतनी लोकप्रियता मिली कि अनेक लोगों ने इन्हें पढ़ने के लिए हिंदी सीखी। गहमरी ने 'जासूस' नामक पत्र का संपादन प्रारंभ किया जिसमें लगभग पांच दर्जन से अधिक स्वरचित उपन्यासों का प्रकाशन किया। अनेक उपन्यासों के आधार अंग्रेजी के जासूसी उपन्यास होते थे। गोस्वामी ने उपन्यास पत्रिका निकाली जिनमें उनके छोटे–बड़े लगभग 65 उपन्यास प्रकाशित हुए। गोस्वामी के उपन्यासों का विषय सामाजिक था। किन्तु उनमें कामुकता एवं विलासिता का चित्रण अत्यधिक था जिसके परिणामस्वरूप 'उपन्यास त्रयी' की ये रचनाएं उपन्यास कला की दष्टि से अति साधारण कोटि में आती है। इनमें अस्वाभाविक घटनाओं की भरमार है।

खत्री, गहमरी और गोस्वामी की समन्वित त्रिवेणी तथा प्रेमचन्द की अजस्त्र प्रवाहिनी धारा को मिलाने का श्रेय अयोध्यासिंह उपाध्याय, लज्जाराम मेहता तथा कुछ अनुवादकों को है। हरिऔध ने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' लिखकर आई. सी.एम. के विद्यार्थियों के लिए हिंदी मुहावरों की पाठ्य पुस्तक का अभाव पूरा किया। मेहता ने 'आदर्श हिंदू' तथा 'हिंदू गहस्थ' लिखकर सुधारवाद का झंडा ऊंचा किया।

प्रेमचन्द युग

प्रेमचन्द (सन् 1880–1936 ई.) के हिन्दी कथा साहित्य में पदार्पण से पूर्व तक हिंदी उपन्यास मानो अविकसित कालिका की तरह चुप, निस्पंद एवं चेतना–विहीन सा हो रहा था। सूर्य की प्रथम रश्मियों की तरह प्रेमचन्द की पावन कला का पुनीत स्पर्श प्राप्त करते ही वह कली पुष्पित होकर, खिल उठी, जगमगा कर खिलखिलाने लगी। राजा–रानी, सेठ–सेठानियों की उच्च अट्टालिकाओं की चार दीवारी में बंद उपन्यास कथानक जनसाधारण की लोकभूमि में उन्मुक्त सांस लेता हुआ अबाध विचरण करने लगा। लौह मूर्तियों की तरह स्थिर रहने वाले या कठपुतलियों की तरह लेखन की उंगलियों के मौन संकेतों पर अस्वाभाविक गीत से नाचने वाले, दौड़ने–फुदकने वाले पात्र मांसल सजीव रूप धारण कर व्यक्तित्व सम्पन्न सामान्य मानव की भांति आत्म प्रेरणा से परिचालित होते दष्टिगोचर होने लगे जिसके परिणामस्वरूप उपन्यास के अन्य तत्वों–कथोपकथन, देश काल एवं वातावरण, भाषा शैली, उद्देश्य एवं रस आदि का विकास प्रथम बार प्रेम चन्द के उपन्यासों में हुआ। उन्होंने मात्र सस्ते मनोरंजन को ही उपन्यासों का विषय न बनाकर जीवन की ज्वलंत समस्याओं को अपने उपन्यासों का लक्ष्य बनाया जिसके परिणामस्वरूप उनके प्रत्येक उपन्यासों में किसी न किसी सामयिक समस्या का चित्रण मार्मिक स्वरूप में उपलब्ध है। यथा

– 'सेवा सदन' (1918) 'वेश्या', 'रंगभूमि' (1928) – 'शासक अत्याचार', 'प्रेमाश्रम' (1921) – 'कृषक,' 'कर्मभूमि' (1932) – हरिजन, 'निर्मला' (1922) – 'दहेज एवं वद्ध विवाह', 'गबन' (1931) मध्यवर्गीय आर्थिक विषमता; 'गोदान' (1936) कृषक श्रमिक शोषण।

प्रेमचंद के प्रारंभिक उपन्यासों में आदर्शवादिता का आधिक्य होने के कारण उनमें कहीं कहीं काल्पनिकता एवं अस्वाभाविकता अधिक आ गई है। किन्तु आगे चलकर प्रेमचन्द का स्वरूप आदर्शवादी के स्थान पर यथार्थवादी बन गया है जहां प्रारंभिक उपन्यासों में समस्याओं के समाधान करने के लिए गांधीवादी विचारधारा को अपनाया है वहां उन्होंने अन्तिम उपन्यास 'गोदान' में केवल समस्याओं के प्रस्तुतीकरण के द्वारा ही आत्मतुष्टि कर ली है।

'गोदान' की प्रमुख ही नहीं अंगी समस्या विवाह है। प्रेमचंद ने 'गोदान' में – बाल विवाह, वद्ध विवाह, अनमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम–विवाह, गांधर्व विवाह, परंपरित–विवाह, भगाकर ले जाना, रखैल रखना, वैसे ही संबंध स्थापित कर लेना, विवाहित से प्रेम, अविवाहिता से प्रेम संबंध आदि जितने भी प्रकार या स्वरूप संभव हैं सभी गोदान में दर्शाए गए हैं। इनमें आदर्श विवाह क्या हो सकता है? उसका समाधान प्रेमचंद ने नहीं प्रस्तुत किया है मेहता और मालती को अविवाहित ही क्यों छोड़ दिया है जो पति–पत्नी के रूप में आजीवन रहते हैं। समाज के लिए यह घातक प्रवत्ति है। इसलिए यह माना जा सकता है कि विवाह समस्या का यह समाधान नहीं है। शुक्ल ने जैसे अपने निबंधों का निर्णय अपने पाठकों पर चिन्तामणि के प्रथम भाग की भूमिका दो शब्द में यह कह कर कि "मेरे निबंध विषय प्रधान हैं या विषयी प्रधान इसका निर्णय विज्ञ पाठकों छोड़ देता हूँ।" उसी प्रकार प्रेमचन्द ने समस्या का समाधान पाठकों पर छोड़ा है। श्रेष्ठ साहित्यकार समस्या का समाधान नहीं प्रस्तुत करता है।

प्रेमचन्द युग में प्रेमचंद के अलावा अन्य अनेक उच्च कोटि के उपन्यासकारों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने विभिन्न दष्टिकोणों से विभिन्न विषयों को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। इन उपन्यासकारों को उनकी विशेषताओं के आधार पर अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) **सामाजिक समस्या**- इस वर्ग में ऐसे उपन्यास आते हैं जिन्होंने सामाजिक समस्याओं का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द की परंपराओं को अग्रसारित किया। इस वर्ग के उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक', पांडेय बेचन शर्मा उग्र, चतुरसेन शास्त्री तथा उपेन्द्र नाथ अश्क आदि उल्लेखनीय हैं।

जयशंकर प्रसाद– जयशंकर प्रसाद ने 'कंकाल' में भारतीय नारी जीवन की दुर्दशा पर प्रकाश डाला है। उनके अन्य उपन्यास 'तितली' में नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए उसके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है। अन्य उपन्यास 'इरावती' है।

विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक- कौशिक ने 'मां' और 'भिखारिणी' में भी नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए उसके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'- उग्र लेखक के रूप में सचमुच उग्र हैं। उन्होंने 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', में सभ्य समाज की आंतरिक दुर्बलताओं, अनीतियों एवं घणित प्रवत्तियों का उद्घाटन आवेगपूर्ण एवं धड़ल्लेदार शैली में किया है।

चतुरसेन शास्त्री- चतुरसेन शास्त्री ने विधवाश्रमों की सहायता लेकर ह्रदय की प्यास को बुझाने वालों की अच्छी खबर ली है। 'गोली' इस दष्टि से उनका प्रमुख उपन्यास है जिसमें देशी रियासतों के शासकों की घणित प्रवत्तियों एवं विलासिता को नग्न रूप में प्रस्तुत किया गया है। शास्त्री ने कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों की भी रचना की है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'- अश्क के उपन्यासों मुख्यतः 'गिरती दीवारों' में मध्यवर्गीय समाज की बाह्य एवं आंतरिक परिस्थितियों का उद्घाटन यथार्थवादी शैली में हुआ है। विवाह संबंधी सामाजिक रूढ़ियों के कारण होने वाली आधुनिक युवक–युवतियों की असफल परिणति पर उन्होंने 'चेतन' के माध्यम से प्रकाश डाला है। समाज की समस्याओं को उपन्यास का विषय बनाने वाले उपन्यासकारों ने सभी उपन्यासकारों की शैली में सरलता एवं स्वाभाविकता का आग्रह मुख्य रूप से किया है।

(ii) **चरित्र प्रधान-** इस वर्ग के उपन्यासों में चरित्र की प्रधानता है। ऐसे उपन्यासकारों में जैनेंद्र, इलाचन्द्र जोशी, भगवती चरण वर्मा एवं सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय आदि प्रमुख हैं।

जैनेंद्र- जैनेंद्र के उपन्यासों में 'सुनीता', 'परख', 'सुखदा' 'त्यागपत्र' तथा 'विवर्त्त' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अधिकांश उपन्यासों में पति पत्नी एवं अन्य पुरुष के पारस्परिक संबंधों का चित्रण किया गया है। सबमें प्रायः एक समान ही चित्रण मिलता है। नायिका प्रायः विवाहिता होती है। अपनी वैयक्तिक कुंठाओं से अति दुखी होती है जिसके परिणामस्वरूप सदैव सुख की तलाश में रहती है। पर पुरुष के संपर्क में आते ही उसे प्रभावशाली व्यक्तित्व समझकर उसकी ओर आकर्षित हो जाती है। नायिका का पति इस स्थित से पूर्ण अवगत होते हुए भी चुप्पी साधे सब कुछ धैर्य से सहन करते हुए समय की प्रतीक्षा करता रहता है। प्रारंभ में ऐसा आभास होने लगता है कि नायिका अपने पति का परित्याग कर अपने प्रेमी के साथ पलायन कर जायेगी किंतु अंत तक जाते जाते जैनेंद्र परिस्थिति को संभाल लेते हैं तथा यह निष्कर्ष निकालना चाहते हैं कि पति पत्नी को अन्य व्यक्तियों से संपर्क करने का जितना अवसर मिलता है, जितनी अधिक स्वतन्त्रता मिलती है उतनी चारित्रिक दढ़ता एवं सबलता में वद्धि होती है। वास्तव में जैनेंद्र के उपन्यासों में एक ओर रसिकता एवं सरसता विद्यमान है तो दूसरी ओर शुष्कता तथा भावुकता के साथ साथ बौद्धिकता आवश्यकता से अधिक आ गई है।

इलाचंद्र जोशी

इलाचंद्र जोशी ने 'सन्यासी' 'परदे की रानी', 'प्रेत' और 'छाया', 'सुबह के भूले' तथा 'मुक्ति पथ' आदि उपन्यासों में चारित्रिक प्रवत्तियों एवं वैयक्तिक परिस्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है, किंतु जैनेन्द्र की तरह शुष्क कथानक नहीं हैं उनके पास प्रत्येक उपन्यास में प्रयोग करने के लिए नए–नए अनेक कथानक हैं, नई नई अनेक समस्याएं हैं, अतः उन्हें समस्याओं परिस्थितियों एवं कथानकों आदि के पुनर्प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती है। एक ओर उसके पास कल्पना का वैभव है तो दूसरी ओर अनुभूतियों का संचित कोष – जिसके परिणामस्वरूप वे अपने उपन्यासों को सौंदर्यमयी एवं रसमयी बनाने में पूर्ण सक्षम एवं समर्थ हैं। जैनेन्द्र के उपन्यास यदि पेंसिल निर्मित रफ स्केच के समान हैं तो जोशी के उपन्यास सतरंगी सूक्ष्म रेखाओं से सुसज्जित दिव्य चित्र हैं। जटिल दार्शनिकता पर जैनेन्द्र को अत्यधिक गर्व है। जोशी के उपन्यास दार्शनिक जटिलता शून्य है। किन्तु जोशी का सारल्य, भाषा प्रवाह तथा शैली की प्रौढ़ता आज किसी भी उपन्यासकार में उपलब्ध नहीं है। कहीं कहीं जोशी भी दार्शनिकता प्रिय आलोचकों की प्रशंसा प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा में अथवा विद्यार्थियों के काम की वस्तु बनाने के लालच का संवरण न कर सकने के परिणामस्वरूप दार्शनिक नीरस सिद्धान्त निरूपण के जाल में फंस गए हैं। यह उनकी औपन्यासिकता के ह्रास का द्योतन करता है। 'सुबह के भूले' तथा 'मुक्ति पथ' उपन्यासों की औपन्यासिकता का ह्रास हुआ है।

भगवती चरण वर्मा- भगवती चरण वर्मा ने 'तीन वर्ष', 'आखिरी दांव' तथा 'टेढ़े–मेढ़े' रास्ते में सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेशों को दष्टिगत रखते हुए मनोविश्लेषण को प्रधानता दी है।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय- अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' (दो भाग) तथा 'नदी के द्वीप' दोनों उपन्यासों में यौन प्रवत्तियों का ऐसा भयंकर चित्रण सूक्ष्म, जटिल एवं गंभीर शैली में किया है कि सामान्य पाठक के हृदय को शांति प्रदान करने के स्थान पर उसके मस्तिष्क को कुरेदने एवं कचोटने में आग में घी का काम देता है। अज्ञेय ने विभिन्न मनोवैज्ञानिकों, एवं मनोविश्लेषणकर्ताओं द्वारा प्रतिपादिन यौन सिद्धान्तों के अनुकूल अपने उपन्यास के पात्र–पात्राओं के चरित्र को अति सूक्ष्मता से चित्रित किया है। चरित्र–चित्रण को इनमें इतनी अधिक प्रमुखता प्राप्त हुई है कि उसके समक्ष उपन्यास के अन्य तत्व गौण हो गए हैं। ऐसी स्थिति में इनमें सामाजिक परिस्थितियों के स्थान पर व्यक्ति की मानसिक प्रवत्तियों के विश्लेषण को विस्तार मिलना स्वाभाविक हो गया है।

(iii) **साम्यवादी-** इस वर्ग में साम्यवादी दष्टिकोण से लिखे गए उपन्यास आते हैं जिनमें राहुल सांकृत्यायन तथा यशपाल प्रमुख उपन्यासकार हैं–

राहुल सांकृत्यायन- राहुत सांकृत्यायन के साम्यवादी उपन्यास 'सिंह सेनापति' तथा 'वोल्गा से गंगा' हैं। दोनों उपन्यासों में रूसी साम्यवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है।

यशपाल- यशपाल के उपन्यास 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'मनुष्य के रूप' आदि में वर्ग संघर्ष, वर्ग वैषम्य का चित्रण करते हुए सामाजिक क्रांति का समर्थन किया गया है।

(iv) **ऐतिहासिक**- ऐतिहासिक उपन्यासों को देशकाल प्रधान उपन्यास भी कहा जाता है। इस वर्ग में देशकाल प्रधान या ऐतिहासिक उपन्यास आते हैं। ऐतिहासिक कथानकों की ओर हिंदी उपन्यासकारों का ध्यान बहुत पहले चला गया था। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने वालों में किशोरी लाल गोस्वामी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, यशपाल, वंदावन लाल वर्मा तथा रांगेय राघव विशेष उल्लेखनीय हैं–

किशोरी लाल गोस्वामी- किशोरी लाल गोस्वामी ने कुछ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जिनमें ऐतिहासिकता का निर्वाह नहीं किया गया है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री- आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जिनमें उनका सर्वोत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास 'वैशाली की नगर वधू' है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एवं 'चारुचन्द्र' दो प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

यशपाल- यशपाल का ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' है। जिसमें तत्कालीन युग के संपूर्ण परिवेश को प्रस्तुत करने का पूर्व प्रयास किया गया है। अन्य उपन्यास 'अमिता' है।

वंदावन लाल वर्मा- ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा को चरम विकास तक पहुंचा देने का एक मात्र श्रेय वंदावन लाल वर्मा को है। 'गढ़ कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झांसी की रानी लक्ष्मी बाई', तथा 'मगनयनी' आदि उपन्यास ऐतिहासिक हैं जिनमें इतिहास के अनेक विस्मत प्रसंगों को नवजीवन प्राप्त हुआ है। मगनयनी में ऐतिहासिकता – कल्पना, तथ्य – अवास्तविकता तथा मानव और प्रकृति का सुंदर सामंजस्य एवं समन्वय हुआ है।

डॉ. रांगेय राघव- नवीनतम ऐतिहासिक उपन्यासकारों में डॉ. रांगेय राघव तथा उनके उपन्यासों 'अंधा रास्ता', 'सुनामी' एवं 'भगवान एक लिंग' का विशेष महत्व है।

(v) **आंचलिक**- किसी अंचल या प्रदेश विशेष के वातावरण को सजीव रूप में प्रस्तुत करने को आंचलिकता कहा जाता है। जिन उपन्यासों में यह प्रस्तुतीकरण होता है उन्हें आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी जाती है। हिन्दी उपन्यास के तत्वों पर आधारित नहीं अपितु स्वतंत्र सर्वथा नवीन वर्ग है। वर्तमान काल में ऐसे उपन्यासों का विकास हो रहा है। ऐसे उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ रेणु, उदयशंकर भट्ट, बलभद्र ठाकुर, नागार्जुन तथा तरन तारन के नाम उल्लेखनीय हैं हिंदी आंचलिक उपन्यासों पर बंगला प्रभाव दष्टिगोचर होता है। उपन्यास की इस परंपरा का श्रीगणेश स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अर्थात् सन् 1950 ई. के आस पास हुआ।

नागार्जुन- नागार्जुन हिंदी के सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यासकार हैं। नागार्जुन ने अनेक उपन्यास लिखे जिनमें 'बलचनमा', 'बाबा बटेसर नाथ', 'रतिनाथ की चाची', 'ईमरतिया', 'पारों', 'जमनिया का बाबा' तथा 'दुखमोच' आदि प्रमुख हैं। आंचलिक उपन्यास कला की दष्टि से बाबा बटेसर नाथ अधिक मंजी अुई सशक्त रचना है। इसमें कथ्य का संतुलित निरूपण, सजीव चरित्र चित्रण तथा प्रसंगों का नवीन प्रणाली से संयोजन सहृदय को आकर्षित करता है। बरगद वक्ष का मानवीकरण करके सर्वथा नवीन प्रयोग किया गया है। बरगद मानवीय संवेदनाओं से युक्त है।

फणीश्वर नाथ रेणु- 'मैला आंचल' लिखकर फणीश्वर नाथ रेणु ने आंचलिक उपन्यास के क्षेत्र में तहलका मचा दिया है। इस उपन्यास के प्रकाशन ने रेणु को रातों रात ख्याति के शिखर पर आसीन कर दिया। इतनी ख्याति किसी भी साहित्यकार को एकलौती रचना पर नहीं मिली है। इसमें बिहार प्रांत के पूर्णिया जनपद के मेरी गंज अंचल के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक एवं धार्मिक आदि सभी परिवेशों का यथार्थ चित्रांकन हुआ है। पूर्णिया जिले की स्थानीय बोली का प्रयोग आंचलिकता की मांग है। पर कुछ स्थानिक शब्दों के प्रयोग भावबोध कराने में कठिनता एवं जटिलता उत्पन्न करते हैं जो कथा रस में बाधक सिद्ध हुए हैं भले ही आंचलिकता प्रदर्शन में सफल हुए हों। 'परती परिकथा' अन्य उपन्यास है।

रांगेय राघव- आंचलिक उपन्यास के क्षेत्र में रांगेय राघव का महत्वपूर्ण योगदान है। 'कब तक पुकारूँ' उनका चर्चित आंचलिक उपन्यास है जिसमें जरामयपेशा आपराधिक कृति वाले नटों के जीवन का व्यापक एवं यथार्थ चित्रण किया गया है। इन नटों की वैवाहिक एवं यौन संबंधी मान्यताएं सामान्य मानव से भिन्न है। इनमें सांप्रदायिक मान्यताएं नहीं हैं क्योंकि बहुत कम समय के लिए अपने मूल निवास पर आते हैं। यायावरी जीवन बिताना इनका जीवन यापन का मुख्य लक्ष्य है।

उदयशंकर भट्ट- उदय शंकर भट्ट का आंचलिक उपन्यास 'लोक परलोक' है जिसमें इह लोक तथा स्वर्ग का काल्पनिक चित्रण किया गया है।

बलभद्र ठाकुर- बलभद्र ठाकुर के उपन्यासों में 'आदित्य नाथ', 'मुक्तावली', 'नेपाल की वो बेटी' मुख्य हैं।

श्याम सन्यासी- श्याम सन्यासी ने एक ही आंचलिक उपन्यास की रचना की जो उत्थान है।

तरन तारन- तरन तारन ने ''हिमालय के आंचल' आंचलिक उपन्यास लिखा। इसमें लोक संस्कृति लोक गीतों तथा लोक शब्दावली का प्रयोग अत्यधिक हुआ है।

उपर्युक्त पांच वर्गों के अतिरिक्त प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकार विभिन्न धाराओं में विभाजित होकर विभिन्न रंग रूपों में उपन्यास साहित्य का सजन कर रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् छठे दशक में अनेक ऐसे उच्च कोटि के उपन्यासों का प्रकाशन हुआ है, जिनमें नए–नए विषयों, शिल्प विधियों, और शैलियों का प्रयोग मिलता है। कुछ प्रमुख उपन्यासकारों और उनके उपन्यासों की सूची निम्नलिखित है–

यज्ञदत्त – 'इंसान' एवं 'अंतिम चरण', अंचल – 'चढ़ती धूप', देवेंद्र सत्यार्थी – 'रथ का पहिया', धमवीर भारती – 'सूरज का सातवां घोड़ा', राजेन्द्र यादव – 'प्रेत बोलते हैं', 'टूटे हुए लोग'।

डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार – 'मैंने होटल चलाया', अमत लाल नागर – 'बूंद और समुद्र' एवं 'शतरंज के मोहरे', लक्ष्मी नारायण लाल – 'बंया का घोसला' एवं 'साप', आचार्य चतुरसेन शास्त्री– 'खग्रास', सत्यकाम विद्यालंकार – 'बड़ी मछली और छोटी मछली', यावेंद्र शर्मा चंद्र – 'अनावत्त', अनंत गोपाल 'शेवड़े' – भग्न मन्दिर, यशपाल – 'झूठा सच', देवराज – 'अजय की डायरी'; जीवन प्रकाश जोशी – 'विवाह ही मंजिलें' आदि साठोत्तरी (सन् 1960 ई. के बाद) उत्कृष्ट उपन्यासों में है।

इनके अतिरिक्त हिंदी में और भी अनेक उपन्यास कार इस विद्या में योगदान कर रहे हैं जिनमें देवी दयाल चतुर्वेदी, कंचन लता सब्बरवाल, तथा हेमराज निर्मम आदि ने भी उच्च कोटि के उपन्यासों की रचना की है।

अनूदित- मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त हिंदी में पर राष्ट्रीय एवं भारतीय भाषाओं के उच्च कोटि के उपन्यासों के सुंदर अनुवाद भी अत्यधिक संख्या में प्रस्तुत हुए हैं इनमें हेमसन 'आग जो बुझी नहीं', स्टीफेन ज्विग – 'विराट', मोबी डिक – 'लहरों के बीच ड्यूमा' – कलाकार कैदी, बालजक – 'क्या पागल था', आदि प्रशंसनीय हैं। भारतीय लेखकों में आरिगपूड़ि – 'अपने पराए', भवानी भाचार्य – 'शेर का सवार', खांडेकर – 'ययाति', विमल मित्र – 'साहब बीबी गुलाम' आदि महत्वपूर्ण है।

स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी उपन्यास साहित्य आज अनेक दिशाओं में तीव्रगति से अग्रसर है। उपन्यासकार अति यथार्थवादिता, प्रयोगशीलता, एवं न्यूनता की प्रवत्तियों से बुरी तरह ग्रस्त होते जा रहे हैं। कुछ उपन्यासकार कुंठाओं से पीड़ित, असफलताओं एवं असंतुलन से जर्जरित तथा पाश्चात्य भोगवादी सभ्यता के आकर्षण में भटके हुए हैं तथा वे साहित्य सजन किसी को कुछ देने के लिए नहीं अपितु अपनी ही कुंठा से मुक्ति पाने हेतु कर रहे हैं।

उपन्यास पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसका क्षेत्र मात्र सुशिक्षित समाज एवं शहरी जीवन तक सीमित हो गया है। पर अनेक उपन्यासकारों ने आंचलिकता को फैशन के रूप में ग्रहण किया है, ग्रामीण जीवन की परिस्थितियों एवं समस्याओं का यथार्थ बोध बहुत कम रचनाओं में उपलब्ध होता है।

इस संदर्भ में सोम वीरा की चुनौती अवलोकनीय है – हमारा आधुनिक साहित्य केवल 'मध्यवर्गीय नगर साहित्य' इसलिए है क्योंकि हमारे अधिकांश साहित्यकार केवल इसी वर्ग की बातों को लेकर, केवल इसी वर्ग के लिए लिखते हैं।

ग्रामीण लोगों, आदिवासियों, करोड़पतियों के जीवन पर, रात को सड़क पर सोने वालों पर, दिन में चना मूंगफली बेचने वालों के जीवन पर, भिखारियों पर खिलाड़ियों पर, वैज्ञानिकों पर, मछुआरों पर, अछूतों पर मध्य वर्ग के अतिरिक्त समाज के अन्य अंगों से संबंधित विषयों पर कितने साहित्यकारों ने कलम उठाई है? अब उठाना है।

आधुनिक प्रयोग- रचना शिल्प के क्षेत्र में उपन्यास में अनेक नए प्रयोग किए गए। उपन्यास के अंदर उपन्यास लेखन का महत्वपूर्ण प्रयोग हुआ। इसके सफल प्रयोग का श्रेय अमत लाल नागर को है। 'अमत और विष' उपन्यास के एक कथा लेखन की आत्म कथा है तो दूसरी ओर पटकथा। लेखन एक कथा का भोक्ता है तो दूसरे उपन्यास का प्रणेता है। उपन्यास लेखन संबंधी सहयोगी प्रयास भी नया प्रयोग है। सहयोगी उपन्यास 'ग्यारह सपनों का देश' धर्मवीर भारती द्वारा संपादित है। इसका प्रथम एवं अंतिम अध्याय भारती ने लिखा है। दूसरे से दसवें अध्याय को उदय शंकर भट्ट, रांगेय राघव, अमत लाल नागर आदि अन्य लेखकों ने लिखा है। उपन्यास लेखन में जीवन क्षेत्र का संकोच भी नया प्रयोग है। इसमें अनेक वर्षो के जीवन चित्रण के स्थान पर कुछ घंटों या कुछ दिनों का चित्रण रहता है। यथा – यशपाल के 'बारह घंटे' उपन्यास और अश्क के 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में केवल बारह घंटे की कथा कही गई है। निर्मल वर्मा के 'वे दिन' में पात्रों के जीवन के तीन दिनों को उकेरा गया है। शैली की दष्टि से भी नए प्रयोग हुए हैं। पूर्व दीप्ति शैली का प्रयोग 'त्यागपत्र' में मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग सन्यासी में डायसी शेली का प्रयोग 'अजय की डायरी' उपन्यास में किया गया है। अतः प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यास विद्या के क्षेत्र में अनेक नए प्रयोग किए गए हैं।

26. नाटक : उद्‌भव एवं विकास

नाटक का उद्‌भव और विकास विवेचन विश्लेषण से पूर्व नाटक शब्द की व्याख्या एवं अर्थ तथा व्युत्पत्ति से अवगत हो लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

नाट से पूर्व नट् धातु है जिससे नट व्युत्पन्न हुआ है।

'नट्' – सं. नट् (नत्य) + अच् अभिनय में वह व्यक्ति जो किसी का रूप धारण करके उसकी चेष्टाओं का अभिनय करता है।

नाटक - व्युत्पत्ति - अर्थ एवं व्याख्या

नाटक शब्द की व्युत्पत्ति सं. नट् (नाचना) + घञ से हुई है जिसका अर्थ नच्च, नाच, नत, नत्य, नकल या स्वांग होता है। नाटक से पूर्व नट् से नाट शब्द व्युत्पन्न हुआ है। इसलिए नाटक से नाट की व्यत्पत्ति देखी।

नाटक- सं. नट् + ण्वुल् – अक प्रत्यय से नाटक की व्युत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ नाट्य या अभिनय करने वाला या नटों या अभिनेताओं के द्वारा मंचन। अभिनय इसका अंग्रेजी पर्याय ड्रामा है।

नाटक शब्द की व्युत्पत्ति विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि नाटक शब्द तक पहुंचने से पूर्व – नच्च – नाच – नत् – नत्य, नट – नाट – नाट्य – नाटक शब्द प्रमुख हैं।

नच्च (अंग प्रत्यंग को हिलाना) से क्षतिपूरक दीर्घीकरण से नाच (वाद्य यंत्र सहित स्वर,लय, ताल पर नाचना क्रिया की संज्ञा), नत् में सांस्कृतिक भाव आ जाता है। नत् से (नत्य) बन जाता है। नट से नाट नकल स्वांग का भाव आ जाता है। जिससे नाट्य शब्द बना है। नाट्य से नाटक की व्युत्पित्ति हुई है।

अंग प्रत्यंग हिलाना, अंग प्रत्यंग वाद्य यंत्र के साथ, भावाभिव्यक्ति, तथा अभिनय के साथ कथा की अभिव्यक्ति नाटक कहलाती है।

प्रथम हिंदी नाटक- नाटक का बीजवपन वेदों में हो चुका था जिसके आधार पर नाटक को पांचवां वेद कहा जाता है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में घटना का उल्लेख किया गया है जिसके अनुसार देवताओं से प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस लेकर पांचवें वेद अर्थात् नाटक को जन्म दिया। शिव ने तांडव नत्य तथा पार्वती ने लास्य प्रदान किया।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि वेदों के बाद ही नाटक का आविर्भाव हुआ। उत्तर–वैदिक युग से पूर्व नाटक का आगमन हो चुका था। 'यवनिका' के आधार पर नाटक को यूनान की देन कहा गया। वह भी सत्य नहीं क्योंकि शब्द यवनिका नहीं 'जवनिका' है। जब वेग के अनुसार, जवनिका–वेग से उठने गिरने वाला पर्दा होता है। यूनानी नाटक में पर्दा नहीं होता था, अंक नहीं होते थे आदि।

पाणिनि (ईसा 400 वर्ष पूर्व) ने नाटक का उल्लेख किया है। रामायण, महाभारत में नाटक का उल्लेख है। उपलब्ध नाटकों में सबसे प्राचीन महाकवि भास की रचनाएं हैं। कालिदास, शुद्रक, भवभूति, हर्षवर्द्धन, भट्ट नारायण तथा विशाखदत्त आदि नाटककार थे। उसके बाद नाट्य कला विलुप्त सी हो गई।

डॉ. दशरथ ओझा ने तेरहवीं शताब्दी से नाटक का आविर्भाव माना है। सर्वप्रथम उपलब्ध नाटक "गय सुकुमार रास" है जिसका रचनाकाल संवत 1289 वि. है। इस की भाषा पर राजस्थानी हिंदी का प्रभाव है। नाटकीय तत्वों पर प्रकाश नहीं पड़ता है। इसलिए इसे प्रथम नाटक नहीं कहा जा सकता है।

महाकवि विद्यापति द्वारा रचित मैथिली नाटक 'गोरक्ष विजय' को प्रथम नाटक कहा गया है। किंतु पद्य भाग मैथिली में है।

मैथिली नाटकों के बाद रास नाटक अर्थात् ब्रजभाषा पद्य के नाटक आये। उसके पश्चात् हिंदी में पद्य वद्य नाटकों की रचना

होती रही जिनमें 'प्रबोध चंद्रोय' को प्रथम नाटक कुछ आलोचकों ने माना है। यशवंत सिंह को प्रथम नाटककार माना है। इसका रचनाकाल सं. 1700 वि. है।

हिंदी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग से होता है। सन् 1850 ई. से आज तक के युग को नाट्य रचना की दष्टि से तीन खंडों में विभक्त कर सकते हैं।

(i) भारतेंदु युग (सन् 1850 – 1900 ई.)

(ii) प्रसादयुग (सन् 1901 – 1930 ई.)

(iii) प्रसादोत्तर युग (सन् 1931 – 1950 ई.)

(iv) स्वातंत्र्योत्तर युग (सन् 1951 – अब तक)

भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने अपने पिता बाबू गोपाल चन्द्र द्वारा रचित नाटक 'महुष नाटक' (सन् 1841 ई.) को हिंदी का प्रथम नाटक माना है। किंतु यह भी ब्रजभाषा परंपरा के पद्य बद्ध नाटकों में आता है।

(i) **भारतेंदु युग-** सन् 1861 ई. राजा लक्ष्मण सिंह ने 'अभिज्ञान शकुन्तलम' का हिन्दी अनुवाद 'शाकुन्तला' नाटक नाम से किया। भारतेन्दु ने प्रथम नाटक 'विद्या सुंदर' सन् 1868 ई में बंगला नाटक से छायानुवाद किया। उसके पश्चात् उनके अनेक मौलिक एवं अनूदित नाटक प्रकाशित हुए– 'पाखंड विडम्बनम्' – 1872, 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' – 1872, 'धनंजय' विजय, 'मुद्राराक्षस' – 1875, 'सत्यहरिश्चन्द्र' – 1875, 'प्रेमयोगिनी' – 1875, 'विषस्य – विषमौषधम्' – 1876, 'कर्पूर मंजरी' – 1876, 'चंद्रावली' – 1876, 'भारत दुर्दशा' – 1876, 'नील देवी' – 1877, 'अंधेरी नगरी' – 1881, तथा 'सती प्रताप' – 1884 ई. आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेंदु के नाटक मुख्यतः पौराणिक, सामाजिक, तथा राजनीतिक विषयों पर आधारित है। सत्य हरिश्चन्द्र, 'धनंजय विजय', 'मुद्राराक्षस' तथा 'कर्पूर मंजरी' अनूदित नाटक हैं। मौलिक नाटकों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों, एवं धर्म के नाम पर होने वाले कुकत्यों आदि पर करारा व्यंग्य किया है। पाखंड–विडंबनम्, वैदिक हिंसा हिंसा न भक्ति ऐसा ही नाटक हैं। विषस्य विषमौषधम् में देशी नरेशों की दुर्दशा पर आंसू बहाए हैं तथा उन्हें चेतावनी दी है कि यदि वे न संभलें तो धीरे–धीरे अंग्रेज सभी देशी रियासतों को अपने अधिकार में ले लेंगे। 'भारत दुर्दशा' में भारतेंदु की राष्ट्र–भक्ति का स्वर उद्घोषित हुआ है। इसमें 'अंग्रेज' को भारत के शासक रूप में चित्रित करते हुए भारत वासियों के दुर्भाग्य की कहानी को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्थान–स्थान पर अंग्रेजों की स्वेच्छाचारिता, अत्याचारी व्यवहार, भारतीय जनता की मोहकता पर गहरा आघात किया है। 1856 ई. की असफल क्रांति को लोग अभी भूल नहीं पाए थे। भारतेंदु ने ब्रिटिश शासन एवं उसके विभिन्न अंगों की जैसी स्पष्ट आलोचना अपने साहित्य में ही है वह उनके उज्जवल देश प्रेम एवं अपूर्व साहस का द्योतन करती है।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र को संस्कृत, प्राकृत, बंगला एवं अंग्रेजी के नाटक साहित्य का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने इन सभी भाषाओं से अनुवाद किए थे। नाट्य कला के सिद्धान्तों का उन्होंने सूक्ष्म अध्ययन किया था इसका प्रमाण उनके नाटक देते हैं। उन्होंने अपने नाटकों के मंचन की भी व्यवस्था की थी। वे मंचन में भी भाग लेते थे।

भारतेंदु के नाटकों में जीवन और कला, सौंदर्य और शिव, मनोरंजन और लोक सेवा का अपूर्व सामंजस्य मिलता है। उनकी शैली में सरलता, रोचकता, एवं स्वाभाविकता आदि के गुण विद्यमान हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा तथा उनके प्रभाव से उस युग के अनेक लेखक नाट्य रचना में तत्पर हुए। श्रीनिवास दास 'रणधीर' और 'प्रेम मोहिनी', राधाकृष्ण दास – 'दुःखिकी बाला', महाराणा प्रताप, खंगबहादुर लाल – 'भारत ललना', बदरी नारायण चौधरी प्रेमधन – 'भारत सौभाग्यम्', तोताराम वर्मा – 'विवाह विडंबन', प्रताप नारायण मिश्र – 'भारत दुर्दशा' रूपक, और राधाचरण गोस्वामी 'तन–मन–धन' श्री गोसाईं जी के 'अर्पण' आदि नाटकों की सजना की।

इन नाटकों में समाज सुधार, देश–प्रेम, या हास्य विनोद की प्रवत्ति दष्टिगोचर होती है। इनमें गद्य खड़ी बोली तथा पद्य ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। संस्कृत नाटकों के अनेक शास्त्रीय लक्षणों की इनमें अवहेलना की गई है। भाषा पात्रानुकूल है। शैली में सरलता, मधुरता एवं रोचकता दष्टिगोचर होती है। भारतेंदु युगीन नाट्य साहित्य जन मानस के

निकट था उसमें लोक रंजन एवं लोकरक्षण दोनों भावों का सुंदर समन्वय हुआ है। तत्कालीन नाटक पाठ्य एवं दश्य दोनों रूपों में तत्कालीन लोकहृदय का आकर्षक बने हुए थे। इनका दिव्य मंचन भी होता था।

(ii) **प्रसाद युग**- आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य में भारतेंदु के पश्चात् सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी ऐतिहासिक नाटककार जयशंकर प्रसाद हैं। इन्होंने जितनी ख्याति काव्य की विभिन्न विधाओं के सकल सजन में प्राप्त की। नाटक, कहानी तथा उपन्यास सभी विधाओं में सफल लेखनी उठाकर हिंदी गद्य साहित्य को समद्ध बनाया। जयशंकर प्रसाद ने एक दर्जन से अधिक नाटकों की सजना की इनके नाटकों में 'सज्जन' – 1910 ई., 'कल्याणी परिणय' 1912 ई., 'करुणालय' – 1913 ई., 'प्रायश्चित' 1914 ई., 'राज्य श्री' 1915 ई., 'विशाख' 1921 ई., 'अजात शत्रु' 1922 ई., 'कामना' 1923 ई., जनमेजय का 'नाम यज्ञ' – 1923 ई. 'स्कंदगुप्त' 1928 ई., 'एक घूंट' 1929 ई., 'चंद्रगुप्त' 1931 ई. तथा 'ध्रुवस्वामिनी' – 1933 ई. आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेंदु युगीन कवियों ने देश की दुर्दशा का वर्णन बारंबार अपनी रचनाओं में किया, जिससे प्रभावित होकर भारतीयों में करुणा, ग्लानि, दैन्य, एवं अवसाद की प्रबल भावनाओं का उदय हुआ। ऐसी भावनाओं का भारतीयों में जन्मना अति स्वाभाविक था। साहित्यिक रचनाओं ने आग में घी का समावेश किया। ऐसे परिवेश एवं ऐसी मनःस्थिति में समाज एवं राष्ट्र विदेशी शक्तियों से संघर्ष करने की क्षमता खो बैठता है। प्रसाद ने देशवासियों में आत्मगौरव का संचार किया। जिसके लिए उन्होंने अपने नाटकों में भारत के अतीत के गौरवपूर्ण दश्यों को प्रतिस्थापित किया। यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटकों का कथानक उस बौद्ध युग से संबंधित है जब भारत अपनी सांस्कृतिक पताका विश्व के अधिकांश देशों में फहरा रहा था। बौद्धधर्म का प्रचार–प्रसार करने के लिए महाराज अशोक ने अपने पुष्यमित्र पुत्र एवं पुत्री संमित्रा को विदेशों में भेजा था। प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति को प्रसाद ने अति सूक्ष्मता एवं सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत किया है। उसमें मात्र तत्युगीन रेखाएं ही नहीं मिलती अपितु तत्कालीन वातावरण के सजीव अंकन की रंगीनी भी मिलती है। धर्म की बाह्य परिस्थितियों का चित्रण करने की अपेक्षा उन्होंने दार्शनिक आंतरिक गुत्थियों तथा समस्याओं को स्पष्टता प्रदान करना अधिक उचित समझा है। पात्रों का चरित्र चित्रण करते हुए परिवेशानुसार परिवर्तन एवं विकास का प्रतिपादन किया है। मानव चरित्र सत्–असत् दोनों पक्षों का पूर्ण प्रतिनिधित्व उनके नाटकों में मिलता है। नारी रूप को जैसी महानता, सूक्ष्मता, शालीनता, त्याग, बलिदान, ममता, सौहार्द, दया, माया एवं गंभीरता कवि प्रसाद ने प्रदान की है। उससे भी अधिक सक्रिय एवं तेजस्वी रूप नारी को नाटककार प्रसाद ने प्रदत्त किया है। प्रसाद ने प्रायः सभी नाटकों में किसी न किसी ऐसी नारी की अवतारणा की है जो पथ्वी के दुख पूर्ण, अंधकार पूर्ण मानवता को सुखमय उज्जवल प्रकाश की प्रदायिनी बनी है। जो पाशविकता, दनुजता और क्रूरता के मध्य क्षमा, करुणा एवं प्रेम के स्थायी रूप की प्रतिष्ठा करती है और अपने प्रभाव विचारों तथा चरित्र के दुर्जनों को सज्जन दुराचारियों को सदाचारी, नशंस अत्याचारियों को उदार लोकसेवी बना देती है।

नारी तुम केवल श्रद्धातोविश्वरजत नग पग तल में,
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के इस समतल में।
-कामायनी

प्रसाद की कामायनी की यह उक्ति प्रसाद के नाटक की दिव्य नायिकाओं को पूर्णतः चरितार्थ करती है। नाट्य शिल्प की दष्टि से प्रसाद के नाटकों में पूर्वी एवं पश्चिमी तत्वों का अपूर्व सम्मिश्रण दष्टिगोचर होता है। प्रसाद के नाटकों में एक ओर भारतीय नाट्यशास्त्रानुसार कथावस्तु, नायक, प्रतिनायक, विदूषक, शील निरूपण, रस, सत्य और न्याय विजय की परंपरा का पूर्ण सफलता से पालन हुआ है दूसरी ओर पाश्चात्य नाटकों का संघर्ष एवं व्यक्ति वैचित्र्य का निरूपण भी उनकी रचनाओं में उसी तरह हुआ है। भारतीय नाट्य परंपरा की रसात्मकता इनमें प्रचुरता से उपलब्ध है साथ–साथ पाश्चात्य नाटकों की सी कार्य व्यापार की गतिशीलता भी उनमें विद्यमान है। भारतीय नाटक सुखांत होते हैं। पाश्चात्य नाटककार दुखांत। नाटकों को श्रद्धा की दष्टि से देखते हैं। प्रसाद ने नाटकों का अंत इस ढंग से किया है कि उसे सुखांत दुखांत दोनों की संज्ञा दी जाती है क्योंकि उन्होंने सुख दुखांतक नाटकों का सजन किया है। दूसरी दष्टि से उन नाटकों को न सुखांत कहा जा सकता है न दुखांत कहा जा सकता है। वास्तव में नाटकों का अंत एक ऐसी वैराग्य भावना के साथ होता है जिसमें नायक विजयी हो जाता है किंतु वह फल का उपभोग स्वयं नहीं करता है। उसे वह प्रतिनायक को ही प्रत्यावर्तित कर देता है। इस प्रकार नाटकों के विचित्र अंत को प्रसाद के नाम पर ही प्रसादांत कहा गया है।

मंचन की दष्टि से प्रसाद के नाटकों में आलोचकों को अनेक दोष दष्टिगोचर होते हैं। कथानक विस्तत एवं विश्रंखल सा है कि उससे उनमें शैथिल्य आ गया है। उन्होंने ऐसी अनेक घटनाओं एवं दश्यों का आयोजन किया है जो मंचन की दष्टि से उपयुक्त एवं उचित नहीं। दीर्घ स्वगत कथन एवं लंबे वार्तालाप, गीतों का आधिक्य, वातावरण की गंभीरता आदि बातें उनके नाटकों की अभिनेयता में अवरोधक सिद्ध होती हैं। वास्तव में प्रसाद नाटकों में कवि एवं दार्शनिक अधिक हैं, नाटककार कम हैं। उनके नाटक विद्वानों, ऋषियों, मनीषियों के चिंतन मनन की वस्तु हैं। जन साधारण के समक्ष उनका सफल प्रदर्शन नहीं किया जा सकता है इस तथ्य को प्रसाद में स्वयं व्यक्त किया है।

प्रसाद युग के अन्य नाटककार माखन लाल चतुर्वेदी, 'कृष्णार्जुन युद्ध', पंडित गोविंद वल्लभ पंत – 'वरमाला', एवं 'राजमुकुट' आदि। पांडेय बेचन शर्मा उग्र – 'महात्मा ईसा', मुंशी प्रेम चन्द – 'कर्बला' एवं 'संग्राम' आदि उल्लेखनीय हैं। ध्यातव्य है कि विषय एवं शैली की दष्टि से इन नाटककारों में परस्पर थोड़ा बहुत अंतर अवश्य है। परिणामतः इन्हें नाटककार स्वरूप विशिष्टता विहीनता के कारण महत्व नहीं दिया जाता है।

प्रसादोत्तर नाटक- प्रसादोत्तर नाटक साहित्य को ऐतिहासिक, पौराणिक, सांस्कृतिक, सामाजिक राजनीतिक कल्पनाश्रित एवं अन्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पुनः कल्पना आश्रित नाटकों को समस्या प्रधान, भावप्रधान तथा प्रतीकात्मक नाटक तीन उप विभागों में विभक्त किया जा सकता है।

क) **ऐतिहासिक-** प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक नाटकों की परंपरा का अत्यधिक विकास हुआ है। ऐतिहासिक नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, वंदालाल वर्मा, गोविंद वल्लभ पंत, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, उदय शंकर भट्ट तथा कतिपय अन्य नाटककारों ने अपूर्व योगदान किया है।

हरिकृष्ण प्रेमी- हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में – 'रक्षाबंधन' 1934, 'शिव साधना' 1936, 'प्रतिशोध स्वप्न भंग' 1940, 'आहुति' 1940, 'उद्धार' 1940, 'शपथ', 'कानन प्राचीर प्रकाश स्तंभ' 1954, 'कीर्ति स्तंभ' 1955, 'विदा' 1958, 'संवत प्रवर्तन' 1959 'सापों की सष्टि' 1959 'आन मान' 1961 आदि नाटकों का उल्लेख किया जा सकता है। प्रेमी ने अपने नाटकों में अति प्राचीन या सुदूर पूर्व इतिहास को नाटक विषय का चयन न करके मुसलमानों के इतिहास को चयनित करके उसकें संदर्भ में आधुनिक युग की अनेक राजनीतिक, साम्प्रदायिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। उनके नाटकों ने आधुनिक भारतीय भारतीयों में राष्ट्र भक्ति, आत्मा त्याग, बलिदान, हिंदू मुस्लिम एकता आदि भावों तथा प्रवत्तियां उदीप्त की तथा प्रबलता भरी है। ऐतिहासिकता का उपयोग रोमांस के लिए नहीं किया गया है। आदर्शों की स्थापना के लिए ऐतिहासिकता का ग्रहण किया गया है। प्रेमी की रचनाएं, नाट्य कला एवं शिल्प विधान की दष्टि से दोष रहित तथा सफल प्रमाणित हुई है।

वन्दावन लाल वर्मा- वन्दावन लाल वर्मा इतिहास वेत्ता है। उनकी इतिहास विज्ञता की अभिव्यक्ति का माध्यम उपन्यास एवं नाटक दोनों हैं। उनके ऐतिहासिक नाटकों में 'झांसी की रानी' – 1948 'पूर्व की ओर' 1950 'बीरबल' 1950 'ललित विक्रम' 1953 आदि का विशेष महत्व है। इनके अतिरिक्त वर्मा ने सामाजिक नाटकों की भी सजना की। वर्मा के नाटकों में कथावस्तु एवं घटनाओं को विशेष महत्व का विषय बनाया गया है। कही कही उनकी घटना प्रधानता भी दष्टिगोचर होती है। दश्य विधान की सरलता, चरित्र –चित्रण की स्पष्टता, भाषा की उपयुक्तता, गतिशीलता एवं संवादों की संक्षिप्तता ने उनके नाटकों को मंचन की दष्टि से पूर्ण सफलता प्रदान की है।

गोविंद वल्लभ पंत- गोविंद वल्लभ पंत ने अनेक सामाजिक एवं ऐतिहासिक नाटकों की सजना की है। उनके नाट् साहित्य में 'राजमुकुट' 1935, 'अंतः पुर का छिद्र' 1940 आदि प्रमुख हैं। 'राजमुकुट' में मेवाड़ की पन्ना धाय के पुत्र का बलिदान तथ 'अंतःपुर का छिद्र' में वत्सराज उदयन के अंतःपुर की कलह का चित्रण अति प्रभावोत्पादक ढंग से किया गया है। पंत के नाटकों पर संस्कृत, अंग्रेजी एवं पारसी नाटकों की विभिन्न परंपराओं का प्रभाव दष्टिगोचर होता है। नाटकों को अभिनेय बनाने का पूरा प्रयास किया गया है।

कुछ ऐसे नाटककार हैं जिनका ऐतिहासिक क्षेत्र नहीं है उनका संबंध अन्य क्षेत्रों से है किन्तु कभी–कभी वे इतिहास को अपने नाटकों का विषय बनाकर साहित्य सजन करते हैं। ऐसे ऐतिहासिक नाटककारों में प्रमुख नाटककार एवं उनके नाटक निम्नलिखित हैं–

चंद्रगुप्त विद्यालंकार- 'अशोक' 1935, 'रेवा' 1938।

सेठ गोविंद दास - 'हर्ष' 1942, 'शशि गुप्त' 1942.

सियाराम शरण गुप्त– 'पुण्य पर्व' 1933।

उदय शंकर भट्ट- 'मुक्ति पथ' 1944, 'दाहर' 1933, 'शक विजय' 1949।

लक्ष्मी नारायण मिश्र- 'गरुणध्वज' – 1948, 'वात्सराज' 1950, 'वितस्ता की लहरों' 1953।

सत्येंद्र- 'मुक्ति यज्ञ' 1936।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद- 'गौतम नंद'।

उपेन्द्र नाथ अश्क- 'जय पराजय' 1936।

सुदर्शन- 'सिकंदर' 1947।

बैकुंठ नाथ दुग्गल-

बनारसी दास करुणा- 'सिद्धार्थ बुद्ध' 1955।

जगदीश चन्द्र माथुर– 'कोणार्क' 1951।

देवराज यशस्वी- भोज, मानव प्रताप 1952।

चतुरसेन शास्त्री- 'छत्रसाल'।

इनके अतिरिक्त कुछ लेखकों ने जीवनी परक नाटकों की भी रचना की है। जिनमें

लक्ष्मीनारायण– 'इंदु' – 1955।

सेठ गोविंद दास- 'भारतेंदु' – 1955, 'रहीम' 1955।

इन्हें भी ऐतिहासिक नाटकों में सम्मिलित किया जा सकता है।

ऐतिहासिक नाटकों की कथित सूची यह स्पष्ट कर देती है कि ऐतिहासिक नाटकों की अत्यधिक प्रगति एवं अभिवद्धि हुई है। इनमें इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय तथा संतुलित संयोग मिलता है। अधिकांश नाटकों में इतिहास की केवल घटनाओं का ही नहीं अपितु उनके सांस्कृतिक परिवेश का भी प्रस्तुतीकरण किया गया है। पात्रों का अंतर्द्वन्द्व युगीन चेतना तथा समसामयिक सत्य को उद्‌घाटित करने का प्रयास भी नाटककारों ने किया है। पूर्व नाटककारों की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें कला, शिल्प एवं शैली की दष्टि से विशेष विकास किया है। यत्र–तत्र ऐतिहासिक ज्ञान, भाव विचार तथा प्रयोगों की नूतनता पर अधिक बल दिए जाने के परिणामस्वरूप रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता कम हो गई है।

(ख) **पौराणिक**- इस कालावधि में पौराणिक नाटकों की परंपरा भी विकसित हुई। विभिन्न लेखकों ने नाटक का विषय एवं आधार पौराणिकता को बनाया तथा अनेक श्रेष्ठ नाटकों का सजन किया जिनका विवरण इस प्रकार है–

सेठ गोविंद दास- 'कर्त्तव्य' 1935, 'कर्ण' 1946।

चतुर सेन शास्त्री- 'मेघनाथ' 1939, 'राधाकृष्ण'।

रामवक्ष बेनीपुरी- 'सीता की मां'।

किशोरी दास वाजपेयी- 'सुदामा' – 1939।

गोकुल चन्द्र शर्मा- 'अभिनय रामायण'।

पथ्वी नाथ शर्मा- 'उर्मिला' 1950।

सद्‌गुरु शरण अवस्थी- 'मझली रानी'।

वीरेंन्द्र कुमार गुप्त- 'सुभद्रा परिणय'।

उदय शंकर भट्ट- 'विद्रोहिणी अम्बा' 1935, 'सागर विजय' 1937।

कैलाश नाथ भटनागर- 'भीम प्रतिज्ञा' 1934, 'श्री वत्स' 1941।

पांडेय बेचन शर्मा उग्र- 'गंगा का बेटा' –1940।

तारा मिश्र- 'देवयानी' 1944।

डॉ. लक्ष्मण स्वरूप - 'नल दमयंती' 1941।

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी- 'श्रीशुक' 1944।

सूर्य नारायण मूर्ति- 'महानाश की ओर' 1960।

प्रेमनिधि शास्त्री- 'प्रणमूर्ति' 1950।

उमाशंकर बहादुर- 'मोल' 1951।

गोविंद वल्लभ पं.– 'ययाति' 1951।

डॉ. कृष्ण दत्त भारद्वाज- 'अज्ञात वास' 1952।

मोहन लाल जिज्ञासु- 'पर्वदान' 1952।

हरिशंकर सिन्हा 'श्रीनिवास'– 'मां दुर्गे' 1953।

लक्ष्मी नारायण मिश्र- 'नारद की वीणा' 1946, 'चक्रव्यूह' 1954।

रांगेस राघव- 'स्वर्ग भूमि का यात्री' 1951।

गुंजन मुखर्जी- 'शक्ति पूजा' 1952।

जगदीश- 'प्रादुर्भाव' 1955 आदि।

विशेषताएं-

डॉ. देवर्षि सनाढ्य शास्त्री ने अपने शोध प्रबंध में पौराणिक नाटकों की विशेषताओं का विवेचन, विश्लेषण करते हुए कहा है–

(i) "इनका कथानक पौराणिक होते हुए भी उसके ब्याज से आधुनिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पौराणिक कथाओं के माध्यम से किसी ने कर्त्तव्य के आदर्श को पाठकों के समक्ष रखा है किसी ने शिक्षित पात्र के साथ सहानुभूति के दो आंसू बहाएं हैं किसी ने जाति–पांति की समस्याओं के समाधान ढूंढने का प्रयास किया है। किसी ने नारी के गौरव के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए हैं। अधिकांश नाटककारों ने इन पौराणिक नाटकों के माध्यम से वर्तमान जीवन को सांत्वना एवं आशा की ज्योति प्रदर्शित की है।"

(ii) इन नाटकों की दूसरी विशेषता यह है कि प्राचीन संस्कृत के आधार पर पौराणिक असंबद्ध एवं संगति स्थापित करने का भरसक यत्न किया है।

(iii) पौराणिक नाटक वर्तमान जीवन को संकीर्णता एवं सीमा की प्रतिबद्धता से निकालकर आधुनिक मानव समाज को व्यापकता एवं विशालता का संदेश देकर उन्हें उन्नति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए अग्रसर करते हैं।

रंग मंच एवं नाट्य शिल्प की दष्टि से इनके अनेक नाटकों में दोष दर्शन किये जा सकते हैं किंतु गोविंद बल्लभ पंत, सेठ गोविंद दास एवं लक्ष्मी नारायण मिश्र जैसे प्रौढ़ नाटककारों में दोष नहीं है। विषयवस्तु की दष्टि से ये नाटक पौराणिक होते हुए भी प्रतिवादन शैली एवं कला के विकास की दष्टि से आधुनिक तथा वे आज की सामाजिक रूचि एवं समस्याओं के प्रतिकूल नहीं हैं।

(ग) **कल्पनाश्रित-** इस युग के कल्पना पर आश्रित नाटकों को उनकी मूल प्रवत्ति के अनुसार तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) समस्याप्रधान नाटक

(ii) भावप्रधान नाटक

(iii) प्रतीकात्मक नाटक।

(i) समस्याप्रधान नाटक- समस्या प्रधान नाटकों को प्रचलन में लाने का श्रेय इब्सन, बर्नाडसा आदि पाश्चात्य नाटककारों को है। पाश्चात्य नाटक के क्षेत्र में रोमांटिक नाटकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यथार्थवादी नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें सामान्य जीवन की समस्याओं का समाधान विशुद्ध बुद्धि की दष्टि से खोजा जाता है। इनमें यौन समस्याओं को ही ग्रहण किया गया है। बाह्य द्वंद्व की अपेक्षा आंतरिक द्वंद्व को अधिक प्रदर्शित किया गया है। स्वागत–भाषण, गीत, काव्यात्मकता आदि का इनमें त्याग कर दिया गया है। विषयवस्तु की दष्टि से इन्हें भी दो उपभेदों में बांटा जा सकता है–

(क) मनोवैज्ञानिक

(ख) सामाजिक

(क) मनोवैज्ञानिक नाटक- मनोवैज्ञानिक नाटकों में मुख्य रूप से काम संबंधी समस्याओं का विश्लेषण यौन–विज्ञान तथा मनोविश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक इसी कोटि के हैं।

(ख) सामाजिक नाटक- वर्तमान युग एवं समाज की विभिन्न समस्याओं का समाधान आदर्शवादी दष्टिकोण से प्रतिपादित किया गया है। इस वर्ग के नाटककारों में सेठ गोविंद दास, उपेंद्र नाथ अश्क, वंदावन लाल शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी तथा गोविंद वल्लभ पंत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

लक्ष्मी नारायण मिश्र- लक्ष्मीनारायण मिश्र के अनेक समस्या प्रधान नाटकों में 'सन्यासी' 1931, 'राक्षस मंन्दिर' 1931, 'मुक्ति का रहस्य', 1932, 'राजयोग' 1934, 'सिंदूर की होली' 1934, 'आधी रात' 1937 आदि उन्लेखनीय नाटक हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे हैं। मिश्र के इन नाटकों में बुद्धि, यथार्थ एवं फ्रायड को प्रधानता दी गई है। इब्सन, बर्नाडसा आदि पाश्चात्य नाटककारों की तरह इन्होंने भी जीवन के प्रति विशुद्ध बौद्धिक दष्टि अपनाई है तथा पूर्ववर्ती रोमांटिक या रूमानी प्रवत्ति का विरोध किया है। इनके अधिकांश नाटकों में यौन समस्याओं एवं काम समस्याओं को ही सबसे अधिक नाटक का विषय बनाकर उसे महत्व प्रदान किया है।

सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में उपेन्द्र नाथ अश्क, वंदावन लाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, आदि का विशेष स्थान है। गोविंद दास ने ऐतिहासिक, पौराणिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं का चित्रण अपने अनेक नाटकों में किया है जिनमें 'कुलीनता' 1940 'सेवा पथ' 1940, 'दुख क्यों?' 1946 'सिद्धांत स्वातंत्र्य' 1938, 'त्याग या ग्रहण' 1943 'संतोष कहां' 1945, 'पाकिस्तान' 1946, 'महत्व किसे' 1946, 'गरीबी और अमीरी' 1946 तथा 'बड़ा पापी कौन' 1948 आदि उल्लेखनीय नाटक हैं। सेठ ने आधुनिक युग की विभिन्न सामाजिक राजनीतिक राष्ट्रीय समस्याओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'– 'अश्क' ऐसे नाटककार हैं जिनमें न तो विशुद्ध यथार्थवाद है न ही आदर्शवाद। उनके नाटक यथार्थ आदर्श के मध्य की कड़ी हैं। प्रेमचंद के सान इन्हें भी आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी कहा जा सकता। इनकी भावभूमि यथार्थ है जो आदर्श अपनाए हुए हैं। उन्होंने व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं का चित्रण जहां यथार्थ के स्तर पर किया है वहीं उनकी सुधार या क्रांतिकारी नीति उन्हें आदर्शवादी बना देती है। उनके नाटकों में प्रमुख नाटक 'स्वर्ग की झलक' 1939, 'कैद' 1945, 'उड़ान' 1949, 'छठा बेटा' 1949 तथा 'अलग अलग रास्ते' 1955 आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन्होंने अपने नाटकों में नारी शिक्षा, नारी स्वतन्त्रता, विवाह समस्या, संयुक्त परिवार आदि से संबंधित विभिन्न पक्षों पर सामाजिक दष्टिकोण से करारा व्यंग्य किया है। अनेक नाटकों में उन्होंने समाज की वर्तमान स्वार्थपरता, धनलोलुपता, कामुकता, अनैतिकता आदि का यथार्थवादी शैली में चित्रण किया है। अश्क की सर्वप्रमुख नाट्य विशेषता यह है कि वे समस्याओं और समाधानों का प्रस्तुतीकरण उपदेशात्मक प्रणाली या

अति गंभीरता से नहीं करते हैं। अपितु वे इसके लिए हास्य व्यंग्यात्मक शैली का चयन करते हैं। जिससे उनके प्रभाव में अधिक तीव्रता एव तिखाई आ जाती है। रंगमंच एवं नाट्य शैली की दष्टि से 'अश्क' अतुलनीय है।

वंदावन लाल वर्मा- वंदावन लाल वर्मा का जो स्थान ऐतिहासिक उपन्यासकारों में है वही स्थान सामाजिक नाटकों में है। इस क्षेत्र में इनको अपूर्व सफलता मिली है। इस वर्ग के इनके नाटकों में 'राखी की लाज' 1943, 'बांस की फांस' 1947, 'खिलौने की खोज' 1950, 'नीलकंठ' 1951, 'सगुन' 1951, 'विस्तार' 1956 तथा 'देखा देखी' 1956 आदि प्रमुख हैं। वर्मा ने इन नाटकों में छुआछूत, विवाह, जाति पांति, ऊंच नीच, सामाजिक विषमता तथा नेताओं की स्वार्थ परता आदि से संबंधित विभिन्न प्रवत्तियों तथा समस्याओं का चित्रांकन किया है।

गोविंद वल्लभ पंत- गोविंद वल्लभ पंत के सामाजिक नाटकों में 'अंगूर की बेटी' 1936 तथा 'सिंदूर की बिंदी' आदि प्रमुख नाटक हैं। 'अंगूर की बेटी' जैसा कि नाम से ज्ञात हो जाता है अंगूर से जन्मी अर्थात् शराब पीने की भयंकरता से अवगत कराते हुए इस व्यवसन से मुक्ति पाने की विधि पर प्रकाश डाला गया है। 'सिंदूर की बिंदी' विवाहिता नारी के सुहाग का प्रतीक हैं। परित्यक्ता का यह सौभाग्य छिन जाता है कि उसे अनेक भयंकर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास उन्हीं समस्याओं, सहानुभूतिमय ढंगों से प्रस्तुत किया गया हैं। पंत के नाटकों में सर्वत्र समाज सुधार की भावना दष्टिगोचर होती है। कथा की प्रस्तुति इस ढंग से की जाती है कि उसमें रोचकता या कलात्मकता का अभाव नहीं आने पाता।

पथ्वी नाथ शर्मा- पथ्वी नाथ शर्मा के नाटकों में 'दुविधा', 'शाप', 'अपराधी' 1939, तथा 'साध' 1944 आदि नाटकों की प्रमुखता है। जिसमें उन्मुक्त प्रेम, विवाह तथा सामाजिक न्याय से संबंधित विभिन्न प्रश्नों को प्रस्तुत किया गया है। 'दुविधा' की नायिका स्वच्छंद प्रेम एवं विवाह में से किसी एक का चयन की दुविधा से ग्रस्त दिखाई गई है। यही समस्या 'साण' में भी प्रस्तुत की गई है। इस दष्टि से पथ्वी नाथ शर्मा लक्ष्मी नारायण मिश्र के निकटस्थ हो जाते हैं। किन्तु अंतर इतना है कि इनका दष्टिकोण मिश्र की तरह अति भौतिकतावादी और अति यथार्थवादी नहीं है।

इस युग के अन्य सामाजिक नाटकों में उदयशंकर भट्ट – 'कमला' 1939, 'मुक्ति पथ' 1944 तथा 'क्रांतिकारी'।

हरिकृष्ण प्रेमी - 'छाया'

प्रेमचंद – 'प्रेम की वेदी' 1933।

चन्द्रशेखर पांडेय – 'जीत में हार' 1942।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद– 'समर्पण' 1950।

चतुरसेन शास्त्री- 'पगन्ध्वनि' 1952।

दयानाथ झा 'कर्म पथ' 1953।

जयनाथ नलिन 'अवसान'

शंभूनाथ सिंह - 'धरती और आकाश' 1954।

अभय कुमार यौधेय– 'नारी की साधना' 1954।

रघुवीर शरण मित्र- 'भारत माता' 1954।

श्री संतोष- 'मत्यु की ओर'

तुलसी भाटिया- 'मर्यादा' तथा

रामनरेश त्रिपाठी- 'पैसा परमेश्वर' आदि उल्लेखनीय हैं।

(ii) भावप्रधान नाटक- कल्पनाश्रित नाटकों का दूसरा वर्ग भाव प्रधान नाटकों का है। शैली की दष्टि से इस वर्ग को गीति नाटक नाम से भी अभिहित किया गया है। इस वर्ग के नाटकों के लिए भाव की प्रमुखता के साथ–साथ पद्य

का माध्यम भी अपेक्षित होता है। आधुनिक युग में रचित हिंदी का प्रथम गीति नाटक जय शंकर प्रसाद द्वारा रचित 'करुणालय' (सन् 1912 ई.) माना गया है। इसमें पौराणिक आधार पर राजा हरिश्चन्द्र तथा शनः शेष की बलि की कथा का वर्णन किया गया है। प्रसाद के पश्चात लंबे समय तक गीति नाटकों के क्षेत्र में कोई प्रयास तथा प्रगति नहीं हुई। परवर्ती युग में अनेक गीति नाटकों की रचना हुई। जिसमें मैथिलीशरण गुप्त – 'अनध' – 1925, हरिकृष्ण प्रेमी – 'स्वर्ण विहान', उदयशंकर भट्ट मत्सयगंधा, विश्वामित्र तथा राधा आदि, सेठ गोविंद दास स्नेह या स्वर्ग – 1946 भगवती चरण वर्मा 'तारा' आदि। भाव प्रधान नाटकों के क्षेत्र में सबसे अधिक सफल उदयशंकर भट्ट रहे हैं। उन्होंने अपने पात्रों की विभिन्न भावनाओं एवं उनके अंतर्द्वन्द्व को अत्यधिक सशक्त एवं संगीतात्मक शैली में प्रयुक्त किया है। इनमें पात्रों के वार्तालाप भी प्रायः लय और संगीत से परिपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत किए गए हैं। इसके अतिरिक्त सुमित्रानंदन पंत 'रजत शिखर' धर्म वीर भारती 'अंधा युग' आदि उल्लेखनीय हैं।

(iii) प्रतीकात्मक नाटक- प्रतीकात्मक या प्रतीकवादी नाटकों का श्रीगणेश जयशंकर प्रसाद के नाटक 'कामना' (सन् 1926 ई.) से हुआ। सुमित्रानंदन पंत – 'ज्योत्सना' 1934, भगवती प्रसाद वाजपेयी, 'छलना' 1939, सेठ गोविंददास 'नव रस', कुमार हृदय 'नक्शे का रंग' 1941, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल 'मादा कैक्टस', एवं 'सुंदर रस' 1959 आदि सुंदर प्रतीकात्मक नाटक हैं। इस वर्ग के नाटकों में विभिन्न पात्र विभिन्न विचारों या तत्वों के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

क) **सांस्कृतिक-** सांस्कृतिक चेतना से युक्त नाटकों का निर्माण इस युग में हुआ जिसमें चन्द्रगुप्त विद्यालंकार – 'अशोक' एवं 'रेवा', 'सेठ गोविंद दास' – 'शशिगुप्त', उदयशंकर भट्टा 'मुक्तिपथ', सियाराम शरण गुप्त – 'पुण्य पाप', लक्ष्मीनारायण मिश्र – 'गरुण ध्वज' तथा गोविंद वल्लभ पंत – 'अंतः पुर का छिद्र' आदि उल्लेखनीय हैं। इतिहास के आधार पर इनके कथानक का निर्माण किया गया है। लेकिन सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना सब में विद्यमान है। इनकी सांस्कृतिक पुनरुत्थान चेतना की तुलना करनें में प्रसाद से बहुत अधिक साभ्य दिखलाई पड़ता है। अंतर इतना है कि प्रसाद में भावुकता, दार्शनिकता भाषागत जटिलता थी किंतु इन नाटकों में जटिलता नहीं है।

ख) **समस्यात्मक-** पाश्चात्य नाटककारों मुख्य रूप से इब्सन एवं बर्नाडसा की यथार्थवादी चेतना से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य में नाटक लिखने वालों ने समस्यात्मक नाटक लिखने की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। फ्रायड ने मानों यह घोषणा कर दी थी कि मानव की व्यापक एवं प्रमुख समस्या काम समस्या है। किंचित इसी घोषणा से प्रभावित होकर समस्या नाटकों में यौन समस्या को मुख्य रूप से उभारा गया तथा वासना या काम भावना का प्रमुखता के साथ वर्णन किया गया। वैयक्तिक समस्याओं, उलझनों, मानसिक अंतर्द्वन्द्वों का विवेचन एवं विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। हिंदी में समस्या नाटक लिखने का श्रेय लक्ष्मी नारायण मिश्र को है। वही समस्या नाटकों के अधिष्ठाता एवं संस्थापक हैं। इस प्रकार परंपरा का श्रीगणेश उन्होंने 'सन्यासी' नामक समस्या नाटक लिखकर किया। उनके अन्य समस्य नाटक 'राक्षस का मन्दिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'राजयोग', 'सिंदूर की होली', तथा 'आधी रात' आदि प्रमुख हैं। इन नाटकों में बौद्धिकता एवं यथार्थवाद का आधिक्य है। प्रेम विवाह एवं काम समस्याओं का चित्रण निडरता से किया गया है। भावुकतावादी रोमांस के मिश्र विरोधी हैं। मिश्र के प्रयासों से नाटक विश्व में नवीनता का समावेश एवं व्यापक प्रयोग किया है।

ग) **सामाजिक एवं राजनीतिक-** इस युग में सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को अनेक नाटकों में आधार स्वरूप ग्रहण किया गया है। इस दष्टि से सेठ गोविंददास, उपेंद्रनाथ अश्क, वंदावन लाल वर्मा आदि का योगदान महत्वपूर्ण है। गोविंददास के नाटकों में सिद्धांत स्वातंत्र्य, 'सेवा पथ', 'महत्व किसे', 'संतोष कहां' तथा 'गरीबी और अमीरी' आदि में सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का चित्रण किया गया है। उपेन्द्रनाथ अश्क के नाटकों में 'स्वर्ग की झलक' 'कैद', 'उड़ान', 'छठा बेटा' आदि उल्लेखनीय हैं। 'स्वर्ग की झलक' में नारी–शिक्षा की समस्या को व्यंग्य के माध्यम से उभारा गया है। 'छठा बेटा' स्वप्न नाटक है जिसके द्वारा यह प्रदर्शित करने का यत्न किया गया है कि मानव अपनी जिन इच्छाओं की पूर्ति जागतावस्था में पूर्ण नहीं कर पाता स्वप्न अर्थात् अर्द्ध निंद्रा में उन कामनाओं की पूर्ति की प्रबल कामना करता है। अश्क के नाटकों में नारी शिक्षा, नारी स्वातंत्र्य, वैवाहिक समस्या तथा संयुक्त परिवार सें संबद्ध अनेक सामाजिक समस्याओं का प्रस्तुतीकरण करके मानव को उनसे मुक्ति प्राप्त करने हेतु चिंतन के लिए बाध्य कर दिया गया है। मंचन की दष्टि से अश्क के नाटक सफल हैं।

सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को आधार रूप में ग्रहण करके कुछ नाटकों की भी रचना हुई है। जिनमें वंदावन लाल शर्मा कृत 'धीरे–धीरे', 'राखी लाज', एवं 'बांस की फांस'। गोविंद वल्लभ पंत कृत 'अंगूर की बेटी', 'सिंदूर की बिंदी', पथ्वी नाथ शर्मा कृत 'अपराधी एवं साधु' तथा उदय शंकर भट्ट कृत 'कमला' एवं 'क्रांतिकारी' आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में भिन्न भिन्न परिवेशों एवं समस्याओं का सफल चित्रांकन हुआ है।

इनके अतिरिक्त इस युग में नीति नाटक, एवं एकांकी नाटक भी लिखे गए हैं। सिने नाटक भी लिखे जाने लगे। डॉ. राम कुमार वर्मा – 'स्वप्न चित्र' तथा भगवती चरण वर्मा – 'वासवदत्त' का चित्रलेख प्रमुख है।

घ) **स्वतंत्र्योत्तर**- स्वतंत्रता के पश्चात् नाटक लेखन की गति में त्वरा आई। हिंदी नाटक साहित्य को समद्ध करने वाले नाटककारों में – नरेश मेहता – 'सुबह के घंटे', लक्ष्मीकांत वर्मा – 'खाली कुर्सी की आत्मा', शिव प्रसाद सिंह, 'घंटियां गूंजती हैं', मन्नू भंडारी – 'बिना दीवारों का घर', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना – 'बकरी', 'मुद्राराक्षस', 'तिलचट्टा', शंकर घोष – 'एक और द्रोणाचार्य', भीष्म साहनी – 'हानूश' एवं 'कविरा खड़ा बाजार में', विमला रैना – 'तीन युग', सर्वदानंद – 'भूमिजा', श्रीमती कुसुम कुमार – 'दिल्ली ऊंचा सुनती है', सुरेन्द्र वर्मा – 'सूर्य की अंतिम किरण' से 'सूर्य की पहली किरण' तक, मणि मधुकर – 'रस गंधर्व', सुशील कुमार सिंह, 'सिंहासन खाली है', ज्ञान देव अग्निहोत्री– 'शुतुरमुर्ग', गिरिराज किशोर– 'प्रजा ही रहने दो', हमीदुल्ला – 'समय संदर्भ', तथा प्रभात कुमार भट्टाचार्य 'काठ महल' आदि विशेष उल्लेखनीय नाटक हैं

'नुक्कड़ नाटक' आधुनिक काल की देन हैं। टेलीविजन सीरियलों (धारावाहिकों) तथा टेलीविजन नाटक युग की मांग है। जिससे नाटक का बहु आयामी विकास हो रहा है। आज हिंदी नाटकों का विकास नई दिशाओं एवं विभिन्न रूपों में होना हिंदी नाटक साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

27. निबंध : उद्‌भव एवं विकास

साहित्य की प्रमुख दो विधाएँ 'गद्य–पद्य' हैं। गद्य आधुनिक काल की प्रमुख देन है। गद्य की अनेक विधाओं में निबंध विशेष विधा है। मुद्रण कला के विकास ने पत्र–पत्रिकाओं के प्रचार–प्रसार को अत्यधिक बढ़ा दिया जिसके परिणामस्वरूप निबंध की लोकप्रियता एवं वैविध्य में वद्धि होती गई। उन्नीसवीं सदी के छठे दशक में भारतेंदु युग में निबंध का श्रीगणेश हुआ। भारतेंदु एवं उनके सहयोगी साहित्यकारों ने विचाराभिव्यक्ति हेतु गद्य का माध्यम अपनाया। आधुनिक काल से पूर्व अभिव्यक्ति का माध्यम गद्य न होकर पद्य था। पद्य में अवधी एवं ब्रजभाषा का उपयोग होता था। गद्य में बहुत समय तक ब्रजभाषा का प्रयोग होता था। खड़ी बोली अभिव्यक्ति का माध्यम उन्नीसवीं सदी में बनी जिसका श्रेय भारतेंदु युग के साहित्यकारों विशेषकर भारतेंदु को है जिन्होंने साहित्य में खड़ी बोली भाषा के प्रयोग पर विशेष बल दिया। खड़ी बोली का परिमार्जन एवं परिष्कार द्विवेदी युग में हुआ। गद्य के विकास में निबंध का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का प्रकाशन एवं संपादन करके निबंध के विकास में उल्लेखनीय योगदान किया है। निबंध का चरम विकास कर पराकाष्ठा पर प्रतिष्ठापित करने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। शुक्ल का व्यक्तित्व हिंदी निबंधों के विकास में केन्द्र बिंदु है जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें मील का पत्थर मानते हुए तत्कालीन काल का नामकरण 'शुक्ल युग' किया गया। शुक्ल से पूर्व ही निबंध का उद्‌भव हो चुका था। शुक्ल के बाद हिंदी निबंधों का चहुमुखी विकास हुआ।

निबंध शब्द : अर्थ एवं परिभाषा

निबंध शब्द सं. नि ✓ बंध् (बांधना) + घञ् से व्युत्पन्न है। 'नि' उपसर्ग एवं 'घञ' प्रत्यय है। बंध् धातु बांधने के अर्थ में है। निबंध शब्द का अर्थ किसी चीज को किसी के साथ जोड़ने, बाँधने या लगाने की क्रिया या भाव है। अच्छी तरह गठा या बंधा हुआ पदार्थ या भाव। ग्रंथ, लेख आदि लिखने का भाव या क्रिया। **निबंध** आज कल साहित्यिक क्षेत्र में वह विचार पूर्ण विवरणात्मक एवं विस्तत लेख, जिसमें किसी विषय के सभी अंगों का मौलिक एवं स्वतन्त्र रूप से विवेचन किया गया हो। निबंध का अंग्रेजी पर्याय 'एस्से' है। निबंध का पूर्व रूप संदर्भ, रचना, प्रस्ताव, लेख है। तथा पर एवं विकसित रूप प्रबंध, लघु प्रबंध एवं शोध प्रबंध है। जिस प्रकार वाक्य का विस्तत रूप प्रोक्ति है उसी प्रकार निबंध का विस्तत एवं व्यापक रूप प्रबंध है जिसमें व्यवस्थित क्रमानुसार ठीक से परस्पर एक दूसरे से बंधे हुए अनेक निबंध होते हैं।

विचारों के बिखराव को रोकना या व्यवस्थितरूप से बांधकर विशिष्टरूप देना निबंध कहलाता है। निबंध में उस व्यवस्था पर विशेष बल दिया गया है जहाँ विचार व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत हो जाता है।

जानसन ने निबंध में नियमबद्धता को अस्वीकारा है उनके अनुसार मुक्त मन की मौज, अनियमित और अपरिपक्व रचना निबंध है। गुलाब राय के अनुसार निबंध गद्य की वह रचना है जिसमें एक सीमित आकार के अंदर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन विशेष वैयक्तिकता, स्वच्छंदता, सौष्ठव, सजीवता, आवश्यक संगीत एवं संबद्धता के साथ किया गया हो।

भारतवर्ष में प्राचीन साहित्यकार ऐसी व्याख्या को निबंध कहते थे जिसमें सब प्रकार के मतों का उल्लेख और गुणदोष आदि की आलोचना या विवेचन होता था।

आजकल पाश्चात्य साहित्य शास्त्रानुसार उसकी व्याख्या और स्वरूप का परिमार्जन हो जाने से परिभाषा भी बदल गई है।

गद्यात्मक रचना निबंध है जिसमें निबंधकार अपने भावों एवं विचारों को आत्मपरकरूप से व्यक्त करने हेतु सजीव, लालित्यपूर्ण तथा मर्यादित–साहित्यिक भाषा शैली का प्रयोग करता है।

आधुनिक निबंध के जन्मदाता मौनतेय हैं। उनका कथन है, निबंध, विचारों, उद्धरणों और कथाओं का मिश्रण है।" जॉनसन के मतानुसार, "निबंध मन का आकस्मिक और उच्छंखल आवेग – असंबद्ध और चिंतनहीन बुद्धि – विलास मात्र है।"

केवल नामक पाश्चात्य विद्वान ने हास्य–विनोदमय निबंध की व्याख्या की है।" निबंध लेखन कला का बहुत प्रिय साधन है जिस लेखन में न प्रतिभा है और न ज्ञान वद्धि की जिज्ञासा, वही निबंध लेखन में प्रवत्त होता है तथा हल्की रचनाओं में आनंद लेने वाला पाठक ही उसे पढ़ता है।"

निबंध विचार–प्रकाशन का गंभीर साधन है। व्यापक अर्थ में, राजनीतिक, सामाजिक, अर्थशास्त्रीय एवं वैज्ञानिक बिषयों के प्रतिपादक लेख को भी निबंध कहते हैं। निबंध की विशेषताओं में विषय नहीं बल्कि आत्मा, आकार, लघुता, मन के स्वाधीन विचरण एवं चिंतन पर आधारित होना, शैली–संक्षिप्त, रोचक एवं व्यंग्य प्रधान होना आदि है।

निबंध की विषय वस्तु के आधार पर निबंध के वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक तथा भावात्मक आदि अनेक भेद हैं।

उद्‌भव एवं विकास

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में हिंदी निबंध का आविर्भाव हुआ। इससे पूर्व गद्य का विकास नहीं हुआ था। निबंधों के प्रचार–प्रसार के साधनों – मुद्रण–यंत्र, पत्र–पत्रिकाओं का प्रचलन आधुनिक युग में हुआ है। भारतेंदु युगीन 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका, ब्राह्मण, सार सुधा निधि, प्रदीप आदि के प्रकाशन ने निबंध के विकास में अत्यधिक योगदान किया। प्रो. जय नाथ नलिन ने भारतेन्दु युग से आज तक के निबंध साहित्य के विकास काल को (1) भारतेंदु युग (2) द्विवेदी युग (3) प्रसाद युग तथा (4) शुक्लोत्तर युग चार युगों में बांटा है।

प्रसाद ने निबंध अवश्य लिखे हैं किंतु निबंध विधा में उनका इतना महत्व नहीं है कि उनके नाम पर युग का नामकरण किया जाए। 'नलिन' ने निबंध का चरमोत्कर्ष करनेवाले तथा निबंध की पराकाष्ठा तक उसे पहुंचाने वाले शुक्ल की उपेक्षा की है। शुक्ल युग, विभाग या युग न बनाकर शुक्लोत्तर युग का नामकरण किया है जो वैज्ञानिक एवं उचित प्रतीत नहीं होता है। निबंध काल को (1) भारतुंदु युग (2) द्विवेदी युग (3) प्रसाद युग (4) शुक्ल युग तथा (5) शुक्लोत्तर युग नामकरण करके निबंध के विकास का विवेचन औचित्य पूर्ण होगा।

1. भारतेन्दु युग

भारतेंदु युग (संवत् 1930 से 1960 वि.) के प्रमुख निबंधकारों में भारतेंदु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त तथा राधाचरण गोस्वामी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु मात्र निबंधकार ही नहीं अपितु साहित्यकार के विराट् रूप थे उन्होंने कविता, काव्य, नाटक, निबंध एवं आलोचना आदि अनेक विधाओं पर सफल लेखनी उठाई है। सभी रूपों का विकास ही नहीं किया अपितु उनमें उन विशेषताओं एवं प्रवत्तियों का समन्वय भी किया जो युगीन संभावना थी। कविता एवं नाटक की तरह उनके नाटकों का क्षेत्र अति व्यापक था। इतिहास, धर्म, राजनीति, समाज, आलोचना, खोज, यात्रा, आत्म चरित, प्रकृति वर्णन तथा व्यंग्य विनोद आदि सभी विषयों को निबंध में स्थान दिया। उनके प्रमुख निबंध, उदयपुरोदय, काश्मीर कुसुम, बादशाह दर्पण तथा काल चक्र आदि हैं। निबंधों में साहित्य–मनीषी की सूक्ष्म दष्टि से अवगत हो जाते हैं। अन्य निबंध वैद्यनाथ धाम, हरिद्वार, तथा सरयूपार की यात्रा आदि में भारतीय संस्कृति एवं भारतभूमि के प्रति अगाध प्रेम दष्टिगोचर होता है। प्रकृति सौंदर्य का वर्णन द्रष्टव्य है –

"ठंडी हवा मन की कला खिलाती हुई बहने लगी। दूर से घानी और स्याही रंग के पर्वतों पर सुनहरापन आ चला। कहीं आधे पर्वत बादलों से घिरे हुए, कहीं एक साथ वाष्प निकलने से उनकी चोटियां छिपी हुई और चारों ओर से उन पर जलधारा पात से बुक्के ही होली खेलते हुए बड़े ही सुहावने मालूम पड़ते थे।"

यात्रा संबंधी निबंधों में यात्रा के कष्टों का अनुभव करते हुए भारतीय जनता के प्रति सहानुभूमि की अभिव्यक्ति पर्वतीय प्रवाहिनी के समान बीच–बीच में पत्थरों एवं वन प्रांत की झाड़ियों से निकलकर शीतलता प्रदान करने लगती है।

"गाड़ी भी ऐसी टूटी–फूटी जैसे हिन्दुओं की किस्मत और हिम्मत। अब तपस्या करके गोरी–गोरी कोख में जन्म लें तब ही संसार में सुख मिले।"

भारतेंदु के अन्य निबंधों में सामयिक, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर तीखा व्यंग्य किया गया है ऐसे निबंधों में लेवी प्राण लेवी, ज्ञाति विवेकिनी सभा, स्वर्ग में विचार सभा अधिवेशन, अंग्रेज स्रोत, पांचवें पैगंबर तथा कंकड़ स्रोत आदि प्रमुख हैं।

कंकड़ स्रोत की कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं। कंकड़ को प्रणाम है। देव नहीं महादेव, क्योंकि काशी के कंकड़ शिव शंकर के समान हैं ..... आप अंग्रेजी राज्य में भी गणेश चतुर्थी की रात को स्वच्छंद रूप से नगर में भड़ाभड़ लोगों के सिर पर पड़कर रुधिर धारा से नियम और शांति का अस्तित्व बहा देते हो। अतएव हे अंग्रेजी राज्य में नवाबी संस्थापक! तुमको नमस्कार है।"

यहां हिंदुओं की मूर्तिपूजा, बहुदेवोपासना तथा अंग्रेजी राज्य की शांति व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया गया है।

भारतेंदु के निबंधों में विषयानुसार भाषा शैलियों का वैविध्य दष्टिगोचर होता है। उनकी भाषा में मार्मिक अभिव्यंजना, वाम्वैदम्ध्य, सजीव अनेकरूपता, आकर्षक स्वच्छता एवं सरलता विद्यमान है जिसमें कहीं स्वाभाविक अलंकार योजना है, कहीं संगोष्ठी वार्तालाप का स्वरूप विद्यमान है। उनके आलोचनात्मक निबंधों में नाटक एवं वैष्णवता और भारतवर्ष प्रमुख हैं जिसमें भाषा अत्यंत प्रौढ़ एवं प्रांजल है। किन्तु उसमें दुरूहता, दुर्बोधता, कृत्रिमता एवं समासात्मकता नहीं दिखलाई पड़ती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि विषय एवं भाषा शैली दोनों दष्टियों से भारतेंदु के निबंधों का अत्यधिक महत्त्व है।

बालकृष्ण भट्ट

भारतेंदु युगीन नाटककारों में बालकृष्ण भट्ट श्रेष्ठ हैं। भट्ट हिंदी प्रदीप के संपादक थे। उन्होंने विवरणात्मक, वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा भावात्मक आदि सभी प्रकार के निबंध लिखे हैं। कुछ ऐसे निबंध भी लिखे जिनके शीर्षकों से विषय वस्तु का संज्ञान हो जाता है। ऐसे निबंधों में – मेला–ठेला, वकील, सहानुभूति, आशा, खटका, रोटी तो किसी भांति कमाय खाय मुछंदर। इंगलिश पढ़े तो बाबू होय, आत्म निर्भरता, शब्द की आकर्षण शक्ति तथा माधुर्य आदि प्रमुख हैं। भट्ट के निबंधों में वैचारिक मौलिकता, विषय वैविध्य, तथा शैली का आकर्षण आदि सभी गुण विद्यमान हैं।

प्रताप नारायण मिश्र

प्रताप नारायण मिश्र 'ब्राह्मण' के संपादक थे। इन्होंने विभिन्न विषयों को निबंध का विषय बनाया। कभी उन्होंने शारीरिक अंगों – भौं, दांत, पेट, मूंछ, नाक आदि को अपने निबंधों का विषय बनाया एवं उन पर सफलतापूर्वक निबंध लिखे। कभी उन्होंने प्रताप चरित, वद्ध, दान, जुआ तथा अपव्यय जैसे विषयों पर निबंध लिखे। उनके अन्य निबंध ईश्वर की मूर्ति, नास्तिक, शिवमूर्ति, सोने का डंडा, तथा मनोवेग आदि प्रमुख हैं। समझदार की मौत है, धूरे क लत्ता बिनै, कनातन क डोरी, होली है होरी है, होरी है जैसी उक्तियों को आधार बनाकर निबंध रचना की। मिश्र के निबंधों में मुहावरों का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। कहीं–कहीं तो वे एक वाक्य में ही मुहावरों की झड़ी लगा देते हैं। मुहावरेदार भाषा मात्र बात पर आधारित मुहावरों की झड़ी अवलोकनीय है–

"डाकखाने अथवा तारघर के सहारे से बात की बात में चाहे जहां की बात हो, जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ–आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात जमती है, बात उखड़ती है। बात खुलती है, बात छिपती है, बात चलती है, बात उड़ती है।"

हिंदी निबंधकार के निबंध में उद्धत उद्धरण इनकी निबंध संबंधी विशेषताओं पर पूर्ण प्रकाश डालता है –

"भाषा में स्खलन, शैली में घरूपन, और ग्रामीणता, चंचलता और उछलकूद मिश्र जी की विशेषता है। भाषा संबंधी दोष जहां तहां लापरवाही से बिखरे पड़े हैं। कहीं–कहीं वाक्य का विलक्षण और दुर्बोधरूप भी मिलता है। उर्दू के एक–दो शब्द भी परदेशी की तरह डरे–डरे से दीख पड़ते हैं। तेग अदा, कमाने, अव, निहायत, आदि भौं में मिल जाएंगी। पर केवल इन्हीं तक में दूसरे में कुछ नहीं, 'फिर क्यों इनकी निंदा की जाए?' का अर्थ टेढ़ी खीर है। विराम चिन्ह तब प्रयुक्त ही अधिक नहीं होते थे। इन्होंने उनका जैसे बहिष्कार ही कर रखा हो। इनके अभाव में वाक्य कभी कभी इतना लंबा हो जाता है कि समझने में उसे बार–बार पढ़ना पड़ता है।"

बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन'

बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' भारतेंदु के मित्र थे। इन्होंने आनंद कादंबिनी (मासिक) तथा नागरी नीदर (साप्ताहिक) दो पत्रों का संपादन किया जिनमें उनके अनेक निबंधों का प्रकाशन हुआ। इनमें प्रकाशित निबंधों में हिंदी भाषा का विकास, परिपूर्ण

प्रवास, तथा उत्साह–आलंबन आदि प्रमुख हैं। प्रेमधन की भाषा आलंकारिक, कृत्रिम तथा चमत्कारी है जिसमें इन्होंने अधिक–से–अधिक चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास किया है। प्रेमधन की भाषा सदैव दलदल में फंसी रही है।

बालमुकुंद गुप्त

बाल मुकुंद गुप्त भारतेंदु युग एवं द्विवेदी युग को जोड़ने वाली कड़ी हैं। इन्होंने बंगवासी तथा भारत मित्र का संपादन किया। गुप्त जी के अनेक निबंध इन पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। उनके निबंधों में पर्राष्ट्रीय शासकों की नीति एवं अत्याचार पर मीठा, चुभता हुआ व्यंग्य किया गया है। शिव शंभु के उपनाम से उन्होंने अनेक निबंध लिखे। जिसमें शिव शंभू का चिट्ठा को अत्यधिक ख्याति मिली। इसमें लार्ड कर्जन को संबोधित करते हुए भारतवासियों की राजनीतिक विवशता को चित्रित किया गया हैं कहीं–कहीं उनके व्यंग्य में अति तीखापन आ गया है। होली के अवसर लिखे गए चिट्ठे में उन्होंने लिखा है –

"कृष्ण हैं उद्धव हैं, पर ब्रजवासी उनके निकट भी नहीं फटक पाते। सूर्य है, धूप नहीं। चन्द्र है, चांदनी नहीं। माई लार्ड नगर में ही हैं पर शिव शंभू उनके द्वार तक नहीं फटक सकता है। उनके घर चल होली खेलना तो विचार ही दूसरा है। माई लार्ड के घर तक बात की हवा तक नहीं पहुंच सकती। ..... माई लॉर्ड के मुख चंद्र के उदय के लिए कोई समय भी नियत नहीं है।"

राधाचरण गोस्वामी

राधा चरण गोस्वामी के निबंध व्यंग्य से ओत–प्रोत हैं। उन्होंने तत्युगीन समाज की कुरीतियों एवं बुराईयों पर तीखा व्यंग्य किया है। राधा चरण गोस्वामी धार्मिक अंध विश्वासों पर चोट करते हैं तो उनका व्यंग्य कबीर के दोहों से अधिक प्रभावोत्पादक हो जाता है। कबीर के व्यंग्यों में कटुता एवं तीखापन है जिसके गले से उतरते ही लकीर सी खिंच जाती है। जबकि गोस्वामी के व्यंग्य शहद में डूबे या होमियोपैथिक औषधि हैं तथा हंसी लिपटे एवं कल्पना से रंगीन हैं। यमपुर की यात्रा लेख में वैतरणी पार करते करते समय लेखक को वहां प्रधान ने रोक लिया, पूछा क्या तुमने गोदान किया है? तब लेखन उत्तर देता है – "साहब प्रथम प्रश्न तो सुन लीजिए, गोदान का कारण क्या? यदि गौ की पूंछ पकड़कर पार उतर जाते हैं, तो क्या बैल से नहीं उतर सकते? जब बैल से उतर सकते हैं, तो कुत्ते ने क्या चोरी की है?" लेखक ने किसी साहब को कुत्ता दान में दिया था। इसी से वह "वैतरणी पार" का पासपोर्ट बनवा लेना अपना अधिकार समझता है।"

भारतेंदुयुगीन सभी निबंधकारों में व्यष्टि–समष्टि का समन्वय विद्यमान है। निबंधों के विषय क्षेत्र में वैविध्यता एवं व्यापकता है। हास्य व्यंग्य सोद्देश्य है जो कि सामाजिक या राजनीतिक व्यवस्था पर प्रहार करना है। जटिल–से–जटिल विषयों को इस युग के निबंधकारों ने सरल सुबोध एवं मनोहारी शैली में प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा शैली में भाषिक एवं व्याकरणिक शुद्धता भले ही न हो किंतु सहृदय को गुदगुदाने, उसके मस्तिष्क को झंकृत करने तथा उसकी आत्मा को स्पर्श करने में उसे पूर्ण सफलता मिली है। उनके निबंधों में शुष्कता एवं वैज्ञानिकता नहीं है। साहित्यिक आदर्श कोटि के निबंध हैं जिनसे विचारों के साथ–साथ भावनाओं का भी उदवेलन होता है जिनसे केवल ज्ञान की ही वद्धि नहीं होती अपितु रसानुभूमि की प्राप्ति भी होती है।

2. द्विवेदी युग

द्विवेदी युगीन लेखकों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्र बंधु, डॉ. श्याम सुंदरदास, डॉ. पद्म सिंह शर्मा, अध्यापक पूर्ण सिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बनारसी दास चतुर्वेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् 1903 ई. से द्विवेदी युग का प्रारंभ हो गया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

द्विवेदी ने सरस्वती के संपादन द्वारा हिंदी भाषा एवं साहित्य को प्रौढ़ता प्रदान की। उन्होंने स्वयं निबंध लिखकर उच्चकोटि के निबंधों का आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने अंग्रेजी के निबंधकार बेकन के निबंधों का अनुवाद भी बेकन विचार रत्नावली के नाम से प्रस्तुत किया जिससे हिंदी के अन्य लेखकों को प्रेरणा मिली। सरस्वती के संपादन का कार्य भार संभालते ही द्विवेदी ने सर्वप्रथम तत्कालीन लेखकों की भाषा को संस्कारित एवं परिमार्जित किया। व्याकरणिक सुधार तथा विराम चिन्हों के प्रयोग पर बल दिया। वे भाषा के गठन एवं स्वरूप को समझाने का यत्न करते थे। हिन्दी को अन्य भाषा के शब्दों के प्रयोग से अलग न रखा जाए यह उनकी भाषाई नीति थी। जानबूझकर संस्कृत के तत्सम शब्दों का आधिक्य या बहिष्कार न किया जाए। उनकी इस भाषा नीति से प्रायः सभी निबंधकार प्रभावित हुए। उनके निबंधों में कवि और कविता, प्रतिमा, कविता, साहित्य की महत्ता,

क्रोध तथा लोभ आदि नवीन विचारों से ओत–प्रोत हैं। भारतेन्दु युगीन निबंधों जैसी वैयक्तिकता का प्रदर्शन, रोचकता, सजीवता एवं सहज उच्छंखलता का द्विवेदी के निबंधों में अभाव है। इनके निबंधों में भाषा की शुद्धता, सार्थकता, एकरूपता, शब्द प्रयोग पटुता, आदि गुण विद्यमान हैं। किंतु पर्यवेक्षण की सूक्ष्मता, विश्लेषण की गंभीरता, चिंतन की प्रबलता इसमें बहुत कम है। इनक निबंधों की शैली व्यास है जिसके कारण पर्याप्त सरलता है तथा हास्य व्यंग्य एवं भावुकता का पूर्ण अवसर है। कवि और कविता लेख में उनकी शैली का रूप द्रष्टव्य है –

"छायावादियों की रचना तो कभी–कभी समझ में नहीं आती। वे बहुधा बड़े ही विलक्षण छंदों का या वत्तों का भी प्रयोग करते हैं। कोई चौपदें लिखते हैं, कोई छः पदें, कोई ग्यारह पदें तो कोई तेरह पदें। किसी की चार सतरें गज–गज लंबी तो दो सतरें दो ही अंगुल की। फिर ये लोग बेतुकी पद्यावली भी लिखने की बहुधा कृपा करते हैं। इस दशा में इनकी रचना एक अजीब गोरखधंधा हो जाती है। न ये शास्त्र की आज्ञा के कायल, न ये पूर्ववर्ती कवियों की प्रणाली के अनुवर्ती न सत्य समालोचकों के परामर्श की परवाह करने वाले इनका मूलमंत्र है – 'हम चुनी दीगरे नेस्त'।"

विषयानुसार उनकी शैली में गंभीरता भी दिखलाई देती है। 'मेघदूत' निबंध की कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं –

"कविता कामिनी के कमनीय नगर में कालिदास का मेघदूत एक ऐसे भव्य भवन के सदश्य है, जिसमें पद्यरूपी अनमोल रत्न जुड़े हुए हैं – ऐसे रत्न जिनका मोल ताजमहल में लगे हुए रत्नों से भी कहीं अधिक है।" वास्तव में द्विवेदी के प्रमुख संग्रह रसज्ञ रंजन में सचमुच रसज्ञ पाठकों के रंजन की अपूर्व क्षमता विद्यमान है।

द्विवेदी युग के अन्य निबंधकारों में माधव प्रसाद मिश्र गोविंद नारायण मिश्र, श्याम सुंदर दास, पद्‌म सिंह शर्मा, अध्यापक पूर्ण सिंह, एवं चंद्रधर शर्मा गुलेरी आदि के नाम प्रमुख हैं।

माधव प्रसाद मिश्र

विषय वस्तु की दष्टि से इन्होंने द्विवेदी का अनुसरण करते हुए विचारात्मक निबंधों की रचना की है। किंतु इनमें कहीं–कहीं शैली की विशिष्टता दिखलाई पड़ती है। माधव प्रसाद मिश्र ने धति सत्य जैसे विषयों पर निबंध लिखकर गंभीर शैली में प्रकाश डाला है।

गोविंद नारायण मिश्र

गोविंद नारायण मिश्र की शैली में अलंकारों की प्रधानता है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली के प्रयोगाधिक्य के कारण उनके निबंधों में जटिलता आ गई है। साहित्य को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है –

"मुक्ताहारी नीर–क्षीर–विचार सुचतुर – कवि – कोविद – राज – हिम – सिंहासनासिनी मंदहासिनी, त्रिलोक प्रकाशनी सरस्वती माता के अति दुलारे, प्राणों से प्यारे पुत्रों की अनुपम, अनोखी, अतुलवाली, परम प्रभावशाली सजन मनमोहिनी नवरस भरी सरस सुखद – विचित्र वचन रचना का नाम ही साहित्य है।" इस परिभाषा को पढ़ने से साहित्य से अवगत होना तो दूर रहा स्वयं यह परिभाषा ही गले से नीचे नहीं उतरती है।

बाबू श्याम सुंदर दास

श्याम सुंदर दास उच्च कोटि के आलोचक तथा सफल निबंधकार भी थे। इनके निबंध आलोचनात्मक गंभीर विषयों पर लिखे गए हैं जैसे 'भारतीय साहित्य की विशेषताएं', समाज और साहित्य, हमारे साहित्योदय की प्राचीन कथा तथा कर्तव्य और सभ्यता आदि। उनके निबंधों में विचारों का संग्रह तथा समन्वय ही मिलता है। आत्मानुभूतियों का प्रकाशन या जटिलता का दर्शन उनमें नहीं होता है। उनकी शैली प्रौढ़ होते हुए भी सरल है। उनके निबंधों में जटिलता कहीं दिखलाई नहीं पड़ती है। द्विवेदी जैसी सुबोधता भी उनमें नहीं है।

पद्‌म सिंह शर्मा

समालोचना के जन्मदाता पद्‌मसिंह बाबू श्याम सुंदर दास के समकालीन थे। शर्मा जी के निबंधों के दो संग्रह – पदमराग एवं प्रबंध मंजरी प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने निबंधों में महापुरुषों के जीवन का चित्रण, समकालीन व्यक्तियों के संस्मरण या उनको श्रद्धांजलि, साहित्य समीक्षा आदि विषयों को अपनाया है। उनकी शैली में वैयक्तिकता, भाषात्मकता एवं सरलता की प्रधानता थी। गणपति शर्मा को दी गई श्रद्धांजलि की कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं –

"हा। पंडित गणपति शर्मा जी हमको व्याकुल छोड़ गए। हाय हाय! क्या हो गया। यह बज्रपात, यह विपत्ति का पहाड़ अचानक कैसे टूट पड़ा? यह किसकी वियोगाग्नि से हृदय छिन्न–भिन्न हो गया। यह किसके वियोग बाण ने कलेजे को बींध दिया यह किसके शोकानल की ज्वालाएं प्राण–पखेरू के पंख जलाए डालती हैं। हा। निर्दय काल–यवन के एक ही निष्ठुर प्रहार ने किस अन्य मूर्ति को तोड़कर हृदय मन्दिर सूना कर दिया।"

अध्यापक पूर्ण सिंह

अध्यापक पूर्ण सिंह अपनी शैली की विशिष्टता के लिए निबंधकारों में ख्याति प्राप्ति निबंधकार हैं। इनके निबंधों में स्वाधीन चिंतन, निर्भय विचार प्रकाशन तथा प्रगतिशीलता के दर्शन होते हैं शैली में अनूठी लाक्षणिकता, एवं चुभता व्यंग्य मिलता है।

"बादल गरज–गरजकर ऐसे ही चले जाते हैं, परंतु बरसने वाले बादल जरा सी देर में बारह इंच तक बरस जाते हैं।" या "पुस्तकों या अखबारों के पढ़ने से या विद्वानों के व्याख्यानों को सुनने से तो बस ड्राइंग रूप के वीर पैदा होते हैं।"

"आजकल भारत वर्ष में परोपकार का बुखार फैल रहा है।"

"पुस्तकों के लिखे नुस्खों से तो और भी बदहजमी हो जाती है।" जैसे वाक्यों से अध्यापक पूर्ण सिंह की निबंध शैली की रोचकता का नमूना मिल जाता है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

गुलेरी ने कहानियों की तरह निबंध भी कम लिखे हैं किन्तु गुणवत्ता की दष्टि से उनका बहुत अधिक महत्व है। उनके निबंधों में गंभीरता, एवं प्रगतिशीलता का सुंदर समन्वय दिखलाई पड़ता है। उनकी शैली में सरलता, रोचकता, व्यंग्यात्मकता तथा सरसता का गुण अत्यधिक परिमाण में उपलब्ध होता है। उनका प्रमुख निबंध कछुआ धर्म है जिसकी कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं –

"पुराने–से–पुराने आर्यों की अपने भाई असुरों से अनबन हुई। असुर असुरिया में रहना चाहते थे, आर्य सप्त सिंधु को आर्याव्रत बनाना चाहते थे। आगे ये चल दिए, पीछे वे दबाते गए..... पर ईशान के अंगूरों और गुलों का मुंजवत् पहाड़ की सोमलता का चस्का पड़ा हुआ था, लेने जाते तो वे पुराने गंधर्व मारने दौड़ते हैं। हां, उनमें से कोई–कोई उस समय का चिलकौआ नकद नारायण लेकर बदले में सोमलता बेचने को राजी हो जाता था। उस समय का सिक्का गौएं थीं। .... मोल ठहराने में बड़ी हुज्जत होती थी। जैसी कि तरकारियों का भाव करने में कुंजड़ियों से हुआ करती है। ये कहते कि गौ भी एक कला में सोम बेच दो। वह कहता, वाह। सोम राजा का दाम इससे कहीं बढ़कर है। इधर ये गौ के गुण बखानते। जैसे बुड्ढे चौबे जी ने अपने कंधे पर चढ़ी बाल–वधू के लिए कहा था कि 'या ही में बेटी' वैसे ये भी कहते हैं कि इस गौ से दूध होता है, मक्खन होता है, दही होता है, घी होता है, वह होता है।"

वास्तव में गुलेरी के निबंध उनके व्यक्तित्व की छाप से ओत–प्रोत हैं। उनकी शैली पर सर्वत्र उनका व्यक्तित्व छाया हुआ है।

द्विवेदी युगीन निबंधकारों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के निबंध प्रायः विचार–प्रधान हैं। भारतेंदु युगीन निबंधों की तरह इनमें तत्कालीन जीवन की अभिव्यक्ति एवं राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिवेशों का अंकन नहीं मिलता है। हास्य व्यंग्य के स्थान पर गांभीर्य की प्रधानता है। पूर्ण सिंह एवं गुलेरी के निबंधों के अतिरिक्त शेष निबंधकारों के निबंधों में वैयक्तिकता का अभाव है। निबंधों में मौलिकता नवीनता एवं ताजगी भी इनमें दष्टिगोचर नहीं होती है। इससे यह अधिक स्पष्ट हो जाता है कि इनमें निबंधत्व कम वैचारिक संग्रह अधिक है। व्याकरणिक एवं भाषाई शुद्धता एवं परिमार्जन इनमें मिलता है।

3. शुक्ल युग

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विषय, भाषा और शैली सभी दष्टियों से हिंदी निबंधों को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा कर उन्हें उनकी पराकाष्ठा प्रदान की। निःसन्देह आचार्य राम चन्द्र शुक्ल को हिंदी का सर्वश्रेष्ठ निबंधकार कहा जा सकता है। द्विवेदी युग के बाद निबंधों का विकास इन्हीं के व्यक्तित्व से पहचाना जाता है। इसलिए इन्हीं के नाम पर इस युग का नामकरण किया गया है।

हिंदी निबंध के विकास की गति में तीसरे मोड़ का श्रेय रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों के संग्रह चिंतामणि को है। इसने पाठकों के समक्ष नवीन विचार, नव अनुभूति एवं नई शैली उपस्थित की। इस युग के निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गुलाब राय, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रा नन्दन पंत, पं. सूर्य कांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, आचार्य नंन्द दुलारे वाजपेयी, शांति प्रिय द्विवेदी प्रेमचन्द, राहुल सांकृत्यायन, रामनाथ सुमन तथा माखन लाल चतुर्वेदी, पदुम लाल पुन्नालाल बख्शी, वियोगी हरि, रायकृष्ण दास, वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. रघुवीर सिंह आदि उल्लेखनीय हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य राम चन्द्र शुकल ने चिंतामणि (तीन भाग) द्वारा नवीन विचारधारा, नवीन अनुभूति तथा नव्य शैली का प्रारूप प्रदान किया। चिंतामणि के निबंधों का विषय अत्यंत सूक्ष्म एवं गंभीर है। जिसमें मनोवैज्ञानिकता तथा रसानुभूति की प्रधानता है। निबंधों का प्रतिपादन प्रौढ़तम शैली में हुआ है। जिसमें चिंतन की मौलिकता, विवेचन की गंभीरता, विश्लेषण की सूक्ष्मता तथा शैली की परिपक्वता दिखलाई पड़ती है। शुक्ल की लेखन कला में वैयक्तिकता, भावात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता यथा स्थान दष्टिगोचर होती है। उनके निबंधों में व्यक्ति एवं विषय का ऐसा अद्‌भुत समन्वय हुआ है कि यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उनके निबंधों को व्यक्ति प्रधान या विषय प्रधान कहें। चिंतामणि (प्रथम भाग) के निवेदन में इसका निर्णय करने का भार अपने विज्ञ पाठकों पर छोड़ दिया है। ईर्ष्या, श्रद्धा–भक्ति, लज्जा, क्रोध, लोभ, मोह, लोभ–प्रीति आदि मनोवत्तियों का विश्लेषण उन्होंने अति प्रखर दष्टि से किया है। समाजशास्त्रीय दष्टिकोण भी स्पष्ट दष्टिगोचर होता है। शुक्ल ने अपने निबंधों में मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री एवं साहित्यकार तीनों के कार्यभार का निर्वाह अति सफलतापूर्वक किया है।

उनके साहित्यिक एवं आलोचनात्मक निबंधों में कविता क्या है?, साधारणीकरण एवं व्यक्ति वैचित्र्यवाद, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था आदि प्रमुख हैं जो अपूर्व प्रतिभा, स्वतन्त्र चिंतन एवं मौलिक विचारों की अमिट छाप पाठकों पर छोड़ते हैं। उनके विचारों एवं निष्कर्षों से असहमत रहते हुए भी उनकी मौलिकता अनिवार्यरूप से सबने स्वीकारी है। साधारणीकरण की जटिल समस्या को शताब्दियों पूर्व संस्कृत के आचार्यों ने सुलझाने का प्रयत्न किया किंतु उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिली। उसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नये ढंग से सुलझाने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। वे सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के धनी ही नहीं अपितु नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के महान व्यक्तित्व थे।

निबंध में उनकी वैयक्तिकता प्रमुख विशेषता है। लज्जा और ग्लानि पर विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है –

"लक्ष्मी की मूर्ति धातुमयी हो गई, उपासक सब पत्थर के हो गए ..... आजकल तो बहुत सी बातें धातु के ठीकरों पर ठहरा दी गई हैं।..... राजधर्म, आचार्य धर्म, वीर धर्म, सब पर सोने का पानी फिर गया है, सब टका–धर्म हो गए। ..... सबकी टकटकी टके की ओर लगी हुई है।" ऐसे में चाटुकारों की खबर लेते हुए उन्होंने लिखा है –

"इसी बात का विचार करके सलाम–साधक लोग हाकिमों से मुलाकात करने के पहले अर्दलियों से उनका मिजाज पूछ लिया करते हैं।"

वास्तव में शुक्ल के निबंधों में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो गंभीर विषयों के निबंधों के लिए अपेक्षित हैं। उनके कुछ निबंधों में जटिलता, दुरूहता, शुष्कता आदि आ गई है जिसका प्रमुख कारण निबंध–विषय की गंभीरता, अति प्रौढ़ता एवं अति सूक्ष्मता है। अति सर्वत्र वर्जयेत्र का पालन न करने से उनके कुछ निबंधों में दुर्बोधता आई है।

गुलाब राय

गुलाब राय के अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें फिर निराशा क्यों?, मेरी असफलताएं तथा मेरे निबंध आदि विशेष लोकप्रिय संग्रह हैं। गुलाब राय के निबंधों की विशेषताओं में वैयक्तिक सारल्य, अनुभूति का समन्वय, वैचारिक स्पष्टता, एवं शैली की सुबोधगम्यता आदि प्रमुख हैं। मेरी असफलताएं में गुलाब राय ने व्यक्ति परक विषयों को अति मनोहरकारी रूप से उपस्थित किया है। व्यंग्य का यथास्थान प्रयोग किया गया है। व्यंग्य का लक्ष्य किसी और को न बनाकर अपने को ही बनाया है। मेरी दैनिकी का एक पष्ठ इनका प्रमुख निबंध है उसका कुछ अंश अवलोकनीय है –

"खैर आज कल उस (भैंस) का दूध कम हो जाने पर भी अपने मित्रों को छाछ भी पिला न सकने की विवशता की झूंझल के होते हुए भी उसके लिए भूसा लाना अनिवार्य हो जाता है। कहां साधारणीकरण एवं अभिव्यंजनाकवाद की चर्चा और कहां भूसे

का भाव! भूसा खरीदकर मुझे भी गधे के पीछे ऐसे ही चलना पड़ता है, जैसे बहुत से लोग अकल के पीछे लाठी लेकर चलते हैं..... लेकिन मुझे गधे के पीछे चलने में उतना ही आनंद आता है जितना कि पलायनवादी को जीवन से भागने में।" गुलाबराय ने अपने निबंधों में साहित्य और मनोविज्ञान की समस्याओं का समाधान भी उपस्थित किया है।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

बख्शी ने अपने निबंधों में मौलिकता का प्रतिपादन करते हुए नवीन शैली का आदर्श प्रस्तुत किया है। उनके निबंधों के विषय अति सरल हैं यथा 'उत्सव', राम लाल पंडित, समाज सेवा, नाम तथा विज्ञान आदि। उनकी शैली की विशेषता अन्य निबंधकारों में नहीं मिलती है।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल

वासुदेव शरण अग्रवाल ने सांस्कृतिक विषयों को अपने निबंध का विषय बनाया है।

डॉ. रघुवीर सिंह

रघुवीर सिंह ने इतिहास को अपने निबंधों का विषय बनाते हुए ऐतिहासिक धूमिल तथ्यों की धूल हटाकर उन्हें नवीन रूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। इनकी निबंधशैली में वैयक्तिकता की प्रधानता है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि निबंध के विषय क्षेत्र में पर्याप्त गंभीरता, नवीनता एवं सूक्ष्मता का आविर्भाव हुआ है। शुक्ल युगीन निबंधों में गंभीर विषयों को लेकर उनकी समस्याओं को नवीन दष्टिकोण से मौलिक विचारों के साथ प्रतिपादित किया गया है। साहित्य, इतिहास, संस्कृति तथा मनोविज्ञान इनके निबंधों के विषय रहे हैं। वैयक्तिक अनुभूतियों एवं भावनाओं के प्रकाशन का अनेक निबंधकारों ने लक्ष्य बनाया है। भाषा शैली की दष्टि से यह युग अन्य युगों की अपेक्षा निबंध साहित्य में अत्यधिक विकसित, प्रांजल एवं प्रौढ़ दष्टिगोचर होता है।

शुक्लोत्तर युग

शुक्ल परवर्ती निबंधकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी, जैनेंद्र, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. सत्येंद्र, शांति प्रिय द्विवेदी, डॉ. विनय मोहन शर्मा, डॉ. रामरतन भटनागर, डॉ. राम विलास शर्मा, डॉ. विश्वंभर 'मानव', प्रभाकर माचवे, डॉ. पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश', इलाचन्द्र जोशी, डॉ. भगीरथ मिश्र, चन्द्रवली पांडेय, डॉ. भगवत शरण उपाध्याय, राम वक्ष बेनीपुरी, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, रामधारी सिंह दिनकर, शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चन्द्र गुप्त तथा देवेन्द्र सत्यार्थी आदि प्रमुख हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

शुक्ल परवर्ती निबंधकारों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सर्वश्रेष्ठ निबंधकार हैं। इनके निबंध संग्रहों में अशोक के फूल, कल्पलता विचार और वितर्क, विचार प्रवाह तथा कुटज विशेष उल्लेखनीय संग्रह हैं। द्विवेदी का निबंध क्षेत्र अति व्यापक है। उन्होंने भारतीय साहित्य, भारतीय संस्कृति, प्रकृति, परंपरागत ज्ञान–विज्ञान, आधुनिक युगीन विभिन्न परिवेशों, प्रवतियों एवं समस्याओं का अपूर्व समन्वय किया है। उनके निबंध अध्ययन क्षेत्र की व्यापकता तथा चिंतन की गंभीरता से युक्त हैं किन्तु द्विवेदी की वैयक्तिक सरलता, सहजता, सरसता एवं विनोदी स्वभाव उसने नीसरता, शुष्कता या दुर्बोधता का प्रवेश नहीं होने देता है। व्यक्ति एवं विषय का पूर्ण तादात्म्य उनमें दष्टिगोचर होता है। उनके गंभीर से गंभीर निबंधों को पढ़ते समय पाठक ऊबता नहीं है अपितु उपन्यास या काव्यानंद की रस विभोरता का अनुभव करता है। जिन निबंधों के लेखन में द्विवेदी का मन रमा नहीं है वे सरसता के अपवाद स्वरूप हैं। जब लेखक का मन ही नहीं रमा है तो पाठक का मन उसमें किस प्रकार रमकर आनंदानुभूति कर सकता है किन्तु द्विवेदी के अधिकांश निबंध लालित्य एवं कलात्मकता से परिपूर्ण आदर्श की स्थापना करते हैं।

द्विवेदी की भाषा शैली में त्वरित परिवर्तनशीलता दष्टिगोचर होती है। निबंध के मनोभाव एवं विषयानुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है। कालिदास युगीन वातावरण का चित्रण करते समय उनकी शैली स्वाभाविक रूप से संस्कृत गर्भित हो जाती है जबकि ग्रामीण जीवन का चित्रण करते समय शैली में सारल्य एवं चलताऊपन आ जाता है जिसमें लोक भाषा के शब्दों का आधिक्य एवं सामान्य शब्दों की प्रचुरता देखी जा सकती है। आधुनिक जीवन व विसंगतियों तथा दूषित प्रवत्तियों का चित्रण करते समय उनकी शैली हास्य–विनोदी एवं व्यंग्यात्मक हो जाती है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं –

"आसमान में निरंतर मुक्का मारने में कम परिश्रम नहीं और मैं निश्चित जानता हूं कि रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ हंसी खेल नहीं है। पुस्तक को छुआ तक नहीं और आलोचना ऐसी लिखी कि त्रेलोक्य विकंपित! यह क्या कम साधना है।"

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी मुख्य रूप से आलोचक हैं। आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं। अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हिंदी साहित्य, नया साहित्य तथा नए प्रश्न प्रमुख हैं। मुख्य रूप से ये आलोचनाएं हैं किन्तु काव्य रूप एवं शैली की दष्टि से निबंध के अंतर्गत रखा जा सकता है। इनमें वैचारिक प्रधानता है। इसलिए विचार प्रधान निबंध हैं जिनमें वैयक्तिकता की प्रधानता है। इनका मुख्य आधार व्यक्तिगत चिंतन एवं मनन है। व्यक्तिकता से प्रभावित होते हुए भी उनकी प्रतिपादन शैली विषयानुसार तथा विचारों से प्रतिबद्ध है। उसमें व्यक्तित्व की स्वतन्त्र सत्ता का आभास प्रायः नहीं मिलता है। विचार–गंभीरता आ जाने से शैली भी गूढ़ एवं बोझिल हो जाती है। इस दष्टि से आचार्य वाजपेयी आचार्य शुक्ल की परंपरा के निबंधकार ठहरते हैं। उनकी शैली की बौद्धिकता एवं तार्किकता उच्च सतर के पाठकों को ही बौद्धिक आनंद प्रदान करती है।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल भारतीय संस्कृति एवं पुरातत्व संबंधी विषयों पर निबंध लिखनेवाले निबंधकारों में सर्वश्रेष्ठ निबंधकार हैं। भारतीय संस्कृति एवं पुरातत्व से संबंधित इनके अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें 'पथ्वी पुत्र', 'मात्र भूमि' तथा कला और संस्कृति विशेष महत्वपूर्ण संग्रह हैं। डॉ. अग्रवाल के निबंधों में अध्ययन–गांभीर्य तथा चिंतन – मौलिकता का प्राधान्य है। प्राचीन तत्वों एवं उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने एवं स्पष्ट करने की अपेक्षा अपनी विशिष्ट व्याख्याओं के माध्यम से सर्वथा नवीन रूप प्रदान करते हुए उन्होंने अपने आधुनिक पाठकों के लिए उसे सुबोध बना दिया है। उनकी शैली में सरलता एवं स्पष्टता विद्यमान है जो उनके निबंधों की विशिष्टता है।

पं. शांति प्रिय द्विवेदी

आत्मानुभूति परक वैयक्तिक निबंध लिखने वालों में द्विवेदी का नाम मूर्धन्य है। इनके निबंध संग्रहों में जीवन–यात्रा, साहित्यिकी, हमारे साहित्य निर्माता, कवि और काव्य, संचारिणी, युग और साहित्य तथा सामयिकी आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने कला एवं साहित्य विषयक निबंधों की रचना की है। जिसमें स्वानुभूति के आधार पर अपने विचारों की अभिव्यक्ति प्रदान की है। किंतु पथ–चिन्ह तथा परिब्राजक की प्रजा आदि में वैयक्तिकता को उभारा है। शैली में सरसता एवं प्रभावोत्पादकता विद्यमान है। कहीं–कहीं यह शैली करुणा प्रधान होकर करुणोत्पादक हो गई है। जैसे अपने संबंधित संस्मरण का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है –

"छुटपन में वह विधवा हो गई थी। उस अबोध वय में उसने जाना ही नहीं कि उसके भाग्य–क्षितिज में क्या पट परिवर्तन हो गया। जन्म काल से मां का जो आंचल उसके मस्तक पर फैला हुआ था। सयानी होने पर वही अंचल अपने मस्तक पर ज्यों–का–त्यों पाया, मानो शैशव ही उसके जीवन में अक्षुण हो गया। अचानक एक दिन जब वह अंचल भी मस्तक पद से छाया की तरह तिरोहित हो गया, तब उसके जीवन में मध्याह्न की प्रखर ज्वाला के सिवा और क्या शेष रह गया था।"

डॉ. नगेन्द्र

डॉ. नगेन्द्र का साहित्यिक आलोचनात्मक निबंधों की अभिवद्धि में असाधारण योगदान है। इनके निबंध संग्रहों में विचार और विवेचन, विचार और अनुभूति, विचार और विश्लेषण तथा कामायनी के अध्ययन की समस्याएं आदि विशेष महत्व के हैं। इन निबंधों का मूल स्वर विषय विवेचन है। अनेक निबंधों में वैयक्तिकता भी दष्टिगोचर होती है फिर भी विवेच्य विषय या मूल समस्या के विवेचना की प्रधानता है। नगेन्द्र कुशल व्याख्याता हैं। वे किसी भी विषय पर अपना समाधान प्रस्तुत करने से पहले उसे पाठकों के हृदय में प्रतिष्ठापित कर देते हैं जिसके कारण पाठक गूढ़ातिमूढ़ निबंध को पढ़ते समय उबासी न लेकर अति दत्त–चित्तता से उद्योपांत पढ़ जाता है। इसका उदाहरण उनका "साधारणीकरण एवं व्यक्ति वैचित्र्यवाद" है। इस शैली का यह सर्वश्रेष्ठ निबंध है। डॉ. नगेन्द्र ने अधिकांश निबंधों में व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैली अपनाई है किन्तु कुछ निबंधों में रूपकात्मक या अप्रस्तुतात्मक शैली का प्रयोग भी किया है। जैसा कि वीणा पाणि के कंपाउंड में या हिंदी उपन्यास में किया गया है। वास्तव में विचारों की गंभीरता, चिंतन की मौलिकता एवं शैली की रोचकता इन तीनों का डॉ. नगेन्द्र ने सामंजस्य स्थापित किया है।

साहित्य एवं कला संबंधी विषयों पर उत्कृष्ट निबंध लिखे हैं जिनमें कला, कल्पना और साहित्य तथा साहित्य की झांकी आदि संग्रहीत हैं। तथ्यों को तर्क एवं प्रमाण से परिपुष्ट करके प्रतिपादन करते हैं।

डॉ. विनय मोहन शर्मा

डॉ. शर्मा के निबंध संग्रह 'साहित्यावलोकन' तथा 'दष्टिकोण' आदि हैं। इन्होंने मुख्यतः सौंदर्य शास्त्रीय तथा साहित्यिक विषयों पर निबंध लिखे हैं। इनके व्यक्तित्व की सरलता एवं उदारता के परिणामस्वरूप निबंध शैली में सरलता, स्पष्टता तथा ऋजुता के गुण विद्यमान हैं। विषय प्रतिपादन से पूर्व पाठक मनोभूमि को विषयानुसार ढाल लेते हैं जिससे वह प्रतिपाद्य निबंध को सुनने, समझने या अध्ययन में तल्लीनतापूर्वक प्रवत्त हो जाता है। उदाहरण के लिए कलाकार एवं सौंदर्य बोध निबंध का अंश अवलोकनीय है –

"सौंदर्य क्या है?, उसका बोध कैसे होता है, और कवि या कलाकार पर उसकी किस प्रकार प्रतिक्रिया होती है? ये प्रश्न वर्षों से साहित्य और दर्शन में विवाद बने हुए हैं।" अलोचना या निबंध में ऐसे प्रश्न पाठक की उत्सुकता को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

डॉ. राम विलास शर्मा

अत्यंत तीखी, व्यंग्यपूर्ण एवं सशक्त शैली में निडरता से विषय का प्रतिपादन करने वाले निबंधकारों में डॉ. राम विलास शर्मा का विशेष स्थान है। इन्होंने साहित्य, कला, संस्कृति तथा राजनीति आदि विषयों पर सौ से अधिक निबंध लिखे हैं जो संस्कृति और साहित्य, प्रगति और परंपरा, प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं तथा स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य आदि संग्रहों में संग्रहीत हैं। डॉ. शर्मा मार्क्सवादी या प्रगतिवादी विचारधारा के निबंधकार हैं। इनके निबंधों में यही दष्टिकोण प्रधान है।

प्रकाश चन्द्र गुप्त

प्रकाश चन्द्र गुप्त के निबंधों का संग्रह 'नया हिंदी साहित्य : एक भूमिका' तथा 'साहित्य धारा' हैं जिनमें इनके निबंध संगहीत हैं। शैली सरल, स्पष्ट तथा रोचक है।

शिवदान सिंह चौहान

शिवदान सिंह चौहान के निबंध संग्रह 'साहित्यानुशीलन' तथा आलोचना के मान हैं जिनमें इनके निबंधों का संग्रह किया गया है। इनकी शैली में सरलता, स्पष्टता तथा रोचकता विद्यमान है।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के निबंधों के विषय ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक हैं जिनमें उन्होंने उत्कृष्ट निबंधों का प्रस्तुतीकरण किया है। निबंधों में अध्ययन, मनन एवं चिंतन की गंभीरता दष्टिगोचर होती है। इनके निबंध संग्रह 'भारत की संस्कृति का सामाजिक विश्लेषण', 'इतिहास के पष्ठों पर', 'खून के धब्बे' तथा 'सांस्कृतिक निबंध' आदि उल्लेखनीय हैं।

डॉ. भगीरथी मिश्र

डॉ. भगीरथी मिश्र के निबंधों का संग्रह कला और साहित्य है।

डॉ. रामरतन भटनागर

डॉ. रामरतन भटनागर का निबंध संग्रह 'अध्ययन और आलोचना' है।

डॉ. रामधारी सिंह दिनकर

डॉ. दिनकर के निबंधों के संग्रह मिट्टी की ओर, अर्द्धनारीश्वर तथा रेती के फूल हैं।

महादेवी वर्मा

संस्मरणात्मक निबंध लिखने वालों में महादेवी का नाम सर्वश्रेष्ठ है। इनके संस्मरणों के संग्रह अतीत के चल–चित्र, स्मति की रेखाएं तथा श्रंखला की कड़ियां हैं। जिनमें सामाजिक विषमता तथा दीन–हीन मानव, पशु–पक्षियों की वेदना का चित्रण अनुभूति की भाव भूमि पर किया गया है। शब्द चयन एवं पद–विन्यास के भावों की मार्मिकता को स्पष्ट करने की सामर्थ्य एवं क्षमता

विद्यमान है। उदात्त विषयों के प्रतिपादन में शैली में सशक्तता एवं प्रौढ़ता विद्यमान है। महादेवी के संस्मरणों एवं निबंधों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें दार्शनिक की अंतर्दष्टि, कवि की अभिव्यक्ति, चित्रकार की प्याली–तूलिका, तथा साहित्यकार की उजस्र लेखनी का अपूर्व समन्वय विद्यमान है।

रामवक्ष बेनीपुरी

रामवक्ष बेनीपुरी के निबंध संस्मरणात्मक हैं। जिनमें उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों से संबंधित व्यक्तियों का सहृदयापूर्ण शैली में चित्रांकन किया है। इनके निबंध संग्रह माटी की मूरतें तथा गेहूं और गुलाब हैं। इनकी शैली काव्यात्मक तथा विवरणात्मक है। कही इनकी शैली आकुल–व्याकुल सामुद्रिक लहर–तरंगों के कंपायमान अधरों का चुंबन प्रति चुंबन लेकर अठ्टहास कर उठती है।

हरिवंश राय 'बच्चन'

हरिवंश राय बच्चन ने संस्मरणात्मक निबंध लिखे। जिनका संग्रह 'क्या भूलूं क्या याद करूं' है। जिसमें इनके जीवन के मर्मस्पर्शी संस्मरण संग्रहीत हैं।

देवी लाल चतुर्वेदी 'मस्त'

देवी लाल चतुर्वेदी के निबंधों का संकलन 'झरोखे' है।

आचार्य चंद्रबली पांडेय

चन्द्रबली पांडेय ने समीक्षात्मक एवं गवेष्णात्मक निबंधों की रचना की। इनके निबंधों के संग्रह एकता तथा विचार विमर्श हैं। इनके निबंधों में अध्ययन गांभीर्य एवं तर्क–पूर्ण शैली का समन्वय दष्टिगोचर होता हैं

नलिन विलोचन शर्मा

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर निबंध लिखे।

रांगेय राघव

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निबंध लेखकों में इनका विशेष स्थान है।

डॉ. देवराज

अनेक निबंधकारों ने अपने निबंध का विषय साहित्य एवं संस्कृति को बनाया जिनमें डॉ. देवराज का नाम भी उल्लेखनीय है।

इलाचन्द्र जोशी

इलाचन्द्र जोशी का निबंध क्षेत्र व्यापक है। इन्होंने अनेक विषयों को निबंध के लिए चुना। इनके निबंधों के संग्रह 'साहित्य सर्जना', 'विवेचन', 'विश्लेषण', 'देखा–परखा' तथा 'महापुरुषों की प्रेम कथाएं' हैं। जोशी ने साहित्य, मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण से संबंधित विविध विषयों पर विवेचनात्मक एवं प्रभावोत्पादक शैली में निबंध लिखे।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

'अज्ञेय' ने निबंध हेतु साहित्यिक विषयों का चयन किया। इनके निर्णयों का संग्रह त्रिशंकु है।

यशपाल

यशपाल ने कथा साहित्य की भांति निबंध साहित्य की अभिवद्धि में भी असाधारण योगदान किया। इनके निबंधों के संग्रह 'देखा, सोचा, समझा', 'मार्क्सवाद', 'चक्कर क्लब', 'न्याय का संघर्ष', 'गांधीवाद की शव परीक्षा', तथा राज्य की कथा' आदि प्रमुख हैं। शैली में सरलता तथा विचारोत्तेजकता विद्यमान है। कहीं–कहीं इनकी शैली व्यंग्यात्मक हो गई है। व्यंग्य सामाजिक एवं तीखे हैं, उदाहरण द्रष्टव्य है –

"कारतूसों की एक दुकान खोलो, जिसमें 'कलमाइड कारतूस' मुसलमानों के लिए और 'झटकाइड कारतूस' सिक्खों के लिए रहें। अच्छा मुनाफा रहेगा।"

गोपाल प्रसास व्यास

व्यास के निबंधों में हास्य–विनोद तथा व्यंग्य की प्रधानता है। उनके निबंध संग्रह 'कुछ सच : कुछ झूठ' तथा मैंने कहा प्रमुख हैं। व्यास छोटी से छोटी बात को भी अत्यंत रोचक एवं साहित्यिक ढंग से प्रतिपादन करने में सिद्धस्त थे। उदाहरण के लिए स्नान घर में भैंस वास्तव में घुस गई या पत्नी के मोटपे पर व्यंग्य करने के लिए कल्पना कर लिया और कल्पित भैंस को स्नान घर में घुसा ही नहीं दिया बल्कि अनूठा निबंध लिख डाला तथा यत्र–तत्र वे विभिन्न वर्गों के साहित्यकारों को भी भैंस के बहाने याद कर लेते हैं –

"एक दिन बाबू जी की पत्नी गुसलखाने में स्नान कर रही थी, तो भैंस भी अपना अधिकार समझकर उसमें घुस पड़ी। संकरा दरवाजा, छोटी जगह। भैंस घुस तो गई, मगर अब निकले कैसे?..... एकदम नई अलझन थी। प्रगतिशील भैंस के बढ़े हुए कदम प्रतिक्रियावादी होने को कतई तैयार न थे।"

प्रभाकर माचवे

प्रभाकर माचवे ने 'मुंह', गला, गाली, बिल्ली, मकान आदि साधारण विषयों का निबंध हेतु चयन करके अति रोचक निबंधों की रचना की है। उनके निबंध संग्रह नाम जो होता नहीं है, है 'खरगोश की सींग'।। शैली सरल, मुहावरेदार, प्रवाहपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक है।

देवेन्द्र सत्यार्थी

देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोक संस्कृति एवं लोक गीतों की पष्ठभूमि पर, विभिन्न विषयों पर, अनुभूति पूर्ण निबंधों की रचना की है। इनके निबंधों के अनेक संग्रह एक युग : एक प्रतीक, रेखाएं बोल उठीं, क्या गोरी क्या सांवरी, कला के हस्ताक्षर आदि हैं। इनके निबंध अति मनोहारी हैं जिनमें मन को आकर्षित करने की क्षमता विद्यमान है।

जयनाथ नलिन

जयनाथ नलिन के निबंधों का संग्रह कला और चिंतन है जिसमें मौलिक निबंधों का संग्रह किया गया है।

डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

इंटरव्यू का हिंदीकरण अंतव्यू किया गया है। यदि इस शब्द में अंत्याक्षरागम के अनुसार अंतव्यू – अंतर्व्यूह कर लिया जाए तो चक्रव्यूह के आधर इस शब्द की सार्थकता में वद्धि हो जाए।

हिंदी साहित्य की निबंध परंपरा में अनेक शैलियों का प्रयोग किया गया है। एक नवीन शैली 'अंतर्व्यू शैली' है इसके प्रवर्तन का श्रेय डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' को है। इनके निबंध का संकलन 'मै इनसे मिला' (दो भाग) हैं। इन्होंने विभिन्न साहित्यकारों के लिए गए अंतर्व्यूह (साक्षात्कार) के आधार पर उनके व्यक्तित्व, दर्शन, साहित्य–सजन के भिन्न पक्षों को अति कलात्मक शैली में प्रतिपादित किया है। अंतर्व्यूह के अतिरिक्त डॉ. कमलेश के अन्य अनेक निबंधों की रचना करके हिंदी निबंध साहित्य की अभिवद्धि की है। इनके निबंधों में वैचारिक सरलता एवं स्पष्टता तथा शैलीगत सरसता विद्यमान है।

कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर

प्रभाकर ने जीवन एवं समाज को प्रेरित करने के लिए रोचक एवं प्रभावोत्पादक निबंधों की रचना की। प्रभाकर के निबंध संग्रह जिंदगी मुस्कराई, बाजे पायलिया के घुंघरू, दीप जले शंख बजे तथा क्षण बोले कण मुस्काए आदि उल्लेखनीय हैं।

राम नाथ सुमन

राम नाथ सुमन ने सैकड़ों निबंध लिखे हैं।

जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्र कुमार ने सांस्कृतिक, नैतिक, राजनीतिक चिंतन को अपनी विशिष्ट शैली में विश्लेषणात्मक निबंधों के प्रस्तुत किया है। उनके निबंधों का संग्रह समय और हम है।

डॉ. संपूर्णानंद

डॉ. संपूर्णानंद के निबंधों में दार्शनिक विवेचन है किन्तु उसमें जटिलता नहीं है।

ललित निबंध

ललित निबंधों में लालित्य पर अधिक बल दिया जाता है। यह निबंध की नई विधा नहीं है। लालित्य निबंध की विशिष्ट विशेषता है। वर्तमान में इसे प्रवत्ति के आधार अलग विधा मान लिया गया है। निबंधकार अपने भावों, विचारों को सरस, अनुभूतिजन्य, आत्मीय एवं रोचकरूप में प्रस्तुतीकरण करता है। ललित निंबंधों को गंभीर विश्लेषण, ऊबाऊ वर्णन, जटिलता से बचाया जाता है।

ललित निबंधकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का प्रमुख स्थान है। उनके निबंधों में मानवतावादी जीवन दर्शन एवं संवेदनशीलता दोनों दष्टिगोचर होते हैं। निबंधों में पांडित्य के साथ नवीन चिंतन–दर्शन भी दिखलाई पड़ता है। विचार और वितर्क "अशोक के फूल" तथा कल्पलता आदि उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त ललित निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र, कुबेर नाथ राय तथा विवेकी राय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

विद्यानिवास मिश्र संस्कृत भाषा एवं साहित्य के उद्‌भट विद्वान हैं। लोक साहित्य, साहित्य और लोक संस्कृति में उनकी गहरी पैठ है। शैली भावपूर्ण एवं काव्यमय है। प्रमुख निबंध संग्रह मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, तुम चन्दन हम पानी, संचारिणी, लागौ रंग हरी तथा तमाल के झरोखे से आदि हैं।

व्यंग्य निबंध

हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग में ही व्यंग्य का प्रारम्भ हो चुका था किन्तु स्वातंत्र्योत्तर युग में व्यंग्य निबंध के नए युग का सूत्रपात हुआ। इसका श्रेय हरिशंकर परसाई को है। उन्होंने व्यंग्य को एक स्वतन्त्र विधा बनाने का यत्न किया। वास्तव में व्यंग्य स्वतन्त्र विधा नहीं है।

व्यंग्य निबंधों में निबंधकार समाज की समस्या विशेष पर निबंध लिखता है। व्यंग्य से पाठक में नवीन दष्टि और सामाजिक जागरुकता पैदा करता है।

हिंदी व्यंग्य लेखकों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र नाथ त्यागी, गोपाल प्रसाद व्यास, बरसाने लाल चतुर्वेदी, प्रभाकर माचवे, बेढब बनारसी, तथा हरिश्चन्द्र वर्मा आदि प्रमुख हैं।

हिंदी निबंध साहित्य ने थोड़े से समय में ही पर्याप्त उन्नति कर ली है। भारतेन्दु युग से आज तक निबंध साहित्य प्रौढ़तर होता जा रहा है। कुछ निबंधकार पाश्चात्य निबंधकारों से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य में भाषा एवं सौंदर्य की विहीनता का प्रतिपादन करते हैं। निबंध में अनुभूति मुख्य तत्व है। वर्तमानकाल में निबंध में अनुभूति शून्यता आती जा रही है। निबंधकार साहित्यिक समस्याओं तक अपने को संकुचित करता जा रहा है। अन्य परिवेशों को अपने निबंध का विषय बनाने में अपने को असफल पाता जा रहा है।

प्रफुल्लता, ताजगी, रोचकात तथा व्यंग्यात्मकता से वर्तमान निबंध दूर होता जा रहा है। ये प्रवत्तियां हिंदी निबंध के ह्रास का द्योतन करती है। हिन्दी निबंध लेखकों का इस ओर विशेष ध्यान देना वर्तमान अनिवार्यता है।

28. संस्मरण

संस्मरण एक मनोहारी आत्म परक हिंदी गद्य साहित्य की आधुनिक विधा है। वास्तव में संस्मरण किसी समर्थमान स्मति का शब्दांकन है। संस्मरणकार अपने वैयक्तिक जीवन के संपर्क में आए हुए व्यक्तियों के विभिन्न स्वरूपों का अपनी स्मत्यानुसार जो कथात्मक शैली में रेखांकन करता है वह संस्मरण कहलाता है। मानव जीवन में संपर्क में आने वाले व्यक्तियों की संख्या असीमित होती है जिसकी ओर सामान्य मनुष्य ध्यान नहीं देता है किन्तु संवेदनशील मानव संपर्क में आए उस विशिष्ट मनुष्य को भुला नहीं पाता जिसकी कुछ–न–कुछ अमिट छाप उस पर पड़ी होती है। वे यादें अंतस्तल में सोई रहती हैं जिनके सहारे संस्मरणकार उनका चरित्र–चित्रण स्वानुभूति के आधार पर शब्दों के माध्यम से करता है। अंतस्तल में सोई हुई छवि आकुलता–व्याकुलता के क्षण में जागत हो शब्दायमान होकर संस्मरण का रूप धारण कर लेती है।

संस्मरण के मूल में अतीत की स्मतियों का विशेष महत्व है। संस्मरणकार अतीत की स्मतियों के आधार पर जो कुछ देखता–सुनता या अनुभव करता है उसे अपनी अनुभूतियों से राग रंजित करके उन्हें संस्मरण का साहित्यिक जामा पहना देता है। इस विषय में डॉ. आशा कुमारी का कहना है कि संस्मरणकार इतिहासकार की भाँति तथ्यपरक विवरण मात्र नहीं देता अपितु अपनी अनुभूतियों को साहित्यिकता से अभिमंडित करके प्रस्तुत कर देता है। इतिाहसकार मात्र महत्वपूर्ण तथ्यों एवं घटनाओं को ही ग्रहण करता है जबकि संस्मरणकार सामान्य से सामान्य, छोटी से छोटी घटना को अपने संस्मरण का विषय बनाकर, अनुभूतियों से अभिषिक्त कर मनोरम, सरल, सरस शैली के द्वारा साहित्यिक रूप प्रदान कर संस्मरण का सजन करता है।

संस्मरण की वैयक्तिक भिन्नता के परिणाम स्वरूप प्रस्तुतीकरण में भी भिन्नता आ जाती है।

हिंदी संस्मरण विभाजन

भिन्नता को दष्टिगत रखते हुए संस्मरण को अनके वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. मानव परक
2. पशु–पक्षी परक
3. यात्रा विवरणात्मक
4. आत्मकथात्मक
5. जीवनीमूलक
6. डायरीनुमा
7. मूल्यांकनपरक
8. श्रद्धांजलि मूलक

1. मानव परक

संस्मरण कार के जीवन में अनेक व्यक्ति आते हैं किंतु विशिष्ट होते हैं वे जो अपनी अमिट छाप अपने किसी गुण से छोड़ जाते हैं। महादेवी की पेड़ के नीचे लगने वाली साप्ताहिक ग्रामीण पाठशाला का एक शिष्य घीसा है जो सफाई पसंद है। सबसे पहले आकर पेड़ के नीचे सफाई करता है। एक ही कुर्ता है जिसे धो लेता है तो न सूखने पर गीला ही पहन कर आ जाता है। अपने पिल्ले से इतना प्रेम करता है कि गुरु जी से मिली जलेबी उसके लिए ले जाता है। गुरु भक्ति इतनी प्रबल है कि गुरु जी जाते समय अपनी गरीबी में एक तरबूज गुरु दक्षिण में देता है। हिंदू मुसलमान के दंगे से भयभीत गुरु जी को न जाने के लिए आग्रह करता है। ऐसा चरित्र कभी भूल सकता है। महादेवी ने उसे अपने संस्मरण का विषय बनाकर अमर कर दिया है।

2. पशु-पक्षी परक

संस्मरणकार के जीवन संपर्क में मानव मात्र का ही आगमन नहीं होता है अपितु पशु–पक्षी जानवर आदि का मनुष्य से भी अधिक लगाव हो जाता है।

महादेवी ने तोते के बच्चे को देखा जिसे कौवे मार रहे थे। बचा लिया और पिंजरे में पाल लिया जो सीता राम कहकर महादेवी को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। यही स्थिति गिलहरी के बच्चे की थी जिसे कौवे मार रहे थे महादेवी ने बचाकर पाल लिया जो इनकी मेच पर, कुर्सी पर कभी आगे, कभी पीछे, कभी दायें, कभी बायें फुदकता रहता था कुछ खाने लगती तो वह अपना भाग पहले लेता था। उसका नामकरण कट्टो रखकर महादेवी ने जाति वाचक संज्ञा को व्यक्ति वाचक संज्ञा बना दी। सोना हिरणी भी ऐसी थी। महादेवी ने असंख्य पशुपक्षियों एवं जानवरों को जीवन दान ही नहीं दिया अपितु अपने संस्मरणों में उन्हें स्थान देकर उन्हें सदा के लिए अमर बना दिया।

3. यात्रा विवरणात्मक

संस्मरणकार यात्राएं करता रहता है। यात्रा में मानव, पशु–पक्षी, जीव जंतु, प्रकृति आदि अनेक से उसका संपर्क होता है। विशिष्ट विशेषता वाले को संस्मरण में स्थान देता है।

4. आत्मकथात्मक

संपूर्ण जीवन में अनेक तथ्य, घटनाएं एवं मनुष्य आते रहते हैं आत्म कथा लिखते समय उसमें से प्रबल शक्तिमान बिला बुलाए आ टपकता है उसके विषय में खट्टी मीठी यादें आ जाती हैं जिन्हें संस्मरण में शब्दांकित करता है।

5. जीवनी मूलक

जिस प्रकार संस्मरणकार के जीवन में आने वाले अनेक तथ्य या व्यक्ति होते हैं उसी प्रकार जिसकी जीवनी लिख रहे होते हैं उसके संपर्क में आने वालों का चित्रण जीवनी मूलक संस्मरण कहलाता है।

6. डायरी नुमा

प्रतिदिन की घटनाओं, घटनाओं से संबंधित पात्रों को दैनंदिनी में अंकित करते हैं। जिसका विशेष महत्व होता है वह संस्मरण का रूप लेकर व्यापार आधार फलक ग्रहण करता है।

7. मूल्यांकन परक

व्यक्ति, वस्तु, भाव या स्थान का मूल्यांकन करते समय उससे संबंधित विशिष्टता उभर कर सामने आ जाती है जो संस्मरण के रूप में विकसित हो जाती है।

8. श्रद्धांजलि मूलक

किसी की मत्यु या मत्यु दिवस पर शोक संवेदना प्रकट करने को श्रद्धांजलि कहते हैं। दिवंगत व्यक्ति गुणवान होता है तभी श्रद्धांजलि का अधिकारी होता है। उसके गुण विशेष या प्रेरणादायक तथ्यों का चित्र भी उस समय उभरकर आ जाता है जिसे संस्मरण का रूप श्रद्धांजलि कर्ता की संवेदना दे देती है।

हिंदी संस्मरणों का विकास इन वर्गों के आधार न करके सामान्य रूप से कालक्रमानुसार करना उचित है।

हिंदी संस्मरण : उद्‌भव एवं विकास

हिंदी साहित्य में संस्मरणों का अभाव नहीं है। हिंदी संस्मरण के विकास में सरस्वती, सुधा, माधुरी, चांद तथा विशाल भारत आदि पत्रिकाओं का विशेष योगदान है।

प्रथम संस्करण

सन् 1907 ई. में बाबू बाल मुकुंद गुप्त ने पं. प्रतापनारायण मिश्र एक संस्मरण लिखा जिसे हिंदी का प्रथम संस्मरण स्वीकारा गया। कुछ आलोचकों का कहना है कि बाबू बालमुकुंद गुप्त प्रथम संस्मरण लेखक नहीं हैं अपितु प्रथम संस्मरण लेखक स्वामी सत्यदेव परिव्राजक या पद्‌मसिंह शर्मा 'कमलेश' हैं।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र आधुनिक काल के गद्य साहित्य के जन्म दाता कहे जाते हैं। जिन्होंने गद्य लेखन की अनेक विधाओं की भांति संस्मरण लेखन का भी कार्य किया। उनका कुछ आप बीती कुछ जग बीती सुंदर संस्मरण है। उपर्युक्त दो संस्मरणों का उल्लेखमात्र है। शीर्षक तक ज्ञात नहीं है। इसलिए कुछ आप बीती कुछ जग बीती को प्रथम संस्मरण एवं भारतेंदु हरिश्चन्द्र को प्रथम संस्करणकार मानना औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है।

विकास

हिन्दी साहित्य में वास्तविक संस्मरण लेखन कार्य द्विवेदी युग से प्रारंभ हुआ। द्विवेदी की प्रेरणा से सरस्वती में अनेक संस्मरण प्रकाशित हुए। इन जीवन परिचयों या संस्मरणों में लेखक की आत्मानुभूति की प्रधानता रही है। उन्हें मात्र जीवन वत्त नहीं कहा जा सकता है। इसलिए उन्हें जीवनी साहित्य न कहकर संस्मरण कहना उचित प्रतीत होता है ऐसा डॉ. गोविन्द तिगुणायत का कहना है। संस्मरण साहित्य को समद्ध बनाने में अनेक संस्मरणकारों का योगदान मिला जिनमें प्रमुख संस्मरण लेखक निम्नलिखित हैं–

स्वामी सत्यदेव परिश्राजक– हिंदी संस्मरण लेखकों में स्वामी सत्य देव परिव्राजक का विशेष महत्व है। सन् 1905 ई. में उन्होंने अमेरिका की यात्रा की थी। यात्रा से संबंधित घटनाओं एवं संपर्क में आनेवालों का उन्होंने सजीव शब्दांकन किया है जो भाव एवं अनुभूति प्रधान है।

हेमचन्द्र जोशी– हेम चन्द्र जोशी फ्रांस यात्रा पर गए थे। यात्रा के दौरान उन्होंने अनेक अनुभव किए जिसे उन्होंने सरस एवं मनोरम शैली में प्रस्तुत किया। इसमें साहित्यिकता अधिक है। जोशी के संस्मरणों का संकलन 'फ्रांस यात्रा और संस्मरण' में किया गया है।

डॉ. पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश'– डॉ. पद्म सिंह शर्मा का संस्मरण लेखकों में विशेष स्थान है। इन्होंने अपने संस्मरणों का विषय साहित्यकारों को बनाया। शर्मा उग्र स्वभाव के थे जिसके परिणामस्वरूप उनके संस्मरणों में सरसता के साथ–साथ नोंक–झोंक के भी दर्शन होते हैं। महाकवि अकबर इलाहाबादी का संस्मरण अति रोचक एवं सरस शैली में प्रतिपादित किया है। जिसमें अकबर का जीवन वत्त उभर कर सामने आ गया है तथा 'कमलेश' की विद्वता, सजीवता, त्वरित वाकपटुता ने भी साकाररूप ग्रहण कर लिया है। संस्मरण की भाषा सशक्त एवं भावाभिव्यंजन में सहयोगी सिद्ध हुई है।

पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी– संस्मरणकारों में श्रीनारायण चतुर्वेदी का विशेष स्थान है। इनके संस्मरणों का संकलन लखनऊ से देहरादून तक की यात्रा' में किया गया है। इसके अतिरिक्त मनोरंजक संस्मरण भी प्रकाशित हुआ। इनके संस्मरणों में हास्य–विनोद की प्रधानता है।

श्रीराम शर्मा– संस्मरण लेखकों में श्रीराम शर्मा उल्लेखनीय हैं। शर्मा शिकार के शौकीन थे। इसलिए इनके संस्मरणों में शिकार–संबंधित विषयों को अपनाया गया है। वैयक्तिकता की प्रधानता के कारण संस्मरणों में यथार्थ को अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। संस्मरण रोचक भी हैं। इनकी प्रमुख कृति सन् बयालीस के संस्मरण है।

बनारसी दास चतुर्वेदी– बनारसी दास चतुर्वेदी संस्मरण के प्रति पूर्ण समर्पित व्यक्ति हैं। उन्होंने अनेक संस्मरण लिखकर हिन्दी संस्मरण साहित्य की संवद्धि की है। अपने संस्मरणों में महापुरुषों को विषय रूप में ग्रहण करके सामाजिक वातावरण को सजीवता प्रदान की है। इनके प्रोत्साहन एवं प्रेरणा के फलस्वरूप हिंदी में अनेक संस्मरण ग्रंथों का प्रकाशन हुआ।

महादेवी वर्मा – महादेवी वर्मा के संस्मरण हिंदी संस्मरण साहित्य की अक्षय निधि हैं। उनके संस्मरणों का संग्रह अतीत के चलचित्र सन् 1941 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें संकलित सभी संस्मरणों में मर्मस्पर्शिता एवं रागात्मक अनुभूति की प्रधानता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो महादेवी की ममता इन संस्करणों में आकर सजीव एवं साकार हो उठी है। स्मति की रेखाएं एवं पथ के साथी में संकलित संस्मरणों में महादेवी की साहित्य कला का चरमोत्कर्ष एवं पराकाष्ठा देखी जा सकती है। महादेवी ने स्वतः कहा है–

"इन स्मति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में ही लाकर देख पाते हैं।" महादेवी के संस्मरण उनके जीवन की विशिष्टताओं को अभिव्यंजित करने में पूर्ण समर्थ हैं। महादेवी मूलतः कवियित्री हैं, नारी हैं। इसलिए उनके संस्मरणों में कवि सुलभ एवं नारी सुलभ सभी विशेषताओं –

कोमलता, भावुकता, ममता, दया, त्याग, बलिदान एवं मधुरता आदि को स्वाभाविक रूप से स्थान मिल गया है। जिन्होंने संस्मरण को श्रेष्ठता प्रदान की है। महादेवी के संस्मरणों में सभी भाषिक गुण ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, चित्रोपमता भावाभिव्यंकता, सरलता तथा माधुर्य आदि विद्यमान हैं।

श्री निधि विद्यालंकार – नए संस्मरण लेखकों में विद्यालंकार का नाम अग्रगण्य है। इनका संस्मरण शिवालिक की घाटियों में प्रमुख है। जिसमें प्राकृतिक छटा वर्णित है। प्रकृति के सौंदर्य का संश्लिष्ट चित्रण अति मनोरम एवं आकर्षक बन गया है। चित्रात्मक भाषा इनकी प्रमुख विशेषता है।

राजेन्द्र लाल हांडा – हांडा आधुनिक संस्मरण लेखक हैं। इनके संस्मरणों का संकलन 'दिल्ली में बीस वर्ष' है।

राजा राधिका रमण सिंह – संस्मरण लेखकों में राजा राधिका रमण सिंह का नाम अति आदर से लिया जाता है। इनके संस्मरण अनेक संग्रहों में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके संस्मरणों में वर्णन–चित्रण की सापेक्षित शैली का प्रयोग किया गया है। इनके संस्मरणों में टूटा तारा, नारी क्या एक पहेली, सावनी सभा, सूरदास, हवेली की झोपड़ी, पूरब और पश्चिम, वे और हम, देव और दानव तथा जानी, सुनी–देखी भाली आदि प्रमुख हैं।

अयोध्या प्रसाद गोयलीय – गोयलीय के अनेक संस्मरण प्रकाशित हो चुके हैं। इनका प्रसिद्ध संस्मरण संग्रह जन जागरण के अग्रदूत हैं। इनके अधिकांश संस्मरणों में जीवनियां हैं।

इनके अतिरिक्त शांति प्रिय द्विवेदी, राम वक्ष वेनीपुरी, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, राहुल सांकृत्यायन, गुलाब राय, देवेन्द्र सत्यार्थी, इलाचन्द्र जोशी, सेठ गोविंद दास, राजेन्द्र यादव, यशपाल, भगवती चरण वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, उपेन्द्र नाथ अश्क, डॉ. नग्रेन्द्र, भदंत आनंद कौसल्यायन, ओंकार शरद तथा विष्णु प्रभाकर आदि भी उल्लेखनीय संस्मरण लेखक हैं। जिन्होंने अपने उत्कृष्ट संस्मरणों से हिंदी संस्मरण साहित्य के भंडार में अभिवद्धि की है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि 20वीं सताब्दी के अस्तित्व में आए संस्मरणों ने अपने अल्पकालीन जीवन में अत्यधिक विकसित रूप धारण करके उल्लेखनीय प्रगति का द्योतन किया है। आधुनिक प्रत्येक साहित्यकार संपर्क में आए हुए महान व्यक्ति से संबंधित विशिष्ट घटना को अपनी अनुभूतियों में पिरोकर, मनोरम, स्पष्ट, साहित्यिक भाषा का जामा पहनाकर, अपने विचारों से संपक्त करके रूपायित करने के लिए प्रयत्नशील हैं। हिंदी संस्मरण साहित्य की प्रगति इस तथ्य को द्योतन करती है कि गद्य की अन्य विधाओं की भांति संस्मरण साहित्य का भविष्य अति उज्जवल है।

29. रेखाचित्र

हिंदी गद्य साहित्य की नवीनतम विधा रेखा चित्र है। इसके लिए शब्दस्केच, शब्दचित्र, व्यक्तिचित्र, तूलिकाचित्र या चरित लेख आदि शब्द युग्मों का प्रयोग किया जाता है। जिनमें अंतिम चरित लेख भिन्न है। लेख निबंध का लघु रूप है। अर्थात् संक्षेप में किसी का चरित्र–चित्रण करना चाहिए लेख कहलाता है। रेखा चित्र शब्द युग्म का द्वितीय समस्त पद चित्र है। अन्य समासों में भी द्वितीय समस्त पद चित्र ही है चित्र को अलग कर देने से शब्द, शब्द, व्यक्ति, तूलिका ही बचते हैं। स्केच का अर्थ भी चित्र होता है। तूलिका चित्र बनाने का साधन है। शब्द अभिव्यक्ति का साधन है किंतु पेंसिल या पेन मात्र रेखाएं खींच कर चित्र उकेरते हैं। शब्दों के माध्यम से उकेरे गए चित्र को रेखाचित्र कहा जाता है। इसमें चित्र की पूर्णता न होकर अभिव्यक्ति की पूर्णता होती है। इन सबमें हिंदी में रेखाचित्र ही सर्वग्राह्य है।

नवीनतम विधा होने पर भी इसके तत्व प्राचीन काव्यों में भी उपलब्ध हैं। वाल्मीकि रामायण से लेकर आधुनिक साहित्य में रेखाचित्र के तत्व निरंतर दष्टिगोचर होते हैं। पद्य एवं गद्य की सभी विधाओं में इसके तत्व विद्यमान हैं। मानव, मानवेतर, जड़ चेतन आदि के अंग प्रत्यंगों में दष्टिगोचर होने वाले बिंब ही इसके तत्व हैं। चाहे वे स्थूल हों या सूक्ष्म। इन बिंबों का चित्रण ही रेखाचित्र कहलाता है। पाश्चात्य साहित्य के स्केच से अनुप्राणित है। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में हिंदी साहित्य में रेखाचित्र का प्रादुर्भाव हुआ।

रेखाचित्र, व्यक्ति, वस्तु, स्थान, भाव, घटना या परिवेश से संबंधित होने के फलस्वरूप यथार्थ की भूमि पर प्रतिष्ठित होता है। रेखाचित्र का आधार फलक यथार्थ है। रेखाचित्र किसी व्यक्ति का शब्द चित्र, किसी विशिष्ट व्यक्ति का संक्षिप्त विवरण, किसी विशिष्ट प्रवत्ति या घटना का व्यंग्यात्मक चित्रण हो सकता है।

रेखाचित्र गद्य की वह विधा है जिसमें चरित्र, दश्य या घटना विशेष का मुख्य रूप से वर्णन किया गया हो। डॉ. शिवदान सिंह चौहान का रेखाचित्र विषयक कथन द्रष्टव्य है–

"किसी व्यक्ति के रेखाचित्र में यह विशेषता होगी कि उसके व्यक्तित्व ने जो विशेष मुद्राएं शारीरिक या अवयवों की बनावट में जो विकृतियां ऊपर को उभार दी हैं उनके आभास को चित्र में ज्यों का त्यों पकड़ा जाए ताकि लेखक की अनुभूति के साथ उसके व्यक्तित्व की रेखाएं और भी सघन होकर दिखाई पड़ने लगें।"

डॉ. नगेन्द्र ऐसी किसी भी रचना को रेखाचित्र की संज्ञा देने के लिए उद्यत हैं जिसमें तथ्यों का उद्घाटन मात्र हो। उनके अनुसार तथ्यों का मात्र उद्घाटन रेखाचित्र है।

डॉ. विनय मोहन शर्मा के अनुसार –

"व्यक्ति, घटना या दश्य के अंकन को रेखाचित्र की संज्ञा दी जा सकती है।"

डॉ. भगीरथ मिश्र रेखाचित्र के लिए व्यक्ति का आलंबन ही स्वीकारते हैं, घटना या वातावरण का चित्रण उसकी सीमा के अंतर्गत नहीं आता।

उपर्युक्त परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में कह सकते हैं कि रेखाचित्र वह शब्द चित्र है जिसमें व्यक्ति के आलंबन स्वरूप तथ्यों का अंकन किया जाता है।

डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने रेखाचित्र की विवेचना करते हुए लंबी परिभाषा दी है –

"रेखाचित्र, चित्रकला और साहित्य के सुंदर सुहाग से उद्भूत एक अभिनव कला रूप है। रेखा चित्रकार साहित्यकार के साथ–साथ चित्रकार भी होता है। जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका के कलारूप स्पर्श से चित्रपटल पर अंकित विश्रंखल रेखाओं में से कुछ अधिक उभरी हुई रेखाओं को संवार कर एक सजीव रूप प्रदान कर देता है, उसी प्रकार रेखाचित्रकार मनः पटल पर विश्रंखल रूप से बिखरी हुई शत–शत स्मति रेखाओं में से उभरी हुई रमणीय रेखाओं को अपनी कला की तूलिका से स्वानुभूति के रंग से रंजित करके जीते–जागते शब्द चित्र में परिणत कर देता है। यही शब्द चित्र रेखा चित्र कहलाता है।"

हिंदी रेखाचित्र : उद्‌भव एवं विकास

रेखाचित्र की विषय वस्तु की संघटना देशानुरूप होती है। प्रवत्यानुसार रेखा चित्र को भावात्मक, विचारात्मक, विवरणात्मक, वर्णनात्मक, प्रकृति सौंदर्यात्मक, घटनात्मक, वैयक्तिक, समस्यात्मक, प्रतीकात्मक, हास्य व्यंग्यात्मक, संस्मरणात्मक, आत्मकथात्मक, तथ्यात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा राजनीतिक आदि अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

वास्तव में रेखाचित्र चरित्रात्मक ही होता है। यूनानी लेखक थियोफेस्टस ने 'कैरेक्टर्स' में विभिनन वर्गों के व्यक्तियों के रेखाचित्र प्रस्तुत किए थे। हिंदी में रेखा चित्रों का आर्विभाव बीसंवी सदी के तीसरे दशक में हुआ। ऐखा बिन्दु की ओर जनमानस का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय सन् 1938 ई. में प्रकाशित हंस के रेखाचित्र विशेषांक को है। जिसमें पच्चीस रेखा चित्र संकलित हैं। मधुकर ने भी रेखाचित्र विशेषांक निकाले। इन रेखाचित्रों की विषय वस्तु साहित्यकार, पत्रकार, कवि, अध्यापक, कथाकार तथा लेखिकाएं हैं। ये इन रेखाचित्रों ने अपने–अपने क्षेत्र के लब्ध–प्रतिष्ठित व्यक्तियों को ही रेखाचित्र का विषय बनाया है। हिंदी के प्रारंभिक रेखाचित्रों पर अंग्रेजी तथा रूसी रेखा चित्रों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

हिंदी - प्रथम रेखाचित्र – हिंदी में रेखाचित्र सजन का श्रेय पद्‌मसिंह शर्मा 'कमलेश' को है। इन्हें रेखाचित्र का जन्मदाता माना जाता है। इनके रेखाचित्रों का संकलन पद्‌म–पराग है जिसे हिंदी का प्रथम रेखाचित्र एवं पद्‌म सिंह शर्मा कमलेश को प्रथम रेखाचित्रकार माना जाता है। इन्होंने व्यक्ति चरित्रांकन में दक्षता प्रदर्शित की है।

बनारसी दास चतुर्वेदी ने उनके अकबर पर लिखे गए रेखाचित्र को प्रथम रेखाचित्र माना है।

भारतेंदु युग– गद्य की प्रायः प्रत्येक विधा का प्रारंभ भारतेंदु युग में हुआ। रेखा चित्र की स्वतन्त्र स्थापना इस युग में नहीं हो पाई थी। किंतु भारतेंदु के चरित्र प्रधान निबंधों में रेखा चित्र दष्टिगोचर होते हैं।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र– स्वतंत्र रेखाचित्र नहीं लिखे।

प्रताप नारायण मिश्र – आत्माभिव्यंजनात्मक लेखों में रेखाचित्र के तत्व विद्यमान हैं।

पं. बालकृष्ण भट्ट –

बाल मुकुंद गुप्त – दोनों की रचनाओं में रेखाचित्र के तत्व उपलब्ध होते हैं।

द्विवेदी युग – द्विवेदी युग में भी रेखा चित्र का स्वतन्त्र विधा के रूप में विकास नहीं हुआ था। मात्र कुछ लेखकों के चरित्र लेखन में रेखाचित्र का आभास मिलता है।

पद्‌म सिंह शर्मा 'कमलेश' – पद्‌म सिंह शर्मा 'कमलेश' ने इस युग में चरित्रांकन कला में दक्षता प्रदर्शित की। इनके रेखा चित्रों का संकलन 'पद्‌म पराग' है। कमलेश में कला का वह रूप नहीं पाया जाता है जो आज के रेखाचित्रों में उपलब्ध है फिर भी कमलेश के अनुगामी आधुनिक रेखाचित्रकार हैं।

भाषा सर्वसाधारण की है जिसमें अरबी, फारसी, तत्सम तथा तद्‌भव शब्दों का मिश्रण पाठक को भावविभोर कर देता है। भाषा आडंबर विहीन आलंकारिक है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त का कथन द्रष्टव्य है – "आपके रेखा चित्रों की शैली में भी कुछ अपनी विशेषताएं दष्टिगोचर होती हैं। उनमें एक ओर उर्दू का चुलबुलापन भाषा और प्रवाह मिलता है तो दूसरी ओर हिंदी के अनुरूप विषय की गंभीरता विचारों की मौलिकता और प्रतिपादन शैली की प्रौढ़ता दष्टिगोचर होती है।"

श्रीराम शर्मा – सन् 1936 ई. तक हिंदी रेखाचित्रों का प्रकाशन पत्र–पत्रिकाओं में ही होता था। क्योंकि रेखाचित्र की स्वतन्त्र विधा का विकास द्विवेदी युग एवं छायावाद युग के संघि काल में हुआ। श्रीराम शर्मा का सर्वप्रथम रेखा चित्र संग्रह बोलती प्रतिमा सन् 1927 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह पर रूसी लेखक तुर्गनेव के संग्रह जीवित समाधि का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। बोलती प्रतिमा हिंदी का बहुचर्चित रेखाचित्र संकलन है। इन रेखाचित्रों में शर्मा ने ग्रामीण अंचल की समस्याओं, परिवेशों एवं श्रेष्ठताओं का सजीव चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त श्रीराम शर्मा ने 'जंगल के जीव', प्राणों का सौदा तथा वो जीते कैसे आदि संकलन प्रकाशित किए।

बनारसी दास चतुर्वेदी – हिंदी रेखा चित्र विधा को समद्ध बनाने में बनारसी दास का विशेष योगदान रहा है। सन् 1919 ई. में बनारसी दास का प्रथम रेखा चित्र औरंगजेब, मर्यादा में प्रकाशित हुआ। उनके प्रारंभिक रेखाचित्र हमारे साथी तथा प्रकृति

के प्रांगण में नामक पुस्तकों में संगहीत हैं। अपने जीवन में अनेक अनूठे रेखाचित्र हिंदी साहित्य को प्रदान किए। अधिकांश पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके प्रसिद्ध संग्रह – प्रिंस क्रोपाटकिज, रेखाचित्र, सेतुबंध तथा रंगों की बोलती रेखाएं आदि हैं। चतुर्वेदी के अनेक रेखाचित्र पत्र–पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं। जिन्हें संकलित करने की आवश्यकता है। रेखाचित्र इनका सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्र संग्रह है। चतुर्वेदी की कला का पूर्ण परिचय उनके रेखाचित्रों से मिलता है जिनमें उन्होंने सामान्य व्यक्तियों को आधार स्वरूप ग्रहण करके जीवन व्यापिनी करुणा को मूर्तिमान किया है।

इनमें एक सिपाही, संपादक की समाधि तथा अंधी चमारिन आदि आत्म चरित्रात्मक घटना प्रधान चित्र कहे जा सकते हैं। मूलतः इनके रेखाचित्र व्यक्ति प्रधान हैं। सरलता, रोचकता, तथा मनोरंजकता इनकी भाषा शैली की विशेषता है। उनके रेखाचित्र राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत हैं।

रामवक्ष बेनीपुरी – हिंदी रेखाचित्र के साहित्य भंडार को समद्ध करने वाले रामवक्ष बेनीपुरी का अपूर्व योगदान है। बेनीपुरी का प्रतीकात्मक एवं रूपात्मक रेखाचित्र लिखने में विशेष महत्व है। इनकी भाषा में सारल्य, सरसता, अभिव्यक्ति कौशल, सहजता आदि गुण विद्यमान हैं जिसने इनके रेखाचित्रों को महत्वपूर्ण बना दिया। इनके रेखाचित्रों के संग्रह में लालतारा, माटी की मूरतें, गेहूँ और गुलाब, तथा मील का पत्थर आदि उल्लेखनीय हैं। गेहूँ और गुलाब की भूमिका में उन्होंने लिखा है – "ये शब्द चित्र पहले शब्द चित्रों से भिन्न हैं – छोटे, चलते, जीवंत। मैंने कहा – हैंड कैमरा के स्नैप–शॉट, आलोचना ने उस दिन डांटा – हांथी दांत पर की तस्वीरें।" बेनी पुरी ने कला पर उतना ध्यान नहीं दिया है जितना ध्यान विषय विविधता पर केंन्द्रित किया है। जिसके परिणामस्वरूप उनके रेखाचित्र मुखर होकर भी प्रभावोत्पादक नहीं हैं। समाज की कुरूपता को छांट–छांट कर अपने रेखाचित्रों का विषय बनाया है। "तत्कालीन मानव समाज की सम्पूर्ण स्थितियां एवं विवशताएं उनके रेखाचित्रों में मूर्ति हो उठी हैं।" शोषण, वर्ग संघर्ष, सामाजिक अन्याय, असमानता, कृषकों की दयनीय अवस्था, जमींदारी प्रथा के दुष्परिणाम, भ्रष्टाचार, नवीन संस्कृति की आकांक्षा, क्रांतिकारी भावनाएं, ईश्वर धर्म पर व्यंग्य, छुआछूत, जाति पाँति के उत्पन्न विषमताएँ आदि उनके रेखाचित्रों के विषय हैं।

डॉ. प्रभाकर माचवे ने बेनी पुरी के विषय में विचार करते हुए लिखा है –

"बेनीपुरी जी की भाषा शैली में भावोद्रेक के साथ ही शब्दों और व्यंग्य खंडों का संयत गठत हुआ प्रयोग एक अनूठी व्यंजना का निर्माण करता है। वे कहीं कहीं अति भावुकता से शब्दों और विराम चिन्हों का अतिरंजित प्रयोग करते हैं।"

छायावाद युग

श्रीराम शर्मा – श्रीराम शर्मा के रेखाचित्रों का प्रकाशन छायावाद युग में हुआ। चित्रकार साहित्य के रचयिता के रूप में इनको ख्याति मिली किंतु व्यक्तियों के चित्रांतन की विशिष्टता के फलस्वरूप वे सफल रेखाचित्रकार के रूप में हिंदी जगत में प्रसिद्धि मिली। इनके रेखाचित्रों में मानव के साथ–साथ जंगली प्राणियों के जीवन का भी चित्रण किया गया है। इनके रेखा चित्र दीप स्तंभ के समान रेखा चित्रकारों का मार्ग–दर्शन करने में सक्षम एवं समर्थ हैं।

पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला – महाकवि निराला के रेखाचित्र उच्चकोटि के हैं। उनके रेखाचित्रों में कला एवं भावना की प्रधानता है। उनके रेखाचित्रों में चतुरी चमारी, कुल्ली भाट तथा बिल्लेसुर बकरिहा आदि रेखाचित्र आदि प्रसिद्ध हैं।

महादेवी वर्मा – हिंदी रेखाचित्र लेखकों में महादेवी वर्मा सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्र लेखिका हैं। उनके रेखाचित्रों को देखकर ऐसी प्रतीत होता है मानों साक्षात छाया चित्र का अवलोकन कर रहे हों। क्योंकि उनमें फोटो ग्राफी का सौंदर्य समाविष्ट है। महादेवी वर्मा के अतीत के चल चित्र, स्मति की रेखाएं, पथ के साथी तथा मेरा परिवार आदि महत्वपूर्ण रेखाचित्र संग्रह हैं। स्मति की रेखाएं पथ के साथी तथा मेरा परिवार में विशेष रूप से उन्होंने अपने जीवन की उन अनेक कटु–मधुर, करुणा–विगलित स्मतियों को संजो–संवार कर रखा है जिन्होंने उनके जीवन में एक स्थायी स्थान बना लिया है। महादेवी ने स्वयं स्वीकारा है कि इनमें उनका जीवन चित्रित है। अतीत के चलचित्र में निम्न वर्गीय पात्रों की वेदनाओं, अभावों, समस्याओं, संघर्षों, संकटों, शोषण की विविध स्थितियों तथा विशेषताओं का चित्रण किया है। अतीत के चलचित्र के संबंध में डॉ. राजमणि शर्मा का कथन अवलोकनीय है–

"अतीत के चलचित्र' हिंदी की वह धाती है जो सन् 1930–1940 ई. के निम्न मध्यवर्गीय समाज की सच्ची झांकी सदैव संजोए रहेगी। इसमें मानव की आशा, आकांक्षा, निराशा है, कल्पना का ऐसा सजीव जगत है जो अपने वैविध्य में जगमगाकर हमारे समक्ष अपनी निधि खोल देता है।"

डॉ. ब्रजमोहन गुप्त ने उनके विषय में लिखा है –

"लेखिका का निरीक्षण इतना सूक्ष्म है और संवेदना का रंग इतना गहरा और उज्जवल है कि स्मति में जो रेखाएं मात्र थीं – कागज पर उतरकर उनसे करुणा और हास्य व्यंग्य के छाया–प्रकाश में हंसते खेलते उच्चतम मानवीय तत्वों से अनुप्राणित स्पंदन शील चित्र बन गए हैं।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी के रेखाचित्र संस्मरण प्रधान हैं। वास्तविकता यह है कि यह निर्णय करना कठिन है कि वे संस्मरण हैं या रेखाचित्र। क्योंकि उनका नामकरण भी ऐसा है अतीत के चलचित्र तथा स्मति की रेखाएं। अतीत एवं स्मति एक भाव के बोधक हैं तो चलचित्र संस्मरण तथा रेखाएं रेखाचित्र द्योतन करती हैं। वास्तव में दोनों का सुंदर समन्वय है।

छायावादोत्तर युग

यह युग रेखाचित्र का उत्कर्ष युग है। इस युग में सर्वाधिक रेखाचित्रकार हुए एवं रेखाचित्र लिखे गए। विषय की व्यापकता तथा रेखाचित्र की उत्कर्षता इसी युग में आई। लेखकों ने रेखाचित्र के सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

प्रकाशचन्द्र गुप्त – आधुनिक रेखाचित्र लेखकों में प्रकाशचन्द्र गुप्त का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अनेक रेखाचित्र लिखे हैं। इनके रेखाचित्र संग्रह में पुरानी स्मतियां और नए स्केच तथा रेखाचित्र प्रमुख हैं। इनके रेखाचित्रों में मानवता की प्रेरणा को प्रमुखता दी गई है। वास्तव में गुप्त का यह प्रयत्न हिंदी रेखाचित्र साहित्य में सर्वप्रथम, मौलिक एवं सर्वथा नवीन है।

देवेन्द्र सत्यार्थी – भावात्मक रेखा चित्रकारों में देवेन्द्र सत्यार्थी का नाम महत्वपूर्ण है। उन्होंने अति सजीव तथा भाव प्रवण रेखाचित्रों की रचना की है। रेखाएं बोल उठीं। तथा अन्य संग्रहों में संगहीत रेखा चित्रों में उनका ध्यान विशेष रूप से भावों तथा तथ्यों पर केन्द्रित होता गया है। उनके रेखाएं बोल उठीं संग्रह में संगहीत दादा–दादी के चित्र, चिर नूतन चित्र तथा अच्छे भले आदमी की बात आदि रेखाचित्रों में जहां तथ्य निरूपण का प्राचुर्य है वहीं रेखाएं बोल उठी, सौंदर्य बोध तथा आज मेरा जन्म दिन है में भावात्मकता की अधिकता विद्यमान है। रेखाचित्र प्रायः भावात्मक शैली में लिखे जाने के परिणामस्वरूप गद्य काव्य जैसा सौंदर्य प्रस्तुत करते हैं। तथ्य निरूपक रेखाचित्रों में मार्मिकता का अभाव है।

कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर – वर्तमान हिंदी रेखा चित्रकारों में कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर उत्कृष्ट रेखाचित्रकार हैं। इनके रेखाचित्र संग्रहों में नई पीढ़ी के विचार, भूले हुए चेहरे, जिंदगी मुस्कुराई, माटी हो गई सोना, दीप जले शंख बजे, मंहके आंगन चहके द्वार तथा क्षण बोले कण मुस्काए आदि प्रमुख हैं। सभी संग्रहों में विशेषकर जिंदगी मुस्कुराई में प्रभाकर ने जिस प्रकार अपने पात्रों के अंतस्तल का सूक्ष्म चित्रांकन कर उनके जीवन के प्रति सहृदय की भावना को अत्यधिक गहनता प्रदान कर दी है, वह सराहनीय है। इनका एक रेखाचित्र मंजर अली सोख्ता पर लिखा गया है जिसकी प्रशंसा बनारसीदास चतुर्वेदी ने खुले दिल से की है।

राहुल सांकृत्यायन – समस्याजनक रेखाचित्र लिखने वालों में राहुल का नाम अग्रणी है। राहुल किसी भी समस्या को लेकर उसका शब्द चित्र प्रस्तुत करने में सिद्धस्त हैं। उनका रेखाचित्र रूपी विशेष उल्लेखनीय है जिसमें वेश्यावति की समस्या को उभारा गया है। उन्होंने अनेक रेखाचित्र लिखे हैं जो पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे।

हर्षदेव मालवीय – हिंदी में व्यंग्यात्मक रेखाचित्र लेखकों में हर्षदेव मालवीय को प्रसिद्धि मिली है। इनके पुराने तथा पोंगल गुरू रेखा–चित्रों को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है।

विनय मोहन शर्मा – इनके रेखाचित्रों का संग्रह 'रेखा और रंग है' है जिसमें चौदह रेखाचित्र संगहीत हैं। इसमें पूसी बिल्ली से लेकर वक्ष, चिड़िया, थर्ड क्लास तक के विषय हैं। व्यक्तियों में डबली बाबू, घर के नौकर, वकील साहब, जग्गू काका, कन्हैया, बदलू धोबी, बंसी, इला, मास्टर साहब तक उनका प्रसार है। विनय मोहन शर्मा पात्रों के बहिरंग पर ऐसी दष्टि डालते हैं कि वे मूर्तिमान होकर पाठकों के समक्ष सजीव एवं साकार हो जाते हैं।

विष्णु प्रभाकर – आधुनिक रेखा चित्रकारों में विष्णु प्रभाकर की रचना प्रक्रिया द्वंद्वमयी होने के कारण व्यक्ति और वस्तु के बहिरंग तक ही सीमित नहीं रहती वरन भीतर और बाहर के द्वंद्व को उजागर करने का प्रयास करती है। वास्तव में प्रभाकर वातावरण और वस्तुओं के माध्यम से व्यक्तित्व की विशेषताओं को उद्‌घाटित करने में पारंगत हैं।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'– अज्ञेय ने अनेक रेखाचित्रों की सजना की है। उनका रेखाचित्र संग्रह एक बूंद सहसा उछली है जिसमें अनेक सुंदर रेखाचित्रों को संगहीत किया गया है। अज्ञेय की दष्टि इतनी पैनी और तीखी है कि वह दश्य तथा अंतस्तल पर एक ही साथ जा पड़ती है। वे देश तथा दश्य को एक नहीं मानते हैं उनकी विभिन्न अवस्थाएं मानकर अग्रसर होते रहते हैं। वे तो किसी भी स्थिति को प्रवाहमान धारा के रूप में देखने के अभ्यस्त हैं अतः दश्य या व्यक्ति के माध्यम से वे हमें कुछ दे जाते हैं जो अन्यों के लिए अजूबा बना रहता है।

अन्य रेखाचित्रकार – कुछ अन्य रेखा चित्रकारों ने भी इस विधा के विकास में पर्याप्त योगदान किया है जिनमें उदयशंकर भट्ट, उपेंद्र नाथ अश्क, सुरेंद्र नाथ दीक्षित, महावीर अधिकारी, फणीश्वर नाथ रेणु, वंदा लाल शर्मा, प्रो. कपिल, पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी, हरिशंकर शर्मा, गुलाब राय, डॉ. नगेंद्र, अमत लाल नागर, ओंकरा शरद, डॉ. राम विलास शर्मा, डॉ. राम शंकर त्रिपाठी तथा डॉ. प्रेम नारायण टंडन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक काल में रेखाचित्र विधा का विकास ज्योति तुल्य है। विभिन्न परिवेशों को विषय रूप में ग्रहणकर रेखचित्र लिखे जा रहे हैं। इनके विकास में पत्र–पत्रिकाओं का भी विशेष योगदान है। अभिनंनदन ग्रंथों के रूप में भी रेखाचित्र विधा का व्यापक उत्कर्ष–उन्नयन, प्रचार–प्रसार हो रहा है।

30. जीवनी

भारतीय साहित्य में पाश्चात्य साहित्य जैसी जीवनी लिखने की परंपरा नहीं रही है। जीवनी के विषय में विचार विश्लेषण करते हुए अमत राय ने लिखा कि यह अकाट्य सत्य है कि हमारे यहाँ जीवनियों का एक सिरे से अकाल है, जबकि यूरोप की जबानों में यह चीज़ आसमान पर पहुँची हुई है, कोई बड़ा साहित्यकार नहीं है, कलाकार नहीं है, वैज्ञानिक नहीं है, जननायक नहीं हैं, जिसकी कई–कई जीवनियां, एक से एक अच्छी न हों।

भारतीय आत्म प्रकाशन के स्थान पर आत्म गोपन को महत्व देता है जबकि जीवनी साहित्य गोपन के स्थान पर प्रकाशन में विश्वास करता है। कृष्णानंद गुप्त ने इस विषय में लिखा है–

"हमारे देश के प्राचीन साहित्यकारों ने अपने विषय में कभी कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझी। यहाँ तक कि दूसरों के संबंध में भी वे सदा चुप रहे हैं। इसी से हमारे यहां आधुनिक युग में जिसे इतिहास कहते हैं वह नही है, जीवन चरित भी नहीं है और आत्म कथा नाम की चीज तो बिलकुल नहीं नहीं है।"

भारतीय जीवन दष्टि व्यष्टिमूलक न होकर समष्टिमूलक है। व्यक्तिवादी अपने को अन्यों के समक्ष रखने तथा अन्य के व्यक्तित्व का उद्‌घाटन करने में विश्वास रखता है। जीवन में व्यष्टिवादी महत्व को प्रतिपादित करते हुए विश्वनाथ सिंह ने लिखा है–

"जीवनी और आत्म कथा के लिए लौकिक दष्टिकोण के अतिरिक्त व्यष्टिमूलकता भी होनी चाहिए, जिसका अभाव लौकिक संस्कृत में भी रहा है। भारतीय मनीषियों की चेतना इस काल में भी समष्टिमूलक रही है। वे समष्टि में ही अपना व्यष्टि विलीन कर देने के पक्षपाती थे।"

जिसके परिणामस्वरूप संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश में जीवनी साहित्य का अभाव रहा है।

हिंदी साहित्य के आरंभिक काल में जीवनी का प्रारंभिकरूप चरित काव्यों तक सीमित रहा है।

मध्यकाल में संतों, भक्तों एवं महात्माओं के जीवन चरित लिखने की परंपरा प्रोत्साहित हुई। भक्ति कालीन कवियों की श्रद्धा भावना ने उनकी जीवनी लिखने की प्रेरणा दी। संतों के जीवन चरित को परचई, परिचय कहा गया। ऐसी परचईयों में कबीर जी की परचई, नामदेव जी की परचई, रैदास जी की परचई तथा मलूकदास जी की परचई आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके पश्चात् भक्तों के जीवन चरित्र संबंधी ग्रन्थों में नाभादास – भक्त माल, गोकुल नाथ चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता तथा अष्ट सरवान की वार्ता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। अष्ट सरवान की अभिप्राय अष्ट छाप के कवियों से है। इन ग्रंथों का सजन वैष्णव धर्म की वद्धि एवं पुष्टि हेतु किया गया है इसलिए इनमें तथ्यों का अभाव होने के कारण इन्हें जीवनी ग्रंथ की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

वार्ता ग्रंथों के अतिरिक्त इस काल में आचार्य केशव दास – वीर सिंह चरित – सन् 1906 ई., जहांगीर–जस–चंद्रिका सन् 1621 ई.; सूदन – सुजान चरित तथा चंद्रशेखर – हम्मीर हठ – सन् 1845 ई. आदि चरित काव्य की परंपरा में आते हैं।

जीवनी विकास

आधुनिक काल में जीवनी साहित्य का प्रारंभ हुआ।

भारतेंदु युग – गद्य की अन्य विधाओं की भाँति जीवनी साहित्य का श्रीगणेश भी भारतेंदु युग में हुआ। इस युग में आते ही जीवनी ने प्राचीन रूप का परित्याग करके नवीन रूप धारण किया तथा जीवनी गद्य साहित्य को विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। राष्ट्रीय पष्ठभूमि में जीवनी लेखन का अवसर प्रदान किया। अनेक जीवनियाँ प्रकाश में आई। जिनमें संत, महात्मा, राजा, विदेशी शासक, नेता, देशभक्त, क्रांतिकारी युवा तथा साहित्यकार का जीवन चरित प्रमुख रूप से उकेरा गया।

प्रथम जीवनी साहित्य – सर्वप्रथम जीवनी साहित्य भारतेंदु कृत 'चरितावली' है। उसके पश्चात् भारद्वाज कृर्त हिंदी जीवनी साहित्य : सिद्धांत और अध्ययन है। तथा प्रथम जीवन लेखक डॉ. भगवान शरण भारद्वाज हैं। इस ग्रंथ में भारतेंदु से स्वतन्त्रता

प्रापित से पूर्व तक लिखित सैकड़ों जीवनियों की सूची प्रस्तुत की गई है। साहित्यिक जीवनी कार्तिक प्रसाद खत्री द्वारा लिखित मीराबाई का जीवन चरित्र सन् 1893 ई. है।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र – भारतेंदु हरिश्चन्द्र साहित्य की अन्य विधाओं के साथ जीवनी लेखन में अग्रगण्य रहे हैं उनके द्वारा लिखी जीवनी 'चरितावली' है। जिसमें विभिन्न क्षेत्रों के महत्वपूर्ण व्यक्तियों के संक्षिप्त जीवन चरित लिखे हैं। उसके पश्चात् पंच पवित्रात्मा – सन् 1884 ई. उल्लेखनीय हैं। इसमें मुस्लिम धर्माचार्यों – महात्मा मुहम्मद, मुहम्मद अली, बीवी फातिमा तथा इमाम हसन – इमाम हुसैन की संक्षिप्त जीवनियां लिखी हैं।

छायावाद युग

छायावाद युग में जीवनी साहित्य का विकास होने लगा। धार्मिक, सामजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के कर्मठ कार्यकर्ताओं की जीवनियाँ लिखी जाने लगीं जो प्रेरणा तथा उत्साहवर्धक प्रमाणित हुईं। ऐसी जीवनियों में प्रमुख जीवनियाँ निम्नलिखित हैं –

स्वामी सत्यानंद – श्रीमद् दयानंद प्रकाश – सन् 1918 ई.

शिवनारायण टंडन – पंडित जवाहर लाल नेहरू सन् 1937 ई.

जगतपति चतुर्वेदी – लाला लाजपत राय – सन् 1933 ई.

श्री ब्रजेंद्र शंकर – श्री सुभाषा बोस – सन् 1938 ई.

मंमथ नाथ गुप्त – चन्द्र शेखर आजाद – सन् 1938 ई.

रामनाथ लाल 'सुमन' – मोती लाल नेहरू – सन् 1939 ई.

घनश्याम दास बिड़ला – बापू – सन् 1940 ई.

कार्तिक प्रसाद खत्री – जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि साहित्यिक जीवनी लेखकों में कार्तिक प्रसाद खत्री प्रथम जीवनी लेखक तथा इनके द्वारा लिखित मीराबाई का जीवन चरित्र – सन् 1893 ई प्रथम जीवनी है। ये सफल जीवनी लेखक थे। जीवनी लेखन में इनका पदार्पण जीवनी साहित्य के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

शिवनंदन सहाय – शिव नंदन सहाय ने 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र' लिखा। इस जीवनी में भारतेंदु के जीवन की पूर्णता दष्टिगोचर होती है। इसकी भाषा की सरसता एवं रोचकता ने इसे सफल जीवनी साहित्य का रूप प्रदान किया। शिवनंदन सहाय द्वारा लिखित दूसरी जीवनी गोस्वामी तुलसीदास सन् 1916 ई. है। यह जीवनी दो खंडों में विभक्त है।

बनारसी दास चुतर्वेदी – बनारसी दास चतुर्वेदी ने कविरत्न सत्यनारायण की जीवनी सन् 1926 ई. लिखी है। यह जीवनी उल्लेखनीय है। इसका महत्व इसलिए और अधिक है क्योंकि इसमें एक साधारण व्यक्ति का जीवन चरित मानवीय रूप में प्रस्तुत किया गया है।

छायावादोत्तर युग

श्रीमती शिव रानी देवी – प्रेम चंद का स्वर्गवास छायावाद युग में ही हो गया था। शिवरानी देवी छायावादोत्तर युग की लेखिका हैं। इन्होंने प्रेमचन्द घर में सन् 1944 ई. में प्रकाशित कराया जिसमें प्रेमचंद का जीवन चरित वर्णित है। यह महत्वपूर्ण जीवनी है। इसकी शैली संस्मरणात्मक, भाषा सरल, सहज एवं मनोरम है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिंदी जीवनी लेखन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया। इसलिए इसे हिंदी जीवनी लेखन का चरमोत्कर्ष काल कहा जाता है। इस समय विश्वव्यापी वैज्ञानिक प्रगति हुई। मानव भौतिकवादी दष्टिकोण के कारण नैतिक मूल्यों का ह्रास होने लगा। राष्ट्र के प्रति मानव का मोहभंग यातनापूर्ण प्रतिक्रियाओं को जन्म देने लगा। मानव जीवन का कठोर यथार्थता से परिचय होने लगा जिसके परिणामस्वरूप युग के परिवेश में मानव–जीवन पढ़ा जाने लगा तथा वस्तुपरक कलात्मक अभिव्यक्ति का जन्म हुआ। फलस्वरूप जीवनी लेखन कला का महत्व बढ़ने लगा तथा कला की दष्टि से इस युग की जीवनियां अद्वितीय रूप ग्रहण कर गई।

इस युग में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक नेताओं, राष्ट्रीय क्रांतिकारियों तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकारों की अनेक जीवनियां लिखी गई हैं।

आध्यात्मिक जीवनियां

पंडित ललिता प्रसाद – इन्होंने धार्मिक सामाजिक संत–महात्माओं की जीवनियां लिखी हैं जिनमें सन् 1947 ई. में श्री हरिबाबा की जीवनी प्रमुख है।

रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर – रंगनाथ राम चंद्र ने श्री अरविंद की जीवनी महायोगी लिखी।

राजनीतिक जीवनियां

महा पंडित राहुल सांकृत्यायन – राजनीतिक महापुरुषों की जीवनी को आधार बनाकर जीवनियाँ लिखने वालों में सांकृत्यायन का नाम सर्वोपरि है। इन्होंने साम्यवादी विचारकों को अपनी जीवनी लेखन के विषय के रूप में चयन किया। सन् 1953 ई. में स्तालिन, सन् 1954 ई. में कार्ल मार्क्स एवं लेनिन तथा सन् 1956 ई. में माओत्से तुंग की जीवनियां लिखीं। सांकृत्यायन द्वारा लिखित इन जीवनियों में राजनेताओं के बाह्ययांतरिक जीवन का सूक्ष्म स्थूल, विवेचन – विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किया गया है। अपितु उनके मार्क्सवादी जीवन–दर्शन का ही प्रतिपादन किया गया है। राहुल की निष्ठा मार्क्सवाद में थी इसलिए उन्होंने स्वनिष्ठानुसार लोगों में साम्यवादी निष्ठा जागत करने के लिए ये जीवनियाँ लिखी हैं।

रामवक्ष बेनीपुरी – रामवक्ष बेनीपुरी ने राजनीतिक नेताओं को जीवनियों का आधार बनाया है। इन्होंने कार्ल मार्क्स तथा जयप्रकाश नारायण नामक जीवनियां लिखीं जिनका विशेष महत्व है। इन जीवनियों में बेनी पुरी ने अपना हृदय रस उड़ेल दिया है। जिससे उनके चरित नायकों का जीवन उभर कर सामने आया है।

साठोत्तरी युग –

सन् 1960 ई. के बाद के काल में साठोत्तरी युग कहा गया है। स्वतन्त्रता के लगभग 12–13 वर्षों के पश्चात् जीवनी लेखन में नया मोड़ आया। जीवन धारा में परिवर्तन आया। देश विकास की ओर अग्रसर हुआ। नैतिक मूल्यों में बदलाव आया। आध्यात्मिकता का स्थान भौतिकता ने ले लिया।

ओंकार शरद – ओंकार शरद ने प्रसिद्ध समाजसेवी नेता डॉ. राम मनोहर लोहिया को जीवनी लेखन का विषय चुना। सन् 1971 ई. में लोहिया एवं स्वर्गीय प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी की जीवनी' धरती की बेटी आकाश हो गई लिखी।

डॉ. चन्द्र शेखर – डॉ. चन्द्र शेखर ने सन् 1985 ई. में स्व. राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह की जीवन यात्रा लिखी।

राजनीतिक व्यक्तियों पर लिखित जीवनियों के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वतन्त्रता से पूर्व राजनीतिक व्यक्तियों की जीवनियों के लेखन में उनके लेखक अपने चरित नायकों के राजनीतिक क्रिया कलापों के उल्लेख को अपनी उपलब्धि स्वीकारते थे इसलिए उनके मानवीय पक्षों की उपेक्षा की है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जीवनी लेखकों की विचारधारा में महान परिवर्तन आया है उन्होंने अपने चरित नायकों के अंतर्बाह्य गुणों को भी उभारा है जो उनका प्रशंसनीय कार्य है।

क्रांतिकारी जीवनियां

राजनीतिक नेताओं के अतिरिक्त जीवनी–लेखकों का ध्यान क्रांतिकारियों की ओर भी गया है। सुप्रसिद्ध क्रांतिकारियों की जीवनियां लिखी गई जिनमें –

विश्वनाथ वैषंपायन – अमर शहीद चंद्रशेखर – सन् 1965 ई.।

प्रो. वीरेंद्र सिंधु– युग द्रष्टा भगत सिंह और उनके मत्युंजय पुरखे – सन 1968 ई.

धर्मवीर – लाला हर दयाल – सन् 1970 ई.

मंमथनाथ गुप्त – क्रांतिदूत भगत सिंह और उनका युग – स. 1962।

साहित्यिक जीवनियाँ – जीवनियाँ तो सभी साहित्यिक गुणों से संपक्त होकर साहित्यिक होती हैं किंतु इनमें साहित्यकारों

के जीवन एवं उनकी कृतियों को जीवनी का विषय बनाया गया है जिनमें प्रमुख जीवनियां निम्नलिखित हैं–

ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ – बरुआ सुप्रसिद्ध पत्रकार हैं। इन्होंने जीवनी लिखी है –

माखन लाल चतुर्वेदी – सन् 1960 ई.

अमत राय – प्रेमचंद कलम के सिपाही – सन् 1962 ई.।

डॉ. रामविलास शर्मा – निराला की साहित्य साधना – (प्रथम खंड जीवन चरित) – सन् 1969 ई.

विष्णु प्रभाकर – शरत् चन्द्र की जीवनी – आवारा मसीहा सन् 1968 ई.।

हिंदी जीवनी के विकास क्रम विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी जीवनी लेखक का प्रारंभिक हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल से ही हो गया था किंतु रीति काल तक उनमें साहित्यिक रूप नहीं आ पाया था। माध्यम गद्य न होकर पद्य था। इसलिए उनको जीवनी की संज्ञा नहीं दे सकते। भारतेंदु युग से जीवनी का वास्तविक प्रारंभ माना जाना चाहिए। आधुनिक काल जीवनी लेखन का उत्कर्ष युग माना जाता है। इस काल में नेता, शासक, देशभक्त, क्रांतिकारी, तथा साहित्यकारों की जीवनियां लिखी गईं। जीवनी लेखन के तत्वों तथा मानदण्डों के अनुसार अनेक श्रेष्ठ जीवनियां सामने आईं।

वर्तमान समय में हिंदी का जीवनी – साहित्य जीवनी लेखन की कला तथा मानदंड के अनुसार अत्यधिक समद्ध हो गया है जिसमें गुणात्मकता एवं परिमाण दोनों दष्टियों से प्रगति दष्टिगोचर हो रही है। जीवनी लेखन का भविष्य उज्जवल है आज यह युग की मांग है।

31. आत्मकथा

आत्म कथा का सामान्य अर्थ अपनी कहानी लेखक की जुबानी होता है। अथवा अपने संबंध में स्वयं कही या लिखी बातें। साहित्य में ऐसी पुस्तक जिसमें किसी व्यक्ति ने अपने जीवन की सभी मुख्य मुख्य बातों का वर्णन किया हो। इसे आत्म चरित भी कहते हैं। इसका अंग्रेजी पर्याय आटोबायोग्राफी है। कोई भी व्यक्ति आत्म कथा अपने जीवन के उत्तरार्द्ध के अंतिम भाग में लिखता है। उस समय जीवन की संपूर्ण घटनाएं यथातथ्य उसके समक्ष नहीं होती हैं। उनको संस्मरणों के सहारे स्मति पटल पर अंकित करके आत्मकथा का सजन करता है। इसलिए आत्म कथा को हिंदी गद्य साहित्य की एक संस्मरणात्मक विधा कहा गया है। संस्मरणात्मक होने पर भी यह संस्मरण नहीं है उससे भिन्न विधा है। हिंदी साहित्य की आधुनिक नवीन विधाओं में आत्म कथा गद्य की प्रमुख विधा है। हिंदी में आत्मकथा लेखन की परंपरा अन्य भाषाओं की अपेक्षा अत्यल्प है। तात्विक विवेचन एवं यथार्थ की प्रधानता के अनुसार अन्य विधाओं से अधिक पुष्ट एवं प्रामाणिक विधा है। स्वयं अपने अतीत जीवन का व्यवस्थित क्रमिक वर्णन आत्मकथा को जन्म देता है।

आत्म कथा का शाब्दिक अर्थ अपनी कहानी होता है। आत्म कथा ऐसी जीवन कथा है जो उसी व्यक्ति द्वारा लिखी जाती है जिसके जीवन वत का वर्णन अभीष्ट होता है। इसे आत्मचरित या आत्मचरित्र भी कहा जा सकता है।

इसमें लेखक अपने गुण दोषों तथा सुर्घटनाओं–दुघटनाओं का वर्णन निष्पक्ष भाव से करता है। वैयक्तिक जीवन की घटनाओं का सुखदुखात्मक कैसी भी हों यथार्थ रूप में वर्णन करता है।

प्रथम आत्मकथा

हिंदी आत्म कथा का साहित्य लगभग 400 वर्ष पुराना है। प्राचीनतम आत्म कथा बनारसी दास जैन द्वारा लिखी गई। सन् 1641 ई. की रचना अर्द्धकथा है। इसके विषय में संपादक का कथन द्रष्टव्य है।

"कदाचित समस्त आधुनिक आर्य–भाषा साहित्य में इससे पूर्व कोई आत्म कथा नहीं है।" डॉ. राम चन्द्र तिवारी ने भी आत्म कथा लेखन का प्रारंभ यहीं से माना है। उनका कथन उल्लेखनीय है–

'आत्मकथा लिखने वालों में जिस निरपेक्ष एवं तटस्थ दष्टि की आवश्यकता होती है। वह निश्चय ही बनारसी दास में थी। उसने अपने सारे गुण दोषों को सच्चाई के साथ व्यक्त किया है। यह आत्म कथा पद्य में लिखी गई है। इसके अतिरिक्त पूरे मध्यकाल में किसी अन्य आत्मकथा का उल्लेख नहीं मिलता।"

इस आत्मकथा में अकबर के समय के परिवेशों का यथार्थ चित्रांकन हुआ है। पद्य बद्ध होने कारण इसे प्रथम आत्म कथा श्रेय न हीं दिया जा सकता है। उसके बाद कुछ दिनों तक आत्म कथा नहीं लिखी गई है।

गद्य की अन्य विधाओं की भांति आत्म कथा भारतेंदु युग में ही मानना श्रेयस्कर है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र प्रथम आत्म कथा लेखक तथा कुछ आप बीती कुछ जग बीती प्रथम आत्म कथा है।

भारतेंदु युग

भारतेन्दु हरिशचंद्र बहुमुखी प्रमिभा के साहित्यकार थे। अधिकांश विद्वानों ने प्रथम कथा लेखन का श्रेय भारतेंदु हरिशचन्द्र को दिया गया है।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र – भारतेंदु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित आत्म कथा कुछ आप बीती कुछ जग बीती में उनकी युवावस्था की रोचक काव्यात्मक घटनाएं प्रस्तुत की गई हैं किन्तु यह आत्म कथा पूर्ण नहीं अपूर्ण है।

पं. अंबिका दत्त व्यास – व्यास हरिश्चन्द्र के समकालीन आत्मकथा लेखक थे। इन्होंने निज वत्तांत नामक आत्म कथा लिखी है।

इसके पश्चात् आत्मकथा लेखक निम्नलिखित हैं–

सत्यानंद अग्निहोत्री – मुझमें देव जीवन का विकास।

स्वामी श्रद्धा नंद – कल्याण पथ का पथिक – आदि इस युग की आत्म कथाओं की भाषा शिथि ल है किंतु तथ्य परक स्पष्टता अति उत्कृष्ट है।

द्विवेदी युग – द्विवेदी युग के प्रथम एवं प्रमुख साहित्यकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं। इन्होंने 'सरस्वती' में अपनी ''अधूरी कहानी' प्रकाशित करवाई।

महावीर प्रसाद द्विवेदी – अधूरी कहानी

पं. देवी दत्त शुक्ल

पदुम लाल पुन्नामल बख्शी

श्याम सुंदर दास – इनकी आत्म कथा मेरी आत्म कहानी सन् 1941 ई. में प्रकाशित हुई। इसके विषय में हरदयाल का कथन अवलोकनीय है –

"श्याम सुंदर दास की 'मेरी आत्म कहानी' सन् 1941 ई. में प्रकाशित हुई। यह बड़ी सुगठित और समद्ध आत्म कथा है इसमें साहित्यिक शैली में बाबू श्यान सुंदर दास ने अपने जीवन के साथ–साथ उस समय के साहित्यिक इतिहास को प्रस्तुत किया है।"

जयशंकर प्रसाद – पद्यमय आत्म कथा लिखी।

मुंशी प्रेम चंद - मेरी कहानी।

श्री वियोगी हरि – मेरा जीवन प्रवाह भावात्मक शैली।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद – आत्म कथा – राजनीतिक।

भाई परमानंद – आप बीती।

रामविलास शुक्ल – मैं क्रांतिकारी कैसे बना।

वास्तव में सभी आत्मकथाएं मात्र लेखकों के जीवन वत का ही द्योतन नहीं करती हैं अपितु इनमें समसामयिक परिवेश सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक आदि का चित्रण किया गया है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

इस युग तक आते आते आत्म कथा बहुमुखी हो गई। स्वाधीन भारत की चिंतन प्रणाली में परिवर्तन आ गया। इस युग की प्रथम आत्म कथा यशपाल ने लिखी।

यशपाल – सिंहावलोकन – इसमें क्रांतिकारियों की आत्मकथा की मार्मिकता उल्लेखनीय है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' – उग्र ने अपने बीस वर्षो की कथा को निष्पक्ष किंतु कलात्मक ढंग से प्रतिपादित किया।

सेठ गोविंद दास – आत्म निरीक्षण (तीन भाग)।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री – मेरी आत्म कहानी।

वंदावन लाल शर्मा – अपनी कहानी।

डॉ. हरिवंश राय बच्चन – इधर एक दशक में सबसे महत्वपूर्ण आत्म कथा डॉ. हरिवंश राय बच्चन ने चार खंडों में प्रकाशित की है।

1. क्या भूलूं क्या याद करूं।
2. नीड़ का निर्माण फिर।
3. बसेरे से दूर और
4. दश द्वार से सोपान तक।

बच्चन ने इन्हें स्मति यात्रा–यज्ञ नाम दिया है। इनके विषय में डॉ. रामचन्द्र तिवारी का कथन उल्लेखनीय है –

"इसमें उनका प्रारंभिक जीवन – संघर्ष, इलाहाबाद विश्व विद्यालय के अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर के अनेक संदर्भ, केंब्रिज विश्वविद्यालय के उनके अनुभव, केंब्रिज से डाक्टरेट करके लौटने पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उनकी उपेक्षा, उनकी अनुपस्थिति में उनके परिवार का असुरक्षित अनुभव करना, इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर हिंदी प्रोड्यूसर का उनका अनुभव, विदेश मंत्रालय में ऑफिसर आन स्पेशल ड्यूटी (हिंदी) के रूप में राजनयिक कार्यों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए किए गए उनके प्रयत्न, सचिवालय के सचिवों की मानसिकता तथा वहां से अवकाश लेने के बाद उनका जीवन अनुभव एक वहद् उपन्यास की रोचक शैली में जीवंत और साकार हो उठा है। इस स्मति यात्रा यज्ञ में प्रकारांतर से स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद का हिंदी भाषा और साहित्य का पूरा संघर्ष ही मूर्त हो गया है। इस आत्मकथा में संस्मरण, यात्रावत, कविता, साक्षात्कार, नैरेशन आदि अनेक विधाएं और शैलियां गुंफित हैं। सबसे बड़ी बात है – लेखक के आत्म स्वीकार का साहस।"

डॉ. बच्चन की आत्मकथा के विषय में धर्मवीर भारती ने लिखा है –

"हिंदी में अपने बारे में सब कुछ इतनी बेबाकी, साहस और सद्भावना से कह देना यह पहली बार हुआ है।"

डॉ. देवराज उपाध्याय – यौवन के द्वार पर

राजकमल चौधरी – भैरवी तंत्र।

साठोत्तरी युग

डॉ. रामविलास शर्मा – घर की बात राम विलास शर्मा की विस्तत आत्म कथा है जिसके विषय में स्वयं डॉ. राम विलास शर्मा ने लिखा है –

"घर की बात में वैज्ञानिक विवेचन कम, मानवीय संबंधों का चित्रण अधिक है। .....इसमें कई पीढ़ियों के लेखक और वार्ताकार सम्मिलित हैं।"

शिव पूजन सहाय– मेरा जीवन आत्म कथा में शिव पूजन सहाय के वैयक्तिक जीवन उभर कर सामने आया है साथ साथ अनेक साहित्यकारों, साहित्यिक घटनाओं तथा विभिन्न संदर्भों का प्रामाणिक दस्तावेज भी पाठक के समक्ष उपस्थित हो गया है।

कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर – तपती पगडंडियों पर पद यात्रा में कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर के तेजस्वी, सैद्धांतिक तथा कर्तव्यपरायण व्यक्तित्व के अनेक पक्षों का उद्घाटन हुआ है।

फणीश्वर नाथ रेणु – फणीश्वर नाथ रेणु की आत्मकथा आत्म परिचय है जिसमें उन्होंने अपने जीवन तथा रचना संघर्ष को अति स्वाभाविक ढंग से वर्णित किया है।

डॉ. नगेन्द्र – डॉ. नगेंद्र की आत्म कथा अर्धकथा है जिसमें उनके जीवन का अर्ध सत्य अभिव्यक्ति पर पा सका है। डॉ. नगेंद्र ने स्वयं लिखा है –

"यह मेरे जीवन का केवल अर्ध सत्य है – अर्थात् उपर्युक्त तीन खंडों में मैने केवल अपने बहिरंग जीवन का ही विवरण दिया है।..... जहां तक अंतरंग जीवन का प्रश्न है, वह नितांत मेरा अपना है – आपको उसका सहभागी बनाने की उदारता मुझमें नहीं है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि डॉ. नग्रेंद्र ने अपनी आत्म कथा 'अर्ध कथा' में वास्तव में आधे अधूरे सत्य को ही उद्घाटित किया है जीवन की गोपनीयता या रहस्य का उद्घाटन नहीं किया है उसके विषय में चुप्पी साध ली है।

अमत लाल नागर – अमत लाल नागर की आत्मकथा टुकड़े–टुकड़े दास्तान है। आत्मकथा की भूमिका में उन्होंने कहा है–

"मैं पत्थर पर अकेरी गई ऐसी मूर्ति हूं जो कहीं कहीं छूट गई हो।"

वास्तव में इसमें कथा रस लबालब भरा है। इस आत्मकथा को आधुनिक जागरण का जीवंत इतिहास कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी।

राम दरश मिश्र – राम दरश मिश्र की आत्म कथा सहचर है समय के नाम से प्रकाशित हुई है यह चार भागों – 1. जहां मैं खड़ा हूं, 2. रोशनी की पगडंडियां, 3. टूटते बनते दिन तथा 4. उत्तर पथ में लिखी गई है। इसमें स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण परिस्थितियों से बाहर निकलकर, संघर्षरत अपने मार्ग का अनुसंधान करता हुआ, लक्ष्य की खोज में मग्न साहित्यकार सांसारिक अनुभव को अपनी व्यापकता में समेटे हुए ऐसा प्रतीत होता है मानो आधा भारत ही उसमें सिमट कर सजीव हो उठा है।

डॉ. रामदरश मिश्र की आत्मकथा सहचर है समय के विषय में डॉ. रामचंद्र तिवारी ने लिखा है "इसमें रामदरश मिश्र ही नहीं आज की पूरी साहित्यिक पीढ़ी है, बनते–बिगड़ते गांव हैं जिनका जीवन रस सूख रहा है, उभरते हुए नगर हैं जिनमें मनुष्यता मर रही है और सैकड़ों सामान्य लोग हैं जिनके रोजी रोटी के लिए किए जाने वाले ऊपरी खुरदुरे संघर्ष के भीतर संवेदना और सहानुभूति की तरल धारा आज भी प्रवाहित हो रही है। सचमुच यह आत्म कथा आज के भारत के सामान्य आदमी के जीवन का दस्तावेज है।"

उपर्युक्त आत्मकथाओं के अतिरिक्त अनेक आत्मकथाकारों की आत्म–कथाएं जिनमें स्वतन्त्र रूप से छपाने की सामर्थ या क्षमता नहीं है अथवा छपास नहीं है वे आत्म कथाएं 'सारिका' नामक पत्रिका के गर्दिश के दिन नामक स्तंभ में प्रकाशित होती रही है। ऐसे आत्म कथा लेखकों में भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, कामता नाथ दूध नाथ सिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जिनकी संघर्षपूर्ण आत्मकथाएं प्रकाशित हुई हैं। इनको आत्म कथ्यपूर्ण आत्मकथा की संज्ञा नहीं दी जा सकती है क्योंकि इसमें आत्मकथा लेखकों का विभिन्न व्यक्तित्व अपना भिन्न भिन्न मिजाज व्यक्त करता है।

हिंदी आत्म कथा साहित्य अभी अपने को समद्ध नहीं बना सका है। भविष्य में क्या करेगा कुछ कहा नहीं जा सकता है। कुछ आलोचकों का यह मात्र भ्रम है कि हिंदी माध्यम को अपना कर लिखने–पढ़ने वाले पंडित, मनीषी, महान, विद्वान या गौरवशाली नहीं हो सकते। किंचित उन्होंने कबीर, तुलसी, प्रसाद, निराला, महादेवी, हजारी प्रसाद या नगेंद्र के व्यक्तित्व को भली भांति जांचा परखा नहीं है क्या ये हिंदी माध्यम नहीं थे या हिंदी लिखने पढ़ने वाले नहीं थे।

32. रिपोर्ताज

रिपोर्ताज शब्द का रिपोर्ट अंग्रेजी से कोई संबंध प्रतीत नहीं होता है क्योंकि रिपोर्ट का अर्थ किसी घटना आदि का वह विवरण है जो किसी अधिकारी को उनकी जानकारी के लिए दिया जाता है जिसे प्रतिवेदन कहते हैं। किसी संस्था आदि के कार्यों का विस्तत विवरण। कार्य विवरण। किसी वस्तु या व्यक्ति के संबंध में जानने योग्य बातों का ब्यौरा। रिपोर्ट का बहुवचन रिपोर्ट्स बनेगा रिपोर्ताज नहीं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि रिपोर्ताज रिपोर्ट का हिंदी करण नहीं है। रिपोर्ट की संज्ञा रिपोर्टर होता जो प्रतिवेदन नहीं संवाददाता कहलाता है जिसका कार्य समाचार पत्रों में प्रकाशनार्थ घटनादि की सूचना देना होता है।

महाभारत युद्ध के समय संजय धतराष्ट्र को आंखों देखा समाचार देता था धतराष्ट्र के साथ बैठे हुए। प्रथम विश्वयुद्ध के समय चर्चिल युद्ध की विभीषिका का संवाद दाता बना था। इसलिए यह कहना कि प्रथम विश्वयुद्ध के समय रिपोर्ताज का आविर्भाव हुआ सत्य नहीं है। आविर्भाव तो महाभारत काल में हो गया था।

डॉ. हरदयाल का मानना है कि द्वितीय विश्व महायुद्ध के समय रिपोर्ताज का प्रचार प्रसार हुआ। डॉ. हरदयाल का कहना है –

"रिपोर्ताज का जन्म द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हुआ, जब साहित्यकारों ने युद्ध भूमि में राष्ट्रीयता और मानवीयता की भावना से लिया हुआ तथ्य, युद्ध भूमि के दश्यों और घटनाओं की रिपोर्ट समाचार पत्रों में दी। इन रिपोर्टों में व्यावसायिक संवाददाताओं की रिपोर्ट में स्वाभाविक भिन्नता आ गई थी यह भिन्नता इनकी साहित्यिकता – कलात्मकता और उत्साह में थी जो युद्ध में विद्यमान था। इस प्रकार अनायास ही रिपोर्ताज का जन्म हो गया।"

महादेवी वर्मा का कहना है –

"रिपोर्ट या विवरण से संबंध रिपोर्ताज समाचार युग की देन है और उसका जन्म सैनिक की खाईयों में हुआ है।"

रिपोर्ताज का विकास रूस में हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के समय इलिया एहरेन वर्ग को रिपोर्ताज – लेखक के रूप में विशेष प्रसिद्धि मिली।

रिपोर्ताज मूलतः फ्रेंच (फ्रांसीसी) भाषा का शब्द है। इसका अंग्रेजी पर्याय रिपोर्ट माना जाता है। रिपोर्ताज का अभिप्राय किसी घटना, खबर, आंखो देखा हाल का यथा तथ्य वर्णन है जिसमें संपूर्ण विवरण दश्यमान हो जाता है। जबकि वास्तविक घटना का यथातथ्य चित्र उपस्थित करना रिपोर्ट कहलाता है। हिंदुस्तानी में इसे रपट कहते हैं। इसका सीधा संबंध समाचार पत्र से होता है इसलिए तथ्य चयन पर विशेष महत्व दिया जाता है।

किसी विषय का आंखो देखा या कानों सुना वर्णन इतने कलात्मक, साहित्यिक और प्रभावोत्पादक ढंग से किया जाता है कि उसकी अमिट छाप हृदय पटल पर अंकित हो जाती है उसे रिपोर्ताज की संज्ञा दी जाती है। रिपोर्ताज लेखक की वैयक्तिकता के साथ–साथ इसमें भावना एवं संवेदना का आवेश भी समन्वित होता है। लेखक घटना विशेष को लेखक अपनी मानसिकता से प्रदीप्त करके पुनः मूर्त रूप में इसका प्रस्तुतीकरण रिपोर्ताज का स्वाभाविक धर्म है। रिपोर्ट की साहित्यिकता उसे रिपोर्ताज का स्वरूप प्रदान करती है। रिपोर्ताज को अन्य अनेक नाम दिए गए हैं जिनमें रूपनिका, सूचनिका तथा वत निदेशन आदि प्रमुख हैं किंतु प्रचलित एवं सर्वमान्य शब्द रिपोर्ताज है।

डॉ. भगीरथ मिश्र ने रिपोर्ताज को परिभाषित करते हुए लिखा है –

"किसी घटना या दश्य का अत्यंत विवरणपूर्ण सूक्ष्म, रोचक वर्णन इसमें इस प्रकार किया जाता है कि वह हमारी आंखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाए और हम उससे प्रभावित हो उठें।"

कोई भी निबंध, कहानी, रेखाचित्र या संस्मरण पत्रकारिता से संपक्त होकर रिपोर्ताज का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। साहित्यिकता इसका अनिवार्य तत्व है। रेखांकित एवं रिपोर्ट का समन्वित रूप रिपोर्ताज को जन्म देता है क्योंकि रेखाचित्र साहित्यिक विधा है।

रिपोर्ताज का विवेचन करेते हुए शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है –

"आधुनिक जीवन की द्रुतगामी वास्तविकता में हस्तक्षेप करने के लिए मनुष्य को नई साहित्यिक रूप विधा को जनम देना पड़ा। रिपोर्ताज उन सबसे प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण विधा है।"

रिपोर्ताज का विकास अमेरिका एवं रूस में हुआ। भारत में इसका आगमन विदेशी है।

हिंदी में रिपोर्ताज लेखन की प्रणाली अति नवीन है। इसलिए यह साहित्य अन्य साहित्य गद्य विधाओं की अपेक्षा सीमित है।

हिंदी में उपलब्ध रिपोर्ताज, पत्र–पत्रिकाओं, उपन्यासों में प्रसांगानुकूल, ललित निबंधों तथा गोष्ठियों सभाओं, अधिवेशनों आदि के आधार लिखे गए रिपोर्ताज दष्टिगोचर होते हैं। किन्तु इन्हें वास्तविक रिपोर्ताज की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। मात्र ललित निबंधों में इनका वास्तविक स्वरूप उपलब्ध होता है।

प्रथम रिपोर्ताज

रिपोर्ताज का प्रारंभ सन् 1940 ई. के आस पास माना जाता है। शिवदान सिंह चौहान द्वारा लिखित मौत के खिलाफ जिंदगी की लड़ाई प्रथम रिपोर्ताज है जो हंस पत्रिका में प्रकाशित हुआ। स्तंभ का नाम समाज और विचार था।

रिपोर्ताज का विकास

स्वतन्त्रता से पूर्व राष्ट्रीय परिवेश में चित्रण से रिपोर्ताज का प्रारंभ हुआ।

रांगेय राघव

रांगेय राघव ने प्रथम रिपोर्ताज अदम्य जीवन लिखा जो विशाल भारत में प्रकाशित हुआ था। सन् 1943 – 44 ई. में रांगेय राघव ने बंगाल के दुर्भिक्ष एवं महामारी विषय अनेक मार्मिक रिपोर्ताज लिखे। इनके रिपोर्ताज का संकलन तूफानों के बीच है। अन्य रिपोर्ताज यह है ग्वालियर में सांप्रदायिक दंगों, दमन नीति, अत्याचारों तथा हृदय हीनता का मार्मिक चित्रण किया गया है।

अमत लाल नागर –

अमत लाल नागर पर बंगाल के अकाल का अत्यधिक प्रभाव पड़ा जिसने उनसे महाकाल नामक उपन्यास की रचना रिपोर्ताज शैली में लिखवाया।

प्रकाशचन्द्र गुप्त –

प्रकाशचन्द्र गुप्त द्वारा लिखित रिपोर्ताज में घटना प्रधानता है। इनके रिपोर्ताजों में स्वराज्य भवन विशेष उल्लेखनीय है। अन्य रिपोर्ताज अल्मोढ़े का बाजार तथा बंगाल का अकाल आदि है। इनके सभी रिपोर्ताज हंस में प्रकाशित हुए।

स्वतंत्र्योत्तर रिपोर्ताज

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं जिन्होंने रिपोर्ताज लेखकों को रिपोर्ताज लिखने के लिए बाध्य कर दिया। भारत–पाक विभाजन के पश्चात भीषण नरसंहार हुआ। बंगाल में नोआखाली में हिंदुओं पर भयंकर अत्याचार किया गया। लूटपाट, मारकाट, हिंसा प्रतिहिंसा का दौर चलता रहा। इनसे संबंधित अनेक रिपोर्ताज लिखे गए।

साठोत्तरी रिपोर्ताज

सन् 1965 ई. सन् 1971 ई. में भारत पाकिस्तान युद्ध हुए। सन् 1962 ई. में भारत चीन युद्ध हुआ। इन युद्धों से संबंधित रिपोर्ताज लिखे गए। इसके अतिरिक्त भारत पर अनेक आपदाएं आई – बाढ़, सूखा, अकाल, अग्नि कांड, भूकंप, आतंकवाद तथा विमान दुर्घटना आदि। इन सब पर रिपोर्ताज लिखे गए।

धर्म वीर भारती -

सन् 1971 ई में बंगला देश स्वाधीनता संग्राम हुआ। बंगला देश से धर्म भारती ने अनेक रिपोर्ताज भेजे थे जो धर्म युग में प्रकाशित हुए।

डॉ. भगवत शरण उपाध्याय

फणीश्वर नाथ रेणु

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

निर्मल वर्मा

कमलेश्वर

लक्ष्मी कांत वर्मा

आदि अनेक रिपोर्ताज लेखकों ने रिपोर्ताज की रचना की जो तत्कालीन प्रकाशित होने वाली दिनमान, नया पथ, माध्यम, ज्ञानोदय, कल्पना, सारिका, अवकाश, सूर्या, हिंदी एक्सप्रेस, रविवार तथा साप्ताहिक हिंदुस्तान आदि पत्रिकाओं में समय समय पर विभिन्न स्तंभों में प्रकाशित होते रहे। इन पत्रिकाओं का रिपोर्ताज लेखन में विशेष योगदान रहा है।

डॉ. बालकृष्ण राव -

डॉ. बालकृष्ण राव ने वर्षों तक कल्पना पत्रिका के कमलाकांत जी ने कहा नामक स्थायी स्तंभ में रिपोर्ताज लिखे।

ख़्वाजा अहमद अब्बास -

सन् 1968 ई. के सारिका के कई अंकों में ख्वाजा अहमद अब्बास ने बिहार की डायरी नाम से बिहार के सूखे पर, बिहार के अकाल पर अनेक रिपोर्ताज प्रकाशित कराए।

निर्मल वर्मा -

निर्मल वर्मा का रिपोर्ताज प्रातः एक स्वप्न धर्म युग में प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने चेकोस्लोवाकिया में प्रविष्ट रूसी सेनाओं पर भावनात्मक एवं संवेदनात्मक रिपोर्ताज की रचना प्रस्तुत की थी।

वर्तमान काल में साहित्यिक गोष्ठियों, सभाओं, सम्मेलनों, अधिवेशनों आदि के आधार पर लिखे गए रिपोर्ताज प्रायः सभी पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे हैं। माध्यम पत्रिका के अनेक वर्षों तक विवेचक तथा गोष्ठी प्रसंग से संबंधित रिपोर्ताज प्रकाशित होते रहे हैं। वर्तमान काल में समसामयिक घटनाओं, महत्वपूर्ण प्रकाशनों, साहित्यकारों के जन्म–दिवस, उपाधि पत्र दिये जाने तथा सम्मानित किये जाने के अवसरों पर गोष्ठियां एवं सम्मेलनों का आयोजन किया जाता रहा है। उस समय रिपोर्ताज लिखे जाते रहे हैं तथा प्रकाशित होते रहे हैं। स्मरिकाएं प्रकाशित होती हैं।

रिपोर्ताज की विशिष्ट शैली का उपन्यासों में पर्याप्त प्रयोग होने लगा है। रिपोर्ताज शैली के माध्यम से लिखी गई आधुनिक साहित्यकारों की अनेक उत्कृष्ट औपन्यासिक कृतियां दष्टिगोचर होती हैं। साहित्यकार की संवेदनशीलता बढ़ जाने पर उसकी रिपोर्ताज लेखन शैली सशक्त एवं प्रभावोत्पादक हो जाती है, युद्ध की विभीषिका, दुर्भिक्ष की भयंकरता या मानव समाज को प्रभावित करने वाली हृदय विदारक घटना के घटित होने पर रिपोर्ताज लेखक घटना के वैविध्य को रिपोर्ताज शैली का रूप देकर पाठक के समक्ष ऐसे प्रस्तुत करता है कि उसका दिल दहल जाता है।

वर्तमान काल के प्रौढ़, सशक्त, उत्कृष्ट एवं सरस साहित्यिक शैली में रिपोर्ताज लिखने वालों में उपेंद्र नाथ अश्क – पहाड़ों में प्रेम मय गीत; रामनारायण उपाध्याय – गरीब और अमीर पुस्तकें (रिपोर्ताज संग्रह); शिव सागर मिश्र वे लड़ेंगे हजार साल; भदंत कौसल्यायन – देश की मिट्टी बुलाती है; डॉ. धर्मवीर भारती युद्ध यात्रा, कामता प्रसाद – काम एवं मैं छौटा नागपुर से बोल रहा हूं, जगदीश चद्र जैन – पीकिंग की डायरी, यशपाल – चक्कर क्लब, विवेकी राय – जुलूस रुका है; कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर – क्षण बोले कण मुस्काए; फणीश्वर नाथ रेणु – ऋण जल धन जल; नेपाली क्रांति कथा, लाल भारती, एक लव्य के नोट्स एवं श्रुत–अश्रुत पर्व; प्रभाकर माचवे; गोरी नजारों में, शमशेर बहादुर सिंह– प्लाट का मोर्चा, वाचस्पति उपाध्याय–हरा भरा जनतंत्र है सूख गया स्वातंत्र्य; चंद्रभाल मधुव्रत – मान न मान यही है विज्ञान; कुबेर नाथ राय – गंध – मादन तथा राम आसरे – माओ के देश में आदि महत्वपूर्ण रिपोर्ताज लेखक तथा उनके रिपोर्ताज हैं।

विवेकी राय स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् परिवर्तित गांव, जीवन एक मत्यु के मध्य विभीषिका की आंहें भरते हुए गांव के दर्शक एवं दुख तथा वेदना भोगने वाले हैं। जुलूस रूका में ग्रामीणों की जीती जागती तस्वीर दष्टिगोचर होती है। फणीश्वर नाथ रेणु

की तरह ही विवेकी राय ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में रिपोर्ताज शैली का सुंदर एवं सफल प्रयोग किया है। फणीश्वर नाथ रेणु में परिवेश का चित्रांकन करने की अपूर्व क्षमता है जिसके परिणामस्वरूप परिवेशगत संपूर्ण अनुभव उद्‌घाटित हो जाता है।

वर्तमान काल में रिपोर्ताज ने स्वतंत्र गद्य विधा के रूप में अपने को प्रतिष्ठछापित कर लिया है। विकास यात्र की लगभग अर्ध शताब्दी पार कर ली है किन्तु परिणाम एवं गुणवत्ता की दष्टि से इस को पूर्णता की प्राप्ति नहीं हुई। वर्तमान युग मीडिया एवं संचार संपर्क का है। इस दष्टि से इसका भविष्य उज्जवल है।

33. हिंदी आलोचना : उद्‌भव एवं विकास

हिंदी में आलोचना का प्रारंभ बहुत देर से हुआ। हिंदी साहित्य के वीरगाथा काल तथा भक्ति काल में आलोचना का कोई व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध स्वरूप दष्टिगोचर नहीं होता है।

पर्याय, शब्दार्थ एवं परिभाषा

आलोचना को समालोचना तथा समीक्षा आदि अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। इसका अंग्रेजी पर्याय क्रिटिसिज़्म है। इन सभी शब्दों का सामान्य अर्थ सम्यक् निरीक्षण होता है।

आलोचना

{सं. आ लोच् (देखना) + गिच् + युच् + ल्युट् – अन्} से व्युत्पन्न है। लोच् धातु से पूर्व 'आ' उपसर्ग (विशेष अर्थ में) लोच् देखने के अर्थ में है लोच् से लोचन व्युत्पन्न है जिसका अर्थ देखने वाला अंग अर्थ आंख है। णिच्, ल्युट् तथा अन् प्रत्यय हैं। जिसका अर्थ किसी कृति या रचना के गुण दोषों का निरुपण या विवेचन करना होता है।

किसी कृति या कृतिकार के गुण–दोषों का भली भांति सम्यक् विवेचन या उनको देखना आलोचना कहलाता है।

समालोचना

सं. समालोचन + टाप् से व्युत्पन्न है जिसमें आलोचना से पूर्व 'सम' उपसर्ग बराबर अर्थ मं टाप् प्रत्यय लगा है जिसका अर्थ अच्छी तरह अर्थात् बराबर समान दष्टि से देखना है। किसी कृति या कृतिकार के गुण–दोषों का किया जाने वाला विवेचन।

साहित्य में वह लेख जिसमें किसी कृति या कृतिकार के गुण दोषों के संबंध में समान रूप से अपने विचार प्रकट किए हों। इसे अंग्रेजी में रिव्यू कहते हैं। गुण दोष विवेचन की कला या विद्या होती है।

समीक्षा

सं. सम ईक्ष् (देखना) + अ–टाप् से व्युत्पन्न है। ईक्ष् से पूर्व सम उपसर्ग तथा टाप् प्रत्यय है। ईक्ष् से चक्षु अर्थात् आंख बना है। लोच् से लोचन तथा ईक्ष् से चक्षु दोनों का अर्थ आंख अर्थात् देखना है।

गुण दोषों की समान दष्टि से कृति या कृतिकार को देखना या उसकी विवेचना करना समीक्षा कहलाता है।

क्रिजिसिज़्म का अर्थ मूल्यांकन करना या निर्णय करना होता है। साहित्यिक क्षेत्र में आलोचना, समालोचना तथा समीक्षा भिन्नार्थक हैं। जबकि सामान्य रूप से एक जैसे प्रतीत होते हैं। साहित्य में किसी भी साहित्यिक रचना या साहित्यकार के विवेचन विश्लेषण, गुण–दोष दिग्दर्शन, मूल्यांकन, सिद्धांत या नियम–प्रतिपादन तथा व्याख्या को आलोचना के अंतर्गत रखा जाता है। इस प्रकार आलोचना का अर्थ सम्यक निरीक्षण हुआ।

डॉ. श्याम सुंदर दास ने आलोचना के विषय में विचार करते हुए साहित्यालोचन में लिखा है –

"साहित्य क्षेत्र में ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है। .....यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।"

आलोचना का उद्देश्य प्रकट करते हुए डॉ. गुलाब राय ने लिखा है –

"आलोचना का मूल उद्देश्य कवि की कृति का सभी दष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना तथा उनकी रूचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गति निर्धारित करने में योग देना है।"

आलोचना के साहित्यिक–वैज्ञानिक या व्यक्तिगत तथा वस्तुगत प्रमुख दो रूप होते हैं। वैसे विषयानुसार ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक, व्यावहारिक, निर्णयात्मक, तुलनात्मक, व्याख्यात्मक, मनोवैज्ञानिक, साम्यवादी नयी आदि अनेक रूप होते हैं।

भारतीय साहित्य में आलोचना का विकास

विद्वानों का यह मानना है कि आलोचना का विकास पाश्चात्य आलोचना के प्रभाव से भारत में आविर्भाव से हुआ। यह तथ्य भ्रामक है। भारतीय साहित्य में आलोचना का अति प्राचीन अस्तित्व है। भारतीय साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम सैद्धान्तिक आलोचना का विकास हुआ है जिसे काव्य शास्त्र या अलंकार शास्त्र के नाम से अभिहित किया जाता रहा है। प्राचीनतम काव्य शास्त्र की रचना भरत मुनि द्वारा रचित 'नाट्य शास्त्र' है जिसमें साहित्य के मानदंड स्वरूप रक्ष सिद्धान्त को प्रतिष्ठापित किया गया है। साहित्य का मूल तत्व भाव है; रस सिद्धान्त भी भाव तथा भावनाओं के उद्वेलन की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण करता हुआ साहित्य की विषय वस्तु का वर्गीकरण एवं विश्लेषण प्रस्तुत करता है। काव्य में भाव तत्व को सर्वाधिक महत्व प्रदान करके रस सिद्धान्त के आचार्यों ने एक उचित दिशा में काव्य शास्त्र को आगे बढ़ाया है। रस निष्पत्ति को लेकर भट्ट लोलट, शंकुक, भट्ट नायक, अभिनव गुप्त तथा पंडित राज जगन्नाथ आदि ने विभिन्न वैयक्तिक मतों की प्रतिष्ठा की है। आगे चलकर भामह, उदभट, दंडी आदि आचार्यों ने रस के स्थान पर अलंकार को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकारा है। अलंकार के संबंध में उनकी धारणाएं अति व्यापक थीं। उन्होंने अलंकार को सौंदर्य का पर्यायवाची माना है। परवर्ती युग में वामन रीति कुतक – वक्रोक्ति, आनंद वर्धनाचार्य – ध्वनि तथा क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य की आत्मा मानते हुए रस संप्रदाय, अलंकार संप्रदाय, रीति संप्रदाय, वक्रोक्ति संप्रदाय, ध्वनि संप्रदाय तथा औचित्य संप्रदाय की स्थापना की। काव्य शास्त्रीय आचार्यों ने रस, अलंकार रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति तथा औचित्य की विवेचना की।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत साहित्य में आलोचना का पर्याप्त विकास हुआ किन्तु यह आलोचना सिद्धान्त – स्थापना तक ही सीमित रहा है, उनका व्यवहार विशद रूप में उपलब्ध नहीं होता है। जितना श्रम नए–नए सिद्धान्तों की स्थापना के लिए किया गया उतना श्रम संभवतः उनके प्रयोग में नहीं किया गया। आधुनिक युग की भांति हमें कहीं भी किसी भी प्रकार की आलोचना स्वतन्त्र ग्रंथ के रूप में नहीं मिलती। वास्तव में निर्णायात्मक पद्धति का प्रचलन था, लिखित विवेचना नहीं होती थी। व्याख्यात्मक आलोचना या टीका लिखने का प्रचलन संस्कृत में अधिक था।

हिंदी में आलोचना का विकास

संस्कृत की काव्य शास्त्रीय परंपरा के अनुसरण पर हिंदी साहित्य के मध्यकाल अर्थात् भक्ति काल एवं रीति काल में सैद्धान्कि आलोचना का विकास हुआ। यह आश्चर्यचकित करने वाला तथ्य है कि हमारे प्रारंभिक सैद्धान्तिक आलोचनात्मक ग्रन्थ सिद्धान्त विवेचन हेतु नहीं लिखे गए अपितु भक्ति या श्रंगार अथवा काव्य रचना से प्रेरित होकर लिखे गए जिसमें सूरदास की साहित्य लहरी एवं नंददास की रस मंजरी प्रमुख हैं जिनमें नायक–नायिका भेद का निरूपण संस्कृत के काव्य शास्त्रीय ग्रंथरों के अनुसार किया गया है। किंतु इनका उद्देश्य नायक–नायिका भेद का निरूपण करना या समझाना नहीं है अपितु इनका एक मात्र लक्ष्य अपने आराध्य श्री कृष्ण एवं राधा की प्रेम लीलाओं में योगदान करना है। अकबर के दरबारी कवियों का उद्देश्य भी काव्य शास्त्रीय विवेचन न होकर रसिकता का पोषण करना था। ऐसे रसिक कवियों में कठकेश, रहीम, गोपा तथा भूपति आदि प्रमुख हैं।

भक्तिकाल की भांति ही सत्रहवीं सदी के मध्य अर्थात् रीतिकाल में आचार्य केशव दास ने कविप्रिया एवं रसिक प्रिया की रचना की जिनका उद्देश्य काव्य शास्त्र के सामान्य नियमों एवं सिद्धान्तों का परिचय करना था। इनकी रचना पातुर प्रवीण राय को काव्य शास्त्र की शिक्षा देने के लिए हुई थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि केशव की रचना में प्रौढ़ता नहीं है किंतु निःसन्देह उन्होंने ये रचनाएं विशुद्ध आचार्यत्व की प्रेरणा से प्रेरित होकर की थीं। केशव के आचार्यत्व का अनुसरण उसके परवर्ती कवियों ने भी किया जिन्हें उनकी कृतियों या प्रवत्तियों के आधार पर चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

i. **काव्य शास्त्रीय ग्रंथों के रचयिता** – अनेक कवियों ने काव्य शास्त्र के सभी अंगों का प्रतिपादन किया, जिनमें आचार्यत्व दष्टिगोचर होता है।

ii. **रस एवं नायिका भेद संबंधी ग्रंथों के रचयिता** – इस वर्ग के कवियों का लक्ष्य आचार्यत्व कम मनोरंजक अधिक था। काव्य शास्त्र की आड़ में इन्होंने अपनी दमित, कुंठित काम वासनाओं, कामुकता एवं रसिकता की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

iii. **अलंकार शास्त्रीय ग्रंथों के रचयिता** – इस वर्ग के कवियों का उद्देश्य अलंकार का प्रतिपादन करना था। विद्यार्थियों को अलंकार की शिक्षा देने के लिए पाठ्य–पुस्तकों के निर्माण को अपना लक्ष्य बनाया।

iv. **नखशिख एवं षडऋतु ग्रंथों के रचयिता** – इन कवियों का उद्देश्य नारी सौंदर्य के वर्णन में नख–शिख सौंदर्य प्रणाली को उत्तेजना हेतु अपनाया था। संयोग श्रंगार के संचारी भाव के रूप में षडऋतु वर्णन को काव्य का रूप दिया।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति एवं रीति काल में काव्य शास्त्रीय एवं अलंकार संबंधी ग्रंथों में ही समीक्षा के सिद्धान्तों एवं अलंकार संबंधी ग्रंथों में ही समीक्षा के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। किंतु इनका महत्व अधिक नहीं है क्योंकि इनका आधार संस्कृत काव्य शास्त्र है तथा इनकी भाषा ब्रजभाषा पद्य है। संस्कृत अनुवाद मात्र करना इनका लक्ष्य था। इनमें मौलिकता का पूर्ण अभाव है। विवेचन की प्रौढ़ता, गंभीरता तथा स्पष्टता का भी अभाव है। इसलिए इन ग्रंथों को आलोचना के सच्चे स्वयप में नहीं स्वीकारा जा सकता है।

हिंदी साहित्य में आलोचना का विकास

आधुनिक हिंदी साहित्य गद्य के जनक एवं पालनकर्ता महान साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने हिंदी साहित्य के सभी उपेक्षित अंगों को विकसित किया। अतः आलोचना साहित्य भी उनके युग परिवर्तन कारी दष्टि से कैसे ओझल हो सकता था। संस्कृत के प्रथम आचार्य भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र लिखा है।

हिंदी का प्रथम आलोचना ग्रंथ

भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने नाटक लिखा है। भारतेंदु आधुनिक हिंदी आलोचना के जन्मदाता एवं नाटक प्रथम आलोचना ग्रंथ हैं।

डॉ. श्याम सुंदर दास ने भाषाशैली को दष्टिगत रखते हुए यह भ्रामक धारणा बना ली कि नाटक भारतेंदु की रचना नहीं है। इसका प्रमुख कारण नाटक की भाषा नहीं अपितु डॉ. श्याम सुंदर दास की रचना रूपक रहस्य है। यह उसी का रहस्य प्रतीत होता है कि कहीं उसकी महत्ता में कभी न आ जाए इसलिए यह घोषित करना श्रेयस्कर है कि नाटक भारतेंदु हरिश्चन्द्र की रचना नहीं है।

नाटक की भूमिका तथा समर्पण यह प्रमाणित करते हैं कि नाटक भारतेंदु की रचना है। क्यांकि विषयानुसार लेखक की शैली में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। भूमिका एवं समर्पण में भारतेंदु ने स्पष्ट लिखा है –

"आशा है कि सज्जनगण गुण मात्र ग्रहण करके मेरा श्रम सफल करेंगे।"

इस ग्रंथ को हरिश्चन्द्र ने अपने इष्ट देव को प्रेम पूर्वक समर्पित करते हुए लिखा है –

"नाथ! आज एक सप्ताह होता कि मेरे इस मनुष्य जीवन का अंतिम अंक हो चुका..... नहीं तो यह ग्रंथ प्रकाश भी न होने पाता..... जब प्रकाश होता तो समर्पण भी होना आवश्यक है। अतएव अपनाए हुए की वस्तु समझकर अंगीकार कीजिए।"

'कवि बचन सुधा' में 'हिंदी कविता' नामक भारतेंदु का प्रथम आलोचनात्मक निबंध प्रकाशित हुआ।

भारतेंदु युग

भारतेंदु युग के प्रमुख आलोचनाकार बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन', बालकृष्ण भट्ट, श्री निवास दास, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी साहित्य के सर्व प्रथम आलोचना लेखक हैं यदि संस्कृत में भरत मुनि ने सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र की रचना की तो हिंदी में सर्वप्रथम आलोचना ग्रंथ नाटक इन्होंने लिखा है। यह अत्यंत प्रौढ़ रचना है जिसमें प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र एवं आधुनिक पाश्चात्य नाट्यशास्त्र एवं आलोचना साहित्य का सुंदर समन्वय किया गया है। तत्कालीन हिंदी नाटककारों के लिए नियम निर्धारण किया गया है जिनमें स्थान–स्थान पर लेखक की मौलिक उद्‌भावनाएं भी प्रकट हुई हैं। नाटक के भेदों का विवेचन करते हुए तत्कालीन सभी नाटकों, कठपुतली वालों, शहरों के तमाशों, पारसियों के नाटक आदि पर दष्टि डालते हुए युग का मार्ग दर्शन किया गया है।

नाटक की अर्थ प्रकृतियों, संधियों आदि की घोषणा करते हुए उन्होंने लिखा है –

"संस्कृत नाटक की भांति हिंदी नाटकों में इनका अनुसंधान करना या किसी नाटकांग में इनको यत्नपूर्वक रखकर हिंदी नाटक लिखना व्यर्थ है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतेंदु में केवल अनुवाद करने की क्षमता एवं सामर्थ्य ही नहीं थी अपितु वे प्राचीन नाट्यशास्त्र को सर्वथा नवीन रूप देने में भी पूर्णतः समर्थ थे।

नाटक में सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके संस्कृत, हिंदी एवं यूरोप के नाटक–साहित्य के विकास को प्रदर्शित किया गया है। साथ–साथ अपने समसामयिक नाटकों की आलोचना भी की है। व्यावहारिक आलोचना करते हुए तीखी व्यंग्यात्मकता से नहीं चूकते हैं। पारसी नाटकों की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है –

"काशी में पारसी नाटक वालों ने नाचघर में जब शकुंतला नाटक खेता और उसमें धीरोदात्त नायक दुष्यंत खेमटे वालियों की तरह कमपर हाथ रखकर मटक–मटक कर नाचने और पतरी कमर बल खाय यह गाने लगा तब डॉक्टर थिबो, बाबू प्रमादादास मित्र प्रभति विद्वान यह कहकर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता। ये लोग कालिदास के गले पर छूरी फेर रहे हैं। यही दशा बुरे अनुवादों की होती है। बिना पूर्व कवि के हृदय से हृदय मिलाए अनुवाद करना शुद्ध झख मारना ही नहीं, कवि की लोकांतर स्थिति आत्मा को नरक कष्ट देना है।"

बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन'

बदरी नारायण चौधरी ने भारतेंदु की 'नाटक' रचना के समय अपनी 'आनंद कादंबिनी' पत्रिका में संयोगिता स्वयंवर तथा बंग विजेता पुस्तकों की विस्तत आलोचना की।

बालकृष्ण भट्ट

बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी प्रदीप पत्रिका निकाली जिसमें उन्होंने सच्ची आलोचना स्तंभ में संयोगिता स्वयंवर की आलोचना की। भारतेंदु द्वारा प्रवर्तित आलोचना कार्य को अग्रसर करने का श्रेय बालकृष्ण भट्ट को है। संयोगिता स्वयंवर लाल श्री निवास दास द्वारा लिखा गया ऐतिहासिक नाटक था।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि सैद्धान्तिक आलोचना की तरह व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में भी प्राथमिकता नाटक को ही मिली।

भट्ट एवं प्रेमधन की आलोचनाओं में समीक्षा का विकसित रूप दष्टिगोचर होता है। कहीं–कहीं उनमें तीक्ष्ण व्यंग्यात्मकता का भी सन्निवेश हो गया है। भट्ट की शैली में भावात्मकता, आत्मानुभूति तथा लेखन को सीधा संबोधित करने की प्रवत्ति दिखाई पड़ती है –

"लालाजी यदि बुरा न मानिए तो एक बात आपसे धीरे से पूंछे, वह यह कि आप ऐतिहासिक नाटक किसे कहेंगे।"

प्रेमधन की शैली में भट्ट जैसी सरसता एवं व्यंग्यात्कमता तो नहीं मिलती है किन्तु गंभीरता अधिक है।

गंगा प्रसाद अग्निहोत्री

समालोचना – सन् 1896 ई.।

अंबिका दत्त व्यास

गद्य काव्य मीमांसा।

द्विवेदी युग

महावीर प्रसाद द्विवेदी

सन् 1900 ई. में सरस्वती के संपादक के रूप में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का हिंदी आलोचना साहित्य में आगमन हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने "कालिदास की निरंकुशता", "नैषध चरित्र चर्चा" तथा 'विक्रमांक देव चरित चर्चा' आदि ग्रंथों की रचना की। उन्होंने अपने ग्रंथों में पुराने–नए कवियों के गुण दोषों का विवेचन व्यंग्यात्मक शैली में किया है। द्विवेदी मूलतः शिक्षक,

संशोधक एवं सुधारक आचार्य थे। उन्होंने अपनी आलोचनाओं के माध्यम से हिंदी काव्य को श्रंगारिकता के दलदल से बाहर निकालकर उसे देश प्रेम और समाज सुधार की भावनाओं से अनुप्राणित कर दिया। ब्रज भाषा का स्थानापन्न खड़ी बोली को बनाने का श्रेय उन्हीं को है। द्विवेदी की शैली में सरसता, सरलता तथा व्यंग्यात्मकता विद्यमान है।

गंगा प्रसाद अग्निहोत्री

समालोचना।

पदुम लाल पन्ना लाल बख्शी

विश्व साहित्य

गणेश बिहारी मिश्र

श्याम बिहारी मिश्र

शुकदेव बिहारी मिश्र

मिश्र बंधु

महावीर प्रसाद द्विवेदी के पश्चात् हिंदी आलोचना के क्षेत्र में मिश्र बंधुओं का प्रवेश हुआ। उन्होंने हिंदी नवरत्न एवं मिश्र बंधु विनोद की रचना की। हिंदी नवरत्न में हिंदी कवियों को श्रेणीबद्ध करके उसके विभाग बनाए गए हैं। देव को बिहारी से बड़ा प्रमाणित किया गया है। देव को बड़ा बनाने के लिए इन्होंने बिहारी के दोहा में छिद्रांवेषण किया है। उनके अनेक दोष ढूंढ निकाले हैं।

पद्‌म सिंह शर्मा 'कमलेश'

बिहारी पर किए गए आक्रमण एवं बिहारी सतसई में दोष दर्शन के निरूपण को कमलो नहीं सह सके। फलस्वरूप उन्होंने बिहारी सतसई की भूमिका लिखी जिसमें चमत्कारिक ढंग से बिहारी की उत्कृष्टता का प्रतिपादन किया जिसके परिणामस्वरूप देव और बिहारी को विवाद का विषय बना दिया गया।

पं. कृष्ण बिहारी मिश्र

पं. कृष्ण बिहारी मिश्र ने देव और बिहारी की रचना की जिसमें दोनों कवियों के काव्य की तुलना में संयमित एवं मार्मिक शैली का प्रतिपादन किया। कहीं कहीं उन्होंने बिहारी पर आक्षेप भी किए।

लाला भगवान दीन 'दीन'

भगवान दीन को बिहारी पर किए गए कृष्ण बिहारी मिश्र के आक्षेप उचित प्रतीत नहीं हुए उसके प्रतिउत्तर में लाला जी ने बिहारी और देव की रचना की। इन तुलनात्मक रचनाओं में बिहारी – देव दोनों में से किसी एक की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। हिंदी नवरत्न – देव, पद्‌म सिंह – बिहारी, कृष्ण बिहारी मिश्र – देव तथा लाला भगवान दीन में बिहारी की श्रेष्ठता का आग्रह किया है। इसी प्रकार का विवाद भक्तिकालीन कवियों तुलसी – सूर को लेकर सूरसूर, तुलसी राशी या सूर शशी तुलसी रवि खूब चल था। आगे लकर बड़ा – छोटा सिद्ध करने का झगड़ा शांत हो गया।

उपर्युक्त आलोचकों के अतिरिक्त द्विवेदी युग में सैद्धान्तिक आलोचना को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध स्वरूप प्रदान करने वाले आलोचकों में बाबू श्याम सुंदर दास, तथा पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी उल्लेखनीय हैं। गंगा प्रसाद अग्निहोत्री ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में समालोचना नामक निबंध के द्वारा सैद्धान्तिक आलोचना का श्रीगणेश कर दिया था। बाबू श्याम सुंदर दास ने साहित्यालोचन के माध्यम से उसे प्रौढ़ता प्रदान की। इसके अतिरिक्त श्याम सुंदर दास ने रूपक रहस्य, भारतीय नाट्‌यशास्त्र भाषा रहस्य तथा हिंदी भाषा और साहित्य अनेक आलोचनात्मक ग्रंथों का प्रणयन किया। पदमु लाल पुन्ना लाल बख्शी ने विश्व साहित्य की रचना कर बाबू श्याम सुंदर दास की परंपरा अग्रसर करने में महत्वपूर्ण योगदान किया।

शुक्ल युग

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल के आलोचना क्षेत्र में आगमन से पूर्व हिंदी आलोचना में तुलसीदास आलोचना का प्रसार प्रचार था जिसके सामने न कोई विशेष आदर्श था और न ही कोई विशेष सिद्धान्त। अपितु बड़ा–छोटा प्रमाणित करने का आग्रह था। अपनी–अपनी रूचि के अनुसार अपने अपने ढंग से जिसे चाहें बड़ा सिद्ध करने का प्रयत्न चल रहा था किंतु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य का एक सुनिश्चित, व्यवस्थित एवं आलोचना की एक विकसित पद्धति लेकर अवतरित हुए। उन्होंने स्थूल व्यक्तिकता के लाभ–हानि के प्रश्न को त्यागकर साहित्य की सूक्ष्म शक्ति भावना एवं अनुभव को साहित्य की कसौटी के रूप में अपनाया। साहित्य में सौंदर्य को महत्ता प्रदान की।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने समाज हितैषिता को साहित्य का साध्य तो नहीं माना है किंतु एक ऐसे साधन के रूप में स्वीकार करते हैं, जो साहित्य को व्यापकता प्रदान करता है। वास्तव में शुक्ल ने कला कला के लिए एवं कला जीवन के लिए दोनों में अपूर्व सामंजस्य स्थापित किया है। आचार्य शुक्ल ने यद्यपि द्विवेदी युगीन पष्ठभूमि पर आलोचना का श्रीगणेश किया है फिर भी उन्होंने उसे जितना उन्नत रूप प्रदान किया है उससे उन्हें युग आलोचना जगत का आलोक स्तंभ कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी।

आचार्य शुक्ल की आलोचना के तीन रूप हैं –

i. **सैद्धान्तिक** – चिंता मणि – दो भाग, रसमीमांसा सैद्धान्तिक आलोचना के अंतर्गत आते हैं।

ii. **ऐतिहासिक** – हिंदी साहित्य का इतिहास ऐतिहासिक आलोचना में आता है।

iii. **व्यावहारिक** – तुलसी ग्रंथावली, सूरदास का भ्रमरगीत सार तथा जायसी ग्रंथावली आदि की भूमिकाएं व्यावहारिक आलोचना के अंतर्गत आती हैं। रस मीमांसा के माध्यम से एक ओर उन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र के विषय में अपनी सूक्षम पकड़, गंभीर दष्टि तथा व्यापकता का परिचय दिया है तो दूसरी ओर भ्रमरगीत सार, तुलसी ग्रंथावली तथा जायसी ग्रंथावली आदि की सर्वांगीण भूमिकाएं लिखकर व्यावहारिक आलोचना का सुंदर स्वरूप प्रस्तुत किया है।। हिंदी साहित्य का इतिहास ऐतिहासिक आलोचना का मानदंड बन गया है। हिंदी साहित्य के परवर्ती आलोचकों ने उनके द्वारा प्रतिपादित आदर्शों एवं सिद्धान्तों को उदारता से स्वीकार किया है।

आचार्य शुक्ल ने हिंदी आलाचेना को प्रौढ़ता प्रदान की। उन्होंने हिंदी उच्च काव्य भावना के बल पर आलोचन शैली का निर्धारण किया है। शुक्ल ने अपने व्यापक, गंभीर अध्ययन, काव्य गुणों को पहचानने की अद्‌भुत क्षमता एवं विश्लेषणात्मक बौद्धिकता से हिंदी आलोचना साहित्य को अपूर्व उत्कर्षता प्रदान की।

शुक्ल ने प्रथम बार रस–विवेचना को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया। रस–विवेचन में शक्त ने मौलिक रूप से रसादि की पुनर्व्यवस्था की। क्रोचे के अभिव्यंजनावाद की कुंतक के वक्रोक्तिवाद से ुतलना करके उसे भारतीय वक्रोक्तिवाद का विलायती उत्थान स्वीकारना उनके अध्ययन की गहराई का द्योतन करता है। हिंदी की सैद्धान्तिक आलोचना परिचय और सामान्य विवेचन के धरातल से ऊपर उठाकर उसे गंभीर स्वरूप प्रदान करने का श्रेय शुक्ल को है। शुक्ल की शैली प्रौढ़, गंभीर, सूक्ष्म, सरस और प्रवाहपूर्ण है। जिसके परिणामस्वरूप पाठक उनकी बात को मानने के लिए बाध्य हो जाता है। आज हिंदी में दिखलाई पड़ने वाली समस्त आलोचना प्रणालियों का उद्‌गम शुक्ल की आलोचना पद्धति है।

शुक्ल के समकालीन अन्य आलोचकों में डॉ. श्याम सुंदर दास, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बाबू गुलाब राय, कृष्ण शंकर शुक्ल, परशुराम चतुर्वेदी, चंद्रबली पांडेय पीतांबर दत्त वड्‌थ्वाल, तथा डॉ. रमा शंकर शुक्ल 'रसाल' आदि उल्लेखनीय हैं।

पं. कृष्ण शंकर शुक्ल

केशव की काव्य कला के द्वारा शुक्ल के व्यावहारिक आलोचना के मानदंडों की रक्षा की।

बाबू गुलाब राय

बाबू गुलाब राय ने सिद्धांत और अध्ययन तथा काव्य के रूप जैसी महत्वपूर्ण कृतियां हिंदी आलोचना साहित्य को प्रदान की।

पीतांबर दत्त बड़थ्वाल

हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय।

पं. परशु राम चतुर्वेदी

उत्तरी भारत की संत परंपरा।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

हिंदी साहित्य का अतीत तथा बिहारी।

शुक्लोत्तर युग

शुक्ल के परवर्ती आलोचकों को छायावादी आलोचक की संज्ञा भी दी जाती है। जिसमें प्रमुख प्रसाद, पंत, निराला, एवं महादेवी हैं। इनके अलावा नंद दुलारे वाजपेयी, शांति प्रिय द्विवेदी, डॉ. नगेंद्र, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, गंगा प्रसाद पांडेय, डॉ. देवराज, डॉ. केशरी नारायण शुल्क तथा श्रीपाल सिंह 'क्षेम' आदि प्रमुख हैं।

जयशंकर प्रसाद

सुमित्रानंदन पंत

सूर्यकांत त्रिपाठी, निराला

महादेवी वर्मा

छायावादी कवियों एवं कवयित्री आदि ने अपने काव्य ग्रन्थों की भूमिका के रूप में आलोचनाएं लिखी हें जिनसे छायावादी आलोचना का श्री गणेश हुआ है। इनकी आलोचना में तीव्र जीवनानुभूति, सूक्ष्म सौंदर्य, चेतना, रमनीय कोमल कल्पना, अनुभूति प्रेरित रहस्यभावना, स्निग्ध शैली शिल्प, विशेषण विपर्यय, मानवीकरण, शब्द संगीत ही इस साहित्य चिंतन के केन्द्र बिंदु हैं। अनुमूल्यात्मक सौंदर्यवाद से उन्हें अभिहित किया जा सकता है।

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी छायावाद और उसकी काव्य शैली के समर्थ व्याख्याता होने के नाते सौष्ठववादी आलोचक के रूप में माने जाते हैं। उन्होंने साहित्य का मूल्यांकन नैतिकवादी फार्मूले पर नहीं किया है। वाजपेयी की महत्वपूर्ण आलोचनात्मक कृतियों में महाकवि सूरदास, जयशंकर प्रसाद, हिंदी साहित्य – बीसवीं शताब्दी तथा आधुनिक हिंदी साहित्य है।

शांतिप्रिय द्विवेदी

द्विवेदी का संबंध प्रभाववादी आलोचना से है। किन्तु उन्होंने भावनात्मक ढंग से ही सही हिंदी की छायावादी समीक्षा को संवर्द्धित किया है। सामयिकी, संचारिणी तथा ज्योति विहंग इनकी श्रेष्ठ कृतियां हैं।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना पद्धति संतों के जीवनादर्श, रवींद्र के मानवतावाद तथा सांस्कृतिक समाज शास्त्रीय दष्टि से प्रभावित है। हिंदी साहित्य की भूमिका, कबीर, सूर साहित्य, साहित्य सहचर तथा हिंदी साहित्य का आदि काल इनकी आलोचनात्मक कृतियों में विशेष उल्लेखनीय हैं।

डॉ. नगेंद्र

डॉ. नगेंद्र सैद्धान्तिक आलोचना की पष्ठभूमि को लेकर छायावाद के काव्य वैभव का साक्षात्कार करने वाले समर्थ समीक्षक थे। सुमित्रानंदन पंत, साकेत एक अध्ययन, रीति काव्य की भूमिका, विचार और विश्लेषण, रस सिद्धान्त, कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवत्तियां तथा अरस्तू का काव्य शास्त्र आदि प्रमुख आलोचना ग्रंथ हैं।

डॉ. राम कुमार वर्मा

डॉ. राम कुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास लिखा है। आदिकाल एवं भक्ति काल का विस्तत विवेचन किया गया है। अनेक कवियों का मूल्यांकन साहित्यिक शैली में किया गया है।

डॉ. भगीरथ मिश्र

डॉ. भगीरथ मिश्र ने हिंदी काव्य शास्त्र का इतिहास तथा हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास लिखा है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

शुक्ल युग में आलोचना अनेक धाराओं में विभक्त होकर चलने लगी जिनमें ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक, व्यावहारिक, मनोविश्लेषणवादी एवं वैज्ञानिक अथवा प्रगतिवादी, प्रभाववादी, अंतश्चेतनावादी, शास्त्रीय तथा शोध–अनुसंधान परक आलोचना के अनेक रूप हुए हैं। आलोचकों ने विवेचन इसी आधार पर किया है जो उचित प्रतीत नहीं होता है। इसलिए शुक्लोत्तर युग के पश्चात् स्वातंत्र्योत्तर युग को अति लंग व खींचकर सन् 1960 के बाद की आलोचना को साठोत्तरी आलोचना युग से विवेचन उचित माना है।

प्रगतिवादी आलोचना सन् 1936 ई. के प्रगतिशील लेखक सम्मेलन के पश्चात् ही प्रारंभ हो गई थी जो सन् 1947 ई. तक चलती रही।

इस युग के आलोचकों में शिवदान सिंह चौहान, रामविलास सिंह प्रकाश चन्द्र गुप्त तथा नामवर सिंह आदि हैं।

शिवदान सिंह चौहान

प्रगतिवाद।

रामविलास शर्मा

भारतेंदु, प्रेमचंद, निराला तथा रामचन्द्र शुक्ल आदि आलोचनाएं प्रमुख हैं।

नामवर सिंह

नामवर सिंह ने इतिहास और आलोचना तथा कविता के नए प्रतिमान की रचना करके आलोचना को नया मोड़ दिया।

रांगेय राघव

रांगेय राघव ने आधुनिक कविता में विषय और शैली की रचना की। इस युग के अन्य आलोचक डॉ. मैनेजर पांडेय एवं चंचल चौहान हें।

साठोत्तरी युग

सन् 1960 ई. के बाद आलोचना ने नवीन मोड़ लिया। इस युग के आलोचकों में पं. शांतिप्रिय द्विवेदी, भगवत शरण उपाध्याय, डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी, इलाचन्द्र जोशी, डॉ. नगेन्द्र, अज्ञेय, डॉ. देवराज उपाध्याय, परशुराम चतुर्वेदी, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ. राम चन्द्र तिवारी, सीताराम चतुर्वेदी, लक्ष्मीनारायण सुधांशु, रवींद्र सहाय वर्मा, डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

शांतिप्रिय द्विवेदी

पं. शांतिप्रिय द्विवेदी प्रभाववादी आलोचक हैं।

भगवत शरण उपाध्याय

प्रभाववादी आलोचकों में उपाध्याय का नाम प्रमुख है। इन्होंने गुरुभक्त सिंह की नूरजहां में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है –

"मैं प्रभाववादी हूं। जब अनुकूल प्रभाव का स्पर्श होता है, तब प्रभाववादी चुप नहीं बैठ सकता है।"

इलाचंद्र जोशी

इलाचंद्र जोशी अंतश्चेतनावादी आलोचक हैं। इस आलोचना का सूत्रपात करने का श्रेय इन्हीं को है। इस आलोचना का मूल उत्स फ्रायड का अंतश्चेतनावादी कला सिद्धान्त है। फ्रायड के अनुसार काव्य कला दमित कामवासना की कल्पित अभिव्यक्ति होती है। अंतश्चेतनावादी आलोचक साहित्यकार के वैयक्तिक जीवन के गहन अध्ययन के आधार पर उनकी इन्हीं दमित वासनाओं का विवेचन एवं विश्लेषण करता है। इलाचन्द्र जोशी की साहित्य सर्जना, विवेचना, विश्लेषण तथा देखा परखा आदि कृतियों में उनका दष्टिकोण स्पष्ट हो गया है। इसके अतिरिक्त डॉ. नगेंद्र, सच्चिदानंद हीरा नंद वात्स्यायन अज्ञेय, डॉ. देवराज उपाध्याय आदि ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

ऐतिहासिक आलोचना के क्षेत्र में कार्य करने वाले आलोचकों में हजारीप्रसाद द्विवेदी, परशुराम चतुर्वेदी, पं. विश्व नाथ प्रसाद मिश्र तथा रामचन्द्र तिवारी के नाम उल्लेखनीय हैं। इस आलोचना के अंतर्गत इतिहास एवं संस्कृति की विशाल परिस्थितियों में साहित्यकार की रचना का मूल्यांकन किया जाता है। डॉ. राम चन्द्र तिवारी की 'रीति कालीन हिंदी कविता और सेनापति, मध्य कालीन काव्य साधना, हिंदी का गद्य साहित्य तथा कबीर मीमांसा आदि ऐतिहासिक आलोचना की रचनाएं हैं।

शास्त्रीय आलोचकों में डॉ. राम चन्द्र तिवारी का नाम प्रमुख है–

लक्ष्मीनारायण सुधांशु

'जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत।'

डॉ. राम कुमार वर्मा

'साहित्य शास्त्र।'

डॉ. भगीरथ मिश्र

'काव्यशास्त्र।'

सीताराम चतुर्वेदी

'समीक्षा शास्त्र।'

लीलाधर गुप्त

'पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त।'

डॉ. देवराज

'रोमांटिक साहित्य शास्त्र।'

रवींद्र सहाय वर्मा

'पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिंदी पर उसका प्रभाव।'

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी

चतुर्वेदी हिंदी अनुशीलन के संपादक भी रहे हैं इनकी रचनाओं में – 'नए पत्ते', 'नई कविता', 'क ख ग', 'हिंदी नव लेखन', 'आगरा जिले की बोली', 'भाषा और संवेदना', 'अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या', 'हिंदी साहित्य की अधुनातन प्रवत्तियां', 'कामायनी का पुनर्मूल्यांकन', 'मध्यकालीन हिंदी काव्य भाषा', 'हिंदी काव्य एक साक्ष्य', 'कविता यात्रा', 'गद्य की सत्ता', 'सजन और भाषिक संरचना', 'इतिहास और आलोचना दष्टि', 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास', 'काव्य भाषा पर तीन निबंध', 'प्रसाद', 'निराला', 'अज्ञेय', 'साहित्य के नए दायित्व', 'कविता का पक्ष', 'समकालीन हिंदी साहित्य – विविध परिदश्य', हिंदी गद्य विन्यास और विकास तथा 'तारसप्तक' से गद्य कविता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

आनंद प्रकाश दीक्षित

'रस सिद्धान्त का स्वरूप विश्लेषण'

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

'रस विमर्श'। आदि प्रमुख शास्त्रीय आलोचना के लेखक उनकी कृति है।

शोध अनुसंधान आलोचना का विगत कुछ वर्षों से अत्यधिक विकास हुआ है।

डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने पाठालोचन की पद्धति का उपयोग करते हुए 'वीसल देव रास', 'पद्‌मावत', 'चंदायन' तथा 'मगावती' आदि का पाठ शोधन किया। **डॉ. दीन दयाल गुप्त** अष्ट छाप और बल्लभ संप्रदाय, **डॉ. राजपति दीक्षित** – तुलसीदास और उनका युग, **डॉ. विजय पाल सिंह** – 'केशव और उनका काव्य', **डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल** – 'अकबरी दरबार के हिंदी कवि', **डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित** – 'रस सिद्धांत : स्वरूप मीमांसा', **डॉ. हीरा लाल माहेश्वरी**-'राजस्थानी भाषा और साहित्य', आदि

पी.एच.डी. एवं डी.दि. उपाधि हेतु लिखे गए शोध प्रबंध हैं। ऐसे शोध प्रबंधों की वर्तमान समय में गणना करना भी कष्ट साध्य, श्रमसाध्य एवं असंभव कार्य हो गया है। शोध प्रबंध की ऐतिहासिकता अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि हिंदी का प्रथम शोध प्रबंध भारत में नहीं अपितु इटली में एल.पी.टेसीटरी द्वारा लिखा गया जिसका अनुवाद डॉ. राधि प्रसाद त्रिपाठी ने रामचरितमानस और बाल्मीकि रामायण के नाम से किया।

भारत वर्ष में हिंदी का प्रथम शोध प्रबंध 'हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय' पीतांबर दत्त बड़थ्वाल के द्वारा सन् 1934 ई. में काशी हिंदी विश्व विद्यालय वाराणसी में उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया। नई कविता ने नई समीक्षा को जन्म दिया।

हिंदी आलोचना साहित्य के विकास में लहर, 'नई धारा', 'साहित्य संदेश', 'कल्पना', 'आलोचना', तथा 'माध्यम' आदि पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा है। वास्तव में हिंदी आलोचना सर्व भावेन विकसित एवं प्रौढ़ है। आलोचना के क्षेत्र में आचार्यों एवं प्रध्यापकों का योगदान अविस्मरणीय है। आलोचना का भविष्य अति उज्जवल है।

34. दक्खिनी हिंदी साहित्य

'दक्खिनी' शब्द का विश्लेषण है जो 'दक्खिन' से व्युत्पन्न है। दक्खिन 'दक्षिण' का तद्भव रूप है जिसका अर्थ दक्षिण दिशा से है। इस दक्खिनी हिंदी का सामान्य अर्थ दक्षिण अर्थात् दक्षिणी भारत में प्रयुक्त होने वाली भाषा हिंदी। 'दक्षिणी' का तद्भव रूप 'दक्खिनी' है। दक्खिनी अर्थ दक्षिण दिशा में पड़ने वाले देश के निवासी था उनकी भाषा को दक्खिनी कहते हैं।

मध्य युग में दक्षिण भारत में प्रचलित हिंदी का वह रूप जिसमें मुसलमान कवि कविता करते थे और आधुनिक उर्दू के विकास का घनिष्ठ संबंध है। दक्खिनी, दखनी या दकनी का प्रयोग दो अर्थों में होता है। इसका अर्थ है दक्षिण निवासी मुसलमान। दूसरा अर्थ है, दक्खिनी या दकनी ज़बान (भाषा)। हाब्सन–जाब्सन कोश के अनुसार 'देकनी' हिंदुस्तान की एक विचित्र बोली है जिसे दक्षिण के मुसलमान बोलते हैं। दक्खिनी देश की स्वाभाविक भाषा है। दक्खिनी हिंदी की एक शैली है। इसका यह नाम देशपरक है इसमं अपेक्षाकृत विदेशी (अरबी, फारसी) शब्दों की मात्रा भी अल्प है।

अबकर के समय में मुगल सम्राटों की भाषा ने हिंदुस्तानी को नया रूप प्रदान किया। अकबर द्वारा लिखी ब्रजभाषा की पंक्तियों तथा मिर्जा खां द्वारा प्रयुक्त **'तुहफ़ातुल हिंद'** दक्षिण में जिस भाषा का उदय हुआ उसे 'उर्दू' नाम दिया गया। यह वास्तव में हिंदी अर्थात् हिंदवी का ही एक रूप है जिसमें अरबी फारसी के शब्दों का बाहुल्य है।

15वीं शताब्दी में अमीर खुसरो की भाषा हिंदी–हिंदुस्तानी थी। सिक्खों की भाषा तथा उसके गुरुपद हिंदुस्तानी में मिलते हैं। उस समय भारतीय मुस्लिम संस्कृति का विकास हुआ। तत्संबंधित भाषाएं दक्षिण में उत्तरी भारत की भाषाओं से भिन्न रूप ग्रहण करने लगीं। उत्तरी भारत वाले मुसलमान दक्षिण भारत आकर जिस हिंदी या हिंदुस्तानी का प्रयोग करते थे उसे दकनी – हिंदी या दकनी कहा गया। इसी में साहित्य का विकास होने लगा। 15वीं, 16वीं तथा 17वीं सदी के लेखकों ने दकनी हिंदी द्वारा फ़ारसीकरण का मार्ग प्रशस्त किया। अर्थात् दक्षिण की हिंदुस्तानी में अरबी–फारसी के शब्दों के प्रयोगधिक्य के द्वारा फारसीकरण किया जाने लगा। फारसी अरबी की लिपि को बढ़ावा मिला। 'आधुनिक कालीन दकनी' पर उत्तरी भारत की उर्दू का अधिक प्रभाव पड़ा जिसके परिणामस्वरूप 'दकनी' अब केवल एक स्थानीय बोली मात्र नहीं रह गई। अपितु दक्खिनी ने साहित्यिक रूप ग्रहण करना प्रारंभ कर दिया। 17वीं व 18वीं शताब्दी के उत्तरी भारत के मुसलमानों द्वारा प्रयोग किया जाने लगा तथा 'दक्खिनी' को नया नाम 'रेख्ता' दिया गया। यह बाहरी उपादानों की परिपुष्ट तथा पचावट की 'यावनी' भाषा बनी। यवनों की भाषा को 'यावनी' कहा गया। उसे 'उर्दू या मुसलमानी हिंदी' का प्रचार प्रसार दिल्ली लखनऊ तक ही सीमित नहीं रहा अपितु खड़ी बोली से मिलकर कोलकाता तक पहुंच गया। खड़ी बोली जिसमें हिंदी एवं उर्दू का समन्वित रूप है उससे 19वीं सदी में कोलकाता के फोर्ट विलियम कॉलेज में हिंदी उर्दू अर्थात् हिंदुस्तानी से खड़ी बोली गद्य का आविर्भाव हुआ।

डॉ. उदयनारायण तिवारी ने लिखा है –

"इसके अतिरिक्त गंभीरता से ग्रियर्सन के थिन पर विचार न करने से कभी–कभी ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदुस्तानी, रेख्ता, उर्दू दक्खिनी पर्यायवाची हैं, जो ठीक नहीं है।"

साहित्यिक के प्राचीन नमूने 'दक्खिनी' में उपलब्ध हैं और बाद में वली औरंगावादी ने इसी में कविता की। अकबर के काल में दक्षिण में मालवा, खानदेश, बरीार तथा गुजरात आदि थे। औरंगजेब ने शासन विस्तार किया। छः प्रांतों – बरार, खानदेश, औरंगबाद, हैदराबाद अथवा बीदर तथा बीजापुर तक राज्य विस्तार कर दक्षिण की सीमा में वद्धि की। जहां की भाषा दक्खिनी थी। दक्खिन प्रदेश पर आक्रमण के कारण उत्तर भारत के अनेक व्यक्ति एवं परिवार जिनमें हिंदु मुसलमान दोनों थे दक्षिण गए। इस्लाम को ग्रहण करने वाले नव मुसलमान थे। सैनिकों के साथ उनका संस्कार तथा उनकी भाषा भी आई। उत्तर भारत के बिहार, अवध तथा राजस्थान से संबंध थे। इनकी संपर्क भाषा खड़ी बोली थी। खड़ी बोली दिल्ली के आस पास की भाषा थी किंतु इनकी लिपि नागरी न होकर फारसी थी। फ्रेंच विद्वान गासो–द–तासी ने दक्खिनी हिंदी की इस विशिष्टता को देखते हुए इसे राष्ट्रीय भाषा कहा है।

दक्खिनी को 'हिंदवी' तथा हिंदी नाम से भी अवहित किया गया। हिंदवी आज भी दक्खिनी का पर्याय है। उस समय खड़ी बोली उत्तर भारत में उतना विकास नहीं कर सकी जितना विकास उसने दक्षिण में आकर किया जिसके प्रमुख कारण, दूरस्थ दिल्ली, राजकार्यालयों में प्रयोग, हिंदू मुसलमानों में समन्वय, शांतिपूर्ण परिवेश तथा सूफी फकीरों का होना आदि है। दक्खिनी का इतिहास 14वीं से 18वीं सदी तक लगभग पांच सौ वर्ष में व्याप्त है। दक्खिनी के विकास केन्द्र बीजापुर, गोलकुंडा, गुलबर्गा एवं बीदर थे। बहमनी, कुतुबशाही एवं आदिलशाही राज्य दक्खिनी के पोषक एवं संरक्षक थे। दक्खिनी को प्रारंभ में हिंदवी के नाम से जाना जाता था। डॉ. परमानंद पांचाल ने दक्खिनी का विवेचन करते हुए इसके संपूर्ण स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है –

दक्खिनी हिंदी, हिंदी का वह पूर्व रूप है जिसका विकास प्राय 14 वीं से 18वीं सदी तक दक्षिण के बहमनी, कुतुबशाही और आदित्यशाही आदि राज्यों के सुल्तानों के संरक्षण में हुआ था। यह मूलतः दिल्ली के आस–पास की हरियाणी एवं खड़ी बोली ही थी जिस पर ब्रज, अवधी तथा पंजाबी के साथ मराठी, सिंधी, गुजराती और दक्षिण की सहवर्ती भाषाओं अर्थात् तेलुगु, कन्नड़ तथा पुर्तगाली आदि का भी प्रभाव पड़ा था और अरबी, फारसी, तुर्की तथा मलयालम आदि देशी विदेशी भाशाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में ग्रहण किए थे। इसके लेखक और कवि प्रायः इस्लाम के अनुयायी थे। इसे एक प्रकार से सबसे मिश्रित भाषा कहा जा सकता है।

दक्खिनी हिंदी के कवि एवं काव्य

राहुल सांकृत्यायन ने 'दक्खिनी हिंदी काव्य धारा' की रचना की है जिसमें उन्होंने दक्खिनी हिंदी के लगभग पांच सौ वर्षों को तीन कालों – आदिकाल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल से विभाजित किया है।

आदिकाल

आदिकाल का समय सन् 1400 – 1500 ई. तक माना है। इस काल के प्रमुख कवियों में बंदानेवाज, शाहमीरांजी, अशरफ, फीरोज, बुरहानुद्दीन जामम, एकनाथ, शाह अली तथ वजही का उललेख किया है।

ख़्वाज़ा बंदानेवाज

इनका वास्तविक नाम सैयद मुहम्मद हुसैनी था। दूसरा नाम 'गेसू दराज' था। 'बंदानेवाज' का शाब्दिक अर्थ भक्तों पर दया करने वाला होता है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी राम को 'बंदानेवाज' कहा। 'गेसूदराज' का अर्थ लंबे बालों वाला होता है। 'गेसू' का अर्थ बाल है। रीति कालीन कवियों ने समस्यापूर्ति में इस शब्द का प्रयोग किया है –

लाम के मानिंद हैं गेसू मेरे घनश्याम के।

काफिर है वह जो बंदा नहीं इस लाम का।।

इनको दक्खिनी में विशेष ख्याति मिली। वे दक्षिणी भारत के ख्वाजा मुईउद्दीन चिश्ती (अजमेर) हैं।

सैयद मुहम्मद हुसैनी (सन् 1318-1420 ई.)

सैयद मुहम्मद हुसैनी का जन्म दिल्ली में हुआ था पिता का नाम युसुफ राजा हुसैनी था जो निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। बाद में सैयद मुहम्मद हुसैनी भी निजामुद्दीन के शिष्य हो गए। इनके पिता सूफी संत एवं अच्छे कवि थे। सन् 1326 ई. में सैयद मुहम्मद हुसैनी ने दक्षिण की प्रथम यात्रा की। मुहम्मद तुगलक के दिल्ली से दौलताबाद राजधानी बदलने के कारण इनके पिता को भी दौलताबाद जाना पड़ा। जहां कुछ दिनों बाद उनका इंतकाल हो गया। उस समय सैयद मुहम्मद हुसैनी दस वर्ष के थे। चौदह वर्ष की अवस्था में उन्हें किसी कारण से दक्षिण से उत्तर आना पड़ा।

इनकी पत्नी रिजा खातून दिल्ली की थी। दो पुत्र एवं तीन पुत्रियां हुई। सन् 1400 ई. में पुनः हसनाबाद आ गए।

रचनाएं – फारसी के विद्वान थे। नागरी लिपि के ज्ञाता थे। दक्खिनी भाषा को फारसी लिपि में लिखा। फासरी में भी रचनाएं की दक्खिनी की कृतियों में **'चक्की नामा'** (पद्य), **'मेराजनामा'** (गद्य) तथा **'सेः पारा'** (गद्य) प्रमुख हैं। जिनमें गुरू की महत्ता, बाह्याडंबर की निंदा, पैगंबर की श्रेष्ठता तथा आत्मशुद्धि का प्रतिपादन किया है।

शाह मीरां जी

शाह मीरां का जन्म मक्का में हुआ था धर्म प्रचारार्थ भारत आए। कुछ दिन उत्तर में रहकर बीजापुर चले गए। बयाबानी के शिष्य थे। इनका निधन सन् 1497 ई. में हो गया। इन्हें **'शंशुल-उश्शाक'** भी कहते थे जिसका अर्थ **'प्रेमियों'** का सूर्य या **'भक्त सूर्य'** होता है।

रचनाएं – **'खुशनामा'** (पद्य), **'खुशनब्ज'** (पद्य), **'शहादतुल-हकीकत'** (पद्य), **'शाह मर्गूबुल-कुतुब'** (गद्य) तथा **'सबरस'** (गद्य) हैं।

बुरहानुद्दीन जानम

शाह मीरां जी के पुत्र बुरहानुद्दीन जानम (सन् 1544 – 1584 ई.) श्रेष्ठ विद्वान एवं सूफी संत थे। इन्होंने अपनी भाषा को **'हिंदी'** कहा।

रचनाएं–**'इरशाद नामा'** तथा **'कल्मतु हकायक'** – 1582.

वजही

दक्खिनी को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाने का श्रेय वजही को है। डॉ. जोर ने वजही के विषय में लिखा है –

"वजही कई बातों के लिहाज से दक्खिन का एक अद्वितीय साहित्यकार है। उसका विषय स्वयं उसकी मानसिक उपज है। उसको इस बात का अभिमान था कि उसने और कवियों की तरह दूसरो के विषय उधार नहीं लिया। दूसरी भाषाओं से अनुवाद करना या दूसरे के विषय को उधार लेना उसकी दष्टि में चोरी और दगाबाजी जैसा अपराध था।..... वजही वह सौभाग्यशाली कवि है जिसकी रचना के गद्य और पद्य दोनों नमूने इस समय मौजूद हैं। ये दोनों उसकी साहित्यिक शक्ति के सबसे अच्छे सबूत हैं। गद्य 'सबरस' के गुणों से साहित्य प्रेमी अपरिचित नहीं हैं और उसके पद्य कुतुब मुश्तरी के अध्ययन से कहा जा सकता है कि वह गोलकुंडा का बहुत बड़ा शायर है।..... वह वस्तुतः दक्खिन का एक आला करजे का कवि था। उसने बहुत अच्छा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। उसमें बनावटी और रूढ़िगस्त विचारों का कोई स्थान नहीं है। उनसे मालूम होता है कि सर्वप्रथम उर्दू (दक्खिनी) कवियों ने हिंदी कविता का अनुकरण आरंभ किया था। यदि वह इस पर कायम रहते तो शायद उनकी कवि आज किसी दूसरे ही रंग में होती।"

रचनाएं–**'कुतुब मुश्तरी'** तथा **'सबरस'**।

मध्यकाल

इस काल का समय सन् 1500–1660 ई. तक माना गया है। इस काल के कवियों में **मुहम्मद कुली, अब्दुल, अमीन, गौवासी, तुकाराम, मीरां हुसैनी, अफजल, मुकीमी, कुतबी, अब्दुल्ला कुतुब, सनअती, खुशनूर, रुस्तमी** तथा **निशाती** प्रमुख हैं।

मुहम्मद कुली

मुहम्मद कुली (सन् 1564 – 1612 ई.) सन् 1580 ई. में गद्दी पर बैठा। कुली साहित्य कला प्रेमी शासक था। उसने लगभग एक लाख शेरों की रचना की। उसने परमार्थ, प्रेम, संस्कृति तथा सौंदर्य आदि पर शेर लिखे।

गौवासी

गौवासी दक्खिनी हिंदी के प्रतिनिधि कवियों में प्रमुख थे। ये अब्दुल्ला कुतुबशाह के राजकवि थे।

रचनाएं–**'सैफुल्मलूक-व-बदी उज्ज माल'** तथा **'तूतीनामा'**। **'सैफुल्मलूक-व-वदी उज्जमाल'** कथा काव्य है जिसकी कथा अलिफ लैला की कहानी पर आधारित है। इसमें ईश्वर स्तुति, संस्कृति, सौंदर्य, प्रेम, प्रकृति, विरह तथा युद्ध आदि सुंदर वर्णन किया गया है। तूतीनामा की रचना सन् 1639 ई. में सैफुल्मलूक से चौदह वर्ष बाद हुई है। जिसमें आश्रयदाता की भूरिभूरि प्रशंसा की गई है।

सनअती

रचनाएं–सन् 1645 ई. में **'किस्सा बेनजीर'** कथाकाव्य की रचना हुई। जिसमे 1615 शेर हैं। आदिलशाह की प्रशंशा की है।

खुशनूद

रचना – इनकी अनूदित रचना **'हश्त बहिश्त'** है अमीर खुशरो की रचना **'हश्त बहिश्त'** है सुल्तान मुहम्मद आदिल से प्रेरित होकर इसका अनुवाद किया।

आधुनिक काल

इस काल का समय सन् 1660 – 1840 ई. तक है। इस काल के कवियों में **नस्रती, मीरांजी खुदानुमा, तबई, गुलाम अली, इश्रती, जईफी, मुहम्मद अमीन, वज्दी, वली दकनी, वली वेल्लोरी, हाशिम अली, कयासी, बाकर अगाह,** तथा **तुराब दखनी** आदि प्रमुख हैं–

नस्रती

दक्खिनी हिंदी कवियों में नस्रती का महत्वपूर्ण स्थान था। ये औरंगजेब के समकालीन थे। बीजापुर के रहने वाले थे। नस्रती का परिवार सेना से सम्बद्ध था। प्रसिद्ध सूफी संत गेसूदराज का अनुयायी था।

रचनाएं–**'गुल्शने इश्क'** – इसमें मनोहर और मधुमालती के प्रेम का वर्णन किया गया है। प्रेम की प्रधानता के कारण उसका नाम प्रेट वाटिका है।

'अलीनामा'–चरित काव्य है जो सुल्तान अली आदिल से सम्बद्ध है। इस कथा काव्य में औरंगजेब शिवा जी और मालाबार के राजा के साथ महत्वपूर्ण युद्धों का सुंदर वर्णन है।

तबई

तबई (सन् 1672 – 1687 ई.) कुतुबशाह का दरबारी कवि था। दक्षिण का अंतिम महाकवि था।

रचना–**'बहरामो गुलदाम**' – इसमें 1340 शेर हैं। तबई ने इसका सजन 40 दिनों में किया।

वली दकनी

इनका नाम वली मुहममद था। वली मुहम्मद (सन् 1682 – 1730 ई.) के साथ पुरानी दक्खिनी धारा की परिसमाप्ति थी। उसके बाद उर्दू काव्य धारा का युग प्रारंभ हुआ। ये संधिकाल के महाकवि थे।

बाकर आगाह

आगाह (सन् 1745 – 1805 ई.) का जन्म वेल्लोर में हुआ था। अरबी, फारसी तथा उर्दू के ज्ञाता थे।

रचनाएं – अकायद नामा, तोहफतुन्निसा, हश्त बहिश्त (आ. भाग), रिया जुल्जनां, महबूबुल्कुलूब, हाशिया मन दर्पण, तोहफये–अहबाब, मेराज नामा, हिदायत नामा, गुल्जारे इश्क, रूप सिंगार, दीवान आगाह, रौजत–ल्–इस्लाम, फरायद–दर–अक्रायद, रियाज–स्–सैन, खम्सा मुत्बहरा, फिर्क हाय इस्लाम।

काव्यगत विशेषताएं

दक्खिनी हिंदी का काव्य समद्ध है। काव्य धारा लंबी है। गद्य–पद्य दोनों की रचनाएं हुई। अधिकांश कवि मुसलमान हैं। सूफी धर्म एवं दर्शन का प्रभाव है। काव्यगत विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

दक्खिनी हिंदी की प्रशंसा

दक्खिनी हिंदी के रेखता, रेरन्टी, हिंदी, हिंदवी, हिंदुई आदि अनेक नाम हैं। कवियों ने इनकी महत्ता का गुणगान किया है। संस्कृत फारसी के ज्ञान के बिना भी दक्खिनी आसानी से समझी जा सकती है ऐसा सनअली का कहना है। अशरफ तथा बुहानुद्दीन ने दक्खिनी हिंदी की शक्ति और सामर्थ्य की प्रशंसा की है।

सौंदर्योपासना

दक्खिनी हिंदी के कवि सौंदर्य के अनूठे कवि हैं उन्होंने सौंदर्य की व्यापक अवधारणा की है। नर–नारी दोनों के सौंदर्य का वर्णन किया है। सौंदर्य वर्णन की दष्टि से मुहम्मद कुली का नाम उल्लेखनीय है। वह गोलकुंडा का रंगीलेशाह था। उसने अनेक छंदों में नखशिख वर्णन और नायिकाओं के विभिनन प्रकारों का सौंदर्य निरूपण किया है। इस बादशाह कवि की अनेक प्रमिआएं थीं इसलिए उनके सौंदर्य पर भी छंद रचना की है। उसकी प्रमिकाओं में भागमती का महत्वपूर्ण स्थान था। वह बड़ी कलावंत नारी थी। उसे रूप चित्रण की आड़ में कवि ने सौंदर्य के अनुपन विश्व का सजन किया है। नखशिख वर्णन में नयन, कपोल, बाल, भौंह आदि का अति उत्तेजक एवं मादक वर्णन किया है। प्रेम कथा को अपने काव्य का विषय बनाया।

सैफुल्मलूक का वदी उज्जमाल ने पुरुष सौंदर्य का अंकन किया है। इनके सौंदर्य वर्णन में स्वाभाविकता है।

प्रेम व्यंजना

इनका काव्य मूल प्रतिपाद्य प्रेम है। इन्होंने प्रेम के अनेक रूपों तथा अनेक चित्रों को पूर्ण सफलता से अंकित किया है। प्रेम प्रतीक्षा, प्रेम उल्लास, प्रेम पिपासा, प्रेम मदिरा, प्रेम सुख, प्रेम दुख, प्रेम पाती, प्रेम अग्नि तथा प्रेम प्रभाव आदि प्रेम निरूपण के अनेक विषयों के द्वारा इन कवियों ने प्रेम की व्यंजना की है। प्रेम में विरह की आकुलता–व्याकुलता की व्यंजना अति सहजता से की है। वली दकनी का प्रेम व्यंजना में महत्वपूर्ण स्थान है। मुहम्मद कुली ने भी प्रेम का वर्णन किया है।

संस्कृति निरूपण

दक्खिनी कवियों में संस्कृति के प्रति अपार प्यार है। संस्कृति के बाह्यांतर दोनों प्रश्नों का वर्णन किया है। बंदा नेवाज की रचना से : पारा में प्रश्नोत्तर शैली अपनाई गई है। जो नीतिगत चेतना की व्यंजना करते हैं। उदाहरणार्थ गद्यांश प्रस्तुत है –

"**सवाल** – ईमान के झाडां क्या? और ईमान के डाल्यां क्या? और ईमान के बाद और ईमान का वतन क्या? और ईमान का बीज क्या? और ईमान का पोस्त क्या? और ईमान का का जीव क्या?

जवाब – ईमान की जीव कुरान। ईमान की जड़ तोबा। ईमान की डाल्यां सो बंदगी। ईमान की बात परहेजगारी। ईमान का तुख्म से इल्म। ईमान का पोस्त शर्म। ईमान का वतन सो मोमिन का दिल है।"

सवाल–जवाब में मानव के आचार–विचार, प्रेम–घणा, आस्था–निष्ठा के विवेचन के द्वारा अच्छा मनुष्य बनने के लिए मानो आचार–संहिता प्रस्तुत कर दी है। इसके अतिरिक्त उत्सव–त्यौहार, मंगलाचरण, जन्मोत्सव – वर्षगांठ, विवाह – संस्कार, विवाह – भोज, सोहागरात, बारात – विदाई, नव वर्ष (नीरोज) आदि विभिन्न सांस्कृतिक आयामों का विशद वर्णन है।

प्रकृति चित्रण

दक्खिनी काव्य में प्रकृति के अनेक रूपों का सजीव, उद्दीपक, प्रेरणार्थक रूपों का वर्णन किया गया है। गर्मी, सर्दी, शरद, बसंत, वर्षा एवं हेमंत आदि ऋतुओं का मनोहारी रूप वर्णित है। प्रातः, मध्याह्न, संध्या का सजीव, मोहक चित्रांकन किया गया है। मुहम्मद कुली ने ऋतुराज वसंत का अति मादक एवं उत्तेजक रूप वर्णित किया है। वसंत की संपूर्ण सुषमा जीवंत हो उठी है।

वन शोभा, उद्यान शोभा, निशा सौंदर्य, आदि सुंदर वर्णन गौवासी में दष्टिगोचर होता है। रात का स्वाभाविक चित्र उकेरने में गोस्वामी को अपूर्ण सफलता मिली है।

आश्रयदाता की प्रशंसा

अधिकांश कवि राज्याश्रित थे जिन्होंने रीतिकालीन कवियों की भांति अपने आश्रयदाता राजा की प्रशंसा मुक्त कंठ से की है। वजही तत्कालीन गोलकुंडा के बादशाह कुतुबशाह का राज कवि था। गौवासी का आश्रयदाता सुल्तान अब्दुल्ला कुतुबशाह था। मसनवी शैली के अनुसार कवियों में समसामयिक राजाओं की वंदना तथा प्रशंसा की है। प्रशंसा की शब्दावली द्रष्टव्य है तबई ने अपने आश्रयदाता सुल्तान अबुल हसन कुतुबशाह की प्रशंसा में लिखी है –

"शह अबुलहसन सच तूं शाहेदखिन। तुजे शाहराज् मदद बुल्हसन।।

दिया है खुदा वादशाही तुझे। सोहाता है जल्ले इलाही तुझे।।

शहंशह तू आज दिन सूर है। तेरे परते शाहा बला दूर है।।

मलाहत में ज्यों सूर चंदर है तूं। सलावत मने ज्यों सिकंदर है तू।।

खुदा बंदगी

प्रायः अधिकांश दक्खिनी कवि इस्लाम धर्मानुयायी हैं। खुदा में उनको विश्वास है, आस्था है। इसलिए उनकी बंदगी में कहीं चूक नहीं की है। अल्ला का हक कहीं नहीं मारा है। अल्ला बंदगी में अपनी खैर मानते हैं।

अशरफ ने अपनी रचना में अल्ला को दुनिया की सारी चीजों को बनाने वाला मानकर मंगलाचरण में ईश्वर का गुणगान किया है।

शाह बुरहान, गौवासी, ख्वाजा बंदानेवाज, खुशनूद बाकर आमाह आदि सभी ने अल्लाह की बंदगी की है। वाकर आगाह ने पैगंबर मुहम्मद के अनेक चित्रों को अपनी रचना में उकेरा है जिसमें मुहम्मद की आकृति, प्रकृति तथा वेशभूषा आदि की छटा वर्णित है।

स्वदेश प्रेम

इनकी कोई व्यापक राष्ट्रीयत नहीं थी किन्तु दक्खिनी क्षेत्र के प्रति उनमें अपार प्यार है। उसी को देश प्रेम के रूप में वर्णित किया है। कवि वजही का देश प्रेम वर्णन प्रशंसनीय है –

"दखिन सा नहीं ठार संसार में,
निपज फाजिला का है इस ठार में,
दखिन है नगीना अंगूठी है जग,
अंगूठी कुं तुर्मत नगीना है लग।
दखन मुल्क कूं धन अजब साज है,
कि सब मुल्क सिर हो दखिन ताज है।
दखिन मुल्क मौते च खामा अहै,
तिलंगाना उसका खुलासा अहै।

-कुतुब मुश्तरी।

युद्ध वर्णन

दक्खिनी काव्य धारा के कवियों में युद्धों का सजीव एवं जीवंत वर्णन किया गया है। ऐसे कवियों में नस्रती, इश्रती, वली वेल्लोरी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। नस्रती का शिवाजी और अली आदिल का पनाला में सन् 1661 ई. का युद्ध वर्णन दर्शनीय है –

"खडगां खनाखन सूर धर सूरां के यों बजने लगे।

जोहए का जोहरा गुल रह्या आवाज सुन झलकार का।।

खडगां खडगां लग अधिक चौधरते यों चिंगियां उड़ियं।

ज्यों आगकियां बिजलियां चमक वरस्यों बदल अंगार का।।"

कला शिल्प

दक्खिनी हिंदी के कलापक्ष का विवेचन करते हुए डॉ. श्रीराम शर्मा ने लिखा है –

"दक्खिनी के आरंभिक उच्चारण का विश्लेषण नव आर्यभाषाओं के ध्वनि संबंधी विवेचन के लिए महत्वपूर्ण है। यह विवेचन उस समन्वय प्रणाली से अवगत कराता है। जिसके कारण हिंदी भाषा क्षेत्र की विविध बोलियों, अरबी, फारसी, तुर्की तथा पश्तो आदि मराठी तेलुगु, कन्नड़ क्षेत्र की अनेक उपभाषाओं और बोलियों की ध्वनि संबंधी विविधताओं के बीच साहित्यिक दक्खिनी की ध्वनियां सुनिश्चित एक रूपता प्राप्त कर सकीं।"

दक्खिनी हिंदी में उपमा, रूपक, यमक, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति आदि अलंकारों की सुंदर समायोजना की गई है।

दक्खिनी कवियों ने अविधा, लक्षण एवं व्यंजना शब्द शक्तियों का सुंदर प्रयोग किया है। प्रसाद एवं माधुर्य गुज की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। इसके अतिरिक्त रीतियों का भी प्रयोग किया गया है। विंब विधान एवं प्रतीक योजना का सफल निर्वाह किया गया है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों का समावेश किया गया है। भाषा सहज, सरल, शक्तिशाली, प्रभावोत्पादक एवं संप्रेषकीय है। भाषा भावनुसारिणी है। शिल्पविधान एवं भावविधान विचारनुसार हैं।

भाषा में संस्कृत, अरबी, फारसी, तुर्की, अवधी, ब्रज, तमिल, तेलुगु तथा कन्नड़ आदि के आधार भाषा गद्य एवं पद्य दोनों की खड़ी बोली है जिसे इन्होंने दक्खिनी नाम दिया है। इनकी भाषा को गंगा यमुनी कहा जा सकता है। आलोचकों ने मिश्रित भाषा भी कहा है। भाषा का समन्वित विधान सांस्कृतिक सूत्रबद्धता तथा राष्ट्रीयता को दढ़ता प्रदान करने वाला है।

35. उर्दू साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

आगरा तथा दिल्ली के आस–पास की हिंदी अरबी–फारसी तथा अन्य विदेशी शब्दों के सम्मिश्रण से विकसित हुई है। इसका दूसरा नाम 'उर्दू' भी है। मुसलमानी राज्य में यह अंतर्प्रांतीय व्यवहार की भाषा थी। 19वीं शताब्दी में 'हिंदुस्तानी' का शब्द उर्दू का वाचक बन गया था। इसी को पुराने 'एंग्लो इंडियन', मूर भी कहते थे। स्पेन तथा पुर्तगाल वालों के अनुसार मूर मुसलमान थे।

उर्दू हिंदुस्तानी की वह शैली है जिसमें फारसी शब्द अधिक मात्रा में प्रयुक्त होते हैं तथा जो केवल फारसी लिपि में लिखी जा सकती है। हिंदुस्तानी, रेखता, उर्दू तथा दक्खिनी को पर्याय माना गया। उर्दू का प्रसार केवल नागरिक मुसलमानों तथा सरकारी दफ्तरों से संबंध रखने वाले लोगों तक ही सीमित रहा है। 19वीं सदी में दक्खिनी की परिणति उर्दू में हुई। उर्दू के देश व्यापी प्रचार–प्रसार के लिए दिल्ली में अंजुमन तरक्किए उर्दू की स्थापना हुई। उर्दू तुर्की शब्द है जिसका अर्थ तातार खान का पड़ाव या खेमा है। तुर्किस्तान ताशकंद तथा खोकंद में उर्दू का अर्थ किला है। शाही पड़ाव के अर्थ में उर्दू शब्द भारत में संभवतः बाबर के साथ आया तथा दिल्ली का राजभवन 'उर्दू ए मुल्ला' अथवा 'महान शिविर' कहलाने लगा। दरबार तथा शिविर में जिस मिश्रित भाषा का आगमन हुआ उसे 'जबाने उर्दू' कहा गया। उर्दू वास्तव में दरबारी भाषा है जनसाधारण से उसका कोई संबंध नहीं।

उर्दू भाषा का जन्म

सैयद इंशा ने स्पष्ट कहा है –

"लाहौर, मुल्तान, आगरा, इलाहाबाद की वह प्रतिष्ठा नहीं है जो शाहजहानाबाद या दिल्ली की है। इसी शाहजहानाबाद में उर्दू का जन्म हुआ है, कुछ मुल्तान, लाहौर या आगरा में नहीं।" उर्दू की जन्म कथा कुछ इस प्रकार है –

"शाहजहानाबाद के खुशबयान लोगों ने एक मत होकर अन्य अनेक भाषाओं से दिलचस्प शब्दों को जुदा किया और कुछ शब्दों तथा वाक्यों में हेर–फेर करके दूसरी भाषाओं से भिन्न एक अलग नई भाषा ईजाद की और उसका नाम उर्दू रख दिया।"

उर्दू शाहजादगाने तमूरिया (तैमूरी राजकुमारों) की ही जबान है और किला ही उस जबान की टकसाल थी।

मुहम्मद हसन आजाद ने उर्दू को 'ब्रजभाषा' से निकली जबान कहा है।

मीर अमन देहलवी ने उर्दू को 'बाजारी एवं लश्करी भाषा' कहा है।

डॉ. उदय नारायण तिवारी का कहना है कि लाहौर में उस समय पुरानी खड़ी बोली प्रचलित थी। उसी को विदेशियों ने व्यवहार की भाषा बनाया। इस प्रकार फौज की भाषा जो बाद में उर्दू कहलाई, 'खड़ी बोली' से उत्पन्न हुई।

जार्ज ग्रियर्सन बोलचाल की ठेठ हिंदुस्तानी से ही साहित्यिक उर्दू की उत्पत्ति मानते हैं।

श्री ब्रजमोहन दत्तात्रेय कैफी ने अपने अक्तूबर, 1951 के ओरियंटल कांफ्रेंस लखनऊ के भाषण में उर्दू की उत्पत्ति के संबंध में विचार करते हुए कहा था।

"शौरसेनी प्राकृत में विदेशी शब्दों सम्मिश्रण से ही उर्दू की उत्पत्ति हुई। इसे हिंदुस्तानी भी कहा जा सकता है।"

कतिपय भाषा शास्त्रियों के अनुसार खड़ी बोली में फारसी शब्दों के सम्मिश्रण से ही उर्दू की उत्पत्ति हुई।

'हिंदुस्तानी ठेठ' हिंदी का ही पर्याय है। और इसी को कतिपय विद्वानों ने खड़ी बोली नाम दिया। उर्दू की उत्पत्ति हिंदी से हुई और उर्दू वास्तव में हिंदी की ही एक शैली है।

उर्दू की जबान वस्तुतः एक वर्ग विशेष की भाषा है और यह नितांत कृत्रिम ढंग से हिंदुस्तानी अथवा ठेठ हिंदी या खड़ी बोली में अरबी फारसी शब्दों तथा मुहावरों का सम्मिश्रण करके बनाई गई है। यह कार्य दिल्ली में ही किला मुअल्ला में सम्पन्न हुआ इसलिए इसको 'जबाने–उर्दू–ए–मुअल्ला' भी कहते हैं।

सैयद इंशा अल्ला के अनुसार –

"यहां (शाहजहानाबाद) के खुशबयानयों (साधु वक्तव्यों) ने मुलफिक (एकमत) होकर मुताद्दिक (परिगठित) जबानों से अच्छे–अच्छे लफ्ज निकाले और बाजी इबारतों (वाक्यों) और अल्फाज (शब्दों) में तसर्रुफ (परिवर्तन) करके और जबानों से अलग एक नई जबान पैदा की जिसका नाम उर्दू रखा।"

उर्दू ने भाषा का रूप मीर की मत्यु सन् 1799 ई. के पश्चात लिया जब मसहबी ने लिखा –

"खुदा रक्खे जबां हमने सुनी है मीर वा मिरजा की।

कहें किस मुंह से हम ऐ मसहफी उर्दू हमारी है।।"

उत्तरी भारत में उर्दू भाषा का साहित्य 19वीं सदी में प्रारंभ हुआ जबकि दक्खिनी में इससे पांच सौ वर्ष पूर्व काव्य सजन होना प्रारंभ हो गया था।

उर्दू साहित्य के विकास को मुख्य रूप से तीन – आरंभिक, मध्य एवं आधुनिक कालों में विभक्त किया जा सकता है। आरंभिक काल में उर्दू काव्य का विकास दक्षिणी भारत में दक्खिनी के मसनवी रूप में हुआ। मध्यकाल में उत्तरी भारत मुख्य रूप से दिल्ली–लखनऊ के राजाओं के दरबारी वातावरण में हुआ मध्यकाल तक उर्दू कविता मुख्य रूप से गजल के रूप में इश्क और हुश्न के तंग गलियारों में अपनी कलाबाजी दिखलाती हुई सुरा–सुंदरी की तरह लोगों का दिल बहलाव करती रही। प्रेमावत्ति की प्रधानता रही जो मनुष्य की मूलभूत पूंजी है।

आधुनिक काल में उर्दू का चरित्र बदल गया नज्म का जमाना आ गया। नज्म ने मनुष्य के व्यापक जीवन संघर्षों और लोक जीवन की अनेक समस्याओं तथा उसके यथार्थ से नाता जोड़ लिया। अब उर्दू काव्य ऐसे मैदान में प्रवष्ट हो गया था जहां किसी आश्रयदाता का सहारा दूर–दूर तक दष्टिगोचर नहीं होता था अपने ही बाहुल, संघर्ष शक्ति तथा बौद्धिकता का भरोसा था। जीवन का पाथेय यही बना। देश, समाज और जीवन की भाव भूमि के समक्ष खड़ा उर्दू कवि पलायन का नहीं संघर्ष का मार्ग चयन कर देश–समाज के कदम से कदम मिलाते हुए अग्रसर होने का प्रयासी बन गया था। काव्य प्रवत्ति के अनुसार विकास के कालों को 'मसनवी काल', 'गजल काल' तथा 'नज्म काल' भी कह सकते हैं। 'गजल काल' में लखनऊ में मरसिया शोक गीत का विकास हुआ किंतु वह मुख्य प्रवत्ति नहीं थी।

उर्दू साहित्य - आरंभिक काल : दक्खिनी काव्य

उर्दू भाषा का जन्म एवं विकास उत्तरी भारत के दिल्ली के आस – पास हुआ किंतु साहित्य का सर्वप्रथम उद्गम एवं विकास दूर दक्षिण भारत में हुआ। जिसे 'दक्षिणी देशीय काव्य', 'दक्खिनी उर्दू काव्य' या 'दक्खिनी काव्य' से अभिहित किया गया। उर्दू भाषा एवं साहित्य को प्रारंभ से राजकीय संरक्षण प्राप्त था जिससे विकसित प्रतिष्ठित होकर भी जन मानस की आकांक्षा की पूर्ति न कर सकी। बादशाहों ने भी उत्कृष्ट रचनाएं की।

प्रथम कवि

दक्खिनी के प्रथम कवि 'सैयद मुहम्मद हुसैनी' हैं इन्हें दो अन्य ख्वाजा बंदानेवाज (भक्तों पर कृपा करने वाले) तथा गेसू दरात (लंबे बालों वाले) नामों से भी पुकारा जाता था। सूफी संत कवि थे। उन्होंने गद्य–पद्य दोनों की रचनाएं की।

उर्दू साहित्य का विकास

इनके अतिरिक्त लगभग चालीस मुसलमान कवियों ने मसनवी शैली में प्रबंध काव्य तथा मुक्तक रचनाएं की जिनमें अकबर हुसैनी, निजामी, मुहम्मद कुली, कुतुबशाह, वजही, गौवासी, शेख मुहम्मद जुनेद, इब्न निशाती, इश्रती, तबई, नुस्रती, हाशिमी, आतिशी, अमीन, मुकीमी, सनाती, रुश्तमी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मुहम्मद कुली कुतुबशाह दक्खिनी काव्य के विशेष कवि थे। ये आध्यात्मिक थे। साहित्यिकता एवं काव्यत्व की दष्टि से इनके काव्य में उत्कृष्टता नहीं है किन्तु भाषा और साहित्य के विकास की दष्टि से इनका ऐतिहासिक महत्व है।

दक्खिनी काव्य की विशेषताएं

उर्दू साहित्य के आरंभिक काव्य या दक्खिनी काव्य की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

ईश्वर में विश्वास – इस काल के कवियों को अल्ला में पूर्ण आस्था थी। उनकी स्तुति एवं गुणगान में अनेक छंद उपलब्ध हैं। ईश्वर को एक माना है। पैगंबर मुहम्मद की आकृति, प्रकृति तथा वेशभूषा का वर्णन किया है।

दक्खिनी की प्रशंसा – उत्तर से दक्षिण को श्रेष्ठ ही नहीं सिर का ताज माना है। संस्कृत, फारसी आदि अन्य भाषाओं से अधिक सम्मान दक्खिनी को दिया है। हिंदवी में बाचा करना, तकरीर हिंदवी सब बखान, 'यों मैं हिंदवी कर आसान', आदि कथन दक्खिनी की प्रशंसा में कहे गए हैं।

आश्रयदाता - प्रशंसा – आश्रयदाता राजाओं के दरबारों में रहकर जीवन यापन करते थे। मसनवी के अनुसार शाहे तख्त की वंदना की है।

स्वदेश प्रेम – राष्ट्रीयता की भावना व्यापक नहीं थी उनका देश दक्षिण सीमित प्रदेश था। उससे उन्हें अत्यधिक प्रेम था। उसे इन्होंने 'दखिन सा नहीं ठार संसार में', 'दखिन है नगीना अंगूठी है जग', सब मुल्क सिर होर दखिन ताज है' आदि कथनों के द्वारा दक्षिण या स्वदेश प्रेम का वर्णन किया है।

सौंदर्य प्रेम – नर नारी के सौंदर्य का वर्णन, नख–शिख वर्णन में नायिका के नयन, कपोल, बाल, भौं आदि का सुंदर वर्णन किया है।

प्रेम-व्यंजना – प्रेम मानव की मूलभूत पूंजी है इसके अनेक प्रेम प्रतीक्षा, प्रेम उल्लास, प्रेम पिपासा, प्रेम मदिरा, प्रेम सुख, प्रेम दुख, प्रेम पाती, प्रेम प्रभाव आदि रूपों के साथ साथ विरह की सहज व्यंजना की है।

प्रकृति प्रेम – ग्रीष्म, वर्षा, शरद, वसंत, हेमंत तथा शिशिर आदि ऋतुओं, प्रातः मध्याह्न, संध्या तीनों कालों के साथ–साथ वन, लता, पशु–पक्षी, आदि का सुंदर चित्र उपस्थित किया है। वसंत का मादक एवं उत्तेजक वर्णन करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

संस्कृति प्रेम – संस्कृति में ईमान, वतन, जीव, कुरान, तोबा, बंदगी, परहेजगारी, तुख्म से इल्म, शर्म, मोमिन का दिल आदि एक ही स्थान पर सवाल–जवाब के द्वारा जीवन की नैतिकता एवं कर्तव्यपरायणता का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त, उत्सव–त्यौहार, मंगलाचरण, वर्षगांठ, जन्मोत्सव, जन्म दिन, विवाह, बारात विदाई, सोहागरात आदि का वर्णन किया है। कुली ने नव वर्ष (नीरोज) का सुंदर वर्णन किया है।

युद्ध वर्णन – युद्ध का सजीव एवं जीवंत वर्णन करने में नस्रती, इश्रती वली वेल्लोरी आदि उल्लेखनीय हैं। शिवाजी – अली आदिल के पनाला के युद्ध वर्णन में तलवारों की खनखनाहट ध्वनि काव्य का सौंदर्य प्रस्तुत कर देता है।

काव्य शिल्प – दक्खिनी के उच्चारण तथा आर्य भाषाओं के ध्वनि संबंधी विवेचन महत्वपूर्ण हैं। समन्वय की प्रणाली है। अरबी, फारसी एवं तुर्की के साथ–साथ अवधी, ब्रज, तथा पश्वों, मराठी, तेलुगु एवं कन्नड़ आदि देशी–विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है। प्रसाद, ओज एवं माधुर्य मयी भाषा में रीतियों का भी समावेश किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास तथा अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग किया गया है।

उर्दू साहित्य - मध्यकाल

मध्यकालीन उर्दू साहित्य के विकास में दिल्ली एवं लखनऊ का विशेष योगदान रहा है। इसी के आधार पर मध्यकालीन उर्दू साहित्य को भागों में विभक्त किया जा सकता है।

दिल्ली - उर्दू साहित्य -

उर्दू भाषा की उत्पत्ति दिल्ली के आस पास हुई किंतु पांच सौ वर्षों तक साहित्य सजन दक्षिण में चलता रहा। दिल्ली उर्दू भाषा एवं साहित्य का प्रभुत्व बनाए रही। 18वीं शताब्दी में ऐतिहासिक परिवेश में परिवर्तन हुआ। उर्दू भाषा एवं साहित्य में नई चेतना आई। उर्दू भाषा एवं साहित्य का विकास दक्षिण से उत्तर आया। इसका श्रेय 'वली औरंगावादी' को है। उन्होंने उर्दू भाषा को दिल्ली में प्रतिष्ठित किया। दिल्ली यात्रा के मध्य वली ने दो महत्वपूर्ण कार्य –

i. उर्दू भाषा का प्रचार प्रसार किया तथा उर्दू की लोकप्रियता में वद्धि की।

ii. गजल एवं मरसिया विधा को मसनवी के समानांतर प्रतिष्ठा प्रदान की।

वली औरंगाबादी -

दिल्ली में वली और उनकी गजलों का अत्यधिक स्वागत हुआ। उसने फारसी के साहित्यकारों को उर्दू लेखन हेतु बाध्य कर दिया। फारसी भाषा के विद्वान कवि फितरत, उन्मीद, बेदिल, नदीम तथा आरजू आदि शिष्यों के अनुरोध पर उर्दू के शेर लिखने लगे जिनमें एक पंक्ति फारसी की तथा दूसरी पंक्ति उर्दू की होती थी। फारसी के कवियों ने स्वाभाविक रूप से दो भाषाओं को काव्य का माध्यम बनाया। जिसके संयोग से नई भाषा बनने लगी। मुगल सत्ता के प्रभाव घटने के परिणाम स्वरूप फारसी का प्रभाव भी घटने लगा। बादशाह मुहम्मद शाह उर्दू कविता का प्रेमी हो गया। उसी समय नादिरशाह दुर्रानी ने दिल्ली पर आक्रमण करके दिल्ली सल्तनत की नींव हिला दी। फारसी कवियों का राजकीय संरक्षण समाप्त हो गया फलस्वरूप जनभाषा उर्दू को सिर उठाने का अवसर मिल गया।

18वीं 19वीं शताब्दी में उर्दू कविता दिल्ली में खूब फूली भली। फारसी का प्राधान्य होने से जन मानस से दूर रही। प्रेम, सौंदर्य तथा शाश्वत सच्चाइयों की अभिव्यक्ति ने इसे लोकप्रिय बनाया। उर्दू के साथ से अब दक्खिनी शब्द अलग हो गया 18वीं शती के उर्दू साहित्य का विकास दो चरणों में हुआ। प्रथम में उर्दू कविता की नींव तैयार हुई और द्वितीय में उर्दू कवियों ने उस नीव पर भव्य महल का निर्माण किया।

प्रथम चरण के विषय में रघुपति सहाय फिराक, गोरखपुरी ने लिखा है –

प्रथम चरण या प्रारंभिक काल की चार विशेषताएं हैं –

i. दकनी शब्द का बहिष्कार।

ii. सूफियाना विषयों की कमी और ठोस भौतिक प्रेम प्रदर्शन।

iii. वर्णन में पहले से अधिक सफाई तथा प्रवाह।

iv. शाब्दिक अनुरूपता तथा द्वयअर्थक शब्दों का अधिक प्रयोग।

इस प्रवत्ति से संबंधित शायरों में खान आजू, शाह मुबारक आबरू, अशरफ अली फुगा, शाह हातिम, मिर्जा जानाजाना, मअहर, तांबा आदि उल्लेखनीय हैं।

द्वितीय चरण के शायरों ने उर्दू कविता को उन्नति के शिखर पर पहुंचा दिया जिनमें मीर तकी मीर, मुहम्मद रफी सौदा, दर्द एवं स्वज के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। पूर्ववर्ती उर्दू कविता की न्यूताओं से मुक्ति दिलाकर उसे रवानी दी। इस काल को उर्दू का स्वर्ण काल कहा जाता है।

समसामयिक कटु यथार्थ का विवेकपूर्ण प्रस्तुतीकरण किया गया। मीर की शायरी की उच्चता गालिब को भी नहीं मिली। आक्रमण कारियों के अत्याचारों से 'मीर तथा सौदा' दिल्ली छोड़ गए। 19वीं शताब्दी में उर्दू कविता को पुनर्जीवित करने वालों में हकीम मोमिन खां मोमिन, शेख इब्राहिम जौक, मिर्जा असदुल्ला खां गालिब, बहादुर शाह जफर, आदि का नाम बड़े गौरव से लिया जाता है। इनके अतिरिक्त दिल्ली में उर्दू कविता के पुनरुत्थान में योगदान देने वाले शायरों में शाहन सीर, सेफता, तसकीन, नसीन देहलवी तथा अनवर आदि के नाम प्रमुख हैं। गालिब युग निर्माता कवि हैं। इसलिए इस युग को गालिब युग की संज्ञा दी जाती है।

लखनऊ : उर्दू साहित्य

लखनऊ की उर्दू शायरी को लखनवी उर्दू कविता का नाम दिया गया है। 18वीं शताब्दी में नादिरशाह, अहमदशाह तथा मराठों–जाटों के अत्याचार से शायरी दिल्ली से उचट गई। दिल्ली के स्थान पर लखनऊ उर्दू कविता का केन्द्र बन गया। लखनऊ के अलावा फर्रुखाबाद, टांडा, अजीमाबाद, मुर्शिदाबाद, हैदराबाद तथा रामपुर के राजदरबारों में शायरों ने शरण ली। अन्य स्थानों की अपेक्षा उर्दू शायरी का गढ़ लखनऊ बन गया।

लखनऊ ने उर्दू शायरी पर अपना रंग जमाया तथा उसे दिल्ली शायरी से अलग कर दिया। लखनवी उर्दू कविता को सजाने–संवारने वालों में नासिख, आतिश, अनीस तथा दबीश का नाम प्रमुख है। लखनऊ में सौदा, जौक, मुसहफी तथा इंशा

ने उर्दू कविता का प्रसार–प्रचार किया। यदि नवाबों ने शायरों को शरण न दी होती, उन्हें बुला–बुलाकर सम्मानित एवं पुरस्कृत न किया होता तो लखनऊ में उर्दू शायरी का वह दौर न चल पाता जिसके लिए वह अलग से जानी–पहचानी जाती है। आसुफद्दौला, सआदत खां तथा वाजिद अली शाह 'अख्तर' आदि नवाबों ने उर्दू कविता को समद्धि प्रदान की। अख्तर के चालीस ग्रंथों का उल्लेख मिलता है।

लखनऊ का परिवेश प्रारंभ में गजल के लिए काफी मुफीद था। लखनऊ की पष्ठभूमि ने मरसिया को प्रतिष्ठित किया। मरसियाकारों में मीर बबर अली, अनीस, मिर्जा सलामत अली दबीर, रशीद, आरिफ तथा नफीस आदि के नाम प्रमुख हैं। अनीस की शायरी में सहजता, सरलता तथा अलंकार प्रियता है तो दबीर में आलंकारिक क्लिष्टता, जटिलता तथा कल्पना की प्रधानता है। अनीस भाववादी तथा दबीस कलावादी शायर थे।

उर्दू साहित्य - आधुनिक काल

सन् 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में परिवर्तन आया। अंग्रेजी शासन की सुदढ़ता तथा उनसे मुक्ति पाने के लिए भारतीयों की बेचैनी ने सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। महात्मा गांधी का आंदोलन चल पड़ा। सन् 1947 में भारत स्वतन्त्र हो गया। इन घटनाओं से उर्दू कविता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। एकांत प्रेम अब युगीन समस्याओं का चित्रण करने लगे।

मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आजाद' तथा अलताफ हुसैन 'हाली' ने हालरायड की प्रेरणा से सन् 1874 ई. में ही लाहौर में एक नए मुशायरी की नींव डाली। 'हाली' ने स्थानीय रंग, वास्तविकता से लगाव तथा जीवन के सच्चे चित्रण पर बल दिया। आजाद की प्रेरणा से उर्दू कविता में नवीन चेतना का उदय हुआ। उर्दू कविता का कायाकल्प हो गया। विषयवस्तु एवं क्षेत्र में विस्तार हुआ। आधुनिक काल की शायरी ने अपनी संकुचित भावभूमि का परित्याग कर जीवन के अहम् समस्याओं से जोड़ा तथा उसने अति संयम से युगीन चेतना का चित्रण किया।

उर्दू साहित्य - नवजागरण

उर्दू साहित्य के नवजागरण (सन् 1874 – 1935 ई.) ने राष्ट्र एवं सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति की। आधुनिक उर्दू का प्रारंभ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से हुआ। अंग्रेजों ने ज्ञान–विज्ञान की नवीन उपलब्धियां प्रदान की जिससे देश भक्ति तथा स्वतन्त्रता की विचारधारा का उदय हुआ। राजनीतिक आंदोलन तथा सुधारवादी आंदोलनों से उर्दू कविता प्रभावित हुई। मौलाना हुसैन, आजाद, अलताफ हुसैन, हाली, दुर्गा सहाय सुंरूर, पं. ब्रज नारायण चकबस्त तथा इकबाल जैसे शायरों ने उर्दू कविता में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति की तथा देश प्रेम, राष्ट्रभक्ति एवं जातीय भावना का प्रसार किया। आजान ने भारतीयों को साहस के साथ अग्रसर होने का संदेश दिया। आजाद ने गद्य–पद्य दोनों की रचनाएं की। नज्मे आजाद तथा अबेहयात इनकी प्रसिद्ध कृतियां हैं। दुर्गा सहाय सुरूर राष्ट्रीय भावना के कवि थे। उनकी राष्ट्रीय भावना में संकीर्णता तथा इस्लामपरस्ती को स्थान नहीं मिला।

डॉ. इकबाल ने "सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा" देश को महत्वपूर्ण तराना दिया।

उर्दू कवियों ने सामाजिक कुरीतियों एवं धार्मिक आडंबरों की कटु आलोचना की। जीवन मूल्यों को अपनाने के लिए प्रेरणा दी। बाल–विवाह तथा सती प्रथा के विरोध में शायरी लिखी।

उर्दू साहित्य - प्रगतिवादी काव्य धारा

सन् 1936 ई. में प्रेमचंद की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन हुआ। इस लड़ाई में उर्दू के तरक्की पसंद शायद पीछे नहीं रहे। जमाने के दुख दर्द को पहचाना तथा भारतीयों के मुक्ति संघर्ष को शायरी का विषय बनाया। उर्दू शायरी के प्रगतिवादी शायरों में जोश मलीहावादी, अहसान दानिश, रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी, फैज अहमद फैज, अली सरदार जाफरी, साहिर लुधियानवी, अहमद नदीम 'कासिम', मजाज लखनवी, कैफी आजमी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। जोश महीलावादी को 'शायरे इन्कलाब' तथा अहसान 'दानिश' को 'शायरे मजदूर' कहा जाता है। उर्दू शायरी में भौतिकवादी दष्टिकोण आया। मार्क्स का भी प्रभाव पड़ा। जोश मलीहावादी ने इंसानियत को दीन–ईमान कहा। धर्म के ठेकेदारों की उड़कर निंदा

की। अली सरदार जाफरी ने धर्म की आड़ में होने वाले अत्याचारों और अनाचारों का पर्दाफाश किया। थोथी धार्मिकता की कटु आलोचना की। बंदगी और सिजदे का विरोध किया। शोषण–शोसित वर्ग को नष्ट कर साम्यवादी व्यवस्था का प्रतिपादन किया। फिराक ने श्रमिकों के स्वाभिमान एवं शक्ति को जागत करते हुए बड़ी क्रांतिकारी रचना प्रस्तुत की।

उर्दू साहित्य - प्रयोगवादी काव्यधारा

सन् 1943 ई. में अज्ञेय ने 'तारशप्तक' का प्रकाशन किया। प्रयोगवादी काव्य रचना का श्री गणेश हुआ। द्विवेदी विश्व युद्ध के पश्चात् कुछ उर्दू शायरों ने परराष्ट्रीय इंग्लैंड, अमेरिका तथा फ्रांस के कतिपय कवियों – टी.एस. इलियट, एजरा पाउंड, पो बादलियर, हल्डा डुल्टन आदि से प्रेरित होकर नवीन शायदी की शुरुआत की। जो प्रगतिवादी उर्दू कविता के विरुद्ध एक नया काव्यांदोलन था। प्रगतिवादी उर्दू कविता ने नारेबाजी का रूप धारण कर लिया था। उसमें काव्यत्व हीनता आ गई थी। शायर बाह्य चित्रण में ऐसा रम गया था कि आंतरिक सौंदर्य पर उसकी दष्टि ही नहीं जाती थी। स्वतन्त्र सत्ता तथा वैयक्तिक समस्याएं उपेक्षित हो गई। अभिव्यक्ति को प्रधानता दी गई। मानवीयता पर बल दिया गया। प्रयोगवादी शायर फ्रायड तथा सार्त्र से प्रभावित रहे हैं। उर्दू के प्रयोगवादी शायरों ने शिल्पगत प्रयोगों के साथ आजाद नज्म पर जोर दिया। इस नवीन काव्य प्रवति को उर्दू में हल्क–ए–अरबाब जौंक की संज्ञा दी गई। इस हलके से इत्तिफांक रखने वाले शायरों ने नून.मीम. राशिद, मीरा जी, युसुफ जफर, अख्तरुल ईमान, सलाम, मछली शहरी, करयूम नजर, मुख्तार सिद्दिकी, मुमताज मुफ्ती तथा हसन अस्करी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रयोगवादियों ने प्रतीकों के माध्यम से वैयक्तिक अनुभवों की अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी। तरक्की पसंद वालों पर मार्क्स तथा हलकाए अरबाबे जौक पर फ्रायड का प्रभाव था। प्रयोगवादी अंतश्चेतनावादी थे।

राशिद, मीराजी, अख्तरुल ईमान तथा मख्मूर जालंधरी ने वस्तु और शिल्प के स्तर पर नए–नए प्रयोग किए तथा आजाद नज्म को जिसे बेकाफिया शायरी भी कहते हैं उसे काफी लोकप्रिय बनाया। राशिद की गुनाह और मुहब्बत, एक दिन लारेंस बाग में, जुरअते परवाज तथा शराबी आदि नज़्मों में उनके व्यक्तिवादी जीवन–दर्शन और मनोविश्लेषणवादी यथार्थ को कई रूप–रंगों में देखा जा सकता है। राशिद की शायरी में पलायनवाद है। जिंदगी को बेनकाब पाकर सातवीं मंजिल से छलांग लगार खुदकुशी करना चाहता है।

उर्दू साहित्य : स्वातंत्र्योत्तर युग

लंबे संघर्ष के बाद देश सन् 1947 ई. में आजाद हुआ। ब्रिटिश हुकूमत से निजात पाने की खुशी थी तो देश के टुकड़े हाने का दर्दनाक गम था। शायरों ने आजादी का स्वागत किया। पर शोक भी मनाया। जोश मलीहावादी, मजाज, तथा मुल्ला जैसे शायरों ने आजादी का स्वागत किया। जोश ने 'तराना–ए–आजादी' नज्म लिखी। कुछ दिनों बाद ही 'मातमे आजादी' लिखकर उसका मातम भी मना डाला। फैज ने सुबहे–आबादी नज्म में 'दाग–दाग' 'उजाला' देखा। सरदार जाफरी ने ऐसे ही माहौल–'आजादी नहीं धोखा है'–में आजादी–आजादी कहकर खुशियां मनाने वालों से बड़ी संजीदगी से पूछा –

"कौन आजाद हुआ?

× × ×

मादरे हिंद के चेहरे पर उदासी है वही।"

'राही मासूम रजा' ने पंजाब दंगे और देश विभाजन की बड़ी ही दर्दनाक नज्म लिखी और कहा कि इस बंटवारे ने देश को ही नहीं, जिंदगी की तमाम चीजों को काट–बांट कर रख दिया है।

स्वातन्त्र्योत्तर उर्दू शायरी में अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति भी चेतना जागी। उर्दू के शायरों ने रूस, एशिया, चीन, कोरिया, मिश्र, ईरान, फिलिस्तीन आदि देशों से संबंधित उन समस्याओं पर नज्में लिखी जिनसे अंतर्राष्ट्रीय संबंधित जगत प्रभावित होता है। फैज ने 'ईरानी तुलना के नाम', 'इन्कलाव–ए–रूस' तथा फिलिस्तीनी बच्चों के लिए जो नज्में लिखीं हैं उनसे व्यापक दष्टिकोण का पता लगता है। फैज, जोश, जिगर तथा फिराक जैसे पिछली पीढ़ी के शायर गजल लिखते रहे। यथार्थवादी और रोमानी दोनों प्रकार की गजलें हैं। व्यक्तिगत सुख–दुख, आशा–निराशा तथा प्रेम–विरह के साथ–साथ युगीन समस्याओं को गजल में अभिव्यक्ति देकर परंपरागत स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। गमें–जानां एवं गमें दौरां एक दूसरे से समन्वित हो गए।

उर्दू साहित्य : नया युग

सन् 1950 ई. के बाद उर्दू शायरी में नई कविता जैसा नया दौर शुरू हो गया जिसमें शायरों की चेतना नए आलोक में नई जिंदगी के निर्माण के लिए विकल हो उठी। नया जीवन, नया उत्साह, नई आशाएं जन्मीं जिसके परिणामस्वरूप शायरी ने भी नया मोड़ लिया। सन् 1950–1960 ई. के बीच नई काव्य चेतना से परिपूर्ण शायरों में खलीलुर्रहमान, बाकर मेहदी, वहीद अख्तर, अमीक हनफी, मजहर, राही, मासूम रजा, बलराज कोमल आदि उल्लेखनीय हैं। खलीलुर्रहमान आजमी – आइनाखाने में , कागजी पैरहन, तथा नया अहद नामा, बलराज कोमल – मेरी नज्में तथा दिल का रिश्ता, राही मासूम रजा – रक्से मय, अजनबी शहर तथा अजनबी रास्ते एवं अमीक हनफी – संग पैराइन तथा सिंवाद जैसी रचनाओं में नयेपन को गति प्रदान की। नव्य धारा पर आधुनिकतावाद का गहरा प्रभाव है। इन शायरों ने जीवन की विसंगतियों, विडंबनाओं एवं जटिल जीवनानुभूतियों की अभिव्यक्ति हेतु नई भाषा और नए शिल्प का आविष्कार किया। नव्य धारा के चलते हुए गजल की उपेक्षा नहीं हुई। इस समय इब्ने इंशा, खलीलुर्रहमान आजमी, मुनीर नियाजी तथा जफर इकबाल ने गजल विधा को समद्ध किया। नए शहरों ने उर्दू गजल को नई भाषा, नई जमीन और नई चेतना दी।

उर्दू साहित्य : साठोत्तरी युग

सन् 1960 ई. के बाद उर्दू शायरी ने करवट बदली। अतिवादी प्रवत्तियां उभरीं। ऐसे शायरों में शहर यार, विमल किरन अश्क, इफ्तेखार जालिब, शन्शुर्रहमान फारूखी जाहिदा जैदी, अहमद हुमैश तथा हसन कमाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

साठोत्तरी उर्दू शायरी में आधुनिक जीवन दष्टि के विकास के साथ–साथ समकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक प्रश्नों से उलझने और उनके यथार्थ रूप में चित्रांकन की चेतना जागत हुई। आठवें दशक में जब जनवादी चेतना का उदय हुआ तो उर्दू शायरी में जनता की समस्याओं को चित्रित करने और जनसंघर्ष में उर्दू साहित्य की भूमिका को रेखांकित करने के प्रयास हुए। किन्तु सन् 1960 ई. के बाद भी आदिल मंसूरी, विमल कृष्ण अश्क, शहरयार, शम्शुर्रहमान फारूखी, बशीर बद्र, निदा फाजली तथा शीन–फाफ–निजाम आदि शायर गजल विधा को समद्ध करने में लगे रहे।

उर्दू साहित्य - प्रमुख काव्य रूप

उर्दू शायरों ने फारसी साहित्य से विषय वस्तु, शब्द संपदा, अप्रस्तुत योजना तथा द्वंद्वों का ही ग्रहण नहीं किया है अपितु काव्य रूप भी लिए हैं। उर्दू में जिन काव्य रूपों का प्रयोग हुआ है उनमें मसनवी, गजल, नज्म, मरसिया, कसीदा, हज्व, रूबाई, वासोख्त और मुखम्मस विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अलावा शहर आशोब्हम्द, नात, सलाम, नौहा, कतअ, फर्द, रेख्ती, मुस्तजाद, तरकीब, बंद तथा तर्जोऊबद आदि काव्य रूप भी प्रचलित रहे हैं। किंतु उर्दू शायरी में इनका विशेष विकास नहीं हुआ है।

मसनवी

सूफी प्रबंधात्मक शायरी को मसनवी कहते हैं यह एक शैली विशेष है जिसे मसनवी शैली कहते हैं। मसनवी एक ऐसा काव्य रूप है जिसके हर शेर के दोनों मिस्रे एक ही रटीफ और काफिए में होते हैं, लेकिन विभिनन शेरों के रदीफ और काफिए एक दूसरे से अलग होते हैं। पूरी मसनवी का एक ही छंद में होना अथा प्रवाह के लिए अनिवार्य होता है।

दक्खिनी

अशरफ – नौसरहार – सन् 1503 ई.; निजामी – कदमराव पदमराव; शाहमीरांजी – खुशनुमा तथा खुशनग्ज; निशाती–फूलवन; सनअती – किस्सा वे नजीर; तंबई – बहराम व गुलराम; मुहम्मद अमीन – युसूफ जुलेखा; इशरती – दीपक पतंग; नुस्रती – गुलशने इश्क तथा अलीनामा जैसी मसनवियां लिखकर उर्दू की मसनवी काव्य परंपरा को समद्ध किया। इसे प्रेम गाथा काव्य धारा या मसनवी काव्य परंपरा कहा जा सकता है।

उत्तर भारत

उत्तर भारत में गजल विधा का विकास हुआ किंतु मसनवी शैली को भी जीवित रखा। मीर तकी मीर – अजगर नामा, जोशे इश्क, शोला–ए–इश्क, दरया–ए–इश्क, एजाज–ए–इश्क, कमालात–ए–इश्क आदि विशेष महत्व की हैं। दाग – फरियादे दाग; मोमिन – कौले गर्मी; विशेष उल्लेखनीय हैं। मीर हसन – सेहरुल बयान, दयाशंकर नसीम – गुलजारे नसीम वहत्काय हैं।

नवाब मिर्जा शौक लखनवी – फरेबे इश्क, जहरे इश्क, तथा बहारे इश्क लिखकर इश्क के सुख–दुख का अनुभूतिपूर्ण वर्णन किया है।

आधुनिक काल

आधुनिक काल में नज्म को व्यापक स्वीकृति मिली। हाली – तअस्सुब, इंसाफ, 'रहमो इंसाफ', 'हुब्बे वतन' तथा 'वर्षा ऋतु' जैसी मसनवियां लिखी। मसनवी जीवन के यथार्थ से जुड़ गई। इकबाल – साकीनामा तथा सरदार जाफरी – नई दुनिया को सलाम, जैसी मसनवियों में समसामयिक राजनीतिक सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति की।

गजल

गजल उर्दू की सबसे अधिक लोकप्रिय विधा है। गजल से महफिलें रंगीन होती है। मुशायरे जवां होते हैं। गजल का शाब्दिक अर्थ – प्रेमिका से वार्तालाप है। गजल का प्रधान विषय प्रेम है। गजल में सब कुछ फारसी से लिया गया। अन्दाजें बयां ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रेमी वार्ता से उठकर गजल आध्यात्मिक विचारों की गूढ़ता का भावात्मकता के साथ प्रस्तुत करने का माध्यम बन गई। इसमें बसीर एवं मिर्जा गालिब का विशेष योगदान है। लोकप्रिय एवं गजल की अबाध परंपरा को शुरू करने का श्रेय दक्षिण के प्रसिद्ध शायरा औरंगावादी को है। शाह मुबारिक आबरू, पकरंग, खान आरजू, फुगां, तांबा, मजहर आदि शायरों ने दिल्ली में उर्दू गजल की नींव डाली। उसी नींव पर मीर सौदा, सोज, दर्द आदि ने उर्दू गजल की भव्य इमारत खड़ी कर दी। मीर गजल के बादशाह थे। मोमिन, जौक, गालिब तथा जफर ने उर्दू गजल को शिखर तक पहुंचाया।

आधुनिक काल में गजल का चरित्र बदल गया। गजल युग की दास्तान बन गई। शाद, हसरत, फानी, असगर, गोडवी तथा जिगर आदि ने गजल को समद्ध किया। अकबर इलाहाबादी, चकबस्त, इकबाल, जोश, फैज तथा फिराक ने गजल को नए भावों और विचारों से समद्ध करके उसे नई चेतना दी। आजादी के बाद गजल का भाववादी चरित्र यथार्थवादी हो गया। गजल परंपरा में हिंदी गजल कार दुष्यंत कुमार तथा कुंवर बेचैन ने अच्छा नाम कमाया। धन्यात्मकता, कोमल कांत पदावली, सरसता, अर्थ सघनता, सांकेतिकता, विशेषताएं हैं।

रेख्ती

उर्दू भाषा और गजल के लिए पहले रेख्ता शब्द प्रचलित हुआ था बाद में इसी के आधार पर स्त्रियों की भाषा को रेख्ती और उन्हीं की दशा को चित्रित करने वाली शायरी को रेख्तीकहा गया। रेख्ती उर्दू भाषा की 'जनाना शायरी' है जिसमें निम्न वर्गीय औरतों की गाली–गलौज और कामुक भाषा शैली में उन औरतों की काम वासनाओं, कुंठाओं एवं दूषित मानसिक भावनाओं का वर्णन हुआ है। रेख्ती शायरों ने स्तर से बहुत नीचे उतर कामुकता और अश्लीलता की ओर से अपनी गजलों को अलग से रेखांकित किया है। दक्षिण के शायर हाशमी में इसके प्रारंभिक बीज दष्टिगोचर होते हैं।

कसीदा

कसीदा को प्रशस्ति शायरी कहा गया है। राजा–महाराजा शासनाधिकारी अथवा किसी महापुरुष की प्रशंसा में की गई रचना कसीदा कहलाती है। फारसी अनुकरण पर उर्दू में कसीदा शायदी आई। सौदा, जौक, अमीर, ईशा तथा मुसहफी उर्दू के प्रसिद्ध कसीदाकार हैं। 'सौदा' को कसीदा का सम्राट कहा जाता है। दरबारों के नष्ट होने से यह परंपरा समाप्त हो गई। फिराक ने कसीदा के चार अंग – 1. भूमिका, मुख्य विषय, 3. प्रशंसा तथा 4. आशीर्वचन माने हैं।

हज्व

कसीदा अर्थात् प्रशंसा के विपरीत हज्वः अर्थात् निंदा को हज्वः की संज्ञा दी गई है। इसमें कुकृत्यों, अत्याचारों, धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक कुरीतियों तथा गलत व्यवस्थाओं की आलोचना की जाती है। 'सौदा इसके सम्राट' हैं उन्होंने समसामयिक शायरों की निंदापरक शायरी की रचना की। 'मीर जाहिक', फिदवी, 'मौलवी', 'नुदरत', 'मीर, हकीम गौस' तथा 'मिया फीकी' आदि सभी उसकी निंदा से नहीं बच पाए हैं।

मरसिया

मरसिया शोक गीत है जो किसी अपने प्रिय की मौल पर लिखा जाता है। गजल की तरह मरसिया भी उर्दू लोकप्रिय विधा रही है। इसमें मत व्यक्ति के गुणों एवं कार्यों का वर्णन इस प्रकार किया जाता है कि सुनने वाले उससे प्रभावित होकर प्रेरणा

ग्रहण करें तथा गम में डूब जाएं। मरसिया रोने–रुलाने का उपादान है। इससे दया, प्रेम, सौहार्द, सहानुभूति तथा करुणा आदि की भावना का उदय होता है। मरसिया लिखने वाले शायरों में मोमिन, हाली, इकबाल, माजिक, चकवस्त तथा फैज आदि प्रमुख हैं। इमाम हुसैन की सहादत पर लिखे गए मरसिया में नाटकीयता एवं प्रबंधात्मकता है।

रुबाई

चार मिसरों अर्थात् पंक्तियों की रचना को रुबाई कहते हैं। इसमें पहले, दूसरे और चौथे मिसरे का रदीफ और काफिया एक होता है। पहले मिसरे में विषय का श्रीगणेश होता है। दूसरे तीसरे में विवेचन–विस्तार होता है चौथे में नाटकीय ढंग से मार्मिकता के साथ सार का प्रस्तुतीकरण किया जाता है। अर्थ के घनत्व के कारण रुबाई लोकप्रिय विधा रही है। इस क्षेत्र के शायरों में अनीस लखनवी, शाद, अजीमावादी, जोश मलीहावादी तथा फिराक गोरखपुरी आदि प्रमुख रहे हैं। फिराक की रुबाइयों का संग्रह रूप है। उमर खैय्याम की मधुशाला के आधार पर हरिवंश राय बच्चन ने मधुशाला लिखकर हालावाद चलाया।

नज़्म

आधुनिक काल की प्रमुख विधा नज़्म है। सन् 1867 ई. में मुहम्मद हुसैन आजाद ने नज्म को नई भावना एवं चेतना प्रदान की। सन् 1874 ई. में नज्म का विकसित रूप आया। इस वर्ष अंजुमने उर्दू की ओर से लाहौर में मुशायरा हुआ था। आजाद ने नज्म की वकालत की तथा देश एवं समाज से संबंधित नज्में पढ़कर श्रोताओं का दिल जीत लिया। नज्म के छोटी और लंबी दो रूप हैं। नज्म कारों में हाली, दुर्गा सहाय सरूर, ज्वाला प्रसाद बर्क, इकबाल, चकबस्त, जोश मलीहावादी, फैज, फिराक तथा अली सरदार जाफरी आदि प्रमुख हैं। इनकी नज्मों में राष्ट्रीयता का स्वर गूंजा तथा प्रगतिशील चेतना की अभिव्यक्ति भी हुई। नज्म की लोकप्रियता ने गजल को दबा दिया। इसे अतुकांत कविता भी कहा गया। गजल का प्रचलन अब भी है किंतु समसामयिक जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति का सशक्त एवं लोकप्रिय माध्यम आधुनिक काल में नज्म ही है। नज्म में भी आजाद नज्म (अतुकांत कविता) का विशेष महत्व है।

vk/kqfud dky

y?kwÙkjhiz'u

प्रश्न 1 हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के उद्‌भव के समय की आर्थिक परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर - हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के उदभव के समय इंग्लैण्ड की औद्योगिक विकास का प्रभाव भारत की अर्थ–व्यवस्था पर पड़ा। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। इंग्लैण्ड के लिए भारत कच्चे माल का सस्ता तैयार स्रोत और तैयार माल की बड़ी मण्डी से ज्यादा महत्त्व नहीं रहता था। भारतीय कुटीर उद्योग इंग्लैण्ड के कारखानों में बने माल का मुकाबला नहीं कर सके। रेल, डाक तार आदि का प्रचलन मूलतः अंग्रेजों के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए हुआ था, परन्तु कालान्तर में इनसे राष्ट्रीयता की भावना तीव्र हुईं प्रथम महायुद्ध के बाद अंग्रेज़ों का भारतीयों ने विरोध किया। 1905 में बंग–भंग हुआ और इसके विरोध में स्वदेशी आंदोलन की शुरूआत हुई।

प्रश्न 2 आधुनिक काल के नामकरण पर विचार कीजिए।

उत्तर – इसे गद्यकाल भी कहा जाता है। संवत् 1900 से जो साहित्य रचा जाने लगा उसमें विद्यात्मक दष्टि से गद्य का ही विकास अधिक और प्रमुख रूप से हुआ है। यह आज तक की सजन प्रक्रिया के इतिहास से एकदम स्पष्ट है। अतः इसे गद्यकाल कहना भी उचित ही है। प्रवत्तियों और रूचियों की दष्टि से इस काल में अपने पूर्ववर्ती कालों से स्पष्ट विभिन्नता है। उस विभिन्नता में आधुनिक वैविध्य भी है, अतः आधुनिक काल नाम समीचीन है। इस नामकरण ओर युगीन प्रवतियों में गद्य पद्य की समस्त साहित्यिक विधाओं का स्वतः समावेश हो जाता है।

प्रश्न 3 हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर - सन् 1857 में भारतीय स्वाधीनता संग्राम का पहला अध्याय लिखा गया। 1657 ई॰ की क्रांति की ज्वाला ने अपने दमन चक्र से दबा अवश्य दिया परन्तु वे उसे पूर्ण रूप से समाप्त न कर सके। कम्पनी राज्य, विक्टोरिया के शासन में बदला और इतिहास में भयंकर शोषण का युग प्रारम्भ हुआ। कांग्रेस ने भारतीयों के लिए अधिकारों को मांगना आरम्भ कर दिया। तिलक ने कहा , ''स्वराजय मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है, उसे मैं लेकर रहूंगा।'' सुभाष ने चेतावनी दी कि आजाद हिन्द फौज दिल्ली के लाल किले पर ध्वज फहराएगी, लाला लाजपतराय ने जयघोष किया कि–''हम न खाएगे, न खाने देंगे; न सोएंगे न सोने देंगे'' इस प्रकार के वातावरण में राजनीतिक उथल–पुथल मची हुई थी।

प्रश्न 4 हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल की आर्थिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिये।

उत्तर - इंग्लैण्ड की ओद्योगिक विकास का प्रभाव भारतकी अर्थ–व्यवस्था पर पड़ा। इंग्लैण्ड के लिए भारत कच्चे माल का सस्ता स्रोत और तैयार माल की बड़ी मण्डी से ज्यादा महत्त्व नहीं रखता था। इंग्लैण्ड के तैयार माल का भारत के उद्योग मुकाबला न कर सके। परिणामस्वरूप उद्योग और मजदूर सब बेकार हो गए। रेल, डाक तार आदि का प्रचलन मूलतः अंग्रेज़ों के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए हुआ। कारखानों के हड़तालें हुई 1905 में बंग–भंग हुआ और इसके विरोध में स्वदेशी आंदोलन की शुरूआत हुई। गांधी का चर्खा आंदोलन और खादी का प्रचार इसी आर्थिक शोषण के विरोध का एक रूप था।

प्रश्न 5 हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की सांस्कतिक एवं धार्मिक दशा का वर्णन कीजि ए।

उत्तर - यह युग पाश्चात्य शिक्षा और संस्कति के प्रसार युग है। छापाखाना अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। ईसाई मिशनरियों का प्रचार जोरों पर था। ब्रह्म समाज, प्रायः समाज तथा आर्य समाज जैसे सुधार आंदोलन भारतीयों द्वारा भी चलाए जा रहे थे। अंग्रेजों के प्रचार – प्रसार से जहां पाश्चात्य जगत की ओर झोंकने के लिए खिड़की खुली वहीं पर संस्कत आदि भारतीय भाषाओं की उपेक्षा से हम अपनी विरासत से करने भी लगे।

बंगाल में एशियाटिक सोसाइटी और पुरातत्व विभाग की स्थापना की गई । राजगह तक्षशिला, बनारस, पहाड़पुर तथा हड़प्पा और मोहन जोदड़ो आदि स्थानों की खुदाई में भारत के प्राचीन गौरव से संबधित स्थानों पर खुदाई हुई। प्राचीन संस्कत ग्रन्थों का अनुवाद अंग्रेज़ी में होने लगा। पश्चिम का भौतिकवाद और मार्क्सवाद की अवधारणाएं एवं रूस की क्रांति भी भारतीय जन मानस को आंदोलित कर रही थी। विवेकानन्द, टैगोर तथा श्री अरविंद का प्रभाव भी पढ़े–लिखे वर्ग पर पड़ रहा था।

प्रश्न 6 आधुनिक काल की साहित्यिक परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए ।

उत्तर - आधुनिक काल का साहित्य आम आदमी का साहित्य है। इस युग के साहित्यकार का सरोकार आम आदमी की आशाओं आकांक्षाओं से था। रीतिकालीन दरबारी संस्कति क्रमशः नष्ट हो रही थी और साहित्य समाज का दर्पण और दीपक एक साथ बन रहा था। भारतेन्दु युग बना तो द्विवेदी युग समाज–सुधार की तीव्र धारा को लेकर आया। छायावादी युग में शिल्पगत प्रयोगों का प्रारम्भ हुआ तो प्रगतिवाद प्रयोगवाद में क्रमशः लघु मानव की प्रतिष्ठा एवं काव्य विषयों का विशदीकरण हुआ। आधुनिक युग साहित्य की दष्टि से विविधता, बिखराव एवं विशिष्ट काव्य प्रवत्तियों का युग है।

प्रश्न 7 भारतेन्दु युगीन काव्य में देश भक्ति की भावना मुखरित हुई है। विवेचना कीजिए।

उत्तर - भारतेन्दु आधुनिक युग के प्रथम राष्ट्रीय कवि कहे जा सकते हैं। उनके काव्य में देश–भक्ति की सशक्त भावना अभिव्यक्ति हुई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है–''भारतेन्दु की वाणी का सबसे ऊचां स्वर देश–भक्ति का था।'' उनकी कविताओं में देश की दुर्दशा का मार्मिक वर्णन किया गया है। इस युग में विदेशी वस्तुओं का परित्याग और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का प्रचार किया गया है।

प्रश्न 8 भारतेन्दु युगीन कविता का परिचय दीजिए ।

उत्तर - भारतेन्दु युगीन कविता यथार्थ के काफी निकट है। यह उस युग की चेतना की प्रतिध्वनि ही नहीं, बल्कि उसका प्रतिनिधित्व भी करती है। इसमें जहां भारत की दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया वहीं प्राचीन भारत के गौरव और संस्कति का भी वर्णन है। इस कविता में कहीं देश के अतीत की गौरव गाया है तो कहीं अधोगति और कहीं भविष्य की भावना से जगी हुई चिंता है। उन्होंने हिन्दी कविता को नवीन विषयों की ओर अग्रसर किया। हास्य व्यंग्य और विनोद की इस कविता में मिलता है। भारतेन्दु , प्रताप नारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकष्ण दास आदि इस युग के मुख्य कवि हैं।

प्रश्न 9 प्राचीनता एवं नवीनता का समन्वय भारतेन्दु युगीन काव्य में दिखाई पड़ता है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - भाव, भाषा, शैली और उद्देश्य सभी दष्टियों से इस युग के साहित्य में प्राचीनता और नवीनता के एक साथ दर्शन होते हैं। इस युग के साथ समाज, राजनीति, धर्म और संस्कति का एक नया जमाना शुरू होता है। व्यापक जन चेतना का नई शिक्षा–दीक्षा व राजनीति के कारण भारत के अतीत की ओर ध्यान जाता है, अतः भारतीय अतीत का गौरव आदर्श साहित्य का विषय बनता है। इस काल के साहित्य में नए –पुराने दोनों प्रकार के विचार, आदर्श और उद्देश्य दिखाई पड़ते हैं।

प्रश्न 10 'भारतेन्दु स्वयं एक महान् कष्ण भक्त कवि थे।' इस कथन की समीक्षा दीजिए ।

उत्तर - भारतेन्दु युग में भक्तिकालीन भक्ति भावना के आदर्श भी दिखाई पड़ते हैं। इस युग के गेय पदों में राधा और श्री कष्ण की लीलाओं का सुंदर चित्रण किया गया है। भारतेन्दु स्वयं एक महान् कष्णभक्त कवि थे। भारतेन्दु ने माधुर्य भाव की भक्ति को ग्रहण किया था। वे कर्मकाण्ड में विश्वास नहीं करते थे।

प्रश्न 11 भारतेन्दु युग का काव्य जन-जीवन से सीधा जुड़ा हुआ है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - रीतिकालीन साहित्य के विपरीत भारतेन्दु युग का काव्य सीधा जन–जीवन से अधिक जुड़ा हुआ है। इसमें समाज–सुधार की प्रवति पर बल दिया गया है। इस काल के कवि न केवल राजनीतिक स्वाधीनता को ही प्रमुखता नहीं दी बल्कि मनुष्य की एकता समानता और भाई–चारे को भी महत्त्व दिया। इसमें सामाजिक बुराइयों छल–कपट, स्वार्थ परता, पश्चिमी रंग में रंगे शिक्षितों पर व्यंग्य, पुलिस और सरकारी कर्मचारियों की लूट–खसोट, देश की सामान्य दुर्दशा, अकाल आदि का चित्रण करके समाज को जागत किया है।

प्रश्न 12 इतिवत्तात्मकता भारतेन्दु युग के कवियों में दिखाई पड़ती है, क्या यह सही है ? विवेचन कीजिए।

उत्तर - भारतेन्दु युगीन कविता में विचारों और अनुभूतियों की गहनता नहीं है। केवल तुक बंदियों के द्वारा ही कवियों ने विभिन्न सामाजिक पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। प्रतापनारायण मिश्र के पद्यात्मक निबन्ध तथा दूसरे कवियों की उपदेशात्मक ओर सुधारात्मक कविताएं केवल इतिवतात्मकता से परिपूर्ण हैं। इस काल की कविता को किसी उच्चकोटि में नहीं रखा जा सकता।

प्रश्न 13 भारतेन्दु कालीन काल में समाज सुधार की भावना व्यंजित हुई है। विवेचन कीजिए।

उत्तर - भारतेन्दु कालीन काव्य में देश–प्रेम की भावना के साथ–साथ सामाजिक जागरण एवं समाज सुधार की प्रवति भी देखी जा सकती है। नारी शिक्षा का समर्थन, वर्णगत भेद–भाव का विरोध, बाल विवाह का विरोध तथा अनमेल विवाह का निषेध जैसे गंभीर विषयों का वर्णन इस युग के काव्य में हुआ है। पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क में नया ज्ञान, आदर्श और नए संदेश हमारे देश में आने लगे। जिससे कुछ सुधार संभव हो पाए।

प्रश्न 14 ''भारतेन्दु युग के कवियों ने प्रकति चित्रण में परम्परा का निर्वाह भर किया है।'' यह कथन क्या सही है? समीक्षा दीजिए।

उत्तर - प्राकतिक सौन्दर्य का स्वच्छ चित्रण भारतेन्दु युग की अंगभूत विशेषता है, किन्तु अधिकांश कवियों ने केवल परम्परा का ही निर्वाह किया है। ऋतु विशेष में नायक–नायिका की मनोदशाओं के वर्णन में अधिक रूचि ली है। भारतेन्दु ने 'सत्य हरिशचन्द्र' नाटक में 'गंगा–वर्णन और चंद्रावती नाटिका में 'यमुना वर्णन' किया है। इस काल के काव्य में संवेदनशीलता की कमी है और नागरिकता की अधिकता है।

प्रश्न 15 भारतेन्दु हरिशचन्द्र पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर - भारतेन्दु हरिशचन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के चार रूप हैं––कवि, नाटककार, निबंधकार तथा पत्रकार। उनके द्वारा रचित कतियों की संख्या लगभग सत्तर है। उनमें प्रेम–मालिका, प्रेम–सरोवर, वर्षा–विनोद, विनय–पचासा, वेण–गीत, प्रेम दुलावारी आदि प्रसिद्ध हैं। इनका प्रकाशन भारतेन्दु ग्रन्थावली के नाम से हो चुका है। भारतेन्दु की कावय भाषा ब्रज भाषा है। उनकी व्यंग्यपूर्ण पहेलियां और मुकरियाँ प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न 16 बद्री नारायण चौधरी प्रेमधन का परिचय दीजिए।

उत्तर - 'प्रेमधन' भारतेन्दु कालीन काव्य धारा के प्रसिद्ध कवि और लेखक थे। उन्होंने पद्य और गद्य दोनों विधाओं में रचनाएं कीं। पत्रकार के रूप में इन्होंने नागरी नीरद और आनन्द कादम्बिनी आदि पत्रिकाओं का सफल सम्पादन किया।

'अलौकिक लीला', 'वर्षा' बिन्दु, मयंक महिमा हार्दिक हर्षदर्श, जीर्ण – जनपद आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य कतियां हैं। इनकी कविता का प्रमुख स्वर स्वदेश प्रेम और समाज–सुधार का है।

प्रश्न 17 पंडित प्रताप नारायण मिश्र का परिचय दीजिए ।

उत्तर - मिश्र जी भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध कवि निबन्धकार और नाटककार थे। उन्होंने देश–भक्ति, राम–भक्ति, गौ रक्षा, बुढ़ापा आदि विषयों पर काव्य रचना की , 'मन की लहर प्रेम–पुष्पावली – श्रंगार विलास' आदि उनकी प्रसिद्ध काव्य रचनाएं हैं। उनकी कविताओं में इतिवतात्मकता की अधिकता है। इनकी कविता में राजनीतिक व्यंग्य का उदाहरण –

पढि कमाल किन्हों कहा, हरे न देश कलेश।

जैसे कन्ता घर रहे, वैसे रहे विदेश।''

प्रश्न 18 अम्बिकादत्त व्यास का परिचय दीजिए।

उत्तर - अम्बिकादत्त व्यास जी कवि, नाटककार और पत्रकार थे। काशी के अच्छे कवियों में उनकी गणना होती थी। 'पावस–पचासा' 'हो–हो होरी' 'सुकवि सतसई' आदि उनकी प्रसिद्ध काव्य कतियां हैं। उन्होंने समस्या पूर्ति संबंधी अनेक कविताएं लिखी हैं। इनकी काव्य, भाषा ब्रज भाषा है। कविता का उदाहरण देखिए–––

सुमिरत छवि नन्द चन्द की , विसरत सब दुःख द्वन्द्व।

होत अमन्द अनन्द हिय, मिलत मनहु सुख कंद।

प्रश्न 19 द्विवेदी युगीन काव्य में इतिवतात्मकता की भावना प्रधान थी। विवेचन कीजिए।

उत्तर - द्विवेदी युगीन कविता में प्रायः श्रंगार युक्त काव्य लिखा गया। इनके काव्य में आदर्शवादिता, सात्विकता और संयम के तत्त्व अधिक हैं। आर्य समाज तथा अन्य संस्थाओं के प्रभाव से साहित्य से अश्लीलता और उच्छंखलता का बहिष्कार कर दिया गया, जिससे कविता में इतिवतात्मकता की भावना बढ़ी। इस कविता पर मराठी की इतिवत्तात्मकता का प्रभाव है, जिससे कविता में शुष्कता और नीरसता बढ़ी ओर अनुभूति में अधिक गहराई नहीं रही।

प्रश्न 20 द्विवेदी युग के साहित्य का क्या महत्त्व है ?

उत्तर - हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् 1950 से 1970 तक का समय द्विवेदी युग के नाम से अभिहित किया जाता है, जिसमें साहित्य चेतना के सूत्रधार महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। वे सरस्वती पत्रिका के सम्पादक थे। खड़ी बोली के व्याकरण कीरचना, परिष्कार और संस्कार का सार का श्रेय द्विवेदी जी और उनके समकालीन कवियों को जाता है। द्विवेदी युग की कविता में राष्ट्रीयता का स्वर उभरा और इसके साथ ही आलेचना और कथा साहित्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रौढ़ता आई इस युग के आलोचकों में मिश्रबन्धु, पं॰ पदम सिंह शर्मा, कष्ण बिहारी मिश्र आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनका युग वास्तव में ही गद्य का युग था। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के आरम्भ में जिन शैलियों को जन्म मिला, द्विवेदी युग में उन्हें विकास का पूर्ण अवसर मिला श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय आदि इस युग के प्रसिद्ध कवि हैं।

प्रश्न 21 द्विवेदी युग का काव्य बौद्धिकता से प्रभावित है। युक्ति यक्त उत्तर दीजिए।

उत्तर - द्विवेदी युगीन कवि को पाश्चात्य संस्कति के बौद्धिकवाद ने प्रभावित किया। इसी के प्रभाव से इन्होंने भारतवासियों के मन से हीन भावनाओं को दूर करने के लिए प्राचीन भारतीय संस्कति की बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत की। हिन्दू जागरण के लिए यह अति आवश्यक था। गुप्त के लिए राम अवतारी न होकर आदर्श मानव है। आर्य समाज का

प्रभुत्व इस युग में छाया रहा। व्यक्तियों और आलोचकों ने प्राचीनता की बुद्धि सम्मत व्याख्या करके आधुनिकता को आदर्श बनाकर सफलता प्राप्त की।

प्रश्न 22 ''द्विवेदी युग में उपदेशात्मक प्रवति को छोड़कर कवियों ने मानवतावाद को ग्रहण किया है।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर - भगवान के गुणगान और सैद्धान्तिक व्याख्या के साथ–साथ मानवता के आदर्शों की भी प्रतिष्ठा की है। इनमें पीड़ितों, शोषितों, दुर्बलों, दलितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है। कवि का मानना है कि मानव प्रेम से ही ईश्वर प्राप्ति संभव है। दीन–दुखियों के आसूं भक्त को भगवान के और निकट करते हैं और इसी के लिए इन्होंने दुखियों के प्रति अन्याय और अवहेलना करने वाली सामन्तीय सभ्यता की निंदा की है। राम और कष्ण को आदर्श के रूप में स्थापित किया है।

प्रश्न 23 द्विवेदी युग में देश भक्ति से परिपूर्ण काव्य रचना हुई। सिद्ध कीजिए।

उत्तर - द्विवेदी युगीन कविता की राष्ट्रीय भावना जातीयता पर आधारित थी जिसका मुख्य आधार देश के उज्ज्वल अतीत का गौरव था। केसरी नारायण शुक्ल के अनुसार––''जनता को अपना अतीत इतना प्रिय लगा कि इसके समक्ष उसे पाश्चात्य संस्कति बिल्कुल हेय प्रतीत होने लगी।'' देश भक्ति की भावना मुक्तक और प्रबन्ध काव्यों में प्रकट हुई। गुप्त का साकेत, उपध्याय का प्रिय प्रवास, आदि जहां हिन्दी के गौरव ग्रन्थ हैं वहां देशभक्ति और भारत की महान् विभूतियों का भव्य दर्शन भी उनमें है।

प्रश्न 24 प्रकति चित्रण की दष्टि से द्विवेदी युग की समीक्षा कीजिए।

उत्तर - इस युग के कवियों का ध्यान प्रकति के यथा तथ्य वर्णन की ओर गया। श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी आदि ने कहीं–कहीं अद्‌भुत प्रकति चित्रण किया है। इनके प्रकति चित्रण में संवेदनात्मकता एवं चित्रात्मकता का सम्मिश्रण है। नदी, पर्वत, समुन्द्र आदि का चित्रण करते हुए यदि इन्होंने परम्पराओं का पालन किया है तो उसमें रहस्यात्मकता को भी समावेशित किया है। परिगणन शैली का प्रयोग भी कहीं कहीं दिखाई देता है पर उस से सजीव चित्र उपस्थित नहीं हो पाता।

प्रश्न 25 द्विवेदी युग के कवियों पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - इस काल के कवि स्वयं को गांधीवाद से अछूते न रह सके। रामनरेश त्रिपाठी तथा मैथिलीशरण गुप्त गांधीवादी विचारधारा से बहुत प्रभावित थे। गांधी जी के प्रति गुप्त जी की गहरी आस्था थी। उन्होंने गांधी जी के अनेक सिद्धान्तों को अपने काव्य में पिरोया है। मानवीय संवेदना, अछूतोद्वार भावना, सत्याग्रह, अहिंसा आदि अनेक सिद्धान्तों का निरूपण उनके काव्य में हुआ है।

प्रश्न 26 भाषा की दष्टि से द्विवेदी युग का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर - भाषा की दष्टि से द्विवेदी युग सुधारवादी युग माना जाता है। अब ब्रज भाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा सुधार का कार्य किया तथा खडी बोली को स्वतंत्र व्याकरण सम्मत और परिमार्जित किया। उधर गुप्त ने खड़ी बोली की खड़खड़ाहट को दूर करके इसे साहित्यिक भाषा बनाया। इस युग में निश्चय ही खड़ी बोली अपना सुंदर रूप सुधार कर सुंदर भाषा बन गई।

प्रश्न 27 महावीर प्रसाद द्विवेदी का परिचय दीजिए।

उत्तर - द्विवेदी जी सबसे प्रभावशाली साहित्यकार थे। वे संस्कत, हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में इन्होंने भाषा और साहित्य के परिष्कार और उन्नति के लिए अथक

परिश्रम किया। इनके ग्रन्थों की संस्था अस्सी बताई जाती है। इनकी प्रमुख काव्य कतियों में 'काव्य मंजूषा', 'सुमन', 'गंगा लहरी', 'ऋतु तंरगिणी' आदि हैं। इनके काव्य में इतिवतात्मकता की प्रधानता है।

प्रश्न 28 अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का जीवन परिचय दीतिए।

उत्तर - हरिऔध जी समय के प्रख्यात कवि थे। इन्होंने उर्दू, फारसी और संस्कत का ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने काव्यों की रचना की जिनमें 'प्रियप्रवास', 'पद्य–प्रसून', 'चुभते चौपदे', चौखे–चौपदे', 'रस–कलश', 'वदैही वनवास' आदि प्रसिद्ध हैं। हरिऔध जी सुधारवादी आंदोलन से प्रभावित थे। इनमें भक्ति श्रंगारिकता की प्रवतियां विद्यमान थीं। राष्ट्रीयता की प्रवति उनके काव्य में मिलती है।

प्रश्न 29 श्रीधर पाठक का परिचय दीजिए।

उत्तर - श्रीधर पाठक का नाम द्विवेदी युगीन कवियों में महत्त्वपूर्ण है । इन्होंने खड़ी बोली पद्य के लिए बाल एवं स्वर के नए ढांचे निकाले। उन्होने लावणी शैली के आधार पर 'एकान्तवासी योगी' तथा संतों की सधुक्कड़ी पद्धति पर 'जगत् सच्चाई सार' की रचना की। उनकी कविताओं में प्रकति–प्रेम का आधिक्य मिलता है। प्रकति–वर्णन सम्बन्धी कतिपय पंक्तियां द्रष्टव्य हैं –

विजन वन प्रान्त थ, प्रकति-मुख शान्त था।

अटन का समय था रजनी का उदय था।।

प्रश्न 30 जगन्नाथ 'रत्नाकार' का परिचय दीजिए।

उत्तर - ये हरियाणा के सफीदों नगर के निवासी थे। ये उर्दू, फारसी , संस्कत, बंगला आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। इनके काव्य में भक्ति नीति , श्रंगार एवं वीरता की प्रवतियां मिलती हैं। इनकी काव्य भाषा ब्रजभाषा है। श्रंगार–लहरी , हरिश्चन्द्र, हिंडोला, गंगावतरण, उद्धव–शतक आदि इनकी प्रमुख रचनाएं हैं।

प्रश्न 31 रामचरित उपाध्याय का परिचय दीजिए।

उत्तर - ये संस्कत के अच्छे पण्डित थे ओर पुराने ढंग की कविता किया करते थे। बाद में द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से भी खड़ी बोली में कविता करने लगे। 'राष्ट्रभारती', 'देवदूत', 'देवी–द्रोपदी', 'भारत–भक्ति' आदि अनेक कविताएं उन्होंने खड़ी बोली में लिखी 'रामचरित चिन्तामणि' इनका प्रबन्ध–काव्य है। सामाजिक बुराइयों को दूर करने में इनकी कविता नितांत सक्षम एवं प्रभावी रही है।

प्रश्न 32 रामनरेश त्रिपाठी 'निराला' का परिचय दीजिए ।

उत्तर - इनकी कविता लिखने में बचपन से ही रूचि थी 'मिलन', पथिक', 'स्वप्न' आदि अनेक प्रसिद्ध काव्य खण्ड हैं जिनमें राष्ट्र के प्रति प्रेम और समाज सेवा की प्रेरणा दी गई है। उन्होंने अनेक सुधारवादी कविताएं लिखी हैं। उनकी कविता में विश्व–बन्धुत्व की भावना मिलती है। यथा––

रक्तपात करना पशुता है, कामरता है मन की।

अरि को वश करना चरित्र से शोभा है तन की।

प्रश्न 33 मैथिलीशरण गुप्त का परिचय दीजिए।

उत्तर - मैथिलीशरण गुप्त सच्चे अर्थों में राष्ट्र–प्रेमी, भारतीय संस्कति के निष्ठावान् व्याख्याता तथा उदारशयी मानवतावादी कवि थे। वे राष्ट्र–कवि थे। उन्होंने अपने युग की सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दशा के अपने काव्य का विषय बनाया। अनमेल विवाह, दुर्भिक्ष, दहेज प्रथा, व्यभिचार आदि के निरूपण के माध्यम से उन्होंने देशवासियों को जगाने का प्रयास किया साकेत , जयप्रथवध, यशोधरा , भारत भारती आदि इनकी रचनाएं हैं।

प्रश्न 34 छायावाद की परिभाषा एवं स्वरूप का विवेचन कीजिए।

उत्तर - दो महायुद्धों के बीच की स्वच्छन्दवादी कविता को छायावादी कविता की संज्ञा दी जाती है। यद्यपि छायावाद हिन्दी साहित्य की मौलिक और स्वतंत्र काव्य धारा है परन्तु फिर भी कुछ आलोचक इसे अंग्रेजी की रोमान्टिक धारा या बंगला की नकल मानते हैं। छायावाद नाम प्रतीकात्मक है। मुकुटधर पाण्डेय ने सर्वप्रथम व्यंग्यात्मक रूप में कहा था – ''यह कविता न होकर उसकी छाया है।'' जो कि बाद में कविता के लिए रूढ हो गया। डॉ॰ नगेन्द्र छायावाद को ''स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह मानते हैं।''

प्रश्न 35 छायावादी काव्य में वैयक्तिकता की प्रधानता है। स्पष्ट कीजिए ।

उत्तर - वैयक्तिकता से अभिप्राय व्यक्तिवादिता से है। छायावादी कवियों ने काव्य में अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन किया है। इस काव्य में जाति, महाजाति अथवा आदर्श व्यक्तियों के सुख–दुःख की नहीं अपितु साधारण व्यक्ति के सुख–दुःख की बात है। कवि विषय वस्तु की खोज बाहर से नहीं, अपितु अपने भीतर से करता है और इसीलिए इसके काव्य में कहीं कहीं अहं भावना की अति है। इसका अह भाव असामाजिक नहीं है। इसमें सर्व मिला हुआ है।

प्रश्न 36 ''छायावाद का सबसे उज्ज्वल पक्ष उसका मानवतावाद है।'' इस कथन की समीक्षा दीजिए।

उत्तर - छायावाद का युग विश्वयुद्ध और मानवतावाद की भावना का युग था। अनेक देशी–विदेशी महापुरुष मानव मात्र की समानता का प्रचार कर रहे थे। प्रसाद की कामायनी और निराला का तुलसीदास इस भावना का सशक्त प्रचारक बनकर काव्य क्षेत्र में अवतरित हुए थे । मानव–प्रेम, करूण, असाम्प्रदायिकता, उदारता, विश्व बन्धुत्व, राष्ट्रीय जागरण आदि भावनाओं के साथ भावुकता, कल्पना तथा प्रकति में चेतना के दर्शन करने की प्रवति ने हमारे ज्ञान के संबंध में वद्धि की थी। मानव प्रेम का वर्णन पंत ने यूं किया है – ''सुन्दर है विहग सुमन सुंदर , मानव तुम सबसे सुंदरतम।''

प्रश्न 37 छायावाद में प्रकति के सुंदर चित्र अंकित हुए हैं। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - छायावादी कवियों का मन प्रकति में खूब रमा है। इस काल के काव्य में प्रकति पर चेतनता का आरोप किया है। इसके लिए कवियों ने मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किया है। सभी प्रमुख छायावादियों ने प्रकति का चित्रण नारी रूप में किया है। प्रकति के आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, दूती, रहस्यवादी सभी रूपों का चित्रण यहां हुआ है। इस चित्रण में श्लीलता और सात्विकता विद्यमान है।

प्रश्न 38 छायावादी काव्य की नारी भावना को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - छायावादी कवियों ने नारी के प्रति सहज सहानुभूति रखी है। इनके नारी के प्रति प्रेम और सौन्दर्य चित्रण में सूक्ष्मता और अश्लीलता नहीं है। इनके नारी चित्रण में दुराव–छिपाव नहीं है। उसमें कवि की वैयक्तिता है। उनकी कविताओं में नारी के सौंदर्य चित्रण में स्थूलता या नग्नता नहीं, बल्कि स्वाभाविकता है' कवियों ने नारी के दया, ममता, वासना, सहानुभूति आदि भावों का भी चित्रण किया है। प्रसाद कहते हैं –''नारी । तमु केवल श्रद्धा हो।''

प्रश्न 39 छायावादी युगीन कवियों में स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम की भावना दिखाई पड़ती है। सिद्ध कीजिए।

उत्तर - छायावादी कवियों के काव्य में राष्ट्रीय जागरण और स्वतंत्रता का आह्वान भी सर्वत्र है। पाश्चात्य रोमान्टिक धारा के कवियों ने भी रहस्यवाद और स्वच्छन्ता की भावनाओं का सम्मिश्रण किया था। इस राष्ट्रीय जागरण की गोद में बढ़ने वाले कवियों के काव्य में राष्ट्र प्रेम की भावनाओं का छाया जाना स्वाभाविक है। जयशंकर प्रसाद के काव्य तो अलग, सभी नाटक भी राष्ट्र प्रेम की भावना और गीतों से ओत–प्रोत हैं।

प्रश्न 40 छायावादी काव्य में वेदना और करूणा की भावना सर्वत्र अभिव्यक्ति हुई है। सिद्ध कीजिए।

उत्तर - इस काव्य में युगानुरूप वेदना की विवति हुई है। छायावाद के कर्णधारों का काव्य वेदना सेवावाद, मानवतावाद और अध्यात्मवाद पर आधारित है। कुछ आलोचकों ने इस निराशावाद को तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन में असफलता के कारण माना है। डॉ॰ शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं – ''इसलिए यद्यपि उनकी वाणी में मनुष्य की महिमा का उद्घोष है तो कहीं कहीं घोर नैराश्य से भरा और आत्मपीड़क चीत्कार भी है।''

प्रश्न 41 छायावादी कविता में रहस्य भावना दिखाई पड़ती है। समीक्षा कीजिए।

उत्तर - छायावादी कवियों का वर्णन विषय आध्यात्मिकता से अछूता नहीं है। छायावाद में पदार्थों की अपेक्षा आंतरिकता की प्रवति अधिक है। यही प्रवति मनुष्य को रहस्यवाद की ओर अग्रसर करती है। रहस्यवादी कवि लौकिकता से अलौकिक और स्थूल से सूक्ष्मता की ओर अग्रसर होता है। डॉ॰ गणपति चन्द्र गुप्त के शब्दों में – 'वीणा में दंत रहस्यवादी थे, गुंजन में पत्नी या प्रेयसीवादी और युगान्त के बाद स्थूल भौतिकवादी और यही बात निराला में मिलती है।

प्रश्न 42 छायावादी काव्य आदर्शवादिता की भावना से परिपूर्ण है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - छायावाद में आंतरिकता की प्रवति की प्रधानता है। उसमें पदार्थों के बाह्य रूप चित्रण की प्रवति नहीं है। अपनी इस अन्तर्मुखी प्रवति के कारण उसका दष्टिकोण काव्य के भाव जगत् और शैली में आदर्शवादी रहा है। उसे सांसारिक पदार्थों के बाह्य चित्रण की अपेक्षा अपनी सहानुभूतियां अधिक यथार्थ और महत्त्वपूर्ण लगी हैं। यही कारण है कि उसका काव्य संबंधी दष्टिकोण कलात्मक रहा और उसमें सुंदर तत्त्वों की प्रधानता बनी रही।

प्रश्न 43 ''छायावादी कवि केवल साहित्यिक ही नहीं थे वरन् संगीत का भी कुशल ज्ञाता है।'' इस कथन के आधार पर छायावाद की गेयता को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - छायावाद का काव्य छंद और संगीत दोनों दष्टियों से उच्चकोटि का है। इसमें प्राचीन और नवीन दोनों छन्दों का प्रयोग है। छायावादी कवि प्रणय, यौवन और सौंदर्य का कवि है। संक्षिप्तता , तीव्रता, आत्माभिव्यंजना, भाषा की मसणता आदि सभी गुण इनके काव्य में हैं। रामनाथ सुमन के शब्दों में ––''इस कवि में जो मस्ती है, भावना, अनुभूति की मदुता है और मानव जीवन के उत्कर्ष का जो गौरव है उसे देखते हुए उसकी प्रतिभा गीति काव्य की रचना के अत्यन्त उपयुक्त थी।''

प्रश्न 44 जयशंकर प्रसाद का परिचय दीजिए।

उत्तर - जयशंकर प्रसाद ने छायावादी काव्य का श्री गणेश किया। प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न हैं। उन्होंने काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि क्षेत्रों में साहित्य का सजन किया। वे प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। प्रकति चित्रण उनके काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। नारी की महता, प्रेम निरूपण, कल्पना की प्रधानता, लाक्षणिकता, संगीतात्मकता आदि प्रसाद जी के काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं। इनकी काव्य–कत्तियों में कामायनी, आंसू झरना, लहर कानन–कुसुम, करूणालय, प्रेम–पथिक रचनाएं महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रश्न 45 सुमित्रानन्दन पंत का परिचय दीजिए।

उत्तर - पंत जी सुकुमार भावनाओं के कवि हैं। उन्होंने प्रकति के अनेक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। बिम्ब–योजना, अलंकार–योजना, गीतिकार सौन्दर्य–भावना, कल्पना की अतिशयता आदि अनेक काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं।

प्रश्न 46 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का परिचय दीजिए।

उत्तर - निराला जी छायावादी के उद्भव कवि हैं। 'जूली की कली' से उनका साहित्यिक जीवन प्रारम्भ होता है। उनके

काव्य में भारतीय संस्कति के अतीत गौरव के प्रति श्रद्धा, सांस्कतिक–जागरण, राष्ट्रीय–चेतना, प्रगतिवादी विचारधारा, नारी–सौन्दर्य, प्रकति–सौन्दर्य, आदि का सुन्दर वर्णन हुआ है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना की है। जिनमें 'परिमल', 'अनामिका', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'अनिमा', 'बेला', 'नये पत्ते', 'अर्चना', और 'आराधना' आदि प्रमुख हैं। 'परिमल' और 'अनामिका' में छायावाद की सभी प्रवत्तियां देखी जा सकती है। 'कुकुरमुत्ता' में कवि ने पूंजीपतियों पर तीखा प्रहार किया है। 'राम की भक्ति–पूजा' उनकी प्रौढ़तम कति है। छायावादी काव्य को निराला जी की मुख्य देन है–मुक्त छन्द।

प्रश्न 47 महादेवी वर्मा का परिचय दीजिए।

उत्तर - महादेवी वर्मा का कवयित्री एवं गद्य लेखिका के रूप में हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'नीहार' रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत , दीपशीखा आदि उनके प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ है। रश्मि और दीपशीखा उनके मौलिक गीतों का संकलन है। भावमयता, प्रकति–चित्रण, वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता, शृंगार एवं व्यंग्य भावना, कल्पना की उड़ान, मानवीकरण, लाक्षणिक प्रयोग, प्रतीकात्मकता आदि अनेक विशेषताएँ उनके काव्य में झलकती हैं। महादेवी जी करूणा और वेदना की कवियत्री हैं। उनके काव्य में करूणा एवं वेदना की तीव्र अनुभूति झलकती है।

प्रश्न 48 रामधारी सिंह दिनकर का परिचय दीजिए।

उत्तर - दिनकर जी की कविता पर राष्ट्रीयता की छाप सबसे अधिक झलकती है। रेणुका, रसवन्ती, द्वन्द्वगीत, हुंकार, धूप–छांव सामधेनी , कुरूक्षेत्र रश्मिरथी आदि उनके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। उनकी 'रेणुका' में रोमांस और आक्रोश है। हुंकार में कवि का दष्टिकोण राष्ट्रवादी है। 'सामधेनी' में परिवेश के प्रति विक्षोभ एवं राष्ट्र–प्रेम की भावना व्यक्त हुई है। दिनकर जी की काव्य–दष्टि प्रगतिशील, मानवीय एवं सांस्कतिक है।

प्रश्न 49 प्रगतिवाद का स्वरूप एवं परिचय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - जो विचारधारा राजनीतिक क्षोत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद, दर्शन के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद है। इस प्रगतिवाद का मूल आधार कार्लमार्क्स की विचार–धारा है। अनेक विद्वान 'प्रगतिवाद और 'प्रगतिशील' को एक दूसरे का पर्याय मानते हैं, यह भ्रामक है। इन दोनों में सूक्ष्म अंतर है––''प्रगतिवाद शब्द मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा से सर्वथा सम्बद्ध है जबकि प्रगतिशील शब्द उससे सर्वथा स्वतन्त्र।''

प्रश्न 50 कला के प्रति प्रगतिवादी लेखकों का क्या दष्टिकोण है ?

उत्तर - कला के प्रति प्रगतिवादी लेखक का दष्टिकोण पूर्णतः समाजवादी है। कला ऐसी है जो सब की समझ में आस के और सबका शुभ प्रेरणा प्रदान कर सके। प्रगतिवादी चित्रण में भौतिक जीवन का चित्रण रहता है। प्रगतिवादी सर्वसाधारण की भाषा के लिए कलागत कला विलास, रूप रंग और रोमांस का मोह त्याग कर खरी और तीखी शैली अपनाता है। कला और शैली के इस रूप में बाहरी चमक दमक और आकर्षण नहीं होता पर फिर भी इसमें प्रभाव डालने की अद्‌भुत शक्ति होती है।

प्रश्न 51 प्रगतिवादी काव्य धारा में क्रांति की भावना को स्पष्ट कीजिए ।

उत्तर - साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए पुरानी परम्पराओं का समूल नाश आवश्यक है। शोषक वर्ग का पूर्ण विनाश जब हो जाएगा तभी मजदूर–किसान को समाज में उच्चता प्राप्त होगी। लेकिन शोषक वर्ग सरलता से मार्ग से हटने वाला नहीं है। अतः क्रांति के मार्ग पर चलकर प्रलयंकारी स्वर उत्पन्न करना आवश्यक है। प्रगतिवादी कवि शोषण रूपी फोड़े का इलाज मरहम से नहीं अपितु उसे जड़ से काट कर फैंक देना चाहता है। अमीरों और राजनीतिज्ञों के धोखे में कवि नहीं आना चाहता। अहिंसा की दुहाई देते हुए विनोबा भावे ने भूदान 'आंदोलन' आरम्भ किया, लेकिन नागार्जुन ने इसका विरोध किया।

प्रश्न 52 प्रगतिवादी काव्यधारा में नारी की स्थिति का वर्णन कीजिए।

उत्तर - प्रगतिवादी कवि के लिए नारी भी मजदूर एवं किसान के समान शोषित है, जोकि युग–युग से सामन्तवाद की कारा में पुरुष–दासता की लौहमयी श्रंखलाओं में बंद है। वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो चुकी है। समाज में उसे यह स्थान प्राप्त नहीं है जो पुरुष को है। प्रगतिवादी कवियों ने नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए सम्मान देने की मांग की है। प्रगतिवादी कवि ने रूपसी नारी का चित्रण न करके कषक बालाओं एवं मजदूर स्त्रियों का चित्रण किया है।

प्रश्न 53 प्रगतिवादी काव्य में मार्क्स तथा रूस का गुणगान किया गया है युक्ति-युक्त उत्तर दीजिए।

उत्तर - प्रगतिवादी कवियों ने साम्यवाद के प्रवर्तक मार्क्स तथा रूस जहां उनकी विचार पल्लवित और पुष्पित हुई, दोनों का उन्मुक्त गान किया। इस बात का विचार न करते हुए कि वहां की मान्यताएं भारत के लिए उपयोगी भी सिद्ध हो सकती है या नहीं। पंत तो कहीं–कहीं साम्यवादी दर्शन की व्याख्या–मात्र जुटाने में लग जाते हैं। निःसंदेह उनकी ऐसी रचनाओं में भाषा की स्वच्छता है, पर वे किसी प्रकार भी रागात्मक साहित्य की कोटि में नहीं आएंगी।

प्रश्न 54 मानवतावाद की दष्टि से प्रगतिवादी काव्य का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर - प्रगतिवादी कवियों के दो समुदाय हैं– 1. अपनी मातभूमि के लिए लिखता है और अपने ही देश के भिखमंगों, किसान, मजदूरों, वेश्याओं ओर विधवाओं का उद्धार करना चाहता है।

2. समस्त मानवता का उद्धार चाहने वाले। उसे संसार के सब पीड़ित लोगों से प्यार एवं सहानुभूति है। उसे संसार के किसी भी कोने में किए गए अत्याचार के प्रति रोष है। उसके लिए हिन्दू मुस्लिम, हब्शी और यहूदी मानव के नाते सब बराबर हैं।

प्रश्न 55 प्रगतिवादी काव्य में वेदना और निराशा की भावना अभिव्यक्त हुई है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - इस काव्यधारा की वेदना वैयक्तिक ओर सामाजिक हैं। प्रगतिवादी कवि संघर्षों से जूझता हुआ निराला नहीं होता। उसे विश्वास है कि वह इस सामाजिक वेषम्य को दूर करने में सफल होगा और वह उस समता के स्वर्ण–विहान की आशा करता है उसकी ओजस्विनी वाणी शोषित वर्ग को स्फुर्ति प्रदान करके उसे अत्याचार के विपरीत मोर्चा लेने के लिए तैयार करती है।प्रगतिवादी इसी संसार को स्वर्ग बनाना चाहते हैं।

प्रश्न 56 प्रगतिवादी काव्य में रूढ़ियों का विरोध हुआ है। विवेचन कीजिए।

उत्तर - प्रतिवादी कवि ईश्वर को सष्टि का कर्ता न मानकर उसके महत्त्व को नकारता है। उसे ईश्वर की सत्ता, आत्मा, परलोक, भाग्यवाद, धर्म, स्वर्ग–नरक आदि पर विश्वास नहीं है। उसकी दष्टि में मानव की महता सर्वोपरि है। उसके लिए धर्म एक अफीम का नशा है और प्रारब्ध एक सुंदर प्रवंचना उसके लिए वर्ण–व्यवस्था निराधार है। सभी समान हैं। बाह्याडम्बरों एवं अन्ध विश्वासों में वह विश्वास नहीं करता, अपितु इनकी आलोचना करता है।

प्रश्न 57 'प्रगतिवादी काव्य जहां एक ओर शोषितों के प्रति स्नेह रखता है वहीं दूसरी ओर शोषकों के प्रति घणा।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर - प्रगतिवादी कवि का मानना है कि शोषित मानव–जाति के लिए एक घोर अभिशाप है और इसका निवारण साम्यवादी व्यवस्था का लक्ष्य है। कवि शोषित की करूण दशा का चित्रण स्नेह वंश करता है। वह दीन–दलितों की दशा को देखकर आसूं बहाता है जबकि शोषकों की कटु आलोचना करते हुए आंखों से अंगार बरसाता है। कहता है––

''हो यह समाज चिथड़े-चिथड़े शोषण पर जिसकी नींव गड़ी।''

कवि सामाजिक जीवन के वैषम्य को देखकर आक्रोशमयी प्रलयंकारी वाणी में वज्रनिर्धोष कर उठता है।

प्रश्न 58 प्रयोगवाद का आरम्भ कब और क्यों हुआ ?

उत्तर - सन् 1943 में अज्ञेय जी तारसप्तक के सम्पादन के साथ ही प्रयोगवाद का जन्म हुआ है। कारण। प्रथम तो छायावाद ने अपने शब्दाडम्बर में बहुत से शब्दों और बिम्बों के गतिशील तत्त्वों को नष्ट कर दिया। दूसरे प्रगतिवाद ने सामाजिकता के नाम पर विभिन्न भावस्तरों एवं शब्द संस्कारों को अभिधात्मक बना दिया था। ऐसी स्थिति में भाषा और शैली में सामर्थ्य नहीं रहा। परिणामस्वरूप उन कवियों को जो इनसे पथक् थे, सर्वथा नया स्तर और नए माध्यमों का प्रयोग करना पड़ा। ऐसा इसलिए भी करना पड़ा कि भाव स्तर की नई अनुभूतियां विषय और संदर्भ में इन दोनों से सर्वथा भिन्न थीं।

प्रश्न 59 प्रयोगवाद के मूल तत्त्व क्या है ?

उत्तर -
1. नवीनता – नवीन विषयों का वर्णन नई शैली में करना
2. मुक्त यथार्थवाद – यथार्थ का ज्यों का त्यों चित्रण करना। साहित्य में जो प्रसंग (अश्लीलता, नग्नता) अब तक स्थान नहीं कर सके थे, उनका चित्रण इन कवियों ने किया है।
3. बौद्धिकता – नया कवि बौद्धिकता का अधिक वर्णन करता है, भावात्मकता का नहीं
4. क्षणिकता –प्रयोगवाद में एक क्षण का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। क्षणिक आनन्द सम्पूर्ण जीवन में सुख ही सुख भर देता है।

प्रश्न 60 प्रगतिवादी काव्यधारा में अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद आत्मा तक छाया हुआ है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - प्रगतिवादी कवि की अन्तरात्मा में अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद इस रूप से बद्धमूल है कि वह सामाजिक जीवन के साथ किसी प्रकार से गठबंधन नहीं कर पाता। वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति आधुनिक काव्य की मुख्य विशेषता है। भारतेन्दु, द्विवेदी और छायावादी युग में इसकी प्रधानता रही पर प्रयोगवादी कवि की वैयक्तिकता तो मात्र आत्मविज्ञान बनकर ही रह गई। इनका लक्ष्य है– ''कवि न होऊँ नहि चतुर कहाऊँ।''

प्रश्न 61 प्रयोगवादी कविता में नारी का क्या रूप चित्रित हुआ है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - प्रयोगवादी कविता में नारी के तीन रूपों का चित्रण हुआ है – 1. आधुनिक नारी जो बौद्धिक है,2. भारतीय गहणी जो हिन्दू संस्कति में अपनी दढ़ आस्था रखती है 3. मध्यवर्गीय परिवारों की नारियां जो जीवन को एक भार समझ कर ढो रही हैं। अज्ञेय जी ने पुरूष एवं स्त्री का सम्बन्ध पति पत्नी स्वीकार न करके चिरन्तन पुरुष और चिरन्तन स्त्री का सम्बन्ध स्वीकार किया है। पुरुष से संबंध स्थापित करती है अपनी तन, मन, धन की लालसा को पूर्ण करने के लिए वह धोखा देती है और धोखा खाती भी है।

प्रश्न 62 प्रयोगवादी कविता और रीतिकालीन कविता में क्या समानता है।

उत्तर - यद्यपि प्रयोगवादी कवि स्वयं को आधुनिक मानता है परन्तु उसकी कविता में सदियों पुरानी रीतिकाव्य की पद्धति का अनुकरण स्पष्ट दिखाई देता है। जिस प्रकार उन्होंने (रीतिकाल के कवियों) जीवन के व्यापक मूल्यों में से केवल रसिकता और कामुकता का मुख्य रूप से चित्रण किया, उसी प्रकार नए कवि ने भी कुण्ठाओं और दमित वासनाओं का अधिक चित्रण किया है। उसकी अभिव्यक्ति, अर्थशून्य है, रीतिकाव्य की चमत्कार कविता नई कविता में भी देखी जा सकती है। उनका कलापक्ष मनोहारी था, लेकिन उनका तो यह पक्ष भी शिवाय नए प्रयोगों के कुछ नहीं है।

प्रश्न 63 प्रयोगवादी काव्य में नग्नता एवं अश्लीलता दिखाई पड़ती है।

उत्तर - प्रयोगवादी काव्य में उन वस्तुओं का चित्रण बड़े गौरव के साथ किया है जिनका श्रेष्ठ साहित्कार बहिष्कार करता है। इस कवि का लक्ष्य दमित वासनाओं एवं कुण्ठाओं का चित्रण मात्र रह गया है। काम वासना जीवन का अंग अवश्य है, किन्तु जब वह अंश न रहकर अंगी और साधन न रहकर साध्य बन जाती है तब उसकी विकति एक घोर भयावह विकति के रूप में होती है यदि यूं कहा जाए कि प्रयोगवादी काव्य में सैक्स का खुला चित्रण है तो कोई अत्युक्ति न होगी।

प्रश्न 64 नई कविता निराशावादी भावनाओं से सम्पक्त है। समीक्षा कीजिए।

उत्तर - नई कविता का कवि अतीत की प्रेरणा और भविष्य की उल्लासमयी उज्ज्वल आकांक्षा दोनों विहीन है, उसकी दष्टि केवल वर्तमान पर टिकी है। यह निराशा के कुहासे से सर्वतः आवत है। उसका दष्टिकोण दश्यमान जगत के प्रति क्षणवादी तथा निराशावादी है। उनके लिए कल निरर्थक है, उसे उसके दोनों रूपों पर भरोसा और विश्वास नहीं है। डॉ॰ गणपति चन्द्र गुप्त के शब्दों में ''उनकी (नई कविता के कवियों की) स्थिति उस व्यक्ति की भांति है जिसे यह विश्वास हो कि अगले क्षण प्रलय होने वाल है। अतः वे वर्तमान में ही सब पा लेना चाहते हैं।''

प्रश्न 65 नई कविता (प्रयोगवाद) में बौद्धिकता की प्रधानता है। क्या यह ठीक है। युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

उत्तर - नई कविता में अनुभूति एवं रागात्मकता की कमी है। इसमें बौद्धिक व्यायाम की उछूल–कूद आवश्यकता से भी अधिक है। नया पाठक इससे प्रभावित हुए बिना इसकी पहेली बुझौवल के चक्रव्यूह में फंस जाता है। धर्मवीर भारती ने इस बौद्धिकता के विषय में कहा है–''प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्न चिह्न लगा हुआ है। इसी प्रश्न चिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कतिक ढांचा चरमरा उठा है और यह प्रश्नचिह्न उसी की छविमात्र है।''

प्रश्न 66 प्रयोगवादी कविता में उपमानों की नवीनता है। निरूपण कीजिए।

उत्तर - प्रयोगवादी कवि ने उपमानों के इतने अधिक नए प्रयोग किए हैं, जिससे लगता है कि कवि बाजीगर बन गया है। इन नए उपमानों के प्रयोग में सुरूचि का भी ध्यान आवश्यक है। अलंकारों का धर्म काव्य सौंदर्य में अभिवद्धि करना है, किन्तु उजले वस्त्रों का कफन की उपमा देना, बादल को हड्डी कहना तथा टूटे सपने को भुंजा हुआ पापड़ कहने से सौंदर्य सष्टि न होकर पाठक के मन में विक्षोभ की सष्टि होती है। हां कहीं–कहीं अच्छे उपमान भी दिखाई दिखाई पड़ते हैं।

प्रश्न 67 ''प्रयोगवादी काव्य में धन्द के बंधन को स्वीकारा नहीं गया।'' क्या यह कथन ठीक है। विवेचन कीजिए।

उत्तर - प्रयोगवादी कलाकार अन्य क्षेत्रों के समान छन्द के बंधन को स्वीकार न सका और उसने मुक्तक परम्परा में विश्वास किया। कुछ नए गीतों की रचना की कुछ नए प्रयोग किए। कुछ ऐसी कविताओं की रचना की जिसमें न लय है न गति अपितु गद्य की सी नीरसता एवं शुष्कता है। एक प्रसिद्ध आलोचक ने कहा है–'' यही कारण है कि प्रयोगवादी कवियों ने मुक्तक छन्द अपने आप में हलचल सी, एक बबण्डर–सा रखते हुए प्रभाव शून्य प्रतीत होते हैं उनकी करूणा और उच्छ्वास भी पाठक के हदय को द्रवित नहीं कर पाते। हाँ तो होता क्या है एक विस्मयकारिणी सष्टि।''

प्रश्न 68 अज्ञेय का परिचय दीजिए।

उत्तर - अज्ञेय नई कविता के प्रवर्तक एवं समर्थ कवि हैं। इनके उपन्यासकार, कवि, कहानीकार, पत्रकार, यात्रावतान्त लेखक आदि अनेक रूप हैं। अज्ञेय जी नई कविता के सर्वश्रेष्ठ कवि है। मग्नदूत, चिंता, हरी घास पर क्षणभर, बाबरा, अहेरी, 'इन्द्रधनुष रौदें हुए', आंगन के पार द्वार आदि उनके महत्त्वपूर्ण काव्य संग्रह है। आस्था, विश्वास का

स्वर व्यष्टि व समष्टि की भावना, व्यंग्य आदि उनक काव्य की अनेक विशेषताएं है। उनकी कविता में बौद्धिकता की प्रधानता है। उन्होंने अपनी कविता में नए उपमानों, बिम्ब प्रतीकों एवं शब्दों को विकसित किया है। इस दष्टि से अज्ञेय नई कविता के प्रमुख स्तम्भ है।

प्रश्न 69 गिरिजा कुमार माथुर का परिचय दीजिए।

उत्तर - प्रयोगवादी कवियों में गिरिजाकुमार माथुर का नाम भी प्रसिद्ध है इनकी कविता का प्रमुख विषय प्रेम और विरह है। उनकी कविता में श्रंगारिकता की प्रधानता है। कहीं–कहीं संघर्ष और क्रांति की भावना भी झलकती है। शिल्प के क्षेत्र में संगीात्मकता एक प्रमुख विशेषता है। उनकी कविता में सहज संगीत,लय और प्रवाह है। माथुर जी न अपनी कविता में नए शब्दों, बिम्बों एवं प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। मंजीर, धूप के धान, नाश और निर्माण , पथ्वी कल्प आदि उनकी प्रमुख काव्य रचनाएं हैं।

प्रश्न 70 धर्मवीर भारती का परिचय दीजिए।

उत्तर - धर्मवीर भारती एक सफल प्रयोगवादी कवि एवं पत्रकार हैं। उनकी रचनाओं में वासनाओं एवं काम ुकुण्ठाओं दुःख व निराशा का सुन्दर चित्रण हुआ है। उनकी काव्य रचनाओं में 'अंधायुग', 'ठण्डा–लोहा', 'सात–गीत वर्ष', 'कनुप्रिया' आदि प्रमुख है। 'अंधायुग ' में उन्होंने सांस्कतिक क्रांति उत्पन्न करने का प्रयास किया है। निराला के प्रति थके हुए कलकार से फूल मोमबतियां और टूटते सपने आदि उनकी बड़ी सुन्दर कविताएं हैं। बिम्ब ओर प्रतीक योजना, नाटकीयता की दष्टि से उनकी कविता सरल हैं उनकी भाषा सहज, सरल और स्पष्ट है।

प्रश्न 71 नई कविता में क्षण का महत्व स्वीकार किया गया है। समीक्षा कीजिए।

उत्तर - यह कविता जीवन के एक क्षण को सत्य मानती है और सत्य को पूरी शक्ति के साथ भोगने का आग्रह करती है। क्षणबोध शाश्वत जीवन–बोध का विरोधी नहीं बल्कि उसे प्राप्त करने की यथार्थ प्रक्रिया है। क्षण में दिखाई पड़ने वाले किसी जीवन के सौंन्दर्यमय भाव में अनुभूत होने वाली जीवन्त व्यथा, जीवन का उल्लास, क्षण में दीख पड़ने वाली मनः स्थिति या बाहरी व्यापार का कोई हिस्सा छोटा नहीं होता। उसका जीवन और साहित्य में एक अपना मूल्य है–वह क्षण की मार्मिक सत्यानुभूति जीवन को एक नवीन सार्थकता प्रदान करती है।

प्रश्न 72 व्यंग्यात्मकता की दष्टि से नई कविता का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर - नई कविता में कवियों ने आज के युग में व्याप्त विषमता का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है। व्यंग्यातमक शैली में जीवन और सभ्यता के चित्रण में कवि को अद्भुत सफलता भी मिली है। श्रीकान्त वर्मा ने 'नगरहीन मन' शीर्षक कविता में आज के नागरकि जीवन की स्वार्थपरता छलकपट पूर्ण जिंदगी को स्वर दिया है। अज्ञेय की कविता 'सांप' में भी नागरिक सभ्यता पर करारा व्यंग्य किया है ––''सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होगे............... ।''

प्रश्न 73 समकालीन कविता की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - जब कभी आधुनिक शब्द को लेकर विद्वान चर्चा करते हैं तो वे आधुनिकता और समकालीनता में भेद करने का प्रयास करते हैं। यह भी कहते हैं–'आधुनिक काल निरपेक्ष मूल्य है जबकि समकालीनता काल–सापेक्ष अनुभव है। डॉ॰ हरदयाल के शब्दों में –''कोई व्यक्ति अपने समय को यदि अनुभव के स्तर पर ग्रहण कर लेता है तो वह समकालीनता के बोध से युक्त है।'' फिर भी प्रश्न उठता है कि इसका अर्थ क्या है ? इसका शाब्दिक अर्थ है–अपने समय से जुड़ने का भाव।

प्रश्न 74 समकालीन कविता में सांस्कतिक विपन्नता के दर्शन होते हैं। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - सांस्कतिक विपन्नता के दर्शन होने का कारण है कि हमारी संस्कति के अधिकांश मूल्य खो रहे हैं नया बनता समाज

उन्हें छोड़ रहा है। या यूं भी कह सकते है कि आधुनिक पीढ़ी उन्हें अपनाना ही नहीं चाहती। आठवें दशक तक आते–आते संस्कति के प्रति ये आक्रमण और आक्रोश और भी तीव्र हो गए। समकालीन कविता में संस्कति के प्रति ये बेगानापन हमें बार–बार दिखाई पड़ता है। मानों ये कवि कहना चाहते हों कि हमारे समूचे इतिहास एवं संस्कति की पुनः जांच होनी चाहिए।

प्रश्न 75 समकालीन कविता विद्रोह और तनाव की कविता है क्यो ?

उत्तर - समकालीन कविता के लिए राजनीति एक सजीव सच्चाई है। पंचवर्षीय योजनाओं में अरबों रुपए लगाने के उपरांत भी गरीबी, बेकारी,मंहगाई भुखमरी, अकाल आदि की स्थिति बनी रही है। हमारी गह नीति और विदेश नीति असफल रही । इस प्रकार के वातावरण का साहित्य पर प्रभाव पड़ पाना स्वाभाविक ही था। इस कविता में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति आक्रोश की भावना विद्यमान है। लीला जूगड़ी , चंद्रकांत देवताले आदि अत्यधिक आक्रोश के कवि है।

प्रश्न 76 समकालीन कविता में पोराणिक संदर्भ किस प्रकार आए हैं। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - समकालीन कविता में पौराणिक संदर्भों को लेकर लिखने वाले अनेक कवि हैं। अज्ञेय की 'असाध्य वीणा', नरेश मेहता की 'संशय की एक रात', कुंवर नारायण की 'चक्रव्यूह' तथा जगदीश चतुर्वेदी की 'सूर्यपुत्र' जैसी कविताओं को लिया जा सकता है। सन् 1985 में प्रकाशित विश्वनाथ तिवारी की कविता 'टल गया एक महाभारत' इस बात का सबूत है कि आज का कवि अपनी रचनात्मक ऊर्जा को प्राप्त करने के लिए मिथक और यथार्थ के अनेक रूपों को स्वीकार करता है।

प्रश्न 77 समकालीन कविता में आम आदमी की स्थिति कैसी है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - समकालीन कविता को आम आदमी की कविता कहा गया है। उसमें सर्वत्र आम आदमी की खोज का प्रयास किया गया है। लीलाधर जगूडी लिखते हैं––

'बाहर कहीं से भी दबोचो आदमी की जात'
ढीली पड गई।

समकालीन कविता की भाषा अत्यन्त सरल एवं दैनिक जीवन की भाषा है। यह आम आदमी की भाषा है।

प्रश्न 78 राजस्थानी गद्य पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर - हिन्दी साहित्य के वीरगाथाकाल में राजस्थान ही संस्कति और साहित्य केन्द्र रहा। इस समय की भाषा डिंगल थी। चारण भाट कवियों ने धर्म, नीति, इतिहास, छन्दशास्त्र आदि विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ लिखे। इस काल की कुछ पुस्तके हैं––रघुवरजस प्रकास, आनन्द रघुनन्दन पंचाख्यान, भाषा भरथ, बेलिक्रिसन रुकमणी री आदि। बाद में इसमें ब्रजभाषा का प्रयोग बढ़ गया और राजस्थानी गद्य का निर्माण लगभग बंद हो गया।

प्रश्न 79 ब्रजभाषा गद्य पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर - ब्रजभाषा गद्य का सर्वप्रथम लेखक गोरख पंथी किसी लेखक को माना जाता है। 'गोरखसार' गोरख गणेश, गोष्ठी, महादेव गोरख संवाद इनकी गद्य रचनाएं हैं। 16वीं शताब्दी में बल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने श्रंगार रस मण्डन लिया तथा 17वीं शताब्दी में पुष्टिमार्गी कवि ने 'चोरासी वैष्णव की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णों की वार्ता' नामक पुस्तकें लिखीं, जिनका ऐतिहासिक तथा सांसकतिक मूल्य अब भी है। 1795 ई॰ में जयपुर नरेश प्रतापसिंह की आज्ञा से हीरालाल ने 'आइने अकवरी' की भाषा 'वचनिका' नामक बड़ी पुस्तक लिखी।

प्रश्न 80 खड़ी बोली गद्य पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर - खड़ी बोली दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली जनसाधारण की भाषा है। धीरे–धीरे खड़ी बोली विकसित होकर

गद्य लेखन की मुख्य भाषा बन गई। गद्य क्षेत्र खड़ी बोली की प्रतिष्ठापना का एक अन्य कारण यह भी है कि अंग्रजों ने अपना काम सुचारू रूप से चलाने के लिए जिस भारतीय भाषा को सीखा वह यही थी क्योंकि इसका प्रचलन समाज में सबसे अधिक था। खड़ी बोली गद्य की सर्वप्रथम रचना अकबर के दरबारी कवि गंग की 'चंद छन्द– बरनन की महिमा' (1570 ई॰) इसके पश्चात रामप्रसाद निरंजनी की 'भाषा यागवरिष्ठ' रचना है।

प्रश्न 81 लेखक चतुष्टय से अभिप्राय है।

उत्तर - खड़ी बोली गद्य के विकास की परम्परा में मुंशी सदासुखलाल नियाज, इंशा अल्ला खां, लल्लू जी लाल और सदल मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई और इस में जान गिल क्राइस्ट ने हिन्दी उर्दू में गद्य की पुस्तकें तैयार करने की व्यवस्था की। लल्लू जी लाल और सदल मिश्र दोनों इस कॉलेज में काम करते थे। पर सदासुखलाल और इंशाअल्ला खां ने स्वतन्त्र रूप से खड़ी बोली गद्य में लिखा।

प्रश्न 82 सदासुख लाल का परिचय दीजिए।

उत्तर - सदासुख दिल्ली के निवासी थे और एक कम्पनी में नौकरी करते थे। ये उर्दू–फारसी में शायरी करते थे और इन्होंने इन भाषाओं में अनेक पुस्तकें लिखीं। नौकरी से रिटायर होने के पश्चात् इन्होंने विष्णु पुरान से उपदेशाात्मक प्रसंग लेकर एक पुस्तक लिखी और हिन्दी में श्रीमद् भागवत का सुख सागर के नाम से स्वतंत्र अनुवाद किया। इन्होंने हिन्दुओं की बोलचाल की शिष्ट भाषा का प्रयोग किया यह इनके गद्य में जगह जगह पंडिताऊपन है। स्थान–स्थान पर तत्सम शब्दावली के प्रयोग के द्वारा इन्होंने भावी साहित्यिक रूप की स्थापना का आभास दे दिया था।

प्रश्न 83 हिन्दी गद्य के विकास में इंशा अल्ला खां का योगदान स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - इंशा अल्ला खां उर्दू के प्रसिद्ध सायर थे। अनेक नबावों की सेवा में रहकर इन्होंने काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी इनके द्वारा लिखित 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी गद्य की पहली मौलिक रचना है। इन्होंने फड़कती हुई मुहावरे दार और विनोदपूर्ण शैली में लिखा। इन्होंने अरबी, फारसी, अवधी, ब्रज और संस्कत के शब्दों से बचकर खड़ी बोली में लिखने का प्रयास किया पर फिर भी फारसी ढंग के वाक्य–विन्यास का प्रभाव इन पर स्पष्ट है। डॉ॰ शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में, "गद्य में मुहावरों का ऐसा प्रयोग उनके पूर्ववर्ती किसी लेखक ने नहीं किया था और न ही किसी ने हिन्दी गद्य में इस कोटि की मौलिक रचना की थी।

प्रश्न 84 हिन्दी गद्य साहित्य में लल्लूलाल जी का योगदान स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - लल्लूलाल जी आगरा में रहने वाले गुजराती ब्रह्माण थे। हिन्दी, उर्दू और संस्कत भाषा के अच्छे जानकार थे। इन्होंने भागवत के दशम्स्कन्ध की कथा को लेकर 'प्रेमसागर' नामक पुस्तक की रचना की। इसकी भाषा पर ब्रज और उर्दू का बहुत अधिक प्रभाव है। एक अंग्रेज ने इनकी पुस्तक के विषय में लिखा है कि (Such a language did not exist in India before. When, therefore, Lalluji Lal wrote his Prem Sagar in Hindi, he was inventing an altogether new language.) इसके अतिरिक्त इन्होंने बैताल पचीसी, सिंहासन बतीसी, शकुन्तला नाटक, माधव विलास हितोपदेश आदि का हिन्दी में अनुवाद किया। बिहारी सतसई पर इन्होंने टीका भी लिखी।

प्रश्न 85 भारतेन्दु युगीन हिन्दी निबंध पर एक नोट लिखिए।

उत्तर - भारतेन्दु हिन्दी के प्रथम प्रतिभा–सम्पन्न निबंधकार हैं। उन्होंने समाजसुधार, इतिहास, धर्म, पुरातत्व, यात्रा कला, भाषा, इतिहास आदि विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे हैं। अंग्रेजी सरकार पर व्यंग्य किया है। 'रामायण का समय', काशी, कश्मीर कुसुम, संगीत सार, हिन्दी–भाषा आदि उनके प्रसिद्ध निबंध हैं। इस युग के बालकष्ण भट्ट , प्रतापनारायण मिश्रा, श्री निवासदास, राधाचरण गोस्वामी आदि प्रमुख निबंधकार हैं। इस युग के निबंध आंख, भौं, नाक, कान आदि से लेकर सामाजिक साहित्यिक आदि सभी विषयों पर लिखे गए हैं।

प्रश्न 86 हिन्दी गद्य के विकास में ईसाइयों का योगदान क्या है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के लिए ईसाई मिशनरियों ने अनेक स्कूल खोले। ईसाई लोग मुफ्त में ही अपने द्वारा छापे गए ग्रन्थों को लोगों का देने लगे। इनका गद्य उच्च कोटि का नहीं था। इसमें कत्रिमता, शिथिलता, व्यर्थ शब्दों और मुहावरों का गलत प्रयोग था। इनका गद्य सरल और सीधा था। चलती भाषा में भावों को अभिव्यक्त किया गया था। शिक्षा संबंधी पुस्तकें और नागरी लिपि में सुन्दर टाइप के लिए हमें ईसाई धर्म के प्रचारकों का आभार स्वीकार करना चाहिए। उनका गद्य के विकास में प्रत्यक्ष नहीं तो अप्रत्यक्ष सहयोग अवश्य रहा है।

प्रश्न 87 राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने हिन्दी के विकास में क्या योगदान दिया था ?

उत्तर - शिव प्रसाद हिन्दी के पक्षपाती एवं संरक्षक अनेक विध्न बाधाओं के आने पर भी इन्होंने हिन्दी के उद्धार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। ये शिक्षा विभाग में इन्सपैक्टर थे और अंग्रेज़ों के कपा भाजन थे। इन्होंने हिन्दी में पुस्तकें लिखीं और सहयोगियों से लिखवाई। इन्होंने इतिहास, अर्थशास्त्र , न्यायशास्त्र आदि से संबंधित पुस्तकें छपवाई और हिन्दी की रक्षा की।

प्रश्न 88 राजा लक्ष्मण सिंह की हिन्दी सेवाओं का वर्णन करो।

उत्तर - ये शिव प्रसाद की समझौतावादी नीति के कट्टर विरोधी थे। इनकी धारणा थी कि बिना उर्दू के शब्दों के प्रयोग से हिन्दी का सुन्दर गद्य लिखा जा सकता है। ये तत्सम शब्दों के पक्षपाती थे। जिसके कारण इनकी भाषा में कत्रिमता आ गई है। इन्होंने प्रजा हितैषी नामक हिन्दी में एक पत्र निकाला तथा कुछ पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया। इन दोनों के सहयोग से हिन्दी का प्रचार कार्य जोर पकड़ गया था।

प्रश्न 89 विभिन्न धर्म प्रचारकों ने हिन्दी के विकास में क्या योगदान दिया ?

उत्तर - ईसाई धर्म की प्रतिक्रिया में राजा राममोहनराय ने बंगाल में वेदांत और उपनिषदों का ज्ञान साथ ले ब्रह्म समाज की स्थापना की। उन्होंने वेदांत सूत्रों का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित कराया। उत्तरी भारत में स्वामी दयानन्द ने बौदिक धर्म प्रचार के लिए आर्य समाज की स्थापना की। उन्होंने हिन्दुस्तान को आर्यावर्त और हिन्दी को आर्य भाषा का नाम दिया। सत्यार्थ प्रकाश में इन्होंने मुसलमानों और ईसाइयों की भर्त्सना की तथा अनेक पुस्तकें लिखीं। पंजाब में हिन्दी प्रचार का प्रायः समूचा श्रेय आर्य समाज को ही है।

प्रश्न 90 द्विवेदी युगीन निबंध साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर - आचार्य महावरी प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के सम्पादक पद से भाषा में सुधार, सत्–साहित्य के प्रसार, लेखन निर्माण और पाठकों की ज्ञान वद्धि का महान् कार्य किया। उन्होंने लेखकों का सुसंस्कत ढंग से बात करना सिखाया। अंग्रेज़ी के आदर्श निबंधकार बेकन के निबन्धों का अनुवाद किया। इस युग के निबंधों के विषय गम्भीर हैं और वे शिष्ट और पढ़े–लिखे लोगों के ही अधिक निकट हैं। डॉ॰ श्यामसुन्दरदास अध्यापक पूर्णसिंह, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि इस युग के मुख्य निबंधकार हैं।

प्रश्न 91 'शुक्ल युग' के निबन्धों पर नोट लिखिए।

उत्तर - इस युग के सर्वश्रेष्ठ हिन्दी निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल है। 'चिंतामणि' में संगहित निबंधों के माध्यम से शुक्ल जी ने नए विचार, नई अनुभूति और नई निबंध शैली प्रस्तुत की। 'चिंतामणि (भाग–दो) में उच्च कोटि के साहित्यिक, आलोचनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक निबंध हैं। इनमें शुक्ल जी के शास्त्रीय विषयों पर मौलिक, गंभीर एवं प्रौढ़ विचार प्रकट हुए हैं। उनका विषय प्रतिपाद रूखा न होकर रसात्मक है। शुक्ल युग के अन्य निबंधकार में–डॉ॰ गुलाबराय, जयशंकर प्रसाद, वियोगी हरि, माखनलाल चतुर्वेदी निराला, महादेवी वर्मा आदि प्रमुख हैं।

प्रश्न 92 शुक्लोत्तर युगीन हिन्दी निबंध साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - शुक्लोत्तर युग में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी, वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ॰ नगेन्द्र, डॉ॰ रामविलास शर्मा, डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा आदि प्रमुख हैं। आज के निबंध साहित्य में वर्णनात्मक एवं विचारात्मक निबंधों का अभाव है। निबंधों में विवेचनात्मक भावात्मक एवं वैयक्तिकता की प्रधानता है।

प्रश्न 93 प्रेमचन्द पूर्व युग के हिन्दी उपन्यास साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - मुंशी प्रेमचन्द से पूर्व का युग उपन्यास का आरम्भिक युग माना जाता है। हिन्दी का पहला उपन्यास लाला श्री निवासदास द्वारा लिखा गया 'परीक्षा गुरु' माना जाता है। भारतेन्दु युग में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों की रचना भी की गई थी। श्रद्धाराम फिल्लोरी, बालकष्ण भट्ट, राधाकष्णदास, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकी नंदन खत्री इस युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। देवकीनंदन खत्री के 'चंद्रकान्ता संतति' ने हिन्दी उपन्यास–क्षेत्र में खूब धूम मचाई। नारी जागरण, समाज–सुधार, रोमांच, इतिहास, मनोरंजन आदि विशेषताएं इस युग के उपन्यासों में मिलती हैं।

प्रश्न 94 प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास पर एक नोट लिखिए।

उत्तर - हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द का आगमन एक बहुत बड़ी घटना है। उन्होंने उपन्यास को सामान्य जन–जीवन से जोड़ दिया। उन्होंने सेवासदन, वरदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि तथा गोदान जैसे अनेक उपन्यासों की रचना की। इस युग के उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद 'कंकाल', 'तितली', 'इरावती',(अपूर्ण) आदि बेचन शर्मा, चतुरसेनशास्त्री, वदावन लाल वर्मा, इलाचंद जोशी आदि प्रमुख हैं।

प्रश्न 95 प्रेमचन्दोत्तर युगीन सामाजिक उपन्यासों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर - इस युग में पर्याप्त मात्रा में सामाजिक उपन्यास लिखे गए। प्रसार, कौशिक, चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि समाजसुधार के नाम यथार्थवाद की आड़ में वर्जित विषयों पर लिखकर अश्लीलता का चित्रण किया। भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, अमतलाल नागर, गोबिन्ददास, उदयशंकर भट्ट आदि ने अपने उपन्यासों में व्यक्ति और स्वतंत्रता के लिए समाज की रूढ़ परम्पराओं और पुराने मूल्यों के प्रति संघर्ष चित्रित किया है। नागर का बूथ और समुद्र व्यष्टि और समष्टि का प्रतीक है।

प्रश्न 96 प्रेमचन्दोत्तर साम्यवादी हिन्दी उपन्यास साहित्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - राहुल सांकत्यायन के लिए सेबयति, 'वो नगर से गावं तक' तथा यशपाल के 'दादा कामरेड', 'पार्टी कामरेड' आदि उपन्यास साम्यवादी विचारधारा के पोषक हैं, जिनमें युग जीवन के संघर्ष का चित्रण किया गया है। इन्होंने समाज के खोखलेपन को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया है। नागार्जुन , रांगेय राघव, गौरव प्रसाद गुप्त, अमतराय आदि ने भी मार्क्स के सिद्धान्तों की पुष्टि करते हुए अपने उपन्यास लिखे। राजेन्द्र यादव का 'प्रेत बोलते हैं' की साम्यवादी विचारधारा का उपन्यास है,जिस पर 'सारा आकाश' नाम से फिल्म बन चुकी है।

प्रश्न 97 प्रेमचंद्रोत्तर हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर - हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की यह धारा बहुत क्षीण है। पूर्व प्रेमचन्द युग में जो ऐतिहासिक उपन्यास मिलते हैं, वे केवल इतिहास नामधारी है। वंदावन लाल वर्मा, निराला, सांकत्यायन, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि का नाम इस क्षेत्र मे ं उल्लेखनीय हैं। चतुरसेन शास्त्री का 'नगर वधू' एक सुगठित ऐतिहासिक रचना है। अमतलाला नागर के शतरंज के मोहरे ' और 'सुहाग के नूपुर' प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

प्रश्न 98 प्रेमचन्द के बाद के हिन्दी आंचलिक उपन्यास साहित्य पर विवेचन कीजिए।

उत्तर - अंचल का अर्थ है– जनपद या क्षेत्र विशेष। जिन उपन्यासों में किसी क्षेत्र विशेष या जनपद के जन–जीवन का

समग्र चित्रण हो उन्हें आंचलिक उपन्यास कहते हैं। फणीश्वर नाथ रेणु का 'मैला आंचल' उदयशंकर भट्ट का 'लोक–परलोक' तथा 'सागर और लहरें, रांगेय राघव का 'काको' और 'कब तक पुकारूँ' आदि महत्त्वपूर्ण आंचलिक उपन्यास हैं। इन उपन्यासों की कमजोरी उनकी स्थानीय बोली है। लेखक को अपनी जाति, धर्म, संस्कति और वर्ग से अत्यधिक प्रेम होता है। इन उपन्यासों में यह प्रेम भी व्यक्त हुआ है। इन उपन्यासों की सफलता इनका यथार्थवाद है।

प्रश्न 99 जैनेन्द्र की कहानियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर - जैनेन्द्र ने अधिकांश कहानियाँ मनोवैज्ञानिक आधार पर लिखीं, जिसमें हिन्दी कहानी क्षेत्र में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ। उन्होंने बाह्य समस्याओं के स्थान पर आतंरिक समस्याओं को सहानुभूति ढंग से वर्णित किया है जिसमें इनमें बौद्धिक रोचकता बनी रहती है। इनमें पाठक को थका देने की प्रवति अधिक है। ज्वालादत्त शर्मा, जनार्दन प्रसाद तथा सिधराव शरण गुप्त आदि ने इसी आधार पर अपनी कहानियां लिखी। इनमें यथार्थ और कोमल कल्पना का मिरण है।

प्रश्न 100 अज्ञेय और उनके सहयोगी कहानीकारों का परिचय दीजिए।

उत्तर - अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता का समावेश तो अवश्य है, लेकिन जैनन्द्र जैसा नही। इस पर फ्रायड़ के यौनवाद का सीधा प्रभाव है। इन्होंने दमित वासनाओं और कुण्ठाओं का उन्मुक्त चित्रण किया है। इनके उपन्यासों में जीवन सत्यों का अभाव है। अज्ञेय के कहानी संग्रह ––विपथगा, कोठरी की बात, जयदोल आदि अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी, पहाड़ी तथा नरोत्तम दास आदि अज्ञेय के सहयोगी कहानीकार थे।

प्रश्न 101 यशपाल की कहानियों का परिचय दीजिए।

उत्तर - यशपाल हिन्दी कहानी साहित्य के श्रेष्ठ कथाकारों में से एक हैं। यह मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित हैं। इनकी कहानियों में यथार्थवादी दष्टिकोण हैं और इनमें समाज की कुरीतियों की कटु आलोचना है। ये कला और जीवन में स्वाभाविकता के पक्षपाती हैं। इन्होंने सामजिक ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियां लिखी हैं जो अत्यन्त संयत और स्वाभाविक हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क का कहानी संबंधी दष्टिकोण यशपाल जैसा ही है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, रामप्रसाद पहाड़ी, चंद्रकिरण सॉनरेक्सा आदि भी इसी पथ के राही कहानीकार हैं।

प्रश्न 102 आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के निबंधों का परिचय दीजिए।

उत्तर - आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने आलोचनात्मक निबंध ही अधिक लिखे हैं ––जिनमें गंभीर और व्यापक अध्ययन, मौलिक चिंतन और सिद्धांत प्रतिपादन की प्रकति ही अधिक दिखाई पड़ती है। इनमें निबंध के उल्लासमयी ललित आत्मा के प्रायः दर्शन नहीं होते। इनके निबंधों में उनके अपने व्यक्तित्व की छाप नहीं दिखाई देती।

प्रश्न 103 रामधारी सिंह दिनकर के निबंधों का परिचय दीजिए।

उत्तर - रामधारी सिंह दिनकर के निबंध संख्या और गुण के आधार पर बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि वे कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए और उनका गद्यकार रूप बहुत स्पष्ट सामने नहीं आ पाया, पर वास्तव में वे गद्य और पद्य दोनों विधाओं को लिखने में निपुण थे। उनके प्रसिद्ध निबंध संग्रह है––मिट्टी की ओर, अर्द्धनारीश्वर, गुप्त, प्रसाद और पंत, साहित्यमुखी, शुद्ध कविता की खोज, रीति के फूल आदि। इनके निबंधों में सर्वत्र मानवतावादी दष्टिकोण दिखाई देता है। इनके निबंध अति स्पष्टता से पाठकों तक भाव प्रकट करते हैं।

प्रश्न 104 प्रेमचन्दोत्तर मनोविश्लेषणवादी हिन्दी उपन्यास साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर - आधुनिक मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण शास्त्र के प्रकाश में मान मन की कुंठाओं, ग्रंथियों और दमित वासनाओं

की व्यवस्था करने वाले उपन्यास मनोविश्लेषणवादी कहलाते हैं। इस कोटि के अन्तर्गत आने वाले उपन्यासकारों पर फ्रायड, एडलर और युग की विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उस दष्टि से जैनेन्द्र कत परख, सुनीता, त्यागपत्र और कल्याणी, इलाचंद्र जोशी कत संन्यासी पर्दे की रानी, प्रेत और छाया तथा जहाज का पंछी और अज्ञेय कत शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप तथा अपने अपने अजनबी विशेष उल्लेखनीय है।

प्रश्न 105 प्रेमचंदोत्तर युग के व्यक्तिवादी उपन्यास साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - कुछ उपन्यासकारों ने समाज–सत्ता की अपेक्षा व्यक्ति सत्ता को महता प्रदान की है। उन्होंने व्यक्तिवादी जीवन दष्टि से मानवीय मूल्यों और धारणाओं को व्याख्यायित किया है। इस वर्ग के अन्तर्गत भगवती प्रसाद वाजपेयी, उषा देवी मिश्रा तथा उदयशंकर भट्ट आदि आते हैं। वर्मा जी के चित्रलेखा, टेढ़े–मेढ़े रास्ते, वाजपेयी के दो बहनें, चलते–चलते, मित्रा के पिया वचन का मोल और भट्ट के नये मोड़ तथा एक नीड़ दो पंछी आदि उपन्यासों में व्यक्ति की सत्ता और महत्ता का अत्यन्त सफलतापूर्वक चित्रण हुआ है।

प्रश्न 106 स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य पर संक्षेप में लेख लिखिए।

उत्तर - स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी उपन्यासकारों की एक पूरी पीढ़ी उभर कर सामने आई है। इनके उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ को व्यापक स्वीकति, व्यक्ति स्वतंत्रण को प्रवति तथा आधुनिक बोध की अनुभूति दर्शनीय है। इस दष्टि से मोहन रोकेश (अंधेरेबंद–कमरे), राजेन्द्र यादव (उखड़े हुए लोग), कमलेश्वर (काली आंधी), धर्मवीर भारती (गुनाहों का देवता), उषा प्रियंवदा (रूकोगी नहीं राधिका), श्री लाल शुक्ल (राजदरबारी), मन्नु भण्डारी (आपका बंटी) आदि का योगदान अविस्मरणीय है।

प्रश्न 107 हिन्दी निबंध के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - ''गद्य क वीनां निष्कषं वदन्ति'' के आधार पर हिन्दी में आचार्य शुक्ल का कथन है कि –''यदि गद्य कवियों की कसौटी है , तो निबंध गद्य की कसौटी है।'' अतः जब तक किसी भाषा के गद्य का स्वरूप व्यवस्थित नहीं हो जता, तब तक उच्चकोटि के निबंधों का सजन असंभव है। आधुनिक युग से पूर्ण हिन्दी में निबंध के अभाव का सबसे बड़ा कारण यह है कि उस समय व्यवस्थित और परिष्कत गद्य अनुपलब्ध था। आधुनिक काल में मुद्रण–यंत्र तथा पत्र–पत्रिकाओं के प्रचलन और पाश्चात्य साहित्य के संपर्क के कारण ही हिन्दी निबंध का जन्म और विकास संभव हो सका है।

प्रश्न 108 प्रेमचन्द पूर्ण हिन्दी कहानी साहित्य का उल्लेख कीजिए।

उत्तर - 'सरस्वती' और 'इन्दु' नामक पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी कहानी का जन्म हुआ। हिन्दी की प्रथम कहानी के रूप में चर्चित रानी केतकी ही कहानी (इंशा अल्ला खां) राजाभोज का सपना (शिव प्रसाद सितारे हिन्द), अद्भूत अपूर्व स्वप्न (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल) और इन्दुमति (किशोरीलाल गोस्वामी) इनके पश्चात वंग महिला की ढुलाई वाली' तथा सन् 1909 में वंदावन लाला वर्मा की 'राखी बंद भाई' का प्रकाशन हुआ। इसी समय 'इन्दु' के माध्यम से प्रसाद का पर्दापण हुआ।

प्रश्न 109 प्रयोगशील परम्परा के हिन्दी उपन्यासों का वर्णन कीजिए।

उत्तर - कहानी और कविता की भांति उपन्यास क्षेत्र में भी आजकल कुछ नवीन प्रयोग दिये गये हैं। धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवा घोड़ा' में भिन्न–भिन्न व्यक्तियों की अलग–अलग कहानियों, को एक सूत्रात्मकता केन्द्र देने का प्रयास किया गया है। रूद्र जी ने बहती गंगा' में सत्रह कहानियों के द्वारा काशी नगरी के पिछले दो सौ वर्षों की ऐतिहासिक झांकी प्रस्तुत की है। गिरधर गोपाल ने 'चांदनी के खंडहर' में केवल चौबीस घण्टों की कथा को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। 'ग्यारह सपनों का देश' अनेक लेखकों द्वारा लिखा गया है।

प्रश्न 110 आधुनिक बोध से प्रभावित हिन्दी उपन्यासों का वर्णन कीजिए।

उत्तर - आज के उपन्यास को भी आधुनिक औद्योगिकरण, बौद्धिकता,यन्त्रीकरण तथा पश्चिमी विचारधारा ने प्रभावित किया है। मोहन राकेश के 'अंधेरे बंध कमरे ' और 'आने वाला कल' आधुनिकता से प्रभावित उपन्यास है। राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई' समलैंगिक मौन सुख से लिप्त स्त्रियों की कहानी है। श्रीकांत वर्मा, कमलेश्वर, नरेश मेहता, कष्णा सोवती आदि ने आधुनिक जीवन की संवेदनाएं प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

प्रश्न 111 प्रेमचन्द और प्रसाद युग के कहानी साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - प्रेमचन्द और प्रसाद ने हिन्दी कहानी साहित्य को एक नया मोड़ दिया, उन्होंने कहानी को जन–जीवन से जोड़ा। आधुनिक कहानी का सूत्रपात इन्हीं से होता है। 1911 में प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' तथा प्रेमचन्द सन् 1916 में पंचपरमेश्वर की कहानी छपी। प्रेमचन्द ने लगभग 300 कहानियां लिखीं। 'पूस की रात', 'नमक का दरोगा', कफ़न, ईदगाह आदि। प्रसाद ने प्रतिध्वनि, आकाशदीप आंधी, इन्द्रजाल आदि प्रसिद्ध कहानियां हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा, चतुरसेन शास्त्री , वन्दावन लाला वार्म आदि इस युग के उल्लेखनीय कहानीकार है।

प्रश्न 112 प्रेमचदोत्तर काल का कहानी साहित्य स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - प्रेमचंदोत्तर काल में सर्वप्रथम आते हैं–– मनोवैज्ञानिक कहानीकार। इनमें जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी तथा भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि प्रमुख हैं। इन कहानी कारों ने घटना–प्रधान कहानियों की जगह सूक्ष्म, मनोविज्ञान तथा चरित्र प्रधान कहानियां लिखीं। जैनेन्द्र की पाजेब कहानी जगत प्रसिद्ध है। खेल, फांसी , एक गौ, एक रात आदि उनकी उल्लेखनीय कहानियां है। विपथगा, परम्परा कोठरी की बात आदि अज्ञेय जी के प्रसिद्ध कहानियां हैं। यशपाल, अमतराय नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क रांगेय राघव तथा विष्णुप्रभाकर आदि इस युग के मुख्य कहानीकार हैं।

प्रश्न 113 आधुनिक युग के कहानी साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - आधुनिक युग के कहानीकारों में फणीश्वरनाथ रेणु (आंचलिक कहानीकार), राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर,मोहन राकेश, अमरकान्त, धर्मवीर भारती, उषा प्रियवंदा आदि हैं। इनमें राजेन्द्रयादव का 'जहां लक्ष्मी कैद है', धर्मवीर भारती का 'चांद और टूटे हुए लोग', शैलेश–मटियानी का 'मेरी तैंतीस कहानियां' आदि प्रसिद्ध कहानी–संग्रह हैं। हरिशंकर परसाई, जे. पी. श्रीवास्तव, के. पी. सक्सेना, बेढ़ब बनारसी आदि हास्य – व्यंग्य के कहानीकार हैं।

प्रश्न 114 साठोत्तरी कहानी साहित्य का निरूपण कीजिए।

उत्तर - सन् 1960 के बाद भारतीय जीवन में मोहभंग की स्थिति आती है। ऐसे समय में लगा कि जिंदगी का सारा अंदरूनी ढांचा भुरभुरा मिट्टी की तरह ढहते जा रहा है। कुछ लेखकों के एक वर्ग ने यह घोषणा की कि वह समकालीन जीवन के आंदोलन के स्तर पर एक पहचान लेकर आया है। इस प्रकार यह समय एक नया तेवर लेकर आगे आया है। ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह , कमलानाथ, ममता कालिमा, सुधा अरोड़ा आदि इस युग के कहानीकार हैं।

प्रश्न 115 हिन्दी अकहानी पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर - अकहानी के जन्मदाता वो कहानीकार हैं जिन्होंने स्वतंत्रता के बाद होश संभाला। यद्यपि अकहानी भी कहानी है पर वह अपने से पिछली कहानियों की विशेषताओं से मुक्त है। नई कहानी में जो अनुभूति की प्रमाणिकता और भोगे हुए यथार्थ का स्वर था वह अब असत्य और कल्पित माना जाने लगा। दूधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, गंगाप्रसाद वियन, शानी परेश आदि अकहानी के प्रमुख कहानीकार हैं। इन कहानियों का विषय–लोकतंत्र की विद्रुपता, युवावर्ग की बौखलाहट आदि हैं।

प्रश्न 116 हिन्दी की सचेतन कहानी साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर - सन् 1964 के आस–पास कहानी के क्षेत्र में एक नया आंदोलन प्रारम्भ हुआ। इसे सचेतन कहानी नाम दिया गया। इसके प्रवर्तक महीप सिंह हैं। उनके संपादन में एक सचेतन पत्रिका निकली और इस तरह के अन्य कहानीकार इन आंदोलन में शामिल होते गए। सचेतन कहानी में यथार्थ के प्रति, परिवेश के प्रति, जीवन मूल्यों के प्रति एक नई दष्टि का बोध होता है। महीप सिंह ने कहा है–''जीवन को उसकी सारी विसंगतियों में जी कर झेलने की दष्टि ही सचेतन दष्टि है।'' महीपसिंह, श्याम परमार, मनहर चौहान, मधुकर सिंह इस कहानी आंदोलन के मुख्य कहानीकार हैं।

प्रश्न 117 अचेतन कहानी आंदोलन पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - सातवें दशक से पूर्व कुछ लोग सचेतन कहानी की प्रतिक्रिया में अचेतन कहानी के नाम का नारा बुलन्द करने वाले भी देखे गए हैं। इन कहानियों का विषय समाज के अलगाव और बिखराव का चित्रण है। संत्रास, भय, कुंठा, हताशा आदि का चित्रण ऐसी कहानियां करती हैं। अचेतन कहानी के प्रवर्तक गिरिराज किशोर तथा काशीनाथ सिंह आदि माने गए हैं।

प्रश्न 118 सक्रिय कहानी आंदोलन का विवेचन कीजिए।

उत्तर - सन् 1980 के आस–पास हिन्दी कहानियों के नाम के साथ एक और आंदोलन जुड़ता हुआ दिखाई देता है। कुछ कहानीकारों ने पश्चिम की 'एक्टिव स्टोरी' की तरह हिन्दी में भी कहानी लिखना आरम्भ किया, इसका आरम्भ 'मंच' पत्रिका के प्रकाशन के साथ हुआ। इसके संपादक राकेशवत्स हैं। इस कहानी के लेखकों ने सक्रिय कहानी को समझाते हुए उसका स्वरूप इस प्रकार व्यक्त किया है–''सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है–आदमी की चेतना, दर्जा और जीवंतता की कहानी।''

प्रश्न 119 हिन्दी नाटक के स्वरूप का विवेचन कीजिए।

उत्तर - हिन्दी नाटक के विकास के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। विद्वानों का मत है कि हिन्दी नाटक का उद्‌भव काल 13वीं शताब्दी और उससे भी पहले विद्यापति से माना जाता है। वैसे नाटक का सम्यक् विकास आधुनिक काल में भारतेन्दु काल से ही माना गया है। डॉ॰ दशरथ ओझा ने 'गय–सुकुमार' (सन् 1232) नामक नाटक को हिन्दी काप्रथम नाटक माना है। दूसरे विद्वान गोपालचन्द्र के. 'नहुष' को प्रथम मानते हैं। परन्तु नाटक कौन सा प्रथम है यह विवाहित है। संक्षेप में यूं कह सकते है–हिन्दी नाटक का उद्‌भव भी हिन्दी उपन्यास कार एवं कहानी की भांति 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही हुआ है।

प्रश्न 120 नई कहानी की शिल्पगत विशेषताओं का परिचय दीजिए।

उत्तर - शिल्प की दष्टि से नई कहानी बहुत आगे बढ़ गई है। उसमें सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता, बिम्ब–विधायकता, भाषा ही सजनशीलता, शैली की नित्य नूतनता दर्शनीय है। नई कहानी की सांकेतिकता कुण्ठा, ग्रस्त, स्त्री–पुरूषों की मनो–ग्रंथियों को खोलकर रख देने में सक्षम है। जीवनकी जटिलताओं को व्यक्त करने के लिए नए कथाकारों ने कई तरह के बिम्ब–विधान किए हैं। निर्मल वर्मा, कमलेश्वर और अज्ञेय की कहानियों में अर्थपूर्ण बिम्ब–विधान के उदाहरण मिलते हैं।

प्रश्न 121 नई कहानी के वैयक्तिकता संबंधी पहलुओं का उद्‌घाटन कीजिए।

उत्तर - नई कहानी के वेयक्तिक संदर्भ जीवन के गहन–गंभीर पत्रों को ही व्यक्त करते हैं। इस क्रम की सारी कहानियां सम्बंधों के बनने और सम्बन्धों के टूटने की है व संबंधों से टूटे व्यक्ति के एकांकीपन की पीड़ा इन कहानियों में व्यक्त है। नई कहानियों में स्त्री पुरुश के बदले हुए संबंधों का चित्रण हुआ है। यह स्वतन्त्रता और बाद में तेजी

से बढ़ते हुए औद्योगिकरण–शहरीकरण की परिस्थितियों को नई कहानी में सशक्त अभिव्यक्ति मिली है।

प्रश्न 122 प्रेमचदोत्तर हिन्दी उपन्यास की प्रमुख प्रवतियां क्या थी ?

उत्तर - प्रेमचन्द के बाद वाले उपन्यासों में विद्रोह का स्वर उभरा है। आर्थिक शिथिलता व शोषण के विरुद्ध विद्रोह इन उपन्यासों में देखा जा सकता हूँ। इसी के साथ पूर्व स्थापित सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोही प्रवति भी मिलती है। प्रेमचदोत्तर हिन्दी उपन्यासों में स्त्री पुरुषों के यौन संबंधों को लेकर कई प्रश्न उठाए गए है व कई सम असम स्थितियों का यथार्थ व मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी आदि के उपन्यासों में काम–कुण्ठाओं ओर यौन विकतियों चित्रण व स्त्री–पुरूष के अवैध संबंधों की समस्याओं का चित्रण बहुतायत मिलता है।

प्रश्न 123 प्रेमचन्द युग की कहानियों की मुख्य प्रवतियां क्या थी।

उत्तर - प्रथम बार कहानियों का विषय उच्चवर्ग के स्थान पर मध्यम और निम्न वर्ग को बनाया गया है। सामाजिक और कौटुम्बिक समस्याओं, विसंगातियों तथा विद्रुपताओं का उद्घाटन हुआ है। साम्यवाद के प्रभाव से शोषक–शोषित मनोवति का चित्रण करने की प्रवति भी दिखाई पड़ती है। इस युग की कहानियों में संगठित कथानक, अनुभव की प्रौढ़ता ,मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण संवेदनशीलता का समन्वय है। इस युग की कहानियों में स्वाधीनता संग्राम, गांधी जी के असहयोग आंदोलन , अहिंसक क्रांति, समाजसुधार यथार्थ जीवन की विभीषका, आर्थिक विपन्नता का प्रभाव दिखाई पडा है।

प्रश्न 124 स्वातन्त्र्योतर हिन्दी उपन्यास के नायक का स्वरूप कैसा है ?

उत्तर - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में अवतरित हुआ नायक प्रेमचन्द, यशपाल जैनेन्द्र, अज्ञेय की परम्परा से सर्वथा भिन्न है। नया–नामक व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही स्तरों पर विक्षुब्ध हो गया और मूल्य हीनता के कारण दिशा हारा की भांति भटकने को विवश हो गया। इन उपन्यासों कानायक उस पूरी भीड़ का ही एक चेहरा जो रोजगार के लिए दफ्तरों, झूठे इष्टरव्यू और काम की लालसाओं में भटक रहा है। वह नायक पराजित ओर क्रुद्ध होकर अपने दायरे में छटपटाता और स्वयं को विस्थापित अनुभव करता है तथा कुण्ठाग्रस्त होकर आत्महत्या को अपनी अंतिम परिगति के रूप में चुनता है।

प्रश्न 125 'उपन्यास में यथार्थवाद की अवधारणा है' टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - कलाकार जीवन को दो प्रकार से चित्रित करता है––एक में वह अपने आदर्शों, कल्पना व धारणाओं का प्रयोग करता है, दूसरे में वह संसार को जैसा देखता है वैसा ही चित्रित करता है। 'प्रथम स्थिति आदर्शवाद और द्वितीय यथार्थवाद है। यथार्थवाद समाज की प्रमुख ज्वलन्त समस्याओं का चित्रण करता है। यथार्थवाद यह कहकर सामाजिक व्यवस्थाओं, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के प्रति अनास्था का भाव प्रकट करता है। इसमें उच्चवर्गीय, मध्यवर्गीय व निम्नवर्गीय व्यक्तियों का समान रूप से चित्रण करता है। यथार्थवाद ने कला का संबंध विज्ञान से किया ओर उसे विश्लेषण शक्ति से विभूषित किया है।

प्रश्न 126 हिन्दी कहानियों में प्रेमचन्द का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर - प्रेमचन्द का आविर्भाव हिन्दी कहानी युग का एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। सन् 1916 से लेकर सन् 1936 तक उन्होंने लगभग 300 कहानियां लिखीं। डॉ॰ गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार–'प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में दलित मानवता के प्रति सहानुभूति का भाव प्रदर्शित किया है। उनका आदर्शवाद उनकी इसी सहानुभूति का परिणाम है। वह उनकी आत्मा में से निकलता है। कौरा दिखावटी नही है। मनोवैज्ञानिक आधार लेकर चलने वाली उनकी आदर्शवादी

कहानियां उनकी कहानी कला का चरम सौंदर्य प्रदर्शित करती है। इस दष्टि से प्रेमचन्द की टक्कर का कलाकार हिन्दी में आज तक नहीं जमा है।

प्रश्न 127 भारतेन्दु हिन्दी नाटक साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - भातेन्दु जी इस युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे। उन्होंने अनेक नाटकों की रचना की। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रावली, भारतदुर्दशा, विषस्यविषमौसधम, अंधेर नगरी आदि। इन्होंने इन नाटकों में इतिहास, समाज एवं राष्ट्रीय विषयों को अपनाया है। भारतेन्दु जी के नाटकों पर संस्कति तथा बंगला नाटकों का प्रभाव है। इनके नाटकों में पूर्व और पश्चिम का समन्वय दिखाई देता है। प्रतापनारायण मिश्र, राधाकष्णदास, श्री निवासदास, प्रेमधन आदि इस युग के मुख्य नाटकार हैं।

प्रश्न 128 द्विवेदी युगीन हिन्दी नाट्यसाहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - महावीर प्रसाद द्विवेदी का युग सुधारवादी युग कहलाता है। नाटक के विकास में इस युग का योगदान तो है किन्तु कथ्य एवं शिल्प की दष्टि कुछ नया जोड़ने में असमर्थ रहा है। इस युग में मौलिक नाटकों की अपेक्षा विभिन्न भाषाओं का हिन्दी में अनुवाद करने पर अधिक ध्यान दिया गया। किन्तु इस अनुवाद कार्य का विशेष महत्त्व यह है कि इसी कारण पारसी कम्पनियों में अभिनीत नाटकों में उर्दू का स्थान हिन्दी को मिलने लगा। इस काल के नाटककारों में नारायण प्रसाद बेताब राधेश्याम कथावाचक, आगाह कश्मीरी, तुलसीदास शैदा और हरिकष्ण जौहर के नाम अग्रगण्य हैं।

प्रश्न 129 प्रसाादयुगीन हिन्दी नाट्य साहित्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर - जयशंकर प्रसाद का आगमन हिन्दी नाटक के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उनके नाटकों में हिन्दी नाटक कला का विकासअपने यौवन काल को पहुंच चुका था। प्रसादके नाटकों में राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हुआ है। सज्जन, करूणालय, राज्यश्री, अजातशत्रु चन्द्रगुप्त ,स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि नाटक प्रमुख है। इनमें से अधिकांश ऐतिहासिक हैं। यद्यपि रंगमंच की दष्टि से प्रसाद के नाटक अधिक सफल नहीं है तथापि इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रसाद अपने युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। लक्ष्मी नाराण मिश्र, गोविन्ददास, हरिकष्णप्रेमी, गोबिन्द बल्लभ पंत आदि इस युग के मुख्य नाटककार हैं। इनके नाटकों पर गांधीवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

प्रश्न 130 प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक साहित्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर - प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक का बहुमुखी विकास हुआ है। हरिकष्ण प्रेमी जिन्होंने प्रसाद युग में लिखना आरम्भ किया था। किन्तु वे प्रसादोत्तर युग तक लिखते रहे, उन्होंने ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है। 'रक्षाबंधन', स्वप्न भंग, प्रतिशोध, आहुति आदि उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। वंदावनलाल वर्मा, उदयशंकर भट्ट, जगदीशचन्द्र माथुर, मोहनराकेश , रामकुमार वर्मा, विष्णुप्रभाकर आदि इस युग के प्रमुख नाटककार हैं। इनके नाटकों में विवाह, जाति–पाति, भेदभाव, सामाजिक विषमता आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है।

प्रश्न 131 स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटकों का विवेचन कीजिए।

उत्तर - स्वातन्त्र्योत्तर प्राप्ति के पश्चात् जहां विभिन्न प्रकार के मौलिक नाटकों की रचना की गई, वहां पंजाबी, बांग्ला, मराठी, कन्नड़ तमिल, अंग्रेजी आदि भाषाओं के नाटकों का हिन्दी अनुवाद करके हिन्दी नाटक साहित्य को समद्ध किया गया है। इस युग में ऐतिहासिक एवं समस्याप्रधान नाटकों के अतिरिक्त भाव प्रधान (नीतिनाट्य) तथा प्रतीक–नाटक भी लिखे गये हैं। विष्णु–प्रभाकर, चिरंजीत, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर आदि इस युग के प्रमुख नाटककार हैं।

प्रश्न 132 ऐतिहासिक हिन्दी नाटक पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - नाटककार जयशंकरप्रसाद ने मुख्यतः ऐतिहासिक नाटकों की रचना की थी। प्रसाद ने 1910 से 1933 तक निरन्तर नाटकों की रचना की जिनमें राज्यश्री, स्कन्द गुप्त,चंद्रगुप्त जनमेजय का नागयज्ञ आदि प्रमुख है। इसके साथ ही वंदावन लाल वर्मा, चन्द्रगुप्त विधालंकार, सेठ गोविन्दास, उदयशंकर भट्ट आदि नाटककार भी इसी श्रेणी के हैं। इन्होंने अपने देशवासियों के आत्मगौरव, स्वाभिमान उत्साह और प्ररेणा का संचार करने के लिए अतीत के गौरवपूर्ण संदर्भों को अपनी रचनाओं में चित्रित किया है।

प्रश्न 133 पौराणिक नाटक साहित्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर - पौराणिक विषय को आधार बनाकर अनेक नाटककारों ने नाटकों का प्रणयन किया। प्रसाद,सुदर्शन, गोबिन्द बल्लभ पंत, माखनलाल चतुर्वेदी आदि पौराणिक नाटककार हैं। इन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से समाज पर कटु व्यंग्य किए हैं। मेघनाथ, उर्मिला, सीता की मां, सुदामा आदि प्रमुख पौराणिक नाटक हैं। उदयशंकर भट्ट को पौराणिक नाटककारों में प्रतिनिधि नाटककार कहा जा सकता है। इनके अम्बा और सागर विजय प्रमुख पौराणिक नाटककार हैं।

प्रश्न 134 अनुदित नाट्य साहित्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर - अनूदित नाटकों की जो परम्परा भारतेन्दु और द्विवेदी युग से चली आई थी वह अब भी अक्षुण्ण रूप से चल रही है। अन्य भारतीय भाषाओं के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद करके हिन्दी के नाटक साहित्य को समद्ध किया जा रहा है। बंगला मराठी कन्नड़ आदि का भारतीय भाषाओं के अनेक नाटकों का हिन्दी अनुवाद किया गया है। भारतेन्दु ने विद्यासुन्दर, पाखण्ड विडज्ञम्बना धनंजय विजय, कर्पूर मंजरी आदि अनूदित नाटकों की रचना की। जीत शर्मा, अनिल कुमार मुखर्जी , कष्ण बलदेव आदि ने विदेशी नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया है।

प्रश्न 135 मार्क्सवादी या प्रगतिवादी उपन्यास साहितय पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - जीवन के आर्थिक असंतुलन, वर्ग–संघर्ष, मजदूर तथा शोषित वर्ग का यथार्थ चित्रण तथा शोषक वर्ग की भर्त्सना इन उपन्यासों की कथावस्तु होती है। यशपाल इस क्षेत्र में अग्रणी कथाकार हैं। उनके दादा कामरे 'मनुष्य के रूप' तथा 'देशद्रोही' इस प्रवति के प्रमुखतम उपन्यास हैं। नागार्जुन इस प्रवति के दूसरे बड़े लेखक हैं। उनके कुंभीपाक, बाबाबटेश्वरनाथ प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इनके अतिरिकत भैरवप्रसाद गुप्त, अमतराय, रामेश्वर शुक्ल, अंचल इस श्रेणी में आते हैं।

प्रश्न 136 मनोवैज्ञानिक हिन्दी उपन्यास साहित्य का निरूपण कीजिए।

उत्तर - मानव की हीन मानसिक ग्रन्थियों, कुण्ठाओं, प्रति क्रियाओं एवं मनोविश्लेषण की चर्चा इन उपन्यासों का प्रमुख विषय होता है। ऐसे साहित्य पर फ्रॉयड के सिद्वान्तों की छाप स्पष्ट है। जैनेन्द्र के उपन्यास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ अन्तश्चेतनावादी उपन्यास हैं। परख, सुनीता, त्यागपत्र, सुखदा, विवर्त, अनामस्वामी, मुम्बिोध उनकी प्रसिद्ध रचनाएं है। इसके अतिरिक्त इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, नरेश मेहता, डॉ॰ देवराज, आदि के मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं।

प्रश्न 137 राजनैतिक उपन्यास साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - समाज में फैले भ्रष्टाचार शासन की पैंतरे बालियां तथा उस पिसती जनता का प्रतीकात्मक व्यंग्यात्मक चित्रण ही इन उपन्यास का आम तत्व है। श्रीलाल शुक्ल का रागदरबारी, भगवतीचरण वर्मा का 'सबहिं न चावत राम गोंसाई', 'शिव प्रसाद सिंह का अलग–अलग–वैतरणी, बदीउज्जमां का 'एक चूहे की मौत', गुरुदत का 'दो लहरों की टक्कर' मणि मधुकर का सफेद मेमने' इस प्रवति की श्रेष्ठ कतियां हैं।

प्रश्न 138 'आलोचना' का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके स्वरूप का विवेचन कीजिए।

उत्तर - आलोचना शब्द 'लोच' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है– 'देखना किसी वस्तु' या कति' की सम्यक् (भली प्रकार) व्याख्या उसका मूल्यांकन आदि करना आलोचना है। भारतीय साहित्य में आलोचना की प्राचीन परिपाटी है। संस्कत साहित्य में इसका चरम् विकास हुआ है। जिनकी आलोचना का आरम्भ हम भक्तिकाल से मान सकते हैं। आधुनिक युग में प्रैस के विकास तथा गद्य के विकार से प्राचीन आलोचना में पाश्चात्य प्रणाली का मिश्रण हुआ। आधुनिक आलोचना का वास्तविक आरम्भ गद्यकाल की देन है। गद्य के आविर्भाव से अनेक पत्र–पत्रिकाएं निकलने लगीं। इन्हीं पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से आधुनिक आलोचना का श्री गणेश माना जाता है।

प्रश्न 139 भारतेन्दु युगीन हिन्दी आलोचना पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - आधुनिक काल के जनक भारतेन्दु ने हिन्दी की प्रत्येक विद्या की शुरुआत की, समीक्षा की, इसका अपवाद नहीं है। भारतेन्दु ने पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से आलोचनात्मक लेख लिखे। उन्होंने कवि वचन सुधा' तथा हरिश्चन्द्र मैगजीन' में कुछ नोट समालोचना के नाम से निकाला करते थे। श्री निवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक पर बालकष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका में एक छोटी समालोचना लिखी। इसके अतिरिक्त बद्रीनाथ चौधरी, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री आदि इस युग के आलोचक हैं।

प्रश्न 140 द्विवेदीयुगीन हिन्दी आलोचना पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - महावीर प्रसाद द्विवेदी के महान् प्रयासों से आलोचना विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने हिन्दी आलोचना के स्वरूप को , व्यवस्थित किया एवं अपने युग के आलोचकों का मार्ग–दर्शन कर उन्हें नई दिशा प्रदान की। इस युग की आलोचना को पांच भागों में बांट सकते हैं–– 1. शास्त्रीय आलोचना 2. तुलनात्मक आलोचना 3. अनुसंधानपरक आलोचना 4. परिचयात्मक आलोचना 5. व्याख्यात्मक आलोचना। द्विवेदी जी के संबंध आचार्य शुक्ल ने कहा है–''द्विवेदी जी ने नई पुस्तकों की भाषा की खरी आलोचना करके हिन्दी साहित्य का बड़ा उपकार किया।'' डॉ॰ श्यामसुन्दरदास,पदमसिंह, कष्ण बिहारी मिश्र आदि इस युग के मुख्य आलोचक हैं।

प्रश्न 141 शुक्ल युगीन आलाचना साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्हें हिन्दी का प्रथम प्रौढ़ आलोचक माना जा सकता है। शुक्ल एक सुनिश्चित मानदण्ड तथा विकसित समीक्षा पद्धति लेकर आलोचना के क्षेत्र में आए। इनकी आलोचना के तीन रूप हैं––सैद्धातिक, ऐतिहासिक, व्यवहारिक आलोचना । डॉ॰श्याम सुंदरदास, पद्मलाल बुन्नालाला बख्शी, गुलाबराय आदि इस युग के मुख्य आलोचक हैं।

प्रश्न 142 भारतीय सैद्धान्तिक आलोचना का विवेचन कीजिए।

उत्तर - सैद्धान्तिक आलोचना में समस्त काव्य अंग, काव्यतत्व, काव्य प्रयोजन, काव्यहेतु, काव्य के लक्षण आदि का मूल्यांकन किया जाता है। इस युग के नए तत्व चिंतकों ने नई आलोचना नाम से लिखना आरम्भ करदिया। इनके मूल में विदेशी आलोचना साहित्य का प्रभाव दिखाई पड़ता है।इनकी भाषा जटिल है, पाठक जान ही नहीं पाता कि आलोचक क्या कहना चाहता है। इन आलोचकों में अस्पष्टता एवं भ्रांति सर्वत्र है। डॉ॰ नगेन्द्र , डॉ॰ देवराज, डॉ॰ लीलाधर , बाबू गुलाबराय आदि इस श्रेणी के आलोचक हैं।

प्रश्न 143 मनोविश्लेषणवादी आलोचना का परिचय दीजिए।

उत्तर - हिन्दी में मनोविश्लेषण वादी आलोचना भी प्रभुत्व में आई। फ्रॉयड, एडलर भ्ंग आदि ने माना है कि समाज भय से मन में उत्पन्न होने वाली कामवासना तथा अनेक अन्य प्रकार की इच्छाएं मन के भीतर ही भीतर उमड़ती–घुमड़ती रहती हैं और कुछ समय के पश्चात वहीं कुण्ठाओं को जन्म देती है। यही कुण्ठाएं साहित्यकारों के साहित्य में

दिखाई देती है। अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी धर्मवीर भारती आदि ने अपने साहित्य में इसे स्थान दिया है और साथ ही आलोचनाएं लिखकर इस सिद्धांत का समर्थन किया। अज्ञेय का त्रिशंकु और आत्मेनपद तथा इलाचन्द्र जोशी का साहित्य चिंतन विवेचना, विश्लेषण साहित्य चिंतन आदि रचनाओं में मनोविश्लेषणवादी आलोचना का रूप मिलता है।

प्रश्न 144 प्रयोगवादी आलोचना पद्धति का परिचय दीजिए।

उत्तर - प्रयोगवादी कवियों ने अपनी पुस्तकों का मूल्यांकन करने के लिए एक भिन्न आलोचना पद्धति का आरम्भ किया जो इलियट आदि पश्चिमी विचार कों से प्रभावित है। आलोचकों ने इस आलोचना को नई आलोचना का नाम दिया है। इसमें कलाकार के अनुभूति और सामाजिक पक्ष को महत्त्व न देकर रूप विधान को अधिक महत्त्व दिया जाता है इसमें परम्रागत मूल्यों के प्रति विद्रोह भावना है और भाषा शैली विषयवस्तु आदि के क्षेत्र में नए–नए प्रयोग किए गए हैं जिसका मूल मंत्र व्यक्ति स्वतंत्रता है। अज्ञेय, लक्ष्मीकांत वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, धर्मवीर भारती, डॉ॰ जगदीश गुप्त आदि इस श्रेणी के मुख्य आलोचक है।

प्रश्न 145 शौष्ठववादी आलोचना पद्धति पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - इसमें वैयक्तिकता पर आधारित तटस्था के साथ–साथ मूल्यांकन और निर्णय को महत्त्व दिया गया है। इस पद्धति के आरम्भिक रूप के दर्शन पंत, निराला, महादेवी वर्मा आदि के काव्य संग्रहों की भूमिकाओं के रूप में लिखे गए आलोचनात्मक निबंध हैं। नंद दुलारे वाजपेयी, शांतिप्रिय द्विवेदी, गंगाप्रसाद पाण्डेय आदि ने इसी पद्धति को अपनाया है। ये पद्धति भी बहुत प्रचलित नहीं हुई थी। वर्तमान युग में ऐसी आलोचना कभी कभी दिखाई दे जाती है।

प्रश्न 146 प्रगतिवादी आलोचना साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - इस युग में एक ऐसी समीक्षा पद्धति का उदय हुआ है जो काफी सशक्त बनी रही है। इसे मान सेवाएं या प्रगतिवादी पद्धति कहते हैं। इनका दष्टिकोण पूर्ण रूप से समाजवादी हैं। ऐसे जन–जीवन से जुड़े हुए साहित्य के समर्थक हैं जिसमे शोषण, अन्याय, अत्याचार आदि का मार्मिक चित्रण किया गया हो। इन्होंने व्यक्तिवाद या आदर्श वाद का विरोध करते हुए साहित्य जगत् में एक निराला जेसे छायावादी कवि भी प्रगतिवादी कविताएं लिखने लगे। ये बाद में प्रगतिवादी आलोचक दो वर्गों में विभाजित हो गए थे। एक वर्ग ने प्राचीन साहित्य की प्रशंसा की तथा दूसरे ने उसका बहिष्कार करने की बात की।

प्रश्न 147 रेखाचित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर - रेखाचित्र कहानी से मिलता–जुलता साहित्यिक रूप है। इसे 'शब्द–चित्र' भी कहते हैं। अंग्रेजी में इसका नाम 'स्केच' है। 'रेखाचित्र' में किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना या भाव का कम से कम शब्दों में मर्मस्पर्शी , भावपूर्ण एवं सजीव अंकन किया जाता है। रेखाचित्र में सांकेतिकता अधिक रहती है। लेखक कम से कम शब्दों में किसी व्यक्ति या वस्तु की मुख्यतः विशेषता कोउभार देता है। संस्मरण में चित्र–शैली का प्रयोग किया जाता है। रेखाचित्रों में कल्पना की प्रधानता एवं घटनाओं की समग्रता रहती है। रेखाचित्राकार शब्दों और वाक्यों के संकेतों`स बहुत कुछ कह डालता है।

प्रश्न 148 रेखाचित्र की परिभाषा दीजिए।

उत्तर - विभिन्न विद्वानों ने रेखाचित्र की परिभाषा दी है। श्री भगीरथ मिश्र के अनुसार –'' शब्द चित्र में किसी व्यक्ति की यथार्थ तथा वास्तविकता चारित्रिक विशेषताओं को उभारने का प्रयत्न होता है।'' डॉ॰ नगेन्द्र के शब्दों में–''रेखाचित्र में उसे कहते है।–जिसमें रेखाएं हों पर मूर्त अर्थात् उतार–चढाव, दूसरे शब्दों में कथानक का उतार चढाव आदि

न हो, तथ्य का उद्घाटन मात्र हो।'' श्री विनय मोहनशर्मा का मत है– ''रेखाचित्र में व्यक्ति, घटना या दश्य का अंकन होता है। इन विभिन्न भाषाओं से स्पष्ट होता है कि रेखाचित्र में किसी व्यक्ति वस्तु अथवा घटना का शब्दों के माध्यम से मर्मस्पर्शी चित्रण किया जाता है।

प्रश्न 149 रेखाचित्र की विशेषताएं स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - रेखाचित्र में किसी व्यक्ति अथवा वस्तु की विशिष्टताओं का प्रभावशाली ढंग से चित्रण किया जाता है। इसमें सूक्ष्म चित्रण एवं विश्लेषण का होना आवश्यक है। इसके वर्ण्य विषय में यथार्थता होती है, साथ ही कल्पना का भी थोड़ा सा पुट विद्यमान रहता है। इसमें संवेदनशीलता, सहदयता तथा प्रभावोत्पादकता का होना भी जरूरी है। रेखाचित्र की भाषा सांकेतिक, भावविशमयी, वर्णनात्मक, व्यावहारिक, काव्यमयी, बोधगम्य तथा सरस होती है। इनमें निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग मिलता है।–कथात्मक, निबंध तरंग, वर्णनात्मक–समवाद, सूक्ति, डायरी सम्बोधन, आत्मकथात्मक।

प्रशन 150 'निराला जी' के रेखाचित्रों का परिचय दीजिए।

उत्तर - सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' का`उपन्यास औररेखाचित्र के अर्न्तगत स्वीकति प्रदान की गई है। निराला के उपन्यासों की अपेक्षा रचनाओं की मौलिक भिन्नता इस बात से सिद्ध है कि इसमें निराला जी ने यथार्थव्यक्तियों को अपनी लेखनी का उद्देश्य बनाया है। इन रेखाचित्रों में निराला की भाषा लोक संस्कति के तत्त्वो से ओतप्रोत तथा मुहावरेदार है। जिसमें गजब की शक्ति तथा स्वभाविकता भरी हुई है। शब्द अनायास एवं सहज रूप में आगे–आगे चलते है। भाषा में न कत्रिमता है और न प्रयत्न शीलता।

प्रश्न 151 डॉ0 नगेन्द्र द्वारा रचित रेखाचित्रों का वर्णन कीजिए।

उत्तर - डॉ0 नगेन्द्र के 'चेतना के बिम्ब' में दस रेखाचित्र–संस्मरण है। इन चित्रों में विश्लेषण का प्राधान्य होने के कारण तटस्थता का गुण अपनी छटा बखूबी दिखा सका है। डॉ॰ नगेन्द्र आलोचक शास्त्रकार और कवि के समन्वय की निष्पत्ति है। अतः उनके रेखाचित्रों में हार्दिकता का आधिक्य कहीं नहीं हैं। वरन् कहीं–कहीं तो इसका अभाव भी अनुभव होता है। उनके वर्णनों में स्पष्टता खण्ड–खण्ड बात को समझाने की क्षमता इतनी उग्र है कि लगता है उनका अध्यापक रेखाचित्र कार पर हावी हो बैठा है। उनकी यह विशेषता सभी रेखाचित्रों में है।

प्रश्न 152 विष्णु प्रभाकर के रेखाचित्रों का परिचय दीजिए।

उत्तर - विष्णु प्रभाकर के कुछ शब्द कुछ रेखाएं' तथा हंसते निर्झर दहकती भट्टी' में रेखाचित्रात्मक रचनाएं हैं। इनमें रेखाचित्रों के अतिरिकत संस्मरण और यात्रा–वतांत भी हैं। विष्णु प्रभाकर अपने रेखाचित्रों को सामान्यतः प्राकतिक चित्रण से प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि उन्हें पाठकों को अपने विषय की ओर आकष्ट करने का यही सबसे उचित माध्यम प्रतीत होता है। विष्णु प्रभाकर घटनाओं और स्थितियों को परस्पर जोड़कर देखने के आदी हैं। वे सामाजिक स्थितियों के पीछे निहित विषमताओं को सामने लाने में दक्ष हैं।

प्रश्न 153 निर्मल वर्मा के रेखाचित्रों का वर्णन कीजिए।

उत्तर - निर्मल वर्मा का 'चीड़ों पर चांदनी', यात्रा वतांत न होकर स्मति खण्डों का एलबम है जिसमें अनेक तारों जैसी यादें सर्वत्र झिलमिला रही हैं। वर्मा ने आइसलैण्ड के एक किसान परविार की सांस्कतिक स्थिति का जो चित्र दिया है, वह उनकी गहरी पैठ और सांस्कतिक सूझ को ही प्रकट नहीं करता वरन् अन्य यूरोपीय देशों की सांस्कतिक स्थिति को भी तुला पर रख देता है। निर्मल वर्मा अनुभूति के चरण क्षणों में भी सामाजिकता के सूत्र जोड़े रखते हैं।

प्रश्न 154 रिपोर्ताज से क्या तात्पर्य हैं ?

उत्तर - रिपोर्ताज अंग्रेजी शब्द रिपोर्ट से भिन्न है पर यह उससे सम्बन्धित अवश्य रहा है। सामान्य रूप से रिपोर्ट लिखने या लिखवाने का संबंध सूचक देने या भेजने से जोड़ा जाता है। इसमें केवल तथ्यों पर बल दिया जाता है। रिपोर्ताज में कानों सुनी या आंखों देखी बात को इतने प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि उसका प्रभाव मन–मस्तिष्क पर गहरा पड़ता है '' रिपोर्ताज'' फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। जिस रचना में वर्ण्य विषय का आंखों देखा तथा कानों सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाए कि पाठक की हदय तंत्री के साथ झंकत हो उठें और वह उसे भूल न सकें। उसे रिपोर्ताज कहते हैं।''

प्रश्न 155 हिन्दी रिपोर्ताज लेखकों का नामोल्लेख कीजिए।

उत्तर - प्रकाशचन्द्र गुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामनारायण उपाघ्याय, भदन्त आनन्द कौसलाल्यायन, शिव सागर मिश्र, डॉ॰ धर्मवीर भारती कन्हैयालाल मिश्रा प्रभाकर, शमशेर बहादुर सिंह, श्रीकान्त वर्मा, डॉ॰ भगवान गोयल आदि ने श्रेष्ठ रिपोर्ताज लिखे हैं। इनके द्वारा रचित रिपोर्ताजों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ प्रमुख रिपोर्ताज संग्रह–रेखाएं और चित्र, देश की मिट्टी बुलाती है,वे लड़ेंगे हजार साल, प्लाट का मोर्चा, अपोलो का रथ आदि हैं। इनमें बंगाल का अकाल, आज़ाद हिन्द फौज, विभाजन की स्थितियां और विभिन्न समस्याओं का चित्रण हुआ है। भारत–चीन भारत–पाक युद्धों के अवसरों पर इस विधा के लेखन को विशेष बल मिला था। बाद में बंगलादेश के उन्नयन ने भी इस प्रवति से विशेष बढ़ावा दिया था।

प्रश्न 156 पत्र लेखन साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तर - पत्रों का संबंध व्यक्तिगत जीवन से होता है। प्रत्येक व्यक्ति कभी न कभी किसी न किसी को पत्र अवश्य लिखता है। दूर बैठे व्यक्ति तक अपने विचार पहुंचाने का यह एक प्रभावी तरीका है। पत्र की कलात्मकता ही उसे साहित्यिक सिंहासन पर बैठा देती है। वैचारिक या भावात्मक दष्टि से सम्पन्न व्यक्ति के ये पत्र बहुत महत्वपूर्ण हो सकते हैं। देशकाल की परिस्थिति प्रवतियों और इतिहास का ज्ञान भी उसके पत्रों के माध्यम से होता है । जैसे –प्रसिद्ध उर्दू शायर कि मिर्जा ग़ालिब के पत्रों के माध्यम से सन् 1857 की क्रांति का स्वरूप, उसके कारण और दिल्ली की बदहाली का पूरा विवरण हमें मिल जाता है।

प्रश्न 157 हिन्दी में साक्षात्कार विधा का उद्‌भव कैसे हुआ ?

उत्तर - हिन्दी में साक्षात्कार विधा के दर्शन दो महायुद्धों के बीच होने लगे थे। इस विधा का आरम्भ बनारसी दास चतुर्वेदी के द्वारा किया गया था। उन्होंने सन् 1931 में रत्नाकर से बातचीत कर उसे लिपिबद्ध किया था जो विशाल भारत नामक पत्र में छपी थी। सन् 1932 में प्रेमचन्द के साथ दो दिन नामक साक्षात्कार भी प्रकाशित हुआ था। सन् 1941 में जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा लिया गया था भदन्त आनन्द को सल्यायन साक्षात्कार प्रसिद्ध हुआ था।

प्रश्न 158 यात्रावतान्त से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - यात्रावतान्त किसी यात्रा का शुद्ध वतान्त नहीं होता बल्कि जिस स्थान की यात्रा की जाती है उसके सौंदर्य, प्रकति, संस्कति, परिवेश और जनसंपर्क की अनुभूतियां भी होती है। इसमें जीवन की स्पष्ट और साक्षात् जानकारी होती है। यह सुनी सुनाई क्यों न होकर प्रत्यक्ष दर्शन पर आधारित होती है। यात्रावतान्त की रचना के लिए आवश्यक है कि लेखक ने स्वयं किसी विशेष स्थान की यात्रा की हो। उसे इसका निजी अनुभव होना चाहिए एवं क्योंकि यात्रावतान्त में अनुभवों और अनुभूतियों के स्थूल और सूक्ष्म दोनो रूप दिखाई देते हैं।

प्रश्न 159 हिन्दी साहित्य में संस्मरण लेखन कब प्रारम्भ हुआ ?

उत्तर - हिन्दी में संस्मरण का आरम्भ द्विवेदी युग में प्रकाशित होने वाली पत्रिका सरस्वती से हुआ। डॉ॰ नगेन्द्र के अनुसार

''सरस्वती के विभिन्न अंकों के समय–समय पर अनेक रोचक संस्मरण प्रकाशित होते रहे। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनुमोदन का अंत (फरवरी 1905) सभा दी सभ्यता (अप्रैल 1907) विज्ञानाचार्य बासु का विज्ञान मंदिर (जनवरी 1918) आदि की रचना करके संस्मरण साहित्य की श्री वद्धि की।''

प्रश्न 160 संस्मरण साहित्य का प्रवर्तक किसे मानते हैं ?

उत्तर - संस्मरण साहित्य के प्रवर्तक के रूप में भी श्री बनारसी दास चतुर्वेदी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। पत्रकार होने के नाते ये अनेक महान् व्यक्तियों के निकट सम्पर्क में रहे। नेशनल कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में इन्होंने अफ्रीका की यात्रा थी। इन्होंने इन सबसे संबंधित विशेष प्रकार के संस्करण लिखे हैं। अतः इन्हें संस्मरण लिखने की कला का पथ–प्रदर्शक माना जा सकता है। 'साबरमती आश्रम' में महात्मा गांधी जी जैसे इन्होंने अनेक सुघड़ संस्मरण लिखे हैं।

प्रश्न 161 प्रारम्भिक संस्मरणों लेखकों के नामोल्लेख कीजिए।

उत्तर - संस्मरण लेखन करने वाले अन्य स्मरणीय नाम घनश्यामदास बिरला , श्रीमन्नारायण अग्रवाल, भदन्त आनन्द कोसल्यायन रामवत्त बेनीपुरी, कन्हैयालाल , मिश्र, नरहरि विष्णु गाडगिल हैं। बिरला जी ने 'बापू' नामक रचना में गांधी जी के जीवन से संबंधित अनेक संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। भदन्त आनन्द कौसल्यायन के 'जो न भूल सका' तथा जो लिखना पड़ा' महत्त्वपूर्ण है। रामवक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' भी बड़े ही सजीव एवं रोचक संस्मरण हैं। कन्हैयालाल मिश्र ने 'भूले हुए चेहरे' तथा नरहरि विष्णु गाडगिल ने 'स्मति शेष' लिखकर इस विधा को समद्ध किया है।

प्रश्न 161 श्रीमती महादेवी वर्मा के संस्मरणों का परिचय दीजिए।

उत्तर - महादेवी वर्मा ने अनेक संस्मरण लिखें। उनके द्वारा रचित 'अतीत के चलचित्र', 'स्मति की रेखाएं', और 'पंथ के साथी' नामक तीन कतियों को इस विधा में रखा जाता है, पर इनमें से 'पंथ के साथी' निश्चय ही एक सर्वाधिक सशक्त संस्मरणात्मक सर्जना है। इसमें इन्होंने अपने समसामयिक कवियों एवं साहित्यकारों के अत्यन्त सजीव संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। इनके अतिरिक्त महादेवी जी की मेरे प्रिय संस्मरण और 'संस्मरण' भी इसी प्रकार की रचनाएं हैं।

प्रश्न 162 कुछ प्रसिद्ध संस्मरण रचनाओं का नाम लिखिए।

उत्तर - वंदावन लाला वर्मा द्वारा रचित कुछ संस्मरण इलाचन्द्र जोशी की मेरे प्राथमिक जीवन की झलकियां, मन्मथ नाथ गुप्त जी क्रांति युग के संस्मरण' शिव नारायन टण्डन की 'झलक' शिव पूजन सहाय की 'वेदिन' सत्यवती मलिक की अमिट रेखाएं, देवेन्द्र सत्यार्थी की रेखाएं बोल उठी, 'शांति प्रिय द्विवेदी की स्मतियां व कतियां,' राहुल साकत्यायन की बचपन की स्मतियां , डॉ॰ नगेन्द्र की 'चेतना के बिम्ब' , कष्णा सोवती की 'हम हशमल' ज्ञानचंद की 'कथा शेष' ,'घर में' आदि प्रमुख संस्मरणात्मक कतियां हैं।

प्रश्न 163 शोध साहित्य से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - शोध साहित्य के मूल में किसी एक व्यक्ति या विषय को लेकर अनुसंधात्मक ढंग से उसकी समग्र एवं सर्वांगीण समीक्षा प्रवति ही काम किया करती है। इस प्रकार के साहित्य विकास के क्षेत्र में उच्चतम मान स्थापित करने की प्रवति के कारण ही प्रमुखतः हुआ है। किसी विशेष व्यक्ति या विषय के संबंध में अपनी सर्वज्ञता का महत्त्व प्रतिपादित करने की प्रवति भी शोध–साहित्य के मूल में विद्यमान है। इससे साहित्य एवं साहित्यकारों के संबंध में नव्यक्षितिजों का उद्‌घाटन भी हो जाता है। इन दिनों इस विधा में विभिन्न विश्वविद्यालयों में बहुत कार्य हो रहा है।

प्रश्न 164 जीवनी विद्या का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - जीवनी किसी व्यक्ति की जीवन घटनाओं का विवरण है। अपने आदर्श रूप में वह प्रयत्नपूर्वक लिखा गया इतिहास है जिसमें किसी व्यक्ति के जीवन से संबंधित विवरण मिलता है। जीवनी किसी व्यक्ति के द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में लिखी जाती है। जीवनी किसी भूतकाल से संबंधित किसी महान् व्यक्ति का समकालीन श्रेष्ठ व्यक्ति से जुड़ी हुई हो सकती है। लेखक जीवनी लिखते समय सम्बन्धित व्यक्ति के मित्रों, सगे–सम्बंधियों पड़ोसियों आदि की सहायता ले सकता है। लेखक सम्बन्धित व्यक्ति की कमियों को उजागर कर सकता है लेकिन उसके जीवन–प्रसंग से खिलवाड़ करके उसके चरित्र को धूमिल नहीं कर सकता।

प्रश्न 165 हिन्दी की प्रारम्भिक जीवनी साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तर - हिन्दी साहित्य में जीवनी साहित्य की परम्परा भक्तिकाल से मिलती है। नाभादास द्वारा रचित 'भक्तमाल', गोसाई गोकुलनाथ विरचित चौरासी वैष्णव की वार्ता' तथा दो–सौ वैष्णव की वार्ता' इस दिशा में प्रथम प्रयास कहे जा सकते हैं। इनमें संख्याओं के अनुरूप ही अनेक वैष्णव भक्तों के चरित्र अंकित किए गए हैं। इसके पश्चात् वेणी माधव द्वारा रचित 'गोसाई चरित' नामक जीवनी उपलब्ध होती है। अकबर काल में एक कवि बनासीदास ने 'अर्द्धकथानक' नाम से अपनी आत्मकथा को भी पद्यबद्ध किया था। इन्हें विशुद्ध जीवनी साहित्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। इसे मात्र ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

प्रश्न 166 संस्मरण और रेखाचित्र में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - संस्मरण प्रायः प्रसिद्ध व्यक्तियों के ही लिखे होते हैं और इनके लेखक भी प्रायः प्रसिद्ध व्यक्ति ही होते हैं। जबकि रेखाचित्र के लिए इस प्रकार का कोई बंधन नहीं होता। इनके प्रधान से भी प्रधान मात्र भी साधारण होते हैं। संस्मरण का संबंध देश, काल एवं पात्र तीनो से होता है जबकि रेखाचित्र का सम्बन्ध देश और काल से न होकर केवल 'पात्र से ही होता है। संस्मरण में रेखाचित्र की तुलना में आत्मनिष्ठता अधिक होती है। संस्मरण लेखक की कोई निश्चित शैली नहीं होती। वह किसी भी शैली को अपना सकता है। रेखाचित्रकार को शैली सम्बन्धी स्वतन्त्रता नहीं, उसे सदैव चित्रात्मक शैली ही अपनानी पड़ती है। चित्रात्मक शैली के अभाव में रेखाचित्र का सजन संभव नहीं है।

प्रश्न 167 आत्मकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर - हिन्दी की अन्य गद्य विधाओं के समान इस का उद्भव भी आधुनिक काल में हुआ। इसमें लेखक भाषा के माध्यम से अपने जीवन को स्वयं प्रस्तुत करता है। वह स्मरण के आधार पर जीवन के आरम्भ से लेकर लेखन कार्य के क्षणों तक को संस्मरणात्मक रूप में चित्रित करता है। उसमें यथार्थ सदा विद्यमान रहता है। लेखक अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का ही वर्णन नहीं करता अपितु अनेक प्रभावों का वर्णन भी करता है। महापुरुषों द्वारा लिखी गई आत्मकथाएं पाठकों का मार्ग–दर्शन करती हैं तथा वह प्रेरणा देती हैं। जीवनी और आत्मकथा में यही अन्तर है कि जीवनी में लेखक किसी अन्य पुरुष की कथा लिखता है और आत्मकथा में स्वयं अपनी कहता है।

प्रश्न 168 हिन्दी एंकाकी के उद्भव का परिचय दीजिए।

उत्तर - हिन्दी में एकांकी रचना का कार्य सन् 1930 के बाद आरम्भ हुआ था। इनका आधार और आकार प्रकार पश्चिमी स्वरूप के अनुसार था। डॉ॰ नगेन्द्र ने माना है कि भारतेन्दु युग के बाद यह कार्य आरम्भ हो गया था। महेश चन्द्र प्रसाद, देवीप्रसाद गुप्त ,रूप नारायण पाण्डेय, बद्रीनाथ भट्ट बेचन शर्मा उग्र और जयशंकर प्रसाद ने एक–एक एकांकी सम्बन्धी रचना की थी लेकिन इस विधा का वास्तविक लेखन डॉ॰ रामकुमार वर्मा को हिन्दी

एकांकी लेखन का जनक माना जाता है। उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, विष्णुप्रभाकर, जगदीशचन्द्र माथुर आदि अनेक मुख्य एकांकीकार हैं।

प्रश्न 169 भारतीय भाषा में पत्रकारिता का प्रारम्भ कब हुआ ?

उत्तर - सन् 1816 तक जितने भी भारतीय पत्र प्रकाशित हुए वे सब अंग्रेजी में थे, लेकिन सन् 1818 में पहली बार भारतीय भाषा में मासिक पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसका नाम था 'दिग्दर्शन'। इसे ईसाई धर्म के प्रचार के लिए छापा गया था, बाद में राजा राममोहनराय के प्रभाव से बंगला गजट नामक पत्रिका छपी थी, जिसमें स्वतंत्र और उदार विचारों को प्रकट किया गया था। भारतीय पत्रकारिता में नए अध्याय को जोड़ने का वास्तविक श्रेय राजामोहन राय को ही है, उन्होंने बंगाल में ''संवाद कौमुद्दी'' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था, उन्होंने ईसाई धर्म का विरोध करने के लिए इस पत्र को आरम्भ करवाया था, लेकिन अंग्रेज सरकार की विरोधी नीतियों के कारण यह बहुत देर तक चल नहीं पाया था।

प्रश्न 170 हिन्दी के प्रारम्भिक समाचार पत्रों का वर्णन कीजिए।

उत्तर - हिन्दी में प्रकाशित पहला साप्ताहिक पत्र उदण्ड मार्तण्ड' है, जिसे युगल राजशुक्ल ने 30 मई, 1826 को कलकता से प्रकाशित किया। सन् 1845 में राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द ने 'बनारस अखबार' नामक साप्ताहिक पत्र आरम्भ किया था। लगभग इसी समय राजा राममोहनराय ने हिन्दी में 'बंगदूत' का आरम्भ किया था। 'मार्तण्ड' , 'मालवा', 'जगदीप' भास्कर, सुधाकर, 'सामदण्ड मार्तण्ड', 'बुद्धि प्रकाश', शिमला आखबार' आदि ऐसी पत्र–पत्रिकाएं हैं जो सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से पहले भारतीय जनमानस में अपना स्थान बना चुके थे। भारतेन्दु की पत्रिका 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन सन 1867 को हुआ था। सन् 1854 में कलकता से हिन्दी का पहला दैनिक समाचार पत्र समाचार सुधावर्षण' प्रकाशित हुआ था।

प्रश्न 171 स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्रों के नाम लिखिए।

उत्तर - जहां 19वीं शताब्दी के अंत तक हिन्दी में केवल तीन दैनिक पत्र प्रकाशित होते थे, वहां स्वाधीनता के बाद इनकी संख्या हजारों तक पहुंच गई है। नवभारत टाइम्स, जागरण, स्वतन्त्र भारत अमर उजाला, वीर प्रताप, वीर–अर्जुन, पंजाब केसरी, दैनिक–ट्रिब्यून, हिन्दुस्तान, जनसत्ता, दैनिक भास्कर, नई दुनियां, राजस्थान पत्रिका आदि हजारों समाचार पत्र हैं, जिनका यहां नामोल्लेख करना असंभव–सा है।

प्रश्न 172 साप्ताहिक पत्रों का नामोल्लेख कीजिए जो स्वतंत्रता के बाद छपने लगे थे।

उत्तर - हिन्दी में साप्ताहिक पत्रिकाओं का आरम्भ उदण्ड–मार्तण्ड' से हुआ था। तब से अब तक अनेक महान् पत्रकारों ने हिन्दी साहित्य को श्रेष्ठ पत्रिकाएं प्रदान की हैं। स्वतंत्रता के बाद ही कुछ प्रमुख पत्रिकाएं हैं––धर्मयुग, साप्ताहिक–हिन्दुस्तान , दिनभानु, रविवार आदि हैं। डॉ॰ धर्मवीर भारती के सम्पादन में छपने वाले धर्मयुग ने जो प्रतिष्ठा अर्जित की थी, वह हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में अपूर्व हैं।

प्रश्न 173 गद्य गीत किसे कहते हैं ?

उत्तर - गद्य में काव्य जैसा प्रभाव उत्पन्न करके भावों को अभिव्यक्त करने की प्रवति ने इस विधा को जन्म दिया। भावावेश के सुख –दुखात्मक क्षणों में मानव की वाणी में काव्यमयता का संचार होने लगता हैं यदि इसमें ताल लय एवं संगीत का भी समन्वय हो जाता है, तब तो यह 'गीति–काव्य' के नाम से अभिहित किया जाता है और यदि भावावेश की यह अभिव्यक्ति तरलायित गद्य में ही रहती है तो इसे गद्य–गीत या गद्य–काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है।

प्रश्न 174 हिन्दी में रचित बाल्किशेर साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तर - हिन्दी में बाल्किशोर साहित्य रचने का सामान्य प्रवत्ति स्वतन्त्रता पूर्व युग में भी दिखाई देती है। तब अक्सर इस तरह की पत्र–पत्रिकाओं के लिए ही ऐसा साहित्य लिखा जाता था। 'बालसखा', 'सुमन सौरभ' , पराग, चंदामामा, चमक आदि पत्रिकाओं ने इस रूचि को निश्चय ही विशेष विकास प्रदान किया था। पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद साक्षरता का अधिकाधिक प्रचार करने और हो जाने से इस प्रकार की सजनात्मक प्रक्रिया को विशेष महत्त्व मिला है। आज इस प्रकार का साहित्य तात्विक एवं मनोवैज्ञानिक दष्टि से विशेष महत्त्व प्राप्त करता जा रहा है और इसकी रचना भी खूब हो रही है।